# इकाई–1 असामान्य मनोविज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 असामान्य मनोविज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
1.3.1 पूर्व वैज्ञानिक काल
1.3.2 असामान्य मनोविज्ञान का आधुनिक उद्भव
1.3.3 आज का असामान्य मनोविज्ञान
1.4 सारांश
1.5 शब्दावली
1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.9 निबंधात्मक प्रश्न

## 1.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई में हमारे अध्ययन का विषय है–''असामान्य मनोविज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि।'' जैसा कि बताया जाता है कि असामान्य मनोविज्ञान जिसे मनोरोग विज्ञान के नाम से भी जाना जाता है, मनोविज्ञान की वह शाखा है, जिसमें व्यक्ति के असामान्य व्यवहार और उसकी मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करते हैं। अतः असामान्य मनोविज्ञान की विषयवस्तु मूल रूप से कुंसमायोजित व्यवहार, विघटित व्यक्तित्व आदि के अध्ययन एवं उपचार से संबंधित हैं।

## 1.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों, प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप

(1) असामान्य मनोविज्ञान के इतिहास का वर्णन कर सकेंगे।

(2) भिन्न–भिन्न कालों में मनोरोगों के कारण एवं उपचार से संबंधित विभिन्न विचारधाराओं का विश्लेषण कर सकेंगे।

## 1.3 असामान्य मनोविज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

पाठकों, असामान्य व्यवहार के बारे में अध्ययन करना अपने आप में कोई नया कार्य नहीं है, क्योंकि यह कार्य बहुत प्राचीन समय से किया जाता रहा है। असामान्य मनोविज्ञान की एक लम्बी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है। मनोरोगों के अध्ययन का प्रारंभ मानवजाति के अभिलिखित इतिहास से ही होता है। अत्यधिक प्राचीन समय में मानसिक विकृतियों का कोई ऐतिहासिक उल्लेख मनोवैज्ञानिकों के पास उपलब्ध नहीं है। अतिप्राचीनकाल में असामान्य व्यवहार का अध्ययन वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित न होने के कारण अधूरा था। मनोवैज्ञानिक ने असामान्य मनोविज्ञान के इतिहास को निम्न तीन भागों में वर्गीकृत किया है–

(1) पूर्व वैज्ञानिक काल : प्राचीन समय से लेकर 1800 तक

(Prescintific period : From primitire time to 1800 A.D.)

(2) असामान्य मनोविज्ञान का आधुनिक उद्भव : 1801 से लेकर सन् 1950 तक।

(Modern aligin of abnormal psychology : From 1801 to 1950)

(3) आज का असामान्य मनोविज्ञान : सन् 1951 से आज तक

(Abnormal psychology Today : From 1951 to Today)

पाठकों, असामान्य मनोविज्ञान के इतिहास में प्रत्येक काल में असामान्य व्यवहार के प्रति अलग–अलग दृष्टिकोण को अपनाया गया है।

तो आइये, अब हम अध्ययन करते हैं कि भिन्न–भिन्न समय में असामान्य व्यवहार के प्रति क्या–क्या दृष्टिकोण अपनाये गये, किस प्रकार उनका अध्ययन किया गया।

### 1.3.1 पूर्व वैज्ञानिक काल (पुरातन समय से लेकर 1800 तक) (Prescientific period)

प्रिय विद्यार्थियों, पूर्ववैज्ञानिक काल का प्रारंभ पुरातन लोगों द्वारा असामान्य व्यवहार के अध्ययन से माना जाता है। इसमें 18वीं सदी तक किये गये सभी अध्ययन सम्मिलित हैं। इस काल में असामान्य व्यवहार के कारण एवं निवारण को लेकर अत्यधिक उतार–चढ़ाव रहा। असामान्य व्यवहार को लेकर अलग–अलग मतों का प्रतिपादन किया गया। अतः अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से पूर्ववैज्ञानिक काल को निम्न चार खण्डों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. पाषाण युग का जीववादी चिन्तन
   (Animistic thinking of stone age)
2. प्रारंभिक दार्शथ्नक एवं मेडिकल विचारधारायें
   (Early philosophical and medical concepts)
3. मध्य युग में पैशाचिकी
   (Demenology in middle age)
4. मानवीय दृष्टिकोण का उद्‌भव
   (Oligion of Humanitalion Viewpoint)

जिज्ञासु विद्यार्थियों, सर्वप्रथम हम अध्ययन करते हैं, पाषाण युग के जीववादी चिन्तन के बारे में।

**(1) पाषाण युग का जीववादी चिन्तन–**

प्रिय विद्यार्थियों, वास्तव में असामान्य व्यवहार तथा उसके उपचार की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का आरम्भ पाषाण युग की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अवधारणा ''जीववाद'' से प्रेरित विचारों से मानते हैं। प्राचीन समय में ग्रीक, चीन तथा मिस्र आदि देशों में इसी विचारधारा का प्रचलन था। जीववादी चिन्तन के अनुसार जब किसी मनुष्य के प्रति भगवान की कृपा दृष्टि समाप्त हो जाती है तो दण्ड के रूप में ईश्वर की ओर से उस प्राणी में मनोरोग उत्पन्न हो जाता है, और उस व्यक्ति पर किसी बुरी आत्मा का आधिपत्य स्थापित हो जाता है। प्राचीन समय में मनोरोगों के प्रति लोगों का दृष्टिकोण इस जीववादी चिन्तन से सर्वाधिक प्रभावित हुआ था।

जीववाद की मान्यता के अनुसार व्यक्ति में असामान्य व्यवहार विकसित होने का मूल कारण उसके भीतर किसी भूत–प्रेत या बुरी आत्मा का प्रविष्ट हो जाना है। इसे **पिशाचआधिपत्य** (Demon Possession) का नाम दिया गया।

इसके साथ ही लोगों की यह मान्यता भी थी कि जब किसी व्यक्ति के शरीर में अच्छी आत्मा प्रविष्ठ हो जाती है तो उसका व्यवहार आध्यात्मिक हो जाता है।

किन्तु ऐसा माना जाता था कि अच्छी आत्मा का आधिपत्य तो कम ही होता था, अधिकतर आधिपत्य बुरी आत्माओं का ही होता था।

प्राचीन जीववादी चिन्तन में न केवल व्यक्ति के असामान्य व्यवहार की अवस्था को प्रभावित किया, बल्कि इससे मनोरोगों के उपचार का ढंग भी अत्यधिक प्रभावित हुआ। उस समय मनोरोगों के उपचार के लिये निम्न दो विधियाँ प्रचलित थी–

**(A) अपद्रूत निसारन (Exarcim)**

**(B) ट्रोफाइनेशन (Trephination)**

अपद्रूत निसारन में विभिन्न प्रविधियों के माध्यम से शरीर के भीतर प्रविष्ट बुरी आत्मा को बाहर निकाला जाता था। जैसे– प्रार्थना, जादू–टोना, शोरगुल, झाड़–फुक और अनेक कष्टदायी एवं अमानवीय विधियाँ, जैसे–लम्बे समय तक भूखा रखना, कोड़े लगाना इत्यादि। इन विधियों को अपनाने के पीछे यह मान्यता थी कि इस प्रकार के तरीकों का उपयोग करने से मनोरोगी का शरीर इतना कष्टकारी स्थिति में पहुँच जायेगा कि बुरी आत्मा स्वतः ही उसके शरीर को छोड़ देगी और उसका रोग दूर हो जायेगा। बाद में अपद्रूत निसारन विधि चीन, मीस्र, ग्रीस के देशों के पुजारियों में अत्यन्त लोकप्रिय हो गयी, जो उस समय मनोचिकित्सक का कार्य भी करते थे।

**(B) ट्रीफाइनेशन–**

अपद्रूत–निसारन के अतिरिक्त बुरी आत्मा को बाहर निकालने के लिये **ट्रीफाइनेशन** विधि का प्रयोग भी किया जाता था, जिसमें मनोरोग ग्रस्त व्यक्ति की खोपड़ी में नुकीले पत्थरों से मार–मार कर एक छेद कर दिया जाता था। इस विधि को अपनाने के पीछे यह मान्यता थी कि बुरी आत्मा इस छेद द्वारा बाहर निकल जायेगी और व्यक्ति स्वस्थ हो जायेगा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पाषाण युग में मनोरोगों को लेकर जीववादी चिन्तन का बोलबाला था, जिसमें बुरी आत्मा का शरीर में प्रवेश कर जाना ही मनोरोगों का प्रमुख कारण माना जाता था।

**प्रारंभिक दार्शनिक एवं मेडिकल विचारधारायें–**

प्रिय विद्यार्थियों आज से करीब 2500 वर्ष पूर्व मनोरोगों के संबंध में एक विवेकपूर्ण वैज्ञानिक विचारधारा का जन्म हुआ। इसका श्रेय आधुनिक चिकित्साशास्त्र के जनक माने जाने वाले ग्रीक चिकित्सक **हिपोक्रेट्स** को जाता है। असामान्य व्यवहार के संबंध में हिपोक्रेट्स ने अपने क्रांतिकारी, वैज्ञानिक विचार प्रतिपादित करते हुये कहा कि शारीरिक एवं मानसिक रोग कुछ स्वाभाविक कारणों से उत्पन्न होते हैं न कि किसी बुरी आत्मा के शरीर में प्रवेश करने पर अथवा देवी–देवताओं के प्रकोप से। इस विचारधारा को **प्रकृतिवाद** का नाम दिया गया जो **जीववादी चिन्तन** के प्रतिकूल थी। मनोरोगों के संबंध में इन प्रारंभिक दार्शनिक एवं मेडिकल विचारधाराओं का वर्णन निम्न चार बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है–

(अ) हिपोक्रेट्स का योगदान
(ब) प्लेटो एवं अरस्तू का योगदान
(स) उप्तर ग्रीक एवं रोमवासियों का योगदान
(द) इस्लामिक देशों में ग्रीक विचारों की मान्यता

**(अ) हिपोक्रेट्स का योगदान**

असामान्य मनोविज्ञान के इतिहास में हिपोक्रेट्स का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मनोरोगों के संबंध में इन्होंने एक अत्यन्त वैज्ञानिक एवं तार्किक विचारधारा को जन्म दिया, जो पाषाण युग के जीववादी चिन्तन की बिल्कुल विपरीत थी। हिपोक्रेट्स का विचार था कि शारीरिक रोगों के समान ही मानसिक रोग भी कुछ स्वाभाविक कारणों से उत्पन्न होते हैं और जिस प्रकार शारीरिक रोगों का इलाज किया जाता है, उसी प्रकार मानसिक रोगियों का इलाज भी मानवीय ढंग से होना चाहिये और ऐसे रोगियों की पर्याप्त देखभाल की जानी चाहिये। हिपोक्रेट्स ने मानसिक रोगों का मूल कारण **मस्तिष्कीय विकृति** को माना, क्योंकि सभी प्रकार के बौद्धिक कार्यों में मस्तिष्क की ही सर्वाधिक प्रमुख भूमिका होती है। इन्होंने मनोरोगों को निम्न तीन श्रेणियों में विभक्त किया–

**(A) उन्माद (Mani)**
**(B) विषाद रोग (Melancholia)**

**(C) उन्मप्तता (Phrentis) या मस्तिष्कीय ज्वर (Brain Fever)**

मनोरोगियों के निरीक्षण से प्राप्त नैदानिक अनुभवों के आधार पर उन्होंने प्रत्येक मनोरोग के नैदानिक लक्षण भी बताये। मनोरोगियों के व्यक्तित्व को समझने में हिपोक्रेट्स ने स्वान की भूमिका को भी स्वीकार किया। मनोरोगों की उत्पत्ति के सन्दर्भ में इन्होंने मस्तिष्कीय विकृति के साथ–साथ वंशानुक्रम, पूर्ववृत्ति तथा पर्यावरणी कारकों के महत्व को भी स्वीकार किया। हिपोक्रेट्स की मान्यता भी कि मनोरोगियों को यदि अपने परिवार से अलग एक अच्छे, स्वस्थ वातावरण में रखा जाये तो वे शीघ्र स्वास्थ्यलाभ कर मनोरोगों से छुटकारा पा सकते हैं।

**हिस्टीरिया** रोग के सन्दर्भ में हिपोक्रेट्स ने बताया कि यह रोग केवल स्त्रियों में ही होता है और विशेष रूप से उन स्त्रियों में जिनमें बच्चा पैदा करने की तीव्र इच्छा होती है। अतः विवाह ही इस रोग का सबसे अच्छा इलाज है।

इसके साथ ही इन्होंने मनोरोगों के कारणों के संबंध में यह भी बताया कि जब हमारे शरीर के चार प्रमुख पिप्त–पीला पिप्त, काला पिप्त, रक्त एवं श्लेष्मा का अनुपात असंतुलित हो जाता है, तो इससे भी मनोरोग उत्पन्न हो जाते है।

पाठकों, यद्यपि वर्तमान समय में हिपोक्रेट्स के विचार पूरी तरह मान्य नहीं है। किन्तु फिर भी इनके विचार उस समय इतने क्रांतिकारी थे, जिनके कारण मनोरोगों की उत्पत्ति के संबंध में दैवीय प्रकोप एवं दुष्ट आत्मा संबंधी विचार की मान्यता जाती रही और उसके स्थान पर नये वैज्ञानिक विचारों का प्रादुर्भाव हुआ।

**(ब) प्लेटो एवं अरस्तू का योगदान**

हिपोक्रेट्स के अतिरिक्त अन्य ग्रीक दार्शनिकों जैसे–प्लेटों एवे उनके शिष्य अरस्तू द्वारा भी मनोरोगियों का अध्ययन किया गया। इन दार्शनिकों के द्वारा विशेष रूप से आपराधिक कार्य करने वाले मानसिक रोगियों के अध्ययन पर ध्यान केन्द्रित किया गया। ऐसे मनोरोगियों के संबंध में प्लेटों का विचार था कि चूँकि ऐसे मनोरोगी अपने आपराधिक कृत्यों के लिये प्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार नहीं होते है। इसलिये इनके साथ सामान्य अपराधियों जैसा व्यवहार नहीं करना चाहिये और न ही उनके समान दण्ड दिया जाना चाहिये वरन् इनके साथ मानवीय दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिये। जैसे उनके पारिवारिकजनों अथवा मित्रों या रिश्तेदारों द्वारा उन पर निगरानी रखना इत्यादि। प्लेटो का विचार था कि मनोरोगों को ठीक प्रकार से समझने के लिये मानव व्यवहार का ढंग से समझना अत्यन्त आवश्यक है। प्लेटों में सभी प्रकार के व्यवहारों को शारीरिक अनावश्यकताओं द्वारा प्रेरित माना। प्लेटों ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **Republic** में मानसिक क्षमताओं से सम्बद्ध वैयक्तिक विभिन्नता की महत्ता पर बल दिया है तथा यह बताया है कि किसी भी व्यक्ति के विचार एवं व्यवहार पर सामाजिक–सांस्कृतिक कारकों का भी अत्यन्त प्रभाव पड़ता है। अपने इन सभी आधुनिक विचारों के बावजूद भी प्लेटों इस विचार से भी कुछ हद तक सहमत थे कि मनोरोग आंशिक रूप से दैवीय कारणों से भी होता है।

**(द) इस्लामिक देशों में ग्रीक विचारों की मान्यता**

मध्य युग के समय कतिपय इस्लामिक देश पहले के ग्रीक चिकित्सकों के विचारों से प्रभावित रहे 792 A.D. में बगदाद में प्रथम मानसिक अस्पताल खोला गया तथा इसके बाद डमासकश और ऐलेपों में भी इस प्रकार के अस्पताल खोले गये, जिनमें मनोरोगियों का मानवीय ढंग से उपचार करने पर बल दिया गया। इस्लामिक चिकित्सा विज्ञान में सर्वाधिक प्रसिद्ध चिकित्सक **ऐशइसना** है। इन्हें **चिकित्सकों का राजकुमार** कहा जाता है। इनकी प्रसिद्ध कृति **The Canon of Medicine** है, जिसमें अवसाद, मिरगी, उन्माद, हिस्टीरिया आनि मनोरोगों का विशेष रूप से अध्ययन किया तथा उपचार के प्रति मानवीय दृष्टिकोण अपनाया।

### (स) उप्तर ग्रीक एवं रोमवासियों का योगदान

प्रिय पाठकों, महान् चिकित्सक हिपोक्रेट्स के बाद ग्रीक तथा रोमन चिकित्सक मनोरोगों के अध्ययन में उनके द्वारा बताये गये पथ का अनुकरण करते रहे। इस संबंध में मिस्र में काफी प्रगति हुयी एवं वहाँ के अनेक गिरजाघरों एवं मंदिरों को आरोग्यशालाओं में परिवर्तित कर दिया गया और वहाँ के शांत एवं स्वस्थ वातावरण में मनोरोगियों को रखने की विशेष रूप से व्यवस्था की गई। इन आरोग्यशालाओं की विशेष बात यह थी कि इनमें मनोरोगियों को विभिन्न प्रकार की सर्जनात्मक एवं मनोरंजन करने वाली गतिविधियों जैसे नृत्य करना, गाना–बजाना, बगीचे में घूमना इत्यादि में शामिल किया जाता था। इस समय मनोरोगों के उपचार में कुछ अन्य नयी तकनीकों को भी शामिल किया गया। जैसे व्यायाम, जल चिकित्सा, अल्पभोजन तथा कुछ विशिष्ट रोगों में शरीर से रक्त बहा देना, यांत्रिक दबाव इत्यादि।

मनोरोगों एवं असामान्य व्यवहार के अध्ययन में अनेक रोमन चिकित्सकों जैसे– एस्कलेपियड्स, सिसेरो, ऐरेटियस, गेलेन इत्यादि के द्वारा भी महत्वपूर्ण योगदान दया गया। **एस्कलेपियड्स** सबसे पहले चिकित्सक थे, जिन्होंने तीव्र (Acute) एवं चिरकालिक (Chronic) मनोरोगों के बीच तथा भ्रम (illusion) विभ्रम (भ्ंससनबपदंजपवद) एवं व्यामोह (Delusion) के बीच अन्तर स्पष्ट किया। इसी प्रकार **सिसेरो** ने सर्वप्रथम यह बताया कि मानसिक रोगों की उत्पत्ति में सावेमिक कारकों की भूमिका सर्वाधिक होती है। लगभग एक शताब्दी के उपरान्त **ऐरेत्यिस** द्वारा सबसे पहले यह विचार प्रतिपादित किया गया कि अवसाद एवं उन्माद एक ही रोग की दो अलग–अलग मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है। ऐरेटियस का विचार था कि जो लोग सुस्त तथा गंभी स्वभाव के होते हैं उनमें विषादग्रस्त होने की संभावना अधिक होती है एवं जो व्यक्ति अधिक चिड़चिड़े एवं आक्रोशी प्रकृति के होते हैं, वे प्रायः उन्मादग्रस्त हो बतो हैं। प्रसिद्ध चिकित्सक **गेलेन** जो मूलतः ग्रीक थे तथा बाद में जाकर रोग में बस गये थे उन्होंने मनोरोगों के कारणों को निम्न दो वर्गों में विभक्त किया–

**(A) शारीरिक कारण एवं**

**(B) मानसिक कारण**

मस्तिष्क में चोट लगना, अत्यधिक मद्यमान, आघात, भय, मासिक धर्म में गड़बड़ी, आर्थिक अभाव, प्रेम में असफल होना इत्यादि कारकों को मनोरोगों का कारण माना गया।

पाठकों, ग्रीस तथा रोम की सभ्यता का सूर्य अस्त होने के बाद अर्थात जब गेलेन की मृत्यु हो गयी (200 A.D.) तत्पश्चात इन देशों में मनोरोगों के कारण एवं उपचार के संबंध यहाँ के दार्शनिकों द्वारा प्रतिपादित विचार एवं विधियाँ भी अपना प्रभाव खोने लगी और पुनः जीववादी चिन्तन जोर पकड़ने लगा अर्थात फिर से उस समय के लोग एवं चिकित्सक भी मनोरोगों का कारण दैवीय प्रकोप एवं दुष्ट आत्मा का शरीर में प्रवेश करना मानने लगे। इसलिये असामान्य मनोविज्ञान के इतिहास में इसे **अन्धकार युग (Dark age)** माना जाता है, जिसका समय 500 A.D. तक माना गया है। 500 A.D. से 1500 A.D. तक के समय को ''मध्ययुग'' (Middle age) माना गया है।

### (3) मध्ययुग में पैशाचिकी

प्रिय पाठकों, जैसा कि पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि असामान्य मनोविज्ञान के इतिहास में 200 A.D. से 500 A.D. तक के समय को **अन्धकार युग** एवं 500 A.D. से 1500 A.D. तक के काल को **मध्ययुग** माना गया है। इन दोनों कालों में मानसिक रोगों के प्रति प्रायः एक जैसा दृष्टिकोण ही था। ग्रीक एवं रोमन सभ्यता के सूर्यास्त एवं इसाईयत के सूर्योदय से अंधकारयुग का आरंभ माना जाता है। इस युग में एक बार फिर मनोरोगों का मूल कारण बुरी आत्मा के प्रवेश या दैवीय प्रकोप को माना जाने

लगा। इसाईयत के बढ़ते प्रचार ने इस मान्यता को और दृढ़ किया। मध्ययुग के प्रारंभ में भी मानसिक रोगों की उतपत्ति एवं उपचार के प्रति यही दृष्टिकोण बना रहा।

मध्ययुग के उत्तरार्द्ध में असामान्य व्यवहार में **सामूहिक पागलपन** की एक नयी प्रवृत्ति की शुरूआत हुयी और धीरे–धीरे यूरोप के काफी बड़े हिस्से में यह रोग एक महामारी के रूप में फैल गया। इस सामूहिक पागलपन की बीमारी में जैसे ही हिस्टीरिया का लक्षण किसी एक व्यक्ति में दिखायी देता तो दूसरे लोग ीाी इससे प्रभावित होने लगते और असामान्य व्यवहार दिखाने लगते जैसे रोगना, उछलना, कूदना, एक दूसरे के कपड़े फाड़ देना आदि। इटली में इस प्रकार के सामूहिक नाच–गाने के उन्माद को **नृत्योन्माद** कहा गया। नृत्योन्माद को समान ही एक दूसरा तरह का उन्माद **वृकोन्माद** भी फैला। इसमें मनोरोगी को ऐसा लगता था कि वह एक भेड़िया के रूप में बदल गया है। इसलिये उसकी गतिविधियाँ भी भेड़ियें के समान ही हो जाती थी। 14वीं–15वीं सदी में सामूहिक पागलपन की यह प्रवृत्ति अपनी चरम सीमा पर थी। मध्ययुग में मनोरोगों का उपचार मूलतः पादरियों द्वारा ही किया जाता था। इस युग के प्रारंभ में तो मनोरोगों के उपचार हेतु कुछ मानवीय तरीके अपनाये गये लेकिन बाद में फिर से अपद्रूतनिरासन एवं ट्रीफाइनेशन जैसी अवैज्ञानिक एवं अमानवीय विधियों को अपनाया गया।

15वीं सदी के उत्तरार्द्ध में लोगों में यह विचार काफी सुदृढ़ हो गया कि बुरी आत्मा का आधिपत्य दो तरह का होता है। एक आधिपत्य ऐसा होता है। जिसमें व्यक्ति के स्वयं के पापकर्म के फलस्वरूप कोई बुरी आत्मा व्यक्ति की इच्छा के विरूद्ध उसमें प्रवेश कर जाती हैं और उसमें मनोरोगों को जन्म देती है। दूसरे प्रकार का आधिपत्य ऐसा होता हे। जिसमें व्यक्ति स्वयं अपनी इच्छा से बुरी आत्मा से मित्रता कर लेता है और असामान्य व्यवहार करने लगता है। इस दूसरे प्रकार के आधिपत्य में व्यक्ति उस बुरी आत्मा की अलौकिक शक्तियों को प्राप्त करके विभिन्न प्रकार के सामाजिक उपद्रव जैसे–आँधी–तूफान, बाढ़ महामारी, अकाल आदि लाकर लोगों को अनेक तरीकों से परेशान करता है। इस प्रकार के मनोरोगियों को **डायन** या **जादूगर** माना जाने लगा। 15वीं सदी के अन्त तक इन दोनों प्रकार के मनोरोगियों में अन्तर खत्म हो गया तथा सभी मानसिक रोगियों को अब **जादूगर** या **डायन** ही माना जाने लगा और इनका उपचार भी अत्यन्त अमानवीय ढंग से किया जाता था। इनके उपचार के लिये कठोर शारीरिक दण्ड जैसे कोड़ा लगाना, अंगों को जलाना आदि दिया जाता था। उस युग के पादरियों ने इस प्रकार के जादू–टोना से लोगों को बचाने हेतु एक नियमावली भी बनायी, जिसे ''The withes hammer'' कहा गया। इसमें जादू–टोना के प्रभावों को दूर करने एवं डाइन को न्यायिक दंड देने के तरीकों का उल्लेख था।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मध्ययुग में मनोरोगों के अध्ययन के संबंध में किसी प्रकार की कोई प्रगति नहीं हुयी। न तो मनोरोगों के कारणों के संबंध में और न ही इनके उपचार के संबंध में किसी तार्किक एवं वैज्ञानिक विचारधारा का प्रतिपादन किया गया।

**4. मानवीय दृष्टिकोण का उद्‌भव–**

प्रिय विद्यार्थियों, 16वीं सदी के प्रारंभ में ही मनोरोगों के संबंध में मध्ययुग के ईश्वरपरक एवं अंधविश्वायुक्त विचारधारा के विरूद्ध आवाज उठने लगी और इस संबंध में एक नवीन मानवीय दृष्टिकोण का उद्‌भव हुआ, जिसमें यह माना गया कि शारीरिक रोग के समान ही मनोरोग भी होते है, इनका कारण कोई दैवीय प्रकोप नहीं होता है। अतः मानसिक रोगियों का उपचार भी मानवीय ढंग से ही होना चाहिये। इस सन्दर्भ में जिन विद्वानों एवं चिकित्सकों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया, उनका विवेचन निम्नानुसार है–

(A) ''पारासेल्सस'' एक अत्यन्त प्रख्यात चिकित्सक हुये, जिन्होंने असामान्यता के प्रति मानवीय दृष्टिकोण का परिचय दिया इनका विचार था कि ''नृत्योन्माद'' रूपी सामूहिक पागलपन की प्रवृत्ति दैवीय प्रकोप या शरीर पर बुरी आत्मा का आधिपत्य होने के कारण

उत्पन्न नहीं होती वरन अन्य शारीरिक रोगों के समान यह भी एक रोग है, जिसके इलाज के मानवीय ढंग पर वैज्ञानिक तरीके से विचार करना चाहिये। पारासेल्सस ने मनोरोगों के मनोवैज्ञानिक कारणों पर प्रकाश डाला तथा मानसिक रोगों के उपचार हेतु **''शारीरिक चुम्बकीय''** विधि को अपनाने पर बल दिया। आगे चलकर यही विधि सम्मोहन विधि के नाम से लोकप्रिय हुयी।

**(B)** पाठकों, यद्यपि पारासेल्सस ने मनोरोगों के कारण के संबंध में दुष्ट आत्मा संबंधी विचारों का खण्डन किया, किन्तु इन्होंने मनोरोगों की उत्पत्ति में नक्षत्रों के प्रभाव को स्वीकार किया है। इनका कहना था कि व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य पर चन्द्रमा का प्रभाव पड़ता है।

महान जर्मन चिकित्सक **जोहान वेयर** ने असामान्य व्यवहार एवं मनोरोगों के संबंध में अपने विचारों का प्रतिपादन अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ''The Deception of Demons'' में किया है, जिसमें उन्होंने बताया कि मनोरोगी किसी बुरी आत्मा के आधिपत्य से ग्रसित नहीं होते और न ही वे जादू–टोना करने की कला में निपुण होते हैं, वरन् कुछ शारीरिक एवं मानसिक कारणों से उनमें असामान्य व्यवहार विकसित हो जाता है। अतः ऐसे लोगों के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिये और उनका इलाज मानवीय ढंग से करना चाहिये। उस समय के बुद्धिजीवी वर्ग ने तो जोहान वेयर के मत का समर्थन किया, किन्तु कुछ लोग ऐसे भी थे जो उनके विचारों से सहमत नहीं थे और उन्होंने वेयर के विचारों का मजाक उड़ाया। चर्च द्वारा भी वेयर की पुस्तक तथा विचारधारा पर प्रतिबंध लगा दिया गया और यह प्रतिबंध बीसवीं सदी के आरंभ तक लगा रहा। इसका परिणाम यह हुआ कि वेयर के विचार बहुत अधिक प्रभावशाली सिद्ध नहीं हो पाये।

**(C)** रेजिनाल्ड स्कॉट ने भी असामान्यता के संबंध में मानवीय दृष्टिकोण के विषय में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उस समय के अन्य चिकित्सकों के समान इन्होंने भी मनोरोगों की उत्पत्ति एवं उपचार के संबंध में पैशाचिकी का घोर विरोध किया और इनके विरूद्ध तर्कसम्मत वैज्ञानिक विचारों का प्रतिपादन किया, जिनका वर्णन उन्होंने सन् 1584 में प्रकाशित अपनी प्रसिद्ध कृति ''Discovery of witchcraft'' में किया है, लेकिन इंग्लैण्ड के राजा जेम्स प्रथम ने इस पुस्तक पर न केवल प्रतिबंध लगाया बल्कि उसकी प्रतियों में आग लगा दी गई, किन्तु उस समय तक मानवीय दृष्टिकोण अत्यन्त बल पकड़ चुका था क्योंकि चर्च के पादरी भी दुरात्मा संबंधी दृष्टिकोण का पूरे जोर–शोर से खण्डन करने लगे थे।

इन सन्दर्भ में **सते–बिनसेंट डी पाल** का योगदान उल्लेखनीय है, जिन्होंने घोर विरोध के बीच तथा अपने जीवन को संकट में डाल कर इस बात की घोषणा की कि शारीरिक रोग के समान मानसिक बीमारी भी एक प्रकार का रोग है, कोई दैवीय प्रकोप नहीं। अतः मनोरोगियों के जीवन के कल्याण के लिये ईसाईयों को मानवीय दृष्टिकोण अपना कर मानवता का परिचय देना चाहिये। इस प्रकार जैसे–जैसे मानवीय दृष्टिकोण का विचार जोर पकड़ता गया वैसे–वैसे लोगों के मन से दुरात्मा संबंधी अंधविश्वास धीरे–धीरे दूर होने लगा और उनके मन में यह विचार पनपने लगा कि मनोरोगियों का उपचार भी किसी मानसिक अस्पताल या मानसिक स्वास्थ्य केन्द्रों में होना चाहिये न कि किसी सुनसान जगह पर। इसके परिणामस्वरूप सोलहवीं सदी के मध्य से ही अनेक चर्च एवं मंदिरों को आरोग्यशालाओं में बदल दिया गया, किन्तु इस संबंध में भी दुर्भाग्य की बात यह रही कि इन आरोग्यशालाओं का निर्माण तो रोगियों का मानवीय ढंग से इलाज करने के लिये किया गया था, किन्तु वास्तविकता कुछ और ही थी। यहाँ पर भी उनके साथ जानवरों से भी खराब अत्यन्त अमानवीय व्यवहार किया जाता था।

(D) प्रिय पाठकों, मनोरोगियों के प्रति सही अर्थों में मानवीय दृष्टिकोण का उद्भव प्रसिद्ध फ्रेंच चिकित्सक **फिलिपिनेल** (1745–1826) के सक्रिय प्रयासों के परिणामस्वरूप हुआ। फिलिप पिनेल को **आधुनिक मनोरोगविज्ञान** (Modern Psychiatry) का जनक माना जाता है। सन् 1792 में फ्रांस की क्रान्ति का प्रथम चरण समाप्त होने पर पिनेल के पेरिस के मानसिक अस्पताल **लाविस्टरे** के प्रभारी पद पर नियुक्त किया गया। पद ग्रहण करते ही पिनेल ने जो सबसे पहला और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य किया, वह था वहाँ के मनोरोगियों को लोहे की जंजीरों से आजाद करवाना और उन्हें हवा एवं प्रकाशयुक्त कमरों में रखना। अस्पताल के अधिकारियों द्वारा पिनेल के इन कार्यों का अत्यन्त मजाक उड़ाया गया किन्तु मानवीय ढंग से उपचार करने पर मनोरोगियों के व्यवहार में काफी सकारात्मक परिवर्तन होने लगे और उन्होंने उपचार में सहयोग करना भी आरंभ कर दिया। इसके बाद पिनेल को **सालपेट्रिर अस्पताल** का प्रभारी बनाया गया। वहाँ पर भी उन्होंने मानसिक रोगियों का मानवीय ढंग से उपचार करना प्रारंभ किया, जिसके परिणाम अत्यन्त सकारात्मक थे। पिनेल के बाद उनके शिष्य **जीनएस्क्यूटरोल** द्वारा उनके कार्य को आगे बढ़ाया गया और लगभग 10 ऐसे मानसिक अस्पतालों की स्थापना की गई, जहाँ मनोरोगियों का मानवीय तरीके के उपचार किया जाता था।

इस प्रकार फ्रांस विश्व का ऐसा प्रथम देश बना जहाँ मनोरोगियों का इलाज मानवीय ढंग से किया जाने लगा। इसका प्रभाव विश्व के दूसरे देशों पर भी बड़ा और उन्होंने भी मनोरोगों के मानवीय उपचार की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम उठाये। जिस समय फ्रांस में पिनेल अपने क्रांतिकारी कार्य को अंजाम दे रहे थे, उसी दौरान इंग्लैण्ड में विलियम टर्क ने **चार्क रिट्रीट** नामक मानसिक अस्पताल खोला, जिसमें मानसिक रोगों के मानवीय उपचार पर बल दिया गया।

इस प्रकार हम देखते है कि असामान्य मनोविज्ञान के इतिहास में पूर्व वैज्ञानिक काल, जो प्राचीन समय में लेकर सन् 1800 तक का माना गया है, मनोरोगों के संबंध में अत्यन्त उतार–चढ़ाव का समय रहा है। इस युग में असामान्यता को लेकर समय–समय पर अनेक विचारधाराओं का प्रतिपादन हुआ। सबसे प्रारंभ में जीववादी चिन्तन का बोलबाला रहा, जिसमें दुष्टात्मा या दैवीय प्रकोप को ही मनोरोगों की उत्पत्ति का मूल कारण माना गया। इसके बाद ग्रीक चिकित्सक हिपोक्रेट्स के प्रकृतिवाद का उद्भव हुआ, जिसके अनुसार असामान्यता को शारीरिक रोग के समान ही एक मानसिक रोग माना गया और इसकी उत्पत्ति में शारीरिक एवं पचविरणी कारकों की भूमिका को स्वीकार किया गया। इसके उपरान्त 1500 A.D. तक अर्थात् मध्ययुग में मनोरोगों के संबंध में दुरात्मा संबंधी दृष्टिकोण ही प्रचलित रहा, किन्तु बाद के समय में अर्थात् सन् 1800 तक इस सन्दर्भ में अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन हुये और मनोरोगियों के प्रति मानवीय दृष्टिकोण का उद्भव हुआ, जिसमें नेतृत्व फ्रेंच चिकित्सक फिलिपपिनेल ने किया।

### 1.3.2 असामान्य मनोविज्ञान का आधुनिक उद्भव

(Moderna cenging of Abnormal psychology) (सन् 1801– सन् 1950) प्रिय पाठकों, असामान्य मनोविज्ञान के इतिहास में इस काल का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस युग में मनोरोगों के कारणों एवं उपचार के संबंध में अनेक महत्त्वपूर्ण विचारों का प्रतिपादन किया गया और उनके प्रयोग भी किये गये।

फ्रेंच चिकित्सक फिलिप पिनेल तथा इंग्लैण्ड में टर्क ने जिन मानवीय उपचार विधियों का प्रयोग किया, उनके परिणामों ने मनोरोगों के संबंध में पूरे विश्व में एक क्रांति सी ला दी। अमेरिका में **बेंजामिन रश** के कार्यों के माध्यम से इसके प्रभावों का पता चलता

है। रश ने सन् 1783 में **पेनसिलवानिया अस्पताल** में कार्य करना प्रारंभ किया तथा सन् 1796 में मनोरोगों के उपचार हेतु एक अलग वार्ड बनवाया।

इस वार्ड में मनोरोगियों के मनोरंजन के लिये विभिन्न प्रकार के साधन थे जिससे कि उनके सृजनात्मक क्षमताओं को विकसित किया जा सके। इसके बाद अपने कार्य को और आगे बढ़ाते हुये उन्होंने स्त्री एवं पुरूष रोगियों के लिये अलग–अलग वार्ड बनवाये उनके साथ अधिकाधिक मानवीय व्यवहार अपनाने पर बल दिया गया। सन् 1812 में मनोरोग विज्ञान पर उनकी पुस्तक भी प्रकाशित हुयी, जिसमें मनोरोगों के उपचार के लिये **रक्तमोचन विधि (Blood leting method)** एवं विभिन्न प्रकार के शोधक अपनाने पर जोर दिया जो किसी भी प्रकार से मानवीय नहीं था।

19वीं सदी के प्रारंभ में अमेरिका में मनोरोगों के संबंध में एक विशेष आन्दोलन की शुरूआत हुयी, जिसका नेतृत्व एक महिला स्थूल शिक्षिका **डोराथियाडिक्स** द्वारा किया गया। यह आन्दोलन मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान आन्दोलन के नाम से लोकप्रिय हुआ। इस आन्दोलन का प्रमुख लक्ष्य था–''मनोरोगियों के साथ हर संभव मानवीय व्यवहार करना।'' यूरोप में तो 18वीं सदी के कुछ अन्तिम वर्षों में ही इस प्रकार के मानवीय दृष्टिकोण का उद्‌भव हो गया था, किन्तु अमेरिका में इसका प्रादुर्भाव 19वीं सदी के प्रारंभ में हुआ। इस आन्दोलन के परिणाम स्वरूप मनोरोगी जंजीरों से मुक्त हो गये और उन्हें हवा एवं रोशनी से युक्त कक्षों में रखा गया। इसके साथ–साथ उन्हें खेती एवं बढ़ईगिरी इत्यादि के कार्यों में भी लगाया गया, जिससे कि उनका शरीर एवं मन कुछ सर्जनात्मक कार्यों में व्यस्त रहे। डिक्स के सर्जनात्मक कार्योंम में व्यस्त रहे। डिक्स के इस आन्दोलन का प्रभाव केवल अमेरिका में ही नहीं वरन स्कॉटलैण्ड एवं कनाडा आदि देशों में भी पड़ा और वहाँ के मानसिक अस्पतालों की स्थिति में भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुये। डिक्स ने अपने जीवनकाल में लगभग 32 मानसिक अस्पताल खुलवाये। मानसिक रोगियों के कल्याण हेतु अत्यन्त सराहनीय एवं प्रेरणास्पद कार्य करने वाली इस महिला सुधारक को अमेरिकी सरकार द्वारा सन् 1901 में ''पूरे इतिहास में मानवता का सबसे उप्तम उदाहरण'' बताया गया।

अमेरिका के साथ–साथ दूसरे देशों में भी जैसे कि जर्मनी, फ्रांस, आस्ट्रिया आदि में भी असमान्य मनोविज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कदम उठाये गये। फ्रांस में ऐसे कार्यों का श्रेय सर्वप्रथम **एनटोन मेसमर** को जाता है। उन्होंने **पशु चुम्बकत्व** पर महत्वपूर्ण कार्य किया। मेसमर इलाज के लिये रोगियों में बेहोशी के समान मानसिक स्थिति उत्पन्न कर दे देते थे। इस विधि को **मेस्मरिज्म** के नाम से जाना गया। बाद में यही विधि **सम्मोहन** (Hypnosis) के नाम से प्रसिद्ध हुयी। बाद में नैन्सी शहर के चिकित्सकों जैसे लिबाल्ट एवं उनके शिष्य बर्नहिम ने मानसिक रोगों के उपचार में सम्मोहन विधि का अत्यन्त सफलतापूर्वक प्रयोग किया, जिसके कारण यह विधि उस समय मनोरोगों के उपचार की सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली विधि बन गयी। इसके बाद प्रसिद्ध **तंत्रिकाविज्ञानी शार्को** ने पेरिस में हिस्टीरिया के उपचार में सम्मोहन विधि का सफलतापूर्व प्रयोग किया। यदि असामान्य मनोविज्ञान के इतिहास में शार्को का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान देखा जाये तो वह पेरिस के एक अत्यन्त लोकप्रिय शिक्षक के रूप में है, जिनका कार्य मनोविज्ञान के क्षेत्र में कुछ छात्रों को प्रशिक्षित करना था। आगे चलकर ये छात्र मनोविज्ञान के क्षेत्र में अत्यन्त लोकप्रिय हुये। शार्को के विद्यार्थियों में से दो छात्र ऐसे है, जिनके कार्यों के लिये इतिहास उनका आभारी है। इनमें से एक है– सिगमण्ड क्रायड (सन् 1856 – सन् 1939)। ये सन् 1885 में वियाना से शार्को से शिक्षाग्रहण करने आये थे तथा दूसरे हैं, **पाइरे जेनेट** जो पेरिस के ही रहने वाले थे। शार्को ने अपनी मृत्यु के 3 साल पूर्व जेनेट को अस्पताल का निदेशक नियुक्त किया। जेनेट ने सफलतापूर्वक अपने गुरू शार्को के कार्यों को आगे बढ़ाया। मनोरोगों के क्षेत्र में जेनेट

का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान है–मनोस्नायुविकृति (Psychoneurosis) में मनोविच्छेद (Dissociation) के महत्त्व को अलग से बताना।

फ्रांस के साथ–साथ जर्मनी में भी इस दिशा में अनेक महत्वपूर्ण कार्य हुये, जिनमें **विलिहेल्म ग्रिसिंगर** (1817–1868) और **ऐमिल क्रेपलिन** के कार्य विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। इन दोनों चिकित्सकों ने मनोरोगों का एक दैहिक आधार (Somatic basis) माना और इस विचारी का प्रतिपादन किया कि जिस प्रकार शरीर के किसी अंग में कोई विकार आने पर शारीरिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं, ठीक उसी प्रकार मनोरोगों के उत्पन्न होने का कारण भी अंगविशेष में विकृति ही है। इसे ''असामान्यता का अवयवी दृष्टिकोण'' (arganic viewpoint of abnormality) कहा गया। सन् 1845 में प्रकाशित अपनी पुस्तक में ग्रिंसिगर ने अत्यन्तदृढ़तापूर्वक इस मत का प्रतिपादन किया कि मनोरोगों का कारण **दैहिक** होता है। ग्रिसिंगर की तुलना में ऐमिल क्रेपलिन का योगदान ज्यादा महत्वपूर्ण है, क्योंकि भिन्न–भिन्न लक्षणों के आधार पर इन्होंने मनोरोगों को अनेक श्रेणियों में बाँटा और उनकी उत्पत्ति के अलग–अलग कारण भी बताये। सर्वप्रथम **क्रेपलिन** ने ही **उन्माद–विषाद मनोविकृति** नामक मानसिक रोग का नामकरण किया और आज भी यह रोग इसी नाम से जाना जाता है। उन्होंने जो दूसरा महत्वपूर्ण मनोरोग बताया, उसका नाम था **डिमेंशिया प्राक्रोवस** इसका नाम बदलकर वर्तमान समय में **मनोविदालिता** या **सिजोफ्रेनिया** कर दिया गया है। क्रेपलिन ने मनोरोगों का कारण शारीरिक या दैहिक मानते हुये इसे निम्न दो वर्गों में विभक्त किया–

1. **अन्तर्गत कारक (Endogenous factors)**
2. **एवं बहिर्गत कारक (Exogenous factors)**

**1. अन्तर्गत कारक–** इन कारकों का संबंध वंशानुक्रम से माना गया।

**2. बहिर्गत कारक–** इन कारकों का संबंध मस्तिष्कीय आघात से था, जिसके अनेक कारण हो सकते थे। जैसे–शारीरिक रोग, विष अथवा दुर्घटना इत्यादि।

19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में आस्ट्रिया में प्रसिद्ध तंत्रिका विज्ञानी एवं मनोरोग विज्ञानी सिगमण्ड फ्रायड द्वारा मनोरोगों के सन्दर्भ में उल्लेखनीय कार्य किया गया। इनका महत्वपूर्ण योगदान यह है कि सर्वप्रथम इन्होंने ही मनोरोगों की उत्पत्ति में जैविक कारकों की तुलना में मनोवैज्ञानिक कारकों को अधिक महत्वपूर्ण बताया। मनोरोग विज्ञान के क्षेत्र में फ्रायड के योगदान में अचेतन, स्वप्न विश्लेषण, मुक्त साहचर्य विधि, मनोरचनायें तथा मनोलैंगिक सिद्धान्त विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। फ्रायड ने **जोसेफ ब्रियुअर** से मनोस्नायुविकृति के रोगियों पर सम्मोहन विधि का सफलतापूर्वक प्रयोग करना सीखा। इस विधि के प्रयोग के दौरान उन्होंने देखा कि सम्मोहित स्थिति में रोगी बिना किसी संकोच एवं भय के अपने अचेतन में दमित विचारों, इच्छाओं, भावनाओं, संघर्षों, आदि को अभिव्यक्त करता है, जिनका संबंध स्प्ष्ट रूप से उस व्यक्ति के रोग से होता है। फ्रायड तथा ब्रियुअर ने इसे **विरेचन विधि** (Catthartic method) का नाम दिया। इसके बाद सन् 1885 में फ्रायड, प्रसिद्ध फ्रेंच चिकित्सक शार्को से शिक्षा प्राप्त करने पेरिस गये। वहाँ उन्होंने सम्मोहन विधि से मनोस्नायुविकृति के रोगियों में चमत्कारी परिवर्तन देखे। वे इससे अत्यन्त प्रभावित हुये, किन्तु वियाना वापस आने के बाद उन्होंने सम्मोहन विधि द्वारा उपचार करना बन्द कर दिया क्योंकि उनका मत था कि इस विधि द्वारा रोग का केवल अस्थायी उपचार होता है, रोग पूरी तरह दूर नहीं होता है। असामान्य व्यवहार के संबंध में जो एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विचार फ्रायड द्वारा दिया गया वह यह था कि उनके मतानुसार अधिकतर मनोरोगों का कारण अचेतन में दमित इच्छायें, विचार, भावनायें आदि हैं अर्थात मनोरोगों का मूल कारण अचेतन (Unconscious) है। जो विचार, भावनायें या इच्छायें दुःखद, अनैतिक, असामाजिक या अमानवीय होती हैं, उनको व्यक्ति अपने चेतन मन से हटाकर अचेतन में दबा देता है।

फ्रायड ने इसे **दमन** (Repression) कहा है। इस प्रकार से इच्छायें एवं विचार नष्ट नहीं होते वरन् दमित हो जाते हैं और अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित करते हैं। इस लिये किसी भी व्यक्ति के व्यवहार का ठीक प्रकार से अध्ययन करने के लिये उसके अचेतन में दमित संवेगों, विचारों को चेतन स्तर पर लाना अत्यन्त आवश्यक है। इस हेतु इन्होंने दो विधियों का प्रतिपादन किया–

**(A) मुक्त साहयर्च विधि (Free association method)**

**(B) स्वप्न–विश्लेषण विधि (Dream Analysis method)**

अपनी इन विधियों का प्रयोग करके फ्रायड ने सन 1900 में अपनी सर्वाधिक लोकप्रिय पुस्तक ''The interpretation of dream'' का प्रकाशन किया। मनोरोगों के उपचार हेतु फ्रायड ने जिस विधि का प्रयोग किया उसे ''मनोविश्लेषण विधि'' (Psychoanalytic Method) कहा जाता है। इस विधि में मनोरोगी के अचेतन में दमित इच्छाओं, विचारों, भावों आदि को मुक्तसाहचर्य विधि एवं स्वप्न–विश्लेषण के माध्यम से बाहर निकाला जाता हे एवं उसके आधार पर रोग का निदान करके उपचार किया जाता है। मनोविश्लेषण विधि के उत्साहजनक परिणाम आने से यह विधि पूरे विश्व में फैला गयी और इनसे इस विधि को सीखने हेतु विश्व के अनेक देशों से लोगों इनके पास आने लगे। फ्रायड के शिष्यों में कार्य युंग एवं एल्फ्रेडएडलर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। एडलर वियाना के ही थे। फ्रायड के कुछ विचारों से असहमत होने के कारण बाद में युग एवं एडलर ने उनसे अपना संबंध तोड़कर नयी अवधारणाओं को जन्म दिया। युग का मनोविज्ञान **विश्लेषणात्मक_मनोविज्ञान** (Analytic psychology) तथा **एडलर** का मनोविज्ञान ''वैयक्तिकमनोविज्ञान'' (Individual psychology) के नाम से जाना जाता है।

फ्रायड जब 80 साल के थे तो वे अत्यन्त गंभीर रूप से बीमार हो गये तथा उन्हें हिटलर के जर्मन सैनिकों ने पकड़ लिया क्योंकि हिटलर ने वियाना पर आक्रमण कर दिया था। अपने कुछ शिष्यों एवं दोस्तों की सहायता से उन्हें सैनिकों के कब्जे से छुड़ा लिया गया तथा इसके बाद वे लंदन चले गये और वहाँ 83 वर्ष की आयु में अर्थात सन् 1939 में कैंसर के कारण उनका निधन हो गया।

असामान्य मनोविज्ञान के इतिहास में **एडॉल्फमेयर** का योगदान भी अविस्मरणीय है, जो स्विट्जरलैण्ड के थे किन्तु सन् 1892 में अमेरिका आकर वहीं पर बस गये तथा यहाँ पर इन्होंने मनोरोगों के क्षेत्र में अत्यन्त उल्लेखनीय कार्य किये। असामान्यता के सन्दर्भ में मेयर द्वारा प्रतिपादित विचारधारा को ''मनोजैविक दृष्टिकोण'' के नाम से जाना जाता है। मेयर का मत था कि मनोरोगों का कारण केवल दैहिक ही नहीं वरन मानसिक भी होता है। इसलिये उपचार भी दोनों आधारों पर किया जना चाहिये। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मनोरोगों के संबंध में मेयर ने एक मिश्रित विचारधारा को जन्म दिया, जो ज्यादा उपयुक्त प्रतीत होती है। इसके साथ–साथ मेयर ने मनोरोगों की उत्पत्ति में सामाजिक कारकों की भूमिा को भी स्वीकार किया। इसलिये **रेनी** ने इनके सिद्धान्त का नाम **''मनोजैविक सामाजिक सिद्धान्त''** भी रखा है। मेयर की मान्यता थी मनोरोगों की सफलतापूर्वक चिकित्सा तभी संभव है जब उसके दैहिक पदार्थों जैसे कि हार्मोन्स, विटामिन्स एवं शरीर के विभिन्न अंगों की क्रियाविधि को संतुलित एवं नियंत्रित करने के साथ–साथ रोगी के घर के वातावरण के अन्तःपारस्परिक संबंधों में भी सुधार किया जाये। वास्तव में देखा जाये तो मेयर के अनुसार मनोरोगियों का उपचार रोगी तथा चिकित्सक के मध्य एक प्रकार का पारस्परिक प्रशिक्षण हैं और इसकी सफलता इनके परस्पर सौहार्द्रपूर्ण संबंधों पर निर्भर करती है। पाठकों, मनोरोगों के उपचार हेतु आज भी इस प्रकार की विधियों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा रहा है।

इस प्रकार हम सकह सकते हैं कि मेयर के अनुसार मनोरोगों के अध्ययन हेतु एक समग्र दृष्टिकोण का होना अत्यावश्यक है।

### 1.3.3 आज का असामान्य मनोविज्ञान : सन् 1951 से अब तक (Abnormal psychology Today)

जैसा कि स्पष्ट है कि 20वीं शताब्दी के पूवाद्ध तक केवल मानसिक अस्पतालों में ही मानसिक रोगियों का उपचार किया जाता था, किन्तु समय के साथ धीरे–धीरे इन मानसिक अस्पतालों की सच्चाई लोगों के समन समक्ष प्रकट होने लगी और इस बात का पता चला कि चिकित्सा के नाम पर इन अस्पतालों में रोगियों के साथ कितना अमानवीय व्यवहार किया जाता है। जिनकों स्नेह और आत्मीयता की आवश्यकता है, उनके साथ अत्यन्त घृणित और क्रूर बर्ताव किया जाता है। इसके परिणामस्वरूप रोग ठीक होने की बजाय और बढ़ जाता है और कभी–कभी तो रोगी की मृत्यु तक हो जाती थी। प्रसिद्ध विद्वान् किश्कर (Kisker, 1985) ने ऐसे मानसिक अस्पतालों की स्थिति का वर्णन करते हुये कहा है कि ''मानसिक रोगियों को इन अस्पतालों में एक छोटे से कमरे में झुण्ड बनाकर रखा जाना, ऐसे कमरों में शौचालय भी नहीं होना, धूप और हवा भी लगभग न के बराबर मिलना, आधा पेट खाना दिया जाना, कमसिन लड़कियों को अस्पताल से बाहर भेजकर शारीरिक व्यापार कराया जाना, अस्पताल अधिकारियों द्वारा गाली–गलौज करना आदि काफी सामान्य था।''

इसके परिणामस्वरूप मानसिक अस्पतालों में रोगियों को रखने और उनका इलाज करवाने के प्रति लोगों की मनोवृत्ति में बदलाव आया और इन मानसिक अस्पतालों स्थान **सामुदायिक मानसिक स्वास्थ्य केन्द्र** (Community mental health centres) ने ले लिया। पाठकों, इन स्वास्थ्य केन्द्रों का प्रमुख उद्देश्य मानसिक रोगियों की मानवीय तरीके से चिकित्सा करना है। मानसिक स्वास्थ्य केन्द्रों द्वारा मुख्यतः निम्न कार्य किये जाते हैं–

i- चौबीस घंटा आपातकालीन देखभाल
ii- अल्पकालीन अस्पताली सेवा
iii- आंशिक अस्पताली सेवा
iv- बाह्य रोगियों की देखभाल
v- प्रशिक्षण एवं परामर्थ कार्यक्रम आदि।

प्रिय पाठकों, अमेरिका तथा कनाडा में ऐसे अनेक केन्द्र हैं और इन्हें अपने कार्यों के लिये सरकार से भी पर्याप्त सहायता मिलती है। आजकल इन देशों में मानसिक स्वास्थ्य केन्द्रों का एक नवीन रूप विकसित हुआ है। इसे **संकट काल हस्तक्षेप केन्द्र** (Crisis intervention centre) कहा जाता है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट हे इन केन्द्रों को प्रमुख उद्देश्य जरूरतमंद मनोरोगियों को तुरंत सहायता पहुँचाना होता है। इन केन्द्रों की विशेष बात यह है कि इनमें उपचार हेतु पहले से समय लेना आवश्यक नहीं होता है एवं सभी वर्ग के लोगों की यथासंभव सहायता हेतु तुरंत आवश्यक कदम उठाये जाते हैं। वर्तमान समय में संकटकाल हस्तक्षेप केन्द्र का भी एक नया रूप ''हॉटलाइन दूरभाष केन्द्र'' (Hatlinetelephone centre) के रूप में विकसित हुआ है। इन केन्द्रों में चिकित्सक दिन या रात में किसी समय केवल टेलीफोन से सूचना प्राप्त करके भी सहायता करने हेतु तैयार रहते हैं। इनका प्रमुख उद्देश्य मनोरोगियों की अधिकाधिक देखभाल एवं सेवा करना होता है। इस तरह का पहला दूरभाष केन्द्र सर्वप्रथम **लोस एन्जिल्स** के **चिल्ड्रेन अस्पताल** में खोला गया, जिसकी सफलता से प्रभावित होकर विश्व के विभिन्न देशों में ऐसे केन्द्र तेजी से खुल रहे हैं।

**अभ्यासार्थ प्रश्न (खण्ड–क)**

(1) ग्रीक चिकित्सक हिपोक्रेट्स की विचारधारा को कहा जाता है–

(A) जीववाद (B) प्रकृतिवाद
(C) मनोविश्लेषणवाद (D) इनमें से कोई नहीं

**(2)** प्रसिद्ध पुस्तक **"रिपब्लिक"** के लेखक हैं–

(A) प्लेटो (B) अरस्तू
(C) सुकरात (D) हिपोक्रेट्स

**(3) असामान्य मनोविज्ञान का आधुनिक उद्भव माना जाता है–**

(A) 1801–1950 तक (B) 1850–1950 तक
(C) 1950–1990 तक (D) 1901–1950 तक

**(4) किस इस्लामिक चिकित्सक को "चिकित्सकों का राजकुमार" कहा जाता है–**

(A) क्रेपलिन (B) जोहान वेयर
(C) ऐभइसना (D) शार्कों

**(5) आधुनिक चिकित्साशास्त्र के जनक है–**

(A) प्लेटो (B) सुकरात
(C) हिपोक्रेट्स (D) फ्रायड

**(खण्ड–ख)**

**(सत्य / असत्य)**

(1) प्रकृतिवाद के अनुसार मनोरोगों का कारण शरीर में बुरी आत्मा का प्रवेश कर जाना है। ( सत्य / असत्य)

(2) मनोविज्ञान के क्षेत्र में फ्रायड की विचारधारा को मनोविश्लेषणवाद के नाम से जाना जाता है। (सत्य / असत्य)

(3) मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान आन्दोलन की नेता डोराथिया डिक्स थी।
(सत्य / असत्य)

(4) एडलर के मनोविज्ञान का नाम विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान है।
( सत्य / असत्य)

(5) युग के मनोविज्ञान का नाम वैयक्तिक मनोविज्ञान है।
( सत्य / असत्य)

## 1.4 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों, उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि असामान्य मनोविज्ञान के इतिहास में अत्यन्त उतार–चढ़ाव रहा है। पूर्ववैज्ञानिक काल में असामान्य व्यवहार को मूल रूप से बुरी आत्मा के प्रवेश अथवा देवी–देवताओं के प्रकोप से उत्पन्न होना माना जाता था। आधुनिक काल में (सन् 1801–1950) इस विचार को अस्वीकार कर दिया गया और असामान्य व्यवहार को एक प्रकार का मनोरोग समझकर इसका उसी प्रकार इलाज करने पर बल डाला गया, जिस प्रकार शारीरिक रोगों का उपचार किया जाता है। इस काल में अन्य कारकों के साथ–साथ सामाजिक कारकों को भी असामान्य व्यवहार का एक प्रमुख निर्धारक माना गया। आधुनिक काल में मनोरोगियों का उपचार मुख्य रूप से उन्हें मानसिक अस्पतालों में भर्ती करके किया जाता था, किन्तु सन् 1950 के बाद इसमें परिवर्तन आया क्योंकि मानसिक अस्पतालों में रोगियों के साथ अत्यन्त अमानवीय व्यहवार किया जाता था। अतः वर्तमान समय में विश्व के अनेक देशों में इन मानसिक अस्पतालों का स्थान सामुदायिक मानसिक स्वास्थ्य केन्द्रों ने ले लिया है, जिनके नवीनतम रूप "संकटकाल हस्तक्षेप केन्द्र" एवं "हॉटलाइन दूरभाष केन्द्र" हैं।

## 1.5 शब्दावली

पिशाच आधिपत्य – किसी प्राणी के शरीर पर बुरी आत्मा का अधिकार हो जाना।

अपद्रूत–निसारन – बुरी आत्मा को शरीर से बाहर निकालना।
ट्राफाइनेशन – पूर्ववैज्ञानिककाल में प्रचलित मनोरोगों के उपचार की विधि। जिसमें नुकीले पत्थरों से मार–मार कर मनोरोगी की खोपड़ी में छेद कर दिया जाता था, ताकि उस दिद्र से बुरी आत्मा बाहर निकल सके।
विषाद या अवसाद – एक प्रकार का मनोरोग जिसमें व्यक्ति अपने जीवन के प्रति अत्यधिक निराश हो जाता है तथा अत्यधिक अकेलापन महसूस करता है और उसमें आत्महत्या की प्रवृत्ति पनपने लगती है।

## 1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**(खण्ड–क)**
**(वस्तुनिष्ठ प्रश्न)**
(1) B
(2) A
(3) A
(4) C
(5) C
**(खण्ड–ख)**
**(सत्य / असत्य)**
(1) असत्य
(2) सत्य
(3) सत्य
(4) असत्य
(5) असत्य

## 1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) सिंह, अरूण कुमार । (2001) आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, बंग्लोरोड, दिल्ली।

## 1.8 निबंधात्मक प्रश्न

**प्रश्न–1** असामान्य मनोविज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर विस्तार से प्रकाश डालिये

# इकाई–2 मनोरोग का अर्थ सामान्य एवं असामान्य व्यवहार की विशेषतायें

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 मनोरोग का अर्थ
2.4 सामान्य व्यवहार की विशेषतायें
2.5 असामान्य व्यवहार की विशेषतायें
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.10 सहायक उपयोगी पाठ्य–सामग्री
2.11 निबंधात्मक प्रश्न

## 2.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठकों, इससे पूर्व की इकाई में हमने असामान्य मनोविज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का विस्तार से अध्ययन किया है। प्रस्तुत ईकाई में हमारे अध्ययन का विषय है–मनोरोग का अर्थ तथा सामान्य एवं असामान्य व्यवहार की विशेषताओं का अध्ययन करना।

प्रिय पाठकों, जैसा कि हम सभी इस तथ्य से परिचित है कि वर्तमान समय में किसी भी व्यक्ति के स्वास्थ्य से तात्पर्य केवल शारीरिक स्वास्थ्य से ही नहीं है, वरन् स्वास्थ्य से तात्पर्य उसके समग्र स्वास्थ्य से लिया जाता है। कहने का आशय यह है कि केवल शरीर का स्वस्थ होने होना ही किसी भी व्यक्ति के पूर्ण स्वस्थ होने की गारंटी नहीं है। शरीर के साथ–साथ उसका मन भी स्वस्थ है या नहीं? सामाजिक और आध्यात्मिक रूप से वह कितना स्वस्थ है? ये सब पहलू भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अतः समग्र स्वास्थ्य की अवधारणा के कारण आज लोग शारीरिक स्वास्थ्य के साथ–साथ अपने मानसिक स्वास्थ्य के प्रति भी सजह हो रहे हैं। मन की क्षमता को कैसे बढ़ाया जा सकता है? यदि कोई मानसिक समस्या या बीमारी हो जाये तो उसे कैसे दूर किया जा सकता है? इत्यादि को जानना–समझना भी हमारे लिये अत्यन्त आवश्यक है। अतः मानसिक स्वास्थ्य के प्रतिबढ़ती हुयी इसी सजगता को ध्यान में रखते हुये इस इकाई में हम मनोरोग के अर्थ तथा सामान्य एवं असामान्य व्यवहार की विशेषताओं का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

## 2.2 उद्देश्य–

प्रिय विद्यार्थियों, प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप–

1. मनोरोग के अर्थ का वर्णन कर सकेंगे।
2. सामान्य व्यवहार की विशेषताओं को स्पष्ट कर सकेंगे।
3. असामान्य व्यवहार की विशेषताओं का विश्लेषण कर सकेंगे।

## 2.3 मनोरोग का अर्थ–

प्रिय विद्यार्थियों, जैसा कि आप जानते हैं कि नैदानिक मनोविज्ञान एवं असामान्य मनोविज्ञान के अध्ययन की प्रमुख विषयवस्तु विभिन्न प्रकार के मनोरोग, उनके कारण, लक्षण, उपचार एवं सिद्धान्त से संबंधित है, किन्तु आपके मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी कि आखिर 'मनोरोग' कहते किसे है? किस प्रकार की अवस्था को

मनोरोग की संज्ञा दी जाती है? आपकी इसी जिज्ञासा का समाधान करने के लिये अब हम मनोरोग की अवधारणा का अध्ययन करते हैं।

प्रिय पाठकों, जिस प्रकार व्यक्ति विभिन्न प्रकार के शारीरिक रोगों से ग्रस्त रहता है, उसी प्रकार वह अनेक प्रकार के मनोरोगों से भी ग्रसित रहता है और ये मनोरोग शारीरिक रोगों की तुलना में व्यक्ति, परिवार तथा समाज के लिये अधिक कष्टकारी होते है। अब प्रश्न यह उठता है कि मनोरोग क्या है? व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य में ऐसे क्या परिवर्तन आते हैं कि वह मनोरोगी कहलाने लगता है? यदि हम मनोरोग की अवधारणा पर व्यापक ढंग से विचार करें तो यह तथ्य सामने आता है कि मनोरोग या मानसिक बीमारी वातावरण के साथ किया गया कुसमायोजित व्यवहार (Maladaptive behaviour) है। दूसरे शब्दों में हम कहें तो जब व्यक्ति मनोरोग से ग्रस्त होता है तो उसकी समायोजन क्षमता अत्यधिक घट जाती है। वह अपने आन्तरिक और बाह्य दोनों ही वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करने में स्वयं को असमर्थ पाता है। मनोरोग एक असंतुलित मनोदशा की अवस्था है, जिसमें व्यक्ति का व्यवहार सामाजिक रूप से अनुकूली नहीं होता है और न ही सामान्य प्रत्याशाओं के अनुकूल होता है। सांवेदिक रूप से भी वह एक मान्य व्यवहार बनाये रखने में समर्थ नहीं होता है। अतः उसमें नैदानिक हस्तक्षेप आवश्यक हो जाता है।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक **कोमर** के मतानुसार **चारडी** (Four D'S) के द्वारा मनोरोग के स्वरूप को और अधिक स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। ये चार डी निम्नलिखित हैं–

1. **विचलन (Deviance)**
2. **तकलीफ (Distress)**
3. **दुष्क्रिया (Dysfunetion)**
4. **खतरा (Danger)**

**(1) विचलन–**

मनोरोग की स्थिति में व्यक्ति का व्यवहार असामान्य हो जाता है, जो सामाजिक मानकों के अनुकूल नहीं होता है। इसे ही विचलन की संज्ञा दी गई है।

**(2) तकलीफ–**

मनोरोग की अवस्था में व्यक्ति का व्यवहार ऐसा हो जाता है, जो स्वयं उसके लिये अत्यन्त–दुःखदायी बन जाता है।

**(3) दुष्क्रिया–**

मानसिक बीमारी की स्थिति में रोगी के शरीर या मन का कोई हिस्सा उस तरह से कार्य नहीं कर रहा होता, जिस तरह से उसे कार्य करना चाहिये। इसके कारण व्यक्ति को अपने दिन–प्रतिदिन के कार्यों को करने में भी अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है और यह स्थिति व्यक्ति को इतना अधिक परेशान कर देती है कि वह साधारण सामाजिक परिस्थितियों और कार्यों में भी अपने आपकों पर्याप्त रूप से समायोजित नहीं कर पाता है।

**(4) खतरा–**

मनोरोग की स्थिति में व्यक्ति द्वारा किया जाना वाले व्यवहार स्वयं अपने लिये तो खतरनाक होता ही है, इसके साथ–साथ दूसरे लोगों के लिये भी खतरा ही उत्पन्न होता है। अनेक मनोरोग ऐसे होते हैं, जिनमें व्यक्ति का व्यवहार अत्यन्त हिंसात्मक हो जाता है। ऐसे लोग स्वयं को भी चोट पहुँचा सकते हैं और दूसरों को भी। इसके अतिरिक्त मनोरोगियों का व्यवहार गलत निर्णय, कुव्यवस्था, द्वेष इत्यादि से ग्रस्त होने के कारण भी खतरनाक होता है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मनोरोग एक असंतुलित मनोदशा की अवस्था होती है, जिसमें व्यक्ति के शरीर या मन का कोई भाग उस ढंग से कार्य नहीं कर रहा

होता है, जिस ढंग से सामान्य स्थिति में करता है और इसके कारण रोगी सामाजिक एवं सांवेगिक रूप से मान्य व्यवहार बनाये रखने में स्वयं को असमर्थ पाता है अर्थात उसका व्यवहार कुसमायोजी हो जाता है। अतः इस स्थिति से उत्पन्न भाव, विचार एवं व्यवहार व्यक्ति के लिये अत्यन्त दुःखदायी अथवा विघटनकारी होता है।

प्रिय पाठकों, मनोरोग के स्वरूप को स्पष्ट करते हुये मनोवैज्ञानिकों ने अनेक परिभाषायें दी है, जिनमें से कुछ प्रमुख निम्नानुसार हैं–

**डेविड मेंकानिक के अनुसार–**

''मानसिक बीमारी एक तरह का विचलित व्यवहार है। इसकी उत्पत्ति तब होती है जब व्यक्ति की चिंतन प्रक्रियायें, भाव एवं व्यवहार सामान्य प्रत्याशाओं या अनुभवों से विचलित होता है तथा प्रभावित व्यक्ति या समाज के अन्य लोग इसे एक ऐसी समस्या के रूप में परिभाषित करते हैं, जिसमें नैदानिक हस्तक्षेप की आवश्यकता होती है।''

(Mental health and mental illness. In Harwitz & Scheid (Eds): A Handbook for the study of mental health,1999,P.12)

**DSM-IV (1994)- के अनुसार –**

''DSM-IV में प्रत्येक मानसिक विकृति को एक नैदानिक रूप से सार्थक व्यवहारपरक या नैदानिक संलक्षण या पैटर्न जो व्यक्ति में उत्पन्न होता है, के रूप में समझा गया है और यह वर्तमान तकलीफ या अयोग्यता से संबंधित होता है। चाहे वर्तमान समय में व्यक्ति में व्यवहारपरक, मनोवैज्ञानिक या जैविक दुष्क्रिया की अभिव्यक्ति अवश्य माना जाता है। न तो कोई विचलित व्यवहार, (जैसे–राजनैतिक, धार्मिक या लैंगिक) और न ही व्यक्ति तथा समाज के बीच होने वाले संघर्ष को मानसिक रोग माना जा सकता है, अगर ऐसा विचलन या संघर्ष व्यक्ति में दुष्क्रिया का लक्षण न हो।''

(APA:DSM, 1994, XXI-XXII)

ब्राउन (1940) के अनुसार, ''मनोरोग सामान्य व्यवहार का ही अतिरंजित रूप अथवा विकृत रूप है।''

**सामान्य एवं असामान्य व्यवहार की विशेषतायें–**

**सामान्य व्यवहार की विशेषतायें–**

प्रिय पाठकों, जिस व्यक्ति का व्यवहार सामान्य होता है, उसमें निम्न विशेषतायें पायी जाती हैं–

1. सूझपूर्ण व्यवहार
2. सामाजिक समायोजन
3. सांवेगिक परिपक्वता
4. वास्तविकता से सम्पर्क
5. अपनी देखभाल
6. आत्म–मूल्यांकन
7. आत्म–सम्मान
8. आत्म–विश्वास
9. सुरक्षा का भाव
10. संतोषजनक संबंध बनाये रखने की क्षमता
11. अच्छा शारीरिक स्वास्थ्य
12. जिन्दगी का एक स्पष्ट सिद्धान्त
13. उत्पादी एवं खुश रहने की क्षमता
14. स्पष्ट जीवन लक्ष्य

इन सभी का विस्तृत विवेचन निम्नानुसार है–

1. **सूझपूर्ण व्यवहार–** सामान्य व्यक्ति का व्यवहार सूझपूर्ण होता है अर्थात उसे इस बात का भली–भाँति ज्ञान होता है कि वह क्या कर रहा है? क्यों कर रहा है? किन

परिस्थितियों में उसे किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये? उसके लिये क्या सही है? क्या गलत है? इत्यादि सभी बातों का ज्ञान उसको रहता है।

2. **सामाजिक समायोजन**– सामान्य व्यवहार की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता संतुलित सामाजिक समायोजन है। ऐसे लोग समाज की भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में अपने आपको पर्याप्त रूप से समायोजित कर लेता है। इसके साथ ही वे सामाजिक नियमों एवं रीति–रिवाजों का पालन भी करते हैं।
3. **सांवेगिक परिपक्वता–** सामान्य व्यक्ति सांवेगिक रूप से परिपक्व होते है। इनमें समय एवं परिस्थिति के अनुरूप अपने संवेग की अभिव्यक्ति पर पूर्ण नियंत्रण होता है। परिवेश के अनुरूप ही वे प्रेम, क्रोध, भय आदि संवेगों को अभिव्यक्त करता है। इनके भावनात्मक व्यवहार में स्थिरता पायी जाती है।
4. **वास्तविकता से सम्पर्क–** सामान्य व्यक्ति कल्पनाओं में न जीकर वास्तविकता के धरातल पर जीते हैं। इनका व्यवहार सामाजिक मानकों की वास्तविकता के अनुकूल होता है। इनका व्यवहार भ्रम, विभ्रम, व्यामोह से ग्रसित नहीं होता है।
5. **अपनी देखभाल–** सामान्य व्यक्ति अपनी देखभाल करने में सक्षम होते है। ये ऐसा कोई भी व्यवहार नहीं करने का प्रयास करते, जिससे उनके स्वास्थ्य की हानि हो। इस प्रकार सामान्य व्यक्ति अपनी देखभाल के लिये दूसरों पर निर्भर नहीं रहते हैं।
6. **आत्म–मूल्यांकन–** सामान्य व्यक्ति में आत्म–मूल्यांकन का भाव होता है। वह अपने गुण–दोषों, अच्छाई–बुराई का तट्स्थ होकर मूल्यांकन करता है।
7. **आत्म–सम्मान–** सामान्य व्यक्ति का व्यवहार आत्म–सम्मान से प्रेरित होता है। ऐसे व्यक्ति स्वयं को सम्मान देते है। अपने प्रति इनके मन में सकारात्मक छवि होती है। स्वयं की शारीरिक–मानसिक क्षमताओं के प्रति इनमें हीनता का भाव नहीं होता अपितु सम्मान एवं गर्व का भाव होता है।
8. **आत्म–विश्वास** आत्म–सम्मान के साथ–साथ ऐसे लोगों में आत्म–विश्वास की भावना भी होती है। इन्हें स्वयं की योग्यताओं पर भरोसा होता है। ये बिना किसी कारण के भय से ग्रस्त नहीं होते है।
9. **सुरक्षा का भाव–** सामान्य व्यक्ति स्वयं को सुरक्षित महसूस करता है। उसके मन में यह भावना होती है कि वह समाज का एक स्वीकृत एवं सम्मानित व्यक्ति हे। लोग उसके विचारों, भावनाओं का सम्मान करते हैं। अतः वह समाज के लोगों के साथ निर्भय होकर अन्तःक्रिया करते हैं।
10. **संतोषजनक संबंध बनाये रखने की क्षमता–** संतुलित सामाजिक समायोजन की क्षमता के कारण सामान्य व्यक्ति के दूसरों के साथ सम्बन्ध भी संतोषजनक रहते हैं। संबंधों को लम्बे समय तक और अच्छे ढंग से निभाने की सामर्थ्य इनके भीतर होती है।
11. **अच्छा शारीरिक स्वास्थ्य–** जिन व्यक्तियों का व्यवहार सामान्य होता है वे शारीरिक रूप से भी प्रायः स्वस्थ रहते हैं।
12. **जिन्दगी का एक स्पष्ट सिद्धान्त–** सामान्य व्यवहार वाले व्यक्तियों की जिन्दगी के कुछ आदर्श होते है, उनकी जिन्दगी के कुछ स्पष्ट सिद्धान्त होते है, जिनके अनुसार उनका व्यवहार संचालित होता है।
13. **उत्पादी एवं खुश रहने की क्षमता**– सामान्य व्यक्तियों का व्यवहार इस तरह का होता है जो उन्हें आन्तरिक प्रसन्नता प्रदान करता है तथा इसके साथ ही सामान्य व्यक्ति अपनी उर्जा को उत्पादी एवं सृजनात्मक कार्यों में लगाते हैं, जिसके कारण वे तनाव उत्पन्न करने वाले नकारात्मक विचारों से दूर रहते हैं।
14. **स्पष्ट जीवन लक्ष्य–** सामान्य व्यक्तियों का व्यवहार प्रायः अपने जीवन लक्ष्य से प्रेरित होता हैं। वे ऐसा व्यवहार करने का प्रयास करते हैं, जिससे कि वे अपने लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में आगे बढ़ सके।

प्रिय पाठकों, उपरोक्त विवरण से आप सामान्य व्यवहार की विशेषताओं को समझ गये होंगे।

**असामान्य व्यवहार की विशेषतायें–**

प्रिय पाठकों, सामान्य व्यवहार के समान ही असामान्य व्यवहार की भी कुद विशेषतायें है, जिनका विवेचन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है–

1. **समाज–विरोधी व्यवहार**
2. **मानसिक असंतुलन**
3. **अप्रर्याप्त समायोजन**
4. **सूझपूर्ण व्यवहार की कमी**
5. **विघटित व्यक्तित्व**
6. **आत्म–सम्मान का अभाव**
7. **आत्म–विश्वास की कमी**
8. **असुरक्षा की भावना**
9. **संवेगात्मक अपरिपक्वता**
10. **संतोषजनक सामाजिक संबंध न होना**
11. **तनाव एवं अतिसंवेदनशीलता**
12. **पश्चाताप का अनुभव न होना**
13. **काल्पनिक्ता एवं अवास्तविक्ता से ओत–प्रोत व्यवहार**
14. **अपनी देखभाल हेतु दूसरों पर निर्भर रहना**

इन सभी विशेषताओं का विस्तृत विवेचन निम्नानुसार है–

1. **समाज विरोधी व्यवहार**– असामान्य व्यवहार की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता इसका समाज–विरोधी होना है। ऐसा व्यवहार सामाजिक मानकों एवं मूल्यों के अनुरूप नहीं होता है। उदाहरण के तौर पर हत्या करना, चोरी करना इत्यादि। अतः कोई भी ऐसा व्यवहार जो असामाजिक होता है उसे असामान्य व्यवहार की संज्ञा दी जाती है।
2. **मानसिक असंतुलन–** असामान्य व्यवहार की दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता मानसिक असंतुलन है अर्थात् जिन व्यक्तियों का व्यवहार सामान्य नहीं होता है वे मानसिक रूप से भी संतुलित नहीं होते हैं। ऐसे लोगों के विचारों एवं व्यवहारों में काफी असंगतता पायी जाती है अर्थात् ये सोचते कुछ और हैं और करते कुछ और है।
3. **अप्रर्याप्त समायोजन–** असामान्य व्यवहार वाले व्यक्तियों में पर्याप्त समायोजन की क्षमता नहीं होती है। ये नवीन परिवेश एवं परिस्थितियों में अपने आपकों समायोजित कर पाने में असक्षम होते हैं।
4. **सूझपूर्ण व्यवहार की कमी**– असामान्य व्यवहार सूझपूर्ण नहीं होता है। कहने का अभिप्राय यह है कि इस प्रकार का व्यवहार करने वाले व्यक्ति इस बात के प्रति सजग नहीं होते हैं कि वह अमुक परिस्थिति में अमुक व्यवहार क्यों और कैसे कर रहे हैं? उनके लिये अच्छा–बुरा, सही–गलत अथवा नैतिक–अनैतिक क्या है? उनके सामाजिक उत्तरदायित्व क्या है? इत्यादि। सूझपूर्ण व्यवहार की कमी होने से इनमें न तो किसी की आलोचना का भय होता है, और न ही सामाजिक एवं नैतिक नियमों की कोई परवाह।
5. **विघटित व्यक्तित्व–** असामान्य व्यवहार करने वाले व्यक्तियों का व्यक्तित्व अत्यन्त विघटित होता है। ऐसे लोगों के संवेगों, विचारों एवं व्यवहारों में कोई सामंजस्य या तालमेल नहीं होता। इनका व्यक्तित्व किसी एक दिशा में, किसी एक लक्ष्य के लिये केन्द्रीभूत नहीं होता वरन् इनका व्यक्तित्व बंटा हुआ, बिखरा हुआ रहता है।
6. **आत्म–समान का अभाव**– असामान्य व्यवहार करने वाले व्यक्तियों में स्वयं के प्रति सम्मान का भाव नहीं होता है। ये लोग खुद को हीनता एवं अनादर की दृष्टि से

देखते हैं। ये इस बात का अनुभव ही नहीं कर पाते कि इनके भीतर कोई खास गुण या अनुपम विशेषता है, जो भगवान् ने इन्हें प्रदान की हैं तथा जो दूसरे लोगों में नहीं है। इस प्रकार असामान्य व्यवहार करने वाले लोग आत्महीनता से भी ग्रस्त रहते हैं।

7. **आत्म–विश्वास की कमी**– आत्म–सम्मान की कमी होने के कारण ऐसे लोगों में आत्म–विश्वास का भाव भी विकसित नहीं हो पाता, जिसके कारण वे जीवन की विषम परिस्थितियों, चुनौतियों का डटकर मुकाबला नहीं कर पाते हैं, उनसे जल्दी घबरा जाते हैं। इस प्रकार आत्म–विश्वास की कमी असामान्य व्यवहार की एक महत्वपूर्ण विशेषता है।
8. **असुरक्षा की भावना**– असामान्य व्यवहार करने वाले व्यक्तियों में असुरक्षा का भाव भी अत्यन्त प्रबल होता है। ये स्वयं का समाज का एक स्वीकृत सदस्य नहीं मानते है, जिसके कारण ये दूसरे लोगों के साथ खुल कर अन्तःक्रिया नहीं कर पाते और नहीं विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों अवसरों पर अपने विचारों को खुलकर अभिव्यक्त नहीं कर पाते हैं।
9. **संवेगात्मक अपरिपक्वता**– असामान्य व्यवहार वाले लोग सांवेगिक रूप से अपरिपक्व होते है। अतः ये स्वयं को सांवेगिक रूप से समायोजित नहीं कर पाते है। इनका अपने संवेग पर नियंत्रण नहीं होता है। अतः अकारण रो देना या अकारण हंस देना इनकी आदत सी बन जाती हैं समय परिस्थिति के अनुसार अपने संवेगों को नियंत्रित करके उनकी उचित अभिव्यक्ति करना इन्हें नहीं आता है। अतः स्पष्ट है कि असामान्य व्यवहार वाले लोगों में संवेगात्मक समायोजन का भी अभाव पाया जाता है।
10. **संतोषजनक सामाजिक संबंध न होना–** अपर्याप्त सामाजिक समायोजन तथा सांवेगिक अपरिपक्वता के कारण असामान्य व्यवहार वाले लोग अपने आस–पास के लोगों के साथ संबंध भी अच्छे नहीं बना पाते हैं। ऐसे लोगों के संबंध अपने परिवारजनों के साथ भी संतोषजनक नहीं होते हैं।
11. **तनाव एवं अति संवेदनशीलता**– असामान्य व्यवहार वाले व्यक्ति प्रायः तनावग्रस्त रहते है और छोटी–छोटी बातों और घटनाओं को लेकर अत्यधिक बैचेन एवं परेशान हो जाते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि असामान्य व्यक्तियों का व्यवहार अत्यधिक तनावपूर्ण एवं संवेदनशील होता है।
12. **पश्चाताप का अनुभव न होना–** असामान्य व्यवहार करने वाले व्यक्तियों को अपनी गलती का अहसास नहीं होता। उन्हें यह लगता ही नहीं है कि उन्होंने कोई गलत कार्य किया है। अतः उसे ठीक करने का प्रश्न ही नहीं उठता। इस प्रकार स्पष्ट है कि असामान्य व्यक्तियों को अपने गलत कार्यों के लिये पश्चाताप का अनुभव नहीं होता है और वे बेहिचक गलत कार्यों को करते जाते हैं।
13. **काल्पनिकता एवं अवास्तविकता से ओत–प्रोत व्यवहार**– असामान्य व्यवहार करने वाले लोगों का वास्तविकता से कोई सम्पर्क नहीं होता है। ये लोग अपने ही कल्पना जगत् में खोये रहते हैं। अतः इनका व्यवहार काल्पनिकता एवं अवास्तविकता से ओत–प्रोत रहता है।
14. **अपनी देखभाल हेतु दूसरों पर निर्भर रहना**– असामान्य व्यक्तियों का व्यवहार अपनी देखभाल एवं सुरक्षा के लिये पर्याप्त नहीं होता है। अतः इनकी देखभाल एवं सुरक्षा का कार्यभार इनके परिवार के लोगों या समाज के दूसरे लोगों को ही वहन करना पड़ता है। इस प्रकार अपनी देखभाल में असक्षम होने के कारण ये सामज पर भारस्वरूप बन जाते हैं।

## 2.6 सारांश

प्रिय पाठकों, उपरोक्त विवरण से आप समझ गये होंगे कि मनोरोग एक असंतुलित मनोदशा की स्थिति होती है, जिसमें व्यक्ति की समायोजन क्षमता सर्वाधिक प्रभावित होती है। परिणामस्वरूप व्यक्ति सामाजिक रूप से मान्य व्यवहार नहीं कर पाता है और उसके संवेग, विचारों और व्यवहारों में उचित तालमेल नहीं बैठ पाता है। मनोरोग की स्थिति में व्यक्ति द्वारा जो व्यवहार किया जाता है, मनोवैज्ञानिकों ने उसे असामान्य सामान्य की संज्ञा दी है और मानसिक रूप से स्वस्थ रहने पर व्यक्ति द्वारा किया जाने वाला व्यवहार सामान्य व्यवहार कहलाता है। आत्मज्ञान, आत्म–सम्मान, आत्मविश्वास, वास्तविकता से सर्म्पक, सांवेगिक परिपक्वता, प्रर्याप्त समायोजन क्षमता अपनी देखभाल करने में समर्थ होना इत्यादि विशेषतायें सामान्य व्यवहार की हैं और इसके विपरीत विशेषतायें असामान्य व्यवहार में पायी जाती है–जैसे सूझ या आत्मज्ञान का अभाव, आत्म–सम्मान एवं आत्मविश्वास का अभाव, काल्पनिकता, सांवेगिक अपरिपक्वता इत्यादि।

**(अभ्यासर्थ प्रश्न)**

**(सत्य/असत्य)**

1. मनोरोग की स्थिति में व्यक्ति का व्यवहार सूझपूर्ण होता है। (सत्य/असत्य)
2. दुष्क्रिया असामान्य व्यवहार का एक प्रमुख लक्षण है। (सत्य/असत्य)
3. मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति का सम्पक काल्पनिकता से होता है। (सत्य/असत्य)
4. संतोषजनक संबंध सामान्य व्यवहार की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। (सत्य/ असत्य)
5. असामान्य व्यवहार सामाजिक मानकों के अनुरूप होता है। (सत्य/असत्य)

## 2.7 शब्दावली

APA – American psychiatuic Association (अमेरिकन मनश्चिकीत्सीय संघ)

DSM- IV – असामान्य व्यवहारों का अन्तर्राष्ट्रीय वर्गीकरण तंत्र (Diagnostic and statistical Manual of mental disarder-IV)

आत्म–सम्मान – स्वयं के प्रति आदर का भाव

सूझपूर्ण व्यवहार – अपने व्यवहार के प्रति सजग रहना।

समायोजनशीलता – परिस्थिति–परिवेश के अनुरूप स्वयं को ढालने की क्षमता।

सांवेगिक परिपक्वता – अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति पर नियंत्रण एवं दूसरे की भावनाओं को समझने एवं अनुभव करने की क्षमता।

## 2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**(सत्य/असत्य)**

1. असत्य 2 सत्य 3 असत्य 4 सत्य 5 असत्य

## 2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अरूण कुमार सिंह (2010), असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, बंग्लोरोड, जवाहरनगर, दिल्ली।

## 2.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. असामान्य मनोविज्ञान–डॉ. आर. के. ओझा, (1991), भार्गव बुक हाउस, आगरा।

## 2.11 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1– मनोरोग से आप क्या समझते है? सामान्य एवं असामान्य व्यवहार की प्रमुख विशेषतायें बताइये।

# इकाई–3 मनोरोगों के प्रकार, कारण, असामान्य व्यवहारों का नैदानिक वर्गीकरण

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 मनोरोगों के प्रकार
3.4 मनोरोगों के कारण
3.5 असामान्य व्यवहारों का नैदानिक वर्गीकरण
3.6 सारांश
3.7 शब्दावली
3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.10 सहायक उपयोगी पाठ्य–सामग्री
3.11 निबंधात्मक प्रश्न

## 3.1 प्रस्तावना –

प्रिय पाठकों इससे पूर्व की इकाइयों में आपने असामान्य मनोविज्ञान के इतिहास, मनोरोगों के अर्थ तथा सामान्य एवं असामान्य व्यवहार के स्वरूप का विस्तार से अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुये मनोरोगों के प्रकार, कारण एवं असामान्य व्यवहारों के नैदानिक वर्गीकरण का विस्तृत विवेचन किया जा रहा है।

पाठकों, मनोरोग का अर्थ जानने के बाद मन में सहज ही यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि मानसिक रोग किस – किस तरह के हो सकते है अर्थात् मनोरोगों के कितने प्रकार है ? इनकी उत्पत्ति में किन – किन कारकों का योगदान होता है ? यदि किसी व्यक्ति में कोई असामान्य व्यवहार दिखलायी दे तो इस बात का निर्धारण किस आधार पर किया जाये कि उसे, अमुक मनोरोग है ? इन सभी जिज्ञासाओं का समाधान प्रस्तुत इकाई में करने का प्रयास किया गया है।

## 3.2 उद्देश्य –

प्रिय विद्यार्थियों, इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

1. मनोरोगों के विभिन्न प्रकारों को स्पष्ट कर सकेंगे।
2. मनोरोगों के कारणों का विश्लेषण कर सकेंगे।
3. असामान्य व्यवहारों के नैदानिक वर्गीकरण को स्पष्ट कर सकेंगे।

## 3.3 मनोरोगों के प्रकार –

मनोचिकित्सा विज्ञान में मनोरोगों का वर्गीकरण करना अत्यधिक भिन्न तथ्यों अथवा लक्षणों को एक कोटि में लाने का प्रयास है। वर्गीकरण का मुख्य उद्देश्य एक ही प्रकार के चिकित्सकीय लक्षणों वाले रोगियों के समूह की पहचान करना है। जिससे उनके उपचार की एक उपयुक्त योजना बनाई जा सकें और इसके सम्भावित परिणाम की व्याख्या की जा सके। मनोचिकित्सा विज्ञान में व्याधि एवं बीमारी जैसे दो समान सम्बन्धित प्रत्ययों के लिये सामाजिक एवं व्यवहारिक प्रतिमान के अपेक्षा चिकित्साशास्त्र के प्रतिमान (medical model) का समर्थन किया गया है।

अधिकतर शारीरिक स्थितियों को हेतुकी एवं संरचात्मक विकृति के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। कुछ सामान्य चिकित्सकीय स्थितियों जैसे **माइग्रेन,ट्राईजेमिनल न्यूरालजिया** को अभी तक इस प्रकार से वर्गीकृत नहीं किया जा सका है, जिसके

कारण उनका वर्गीकरण केवल लक्षणों के आधार पर ही किया गया है। मानसिक विकार मुख्य रूप से इस दूसरे प्रकार की स्थिति के समान ही है। यद्यपि कुछ मनोरोगों में शारीरिक हेतुकी को माना गया है किन्तु अधिकांश का वर्गीकरण केवल लक्षणों के आधार पर ही किया जा सकता है। कुछ प्रमुख मनोरोगों के प्रकार जो DSM - TR में संलग्न है, वो इस प्रकार है –

**(Ansiety Disorder) चिन्ता विकार –**

चिन्ता को काफी लम्बे समय से कई मनोरोगों के लक्षण के रूप में पहचाना जाता है। सर्वप्रथम **फ्रायडा** (1895) ने कहा कि ऐसे मामले जिसमें मुख्य रूप से चिन्ता के ही लक्षण हों,

फ्रायड के चिन्ता मनःस्ताप में भीतियों (Phobia) एवं संत्रास (panic attack) को सम्मिलित किया गया है परन्तु उन्होंने इसे दो भाग में बाँटा है – प्रथम, जिसे चिन्ता मनःस्ताप का नाम दिया गया है जिसमें मुख्यतः मानसिक लक्षण वाली घटनाएँ थी, दूसरा उसको जिसे चिन्ता हिस्टीरिया का नाम दिया गया, जिसमें चिन्ता के शारीरिक लक्षण वाली घटनायें थी। फ्रायड का मानना था कि चिन्ता विकार एवं चिन्ता हिस्टीरिया लैंगिक अन्तर्द्वन्द के कारण होते है।

चिन्ता मनोरोग एक ऐसी असामान्य स्थिति है, जिसमें मुख्य रूप से चिन्ता के मानसिक एवं शारीरिक लक्षणों की प्रधानता होती है। इन लक्षणों की उत्पत्ति किसी आंगिक मस्तिष्क रोग व अन्य मनोरोगों के कारण से नहीं होता है। DSM IV में चिन्ता मनोराग का तात्पर्य ऐसे विकार से लगाया गया है जिसमें रोगी में अवास्तविक चिन्ता एवं अतार्किक डर की मात्रा इतनी अधिक होती है कि उससे उसके सामान्य जीवन का व्यवहार प्रतिकूलित हो जाता है।

**चिन्ता विकृति के प्रकार –**

DSM IV TR (2000) में चिन्ता विकृति के निम्न छः प्रकार बताये गये हैं –

1. **दुर्भीति** (Phobias)
2. **भीषिका विकृति** (Panic disorder)
3. **सामान्यीकृत चिन्ता विकृति** (Generalized anxiety disorder or GAD)
4. **मनोग्रस्ति बाध्यता विकृति** (Obsessive – Compulsive disorder or OCD)
5. **उप्तर आघातीय तनाव विकृति** (Post - traunatic stress disorder or PTSD)
6. **तीव्र तनाव विकृति** (Active stress disorder)

**देहरूपी विकार (Somataform Disorder) –**

देह का अर्थ शरीर होता है और देहरूपी विकारों में चिन्ता पर आधारित मनस्तापी प्रतिदर्श होते है जिसमें व्यक्ति कई प्रकार के शारीरिक लक्षणों को प्रस्तुत करता है, जिससे ऐसा प्रतीत होता है जैसे उस व्यक्ति को शारीरिक समस्या है परन्तु इन लक्षणों अथवा समस्याओं का काई अंगिक आधार नहीं मिलता है।

देहरूपी विकारों की मुख्य विशेषता विभिन्न शारीरिक लक्षणों को बार – बार प्रस्तुत किया जाना है परन्तु किसी प्रकार की जाँच एवं परीक्षणों पर भी उनका कोई शारीरिक आधार नहीं मिलता है। मुख्य रूप से देहरूपी विकार निम्न प्रकार के होते है–

1. **दैहिकीकरण विकार (Somatization Disorder)**
2. **रोग भ्रमी विकार (Hypochondrial Disorder)**
3. **देहरूपी स्वचालित अकार्यता (Somataform Otonomic Dusfunction )**
4. **पीड़ा विकार (Pain Disorder)**
5. **शरीर दुष्क्रिया आकृति विकार (Body Dysmorphic Disorder)**

1. **दैहिकीकरण विकार (Somatization Disorder)** – इस विकार में अनेकानेक पुनरावर्तक एवं बारम्बार परिवर्तनशील शारीरिक लक्षण , रोगी में पूर्व कई वर्षो से विद्यमान होता है। दैहिकीकरण विकार में कम से कम आठ तरह के लक्षण निश्चित रूप से होते है जो इस प्रकार है –

- **चार तरह के दर्द के लक्षण –** इसमें दर्द सिर, पेट, पीठ, छाती, पेशाब करने के दौरान, मासिक धर्म के दौरान, लैगिंक क्रिया के दौरान आदि में से किसी चार से सम्बद्ध हो सकता है।
- **दो आमाषयांत्र लक्षण –** कम से कम दो आमाशयांत्र (Gestrointestinal) लक्षण जैसे – मिचले, के, डायरिया, पेट फूलना आदि अवश्य हुए हों।
- **एक लौंगिक लक्षण –** इसमें कम से कम एक लैगिक लक्षण जैसे लैगिक तटस्थता (Sexual indefference) स्खलन समस्याएँ (Ejacalatory problem ) अनियमित मासिक स्राव, मासिक स्राव में अत्यधिक रक्त निकलना आदि अवश्य हुए हो।
- **एक कूटस्नायविक लक्षण –** कम से कम एक कूटस्नायविक (pseudoneuroligical) लक्षण जैसे अंधापन द्विदृष्टि, बहरापन, स्पर्श संवेदना की कमी, विभ्रम, पक्षाघात, कंठ में दर्द या खाते समय निगलने में कठिनाई आदि अवश्य हुए हो।

2. **रोगभ्रमी विकार –** इस विकृति में व्यक्ति अपने स्वास्थ्य के बारे में जरूरत से ज्यादा सोचता है तथा उसके बारे में चिंता करता है। उसके मन में अक्सर यह घात बनी रहती है कि उसे कोई न कोई शारीरिक व्याधि या बिमारी हो गई है औ उसकी यह चिंता इतनी अधिक हो जाती है कि वह अपने दिन प्रतिदिन की जिंदगी के साथ समायोजन करने में असमर्थ रहता है। DSM IV (IR) की कसौटी के अनुसार इस तरह की चिंता व्यक्ति में कम से कम छः महीने तक बने रहने पर ही उसे रोगीभ्रम विकार की श्रेणी में रखा जा सकता है अन्यथा नहीं। इस विकृति में रोगी की शिकायत किसी एक अंग विशेष तक सीमित नहीं रहती है। कभी – कभी उन्हें लगाता है कि पेट में भयानक रोग हो गया है तो कभी – कभी उनके सिर में गड़बड़ी नजर आती है। इसी तरह से उन्हें अपने यौन अंगों में किसी ढंग का शारीरिक रोग होने की खौफनाक चिंता होती है। जब ऐसे रोगियों से उनके लक्षण के बारे में विस्तृत रूप से पूछ – ताछ की जाती हैं। तो वे उसकी सही–सही वर्णन करने में असमर्थ रहते है। मेडिकल परीक्षण से जब यह बात स्पष्ट हो जाती हे कि वास्तव में उनकी आशंकाएँ निराधार है तो भी उन्हें यह विश्वास नहीं होता है कि उनमें कोई रोग नहीं है। बल्कि वे मेडिकल परीक्षणों में कुछ कमी रह जाने की बात करते है।

आधुनिक अध्ययनों से यह पता चला है कि यह रोग महिलाओं एवं पुरूषां में लगभग समान ढंग से होता है।

3. **पीड़ा विकार –** इस विकृति में रोगी गंभीर या स्थायी तौर पर दर्द का अनुभव करता है जबकि इस तरह के दर्द कोई दैहिक आधार (Physical basis) नहीं होता है। इस तरह का दर्द प्रायः हृदय या अन्य महत्वपूर्ण अंगों के क्षेत्र में सम्बद्ध होता हे। गहन मेडिकल जाँव में ऐसे रोगियों के दर्द का कोई भी स्पष्ट आधार व विकृति नहीं मिलती है। सामान्यतः इस तरह के दर्द की उत्पत्रि का सम्बन्ध किसी प्रकार के संघर्ष या तनाव से होता है या जब व्यक्ति किसी दुखद परिस्थिति से छुटकारा पाना चाहता है या अन्य लोगों की सहानुभूति या ध्यान को अपनी ओर खींचना चाहता है, तो इस तरह को दर्द व्यक्ति में उत्पन्न होते देखा गया है। मनश्चिकित्सकों का मत है कि इस रोग के निदान में काफी दिक्कत इसलिए होती है क्योंकि दर्द एक पूर्णतः आत्मनिष्ठ अनुभूति है जो मनोवैशानिक रूप से प्रभावित

होने वाली घटना है। अतः यह पहचान करना मुश्किल हो जाता है कि व्यक्ति में हाने वाला दर्द का स्वरूप कायप्रारूप (Somatoform) है या वह वास्तविक दर्द है।

4. **शरीर दुष्क्रिया आकृति विकार –** इस विकृति में रोगी को अपने चेहरे में कुछ कल्पित दोष (Imagined defect) उत्पन्न हो जाने की आशंका उत्पन्न हो जाती है। जैसे सम्भव है कि रोगी को यह विश्वास हो जाए कि उसके नाम का आकार दिनों दिन बढ़ा होता है या होता जा रहा है, या उसके ऊपरी होंठ ऊपर की दिशा में तथा निचली होंठ नीचे की दिशा में लटकता जा रहा है। इस तरह के कल्पित दोष से वह इतना अधिक चिंतित रहता है कि उसके दिन प्रतिदिन के सामाजिक जिंदगी में काफी परेशानी आ जाती है और समायोजन सम्बद्ध समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है।

इस तरह की विकृति से संबद्ध कम शोध किये गये है। इस तरह की विकृति वाले अधिकतर रोगी यूरोपियन एवं एशियन देशों के मानसिक अस्पतालों में कुछ देखने को मिले है। अमेरिका में इस तरह के रोग न के बराबर देखे गए है। यही कारण है कि कई मनश्चिकित्सकों में इस बात पर मतभेद है कि इसे कायप्रारूप विकृति (Somatoform disorder) का एक स्वतंत्र प्रकार माना जाए या नहीं।

**मनोविच्छेदी विकृतियाँ (Dissociative disorder) –** मनोविच्छेदीविकृति एक महत्वपूर्ण एवं सामान्य मानसिक रोग है जिसमें रोगी के मानसिक प्रक्रियाएँ विशेषकर स्मृति या चेतना जो समन्वित रहता है, विच्छेदित हो जाता है। इसमें स्मृति का कुछ क्षेत्र चेतन से विच्छेदित होकर अलग हो जाता है जिससे व्यक्ति अपने आप को तथा वातावरण को भिन्न ढंग से प्रत्यक्षण करने लगता है। कहने का तात्पर्य यह है कि मनोविच्छेदी विकृति का सबसे प्रमुख लक्षण विच्छेदन है। विच्छेदन की अनुभूति में अन्य बातों के अलावा निम्नांकित तरह की अनुभूतियाँ अधिक होती है –

**(1) स्मृतिलोप (Amnesia) –** स्मृतिलोप में रोगी अपने पूर्व अनुभूतियों का आंशिक या पूर्णरूपेण प्रत्याह्वन (Crecall) करने में असमर्थ रहता है।

**(2) व्यक्तित्वलोप (Depersonalization)** – इसमें रोगी को पूरा वातावरण ही अवास्तविक एवं अविश्वसनीय लगता है।

**(3) पहचान संभ्राति /आत्मविस्मृति (Identify confusion)** – इसमें रोगी को अपने बारे में यह संभ्राति उत्पन्न होती है कि वह कौन है, क्या है, आदि।

**(4) पहचान बदलाव –** इसमें रागी कभी – कभी कुछ आश्चर्य उत्पन्न करने वाले कौशलों से अपने को लैश पाता है। रोगी को आश्चर्य इसलिए होता है कि उसे पता भी नहीं रहता है कि उसमें ऐसा कौशल है। जैसे सम्भव है कभी – कभी रोग विदेशी भाषा में कुछ ऐसे शब्दों का उपयोग करके अपने सम्भाषण को आकर्षक बना देता है कि उसे आश्चर्य होने लगता है।

**मनोविच्छेदी विकृति के प्रकार (Types of Dissociative Disorder) –**

**मनोविच्छेदी विकृति (Dissociative Disorder) के कई तरह के प्रकार बतलाये गये हैं, जिनमें निम्नांकित चार प्रमुख है –**

1. **मनोविच्छेदी स्मृतिलोप** (Dissociative Amnesia)
2. **मनोविच्छेदी आत्मविस्मृति** (Dissociative Fugue)
3. **मनोविच्छेदी पहचान विकृति** (Dissociative Identify Disorder)
4. **व्यक्तित्वलोप विकृति** (Depersonalization Disorder)

- **मनोविच्छेदी स्मृतिलोप** (Dissociative Amnesia) – इस रोग में व्यक्ति अपने ऐसे अनुभवों का प्रत्याह्वान पूर्णतः या अंशतः नहीं कर पाता है, जो तनाव उत्पन्न करने

वाला होता है या जो मानसिक आघात उत्पन्न किये होते है। स्मृतिलोप के अनेक प्रकार होते है, जिनमें निम्न प्रमुख है।

1. **पश्चगामी स्मृतिलोप** (Retrogracle Amensia)
2. **उत्तर अघातीय स्मृतिलोप** (Post traumatic amnesia)
3. **अग्रगामी स्मृतिलोप** (Anterograde amnesia)
4. **चयनात्मक या श्रेणीबद्ध स्मृतिलोप** (Selective of categorical amnesia)
5. **सामान्यीकृत स्मृतिलोप** (Generalized amnesia)
6. **सतत स्मृतिलोप** (Continuous amnesia)
7. **क्रमबद्ध स्मृतिलोप** (Systemized amnesia)

- **मनोविच्छेदी आत्मविस्मृति (Dissociative Fugue) –**

इसे पहले मनोजनिक आत्म विस्मृति (psychogenic Fugue) कहा जाता था। इसमें व्यक्ति में स्मृतिलोप (amnesia) के लक्षण तो होते ही है। साथ ही साथ वह अपने घर या सामान्य निवास स्थान छोड़कर एवं अप्रत्याशित ढंग से दूर चला जाता है और वह वहाँ नया काम, नया नाम, बताकर एक नयी जिन्दगी की शुरूआत करता है। कई दिन, महीना तथा कभी –कभी साल बीत जाने के बाद फिर रोगी अचानक अपने आप को नये जगह में पाकर आश्चर्यचकित रह जाता है और फिर वह नयी जिन्दगी के बारे में सब कुछ भूल जाता है। उसे यह भी समझ में नहीं आता कि वह किस तरह यहाँ आता था और क्यों आता था।

अध्ययनों से यह स्पष्ट है कि सामान्य जनसंख्या का करीब 0.2 प्रतिशत लोगों में ही इस तरह का रोग पाया जाता है। स्पष्टतः तब इस तरह के रोग का प्रचलन काफी कम है।

- **मनोविच्छेदी पहचान विकृति (Dissociative Identify Disorder)-**
- इस रोग को पहले बहुत्यक्तित्व विकृति (Multipli Personality Disorder) कहा जाता था। DID में एक ही व्यक्ति में दो या दो से अधिक भिन्न व्यक्तित्व अवस्थाएँ पायी जाती है। प्रत्येक अवस्था अपने आप में सवंगात्मक एवं भावात्मक दृष्टिकोण से काफी सुसज्जित एवं संगठित होते है और प्रत्येक व्यक्तित्व तंत्र का अपना – अपना अलग विचार एवं संज्ञान (Cognition) होता है। व्यक्ति एक व्यक्तित्व अवस्था में कुछ समय (जैसे कुछ महीना या साल) एक रहकर फिर अपने आप दूसरे व्यक्तित्व अवस्था में चला जाता है। एक व्यक्तित्व अवस्था व्यक्तित्व अवस्था में नाटकीय ढंग से भिन्न होता है। जैसे व्यक्ति एक व्यक्तित्व अवस्था में कुछ मजाकिया, चिंतामुक्त व्यवहार कर सकतता है तो दूसरी अवस्था में वह किसी गंभीर, शान्त एवं चिन्तायुक्त व्यक्ति समान व्यवहार कर सकता है। वैसी आवश्यकताएँ एवं व्यवहार जो मुख्य व्यक्तित्व में अवरूद्ध एवं दबी होती है, वे अन्य व्यक्तित्व अवस्थाओं में विशेष रूप से अभिव्यक्ति होती हे। इसे पहले **भूतबाधा** आदि के रूप में प्रत्यक्षण किया जाता था।
- **व्यक्तित्व विकृतियाँ (Personality Disorders)-**

व्यक्तित्व विकृति किसी तनावपूर्ण परिस्थिति (Stress Situation) के प्रति एक प्रतिक्रिया नहीं होती है जैसा कि हम Adjustment disorder में पाते है न ही वह चिंता के प्रति एक तरह का अपरिपक्व व्यक्तित्व विकास का प्रतिफल होता है। इा तरह की व्यक्तित्व विकृतियों के लक्षण किशोरावस्था तक स्पष्ट हो जाते है जो वयस्कावस्था में भी मौजूद रहते है।

व्यक्तित्व विकृति मूलतः शीलगुणों की विकृति है। दूसरे शब्दों में व्यक्तित्व विकृति वैसा विकृति है, जो पर्यावरण को कुसमायोजित ढंग से प्रत्यक्षण करने तथा उसके प्रति अनुक्रिया करने की प्रवृत्ति की ओर इशारा करता है।

- **व्यक्तित्वलोप विकृति (Depersonalization Disorder)-** इसमेंव्यक्ति का आत्मन् का प्रत्यक्षण अथवा अनुभव इस हद तक बदला रहता है कि उससे पृथकता का भाव उत्पन्न होता है। व्यक्ति स्वयं को यंत्र के समान चलने वाला प्राणी मानने लगता है। उसे लगता है कि वह स्वप्न की दुनिया में विचरण कर रहा है और वह स्वयं की ही मानसिक तथा शारीरिक प्रक्रियाओं का एक बाहरी प्रेक्षक बनकर उनका निरीक्षण कर रहा है। इस रोग में व्यक्ति को संवेदी भ्रामक, भावात्मक अनुक्रियाओं की कमी, अपनी की क्रियाओं पर नियंत्रण न होने का भाव आदि होते देखा गया है। इस प्रकार के रोगियों में सम्मोहनशीलता का गुण अधिक पाया जाता है।

**व्यक्तित्व विकृति के प्रकार (Types of personality disorder)-**

DSM – IV ( TR) जो मनोरोग के वर्गीकरण की नवीनतक सर्वमान्य अमेरिकतन पद्धति है, के अनुसार व्यक्तित्व विकार के निम्न 10 प्रकार है –

1. **स्थिर व्यामोही व्यक्तित्व विकृति**
2. **स्किजोआयड व्यक्तित्व विकृति**
3. **स्किजाटाइपल व्यक्तित्व विकृति**
4. **हिस्ट्रीओनिक व्यक्तित्व विकृति**
5. **आत्ममोही व्यक्तित्व विकृति**
6. **समाज विरोधी व्यक्तित्व विकृति**
7. **सीमान्तरेखीय व्यक्तित्व विकृति**
8. **परिवर्जित व्यक्तित्व विकृति**
9. **अवलम्बित व्यक्तित्व विकृति**
10. **मनोग्रस्ति बाध्यता व्यक्तित्व विकृति ।**

**मनोदशा विकृतियाँ एवं आत्महत्या (Mood disorder and suicide) –** मनोदशा विकृति जैसा नाम से ही स्पष्ट है, एक ऐसी मानसिक विकृति है जिसमें व्यक्ति के भाव, संवेग एवं संबधित मानसिक दशाओं में इतना उतार – चढ़ाव होता है कि वह अपने दिन प्रतिदिन के जवन में समायोजन का सामान्य स्तर बना कर नहीं रख पाता है और उसकी सामाजिक एवं पेशेवर जिंदगी में तरह – तरह की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है। इस तरह की मानसिक विकृति में व्यक्ति की मनोदशा में कमी तो विषाद देखा जाता है ताक कभी विषाद एवं सुखाभास दोनों ही कभी – कभी बारी – बारी से होते देखा जाता है। चाहे मानसिक अवस्था विषाद का हो या सुखाभास का, रोग का समायोजन बुरी तरह प्रभावित हो जाता है और व्यक्ति को चिकित्सा देना अनिवार्य हो जाता है।

**मनोदषा विकृति के प्रकार (Types of mood disorder) –** DSM – IV-TR में तीन तरह के मनोदशा विकृति का उल्लेख किया गया है जो निम्नांकित है –

1. **विषादी विकार –** इसे एकध्रवीय भी कहा जाता है और इसका मुख्य लक्षण व्यक्ति में उदासी एवं विषाद का होना है। इसके अतिरिक्त इसमें भूख – नींद एवं शारीरिक वनज में कमी होते पायी जाती है और व्यक्ति का संक्रियण स्तर काफी कम जाता है। विषादी विकृति को फिर दो भागों में बॉटा गया है –

**(क) डायस्थाइमिक विकृति (Dysthymic Disorder) – इस** विकृति में विषादी मनोदशा का स्वरूप चिरकालिक होता है अर्थात् गत कई वर्षो से व्यक्ति की मनोदशा विषादी होती है। व्यक्ति को गत् कई वर्षो से किसी भी चीज में अभिरूची, आनन्द की

कमी का अनुभव करता है। बीच में कुछ दिनों के लिए उसकी मनोदशा भले ही सामान्य हो जाय परन्तु विषादी मनोदशा की प्रबलता सतत बनी रहती हे।

**(ख) बड़ा विषादी विकृति (Major depressive disorder) –** इस विकृति में व्यक्ति एक या एक से अधिक बड़े विषादी घटनाओं का अनुभव किया होता है। व्यक्ति प्रत्येक चीज में अपनी अभिरूचि खो चुका होता है तथा उसे कोई कार्य में मन नहीं लगता है। ऐसे व्यक्तियों में नींद की कमी, शारीरिक वनज की कमी, थकान, स्पष्ट रूप से सोचने की क्षमता में कमी, बेकार एवं अयोग्य होने का भाव, आत्महत्या की प्रवृत्ति आदि अधिक होती है। इस विकृत में श्रेणीकृत होने के लिए वह आवश्यक है कि ऐसे लक्षण कम–से–कम गत दो सप्ताह से अवश्य हो रहे है।

1. **द्विध्रुवीय (Bipolar) विकृति –** द्विध्रुवीय विकृति वैसी विकृति को कहा जाता है जिसमें व्यक्ति या रोगी में बारी – बारी से विषाद तथा उन्माद दोनों ही तरह की अवस्थाएँ होती पायी जाती है। यही कारण है कि इसे उन्मादी – विषाद विकृति भी कहा जाता है। DSM IV (TR) में द्विध्रुवीय विकृति में निम्नांकित तीन प्रकार बतलाये गये है –

- **साइक्लोथाइमिक विकृति (cyclothymic disorder) –** dysthmic disorder के समान cyclothymic disorder में भी मनोदशा में चिरकालिक क्षुब्धता पायी जाती हैं। इसमें विषादी व्यवहार तथा अल्पोन्माद व्यवहार दोनों ही पाये जाते है परन्तु इन दोनों में से किसी की भी गंभीरता ऐसी नहीं कि यह द्वारा निर्धारित कसौटी को छू सकें। ऐसे व्यवहारों का इतिहास निश्चित रूप से कम से कम दो वर्ष पुराना अवश्य होता है।
- **द्विध्रुवीय एक विकृति (Bipolar Ipisorder) –**जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, वैसी मानसिक विकृति होती है जिसमें रोगी या व्यक्ति एक या एक से अधिक उन्माद की घटना तथा एक या एक से अधिक विषाद की घटना की अनुभूति अवश्य किया होता है। **गुडविन तथा जैमिसन के** अनुसार Bipaler I disorder के बहुत कम रोगी ऐसे भी होते है जो एक या एक से अधिक बार उन्मादी अवस्थ का अनुभव किये हो किन्तु उन्हें कभी भी विषादी लक्षण का अनुभव नहीं हुआ हो।
- **द्विध्रुवीय दो विकृति** (Bipolar II disorder) **–** इसमें रोगी को कम से कम एक अल्पोन्मादी मानसिक अवस्था का अनुभव तथा कम से कम एक या एक से अधिक विषादी मानसिक अवस्थाओं का अनुभव हो चुका होता है। इसके रागी को कभी उन्मादी मानसिक अवस्था का अनुभव नहीं होता है। अल्मोन्मादी अवस्था एक ऐसी अवस्था होती है जिसमें व्यक्ति की मनोदशा थोड़ी देर के लिए बढ़ी – चढ़ी होती है। तथा उनमें चिढ़चिढ़ापन जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। द्विध्रुवीय एक विकृति तथा द्विध्रुवीय दो विकृति के मुख्य अंतर यह है कि द्विध्रुवीय दो विकृति में उन्मादी व्यवहार की गंभीरता कम होती है जबकि द्विध्रुवीय एक विकृति में उन्मादी व्यवहार व्यक्ति अधिक गंभीर मात्रा में दिखाता है।

2. **अन्य मनोदशा विकार (Other mood disorder)** – इस श्रेणी में वैसी मनोदशा विकृतियों को रखा गया है जो दैहिक एवं मानसिक विकृतियों से उत्पन्न हो जाते है। जैसे क्लिंटन के अध्ययन के अनुसार प्रत्येक 10 मुख्य विषादी में से एक का कारण मनोवैज्ञानिक या सांवेगिक न होकर कोई मेडिकल बिमारी जैसे– **कैंसर, मधुमेह, हृदय** आघात आदि या कुछ द्रव्य दुरूपयोग (substance abuse) या अन्य विकृतियों के उपचार के लिए लिया जाने वाला औषध आदि होता है।

**मनोविदालिता या सिजोफ्रेनिया –**

सिजोफ्रेनिया एक गंभीर मानोरोग है। इस रोग से पीड़ित व्यक्ति को सामान्यतः पागल कहा जाता है। यह चिन्तन एवं क्षुब्ध मनोदशा की विकृति है। इस रोग में व्यक्ति में गलत प्रत्यक्षण तथा गलत विश्वास उत्पन्न हो जाता है तथा वास्तविकता को समझने में अनेकों कठिनाइयाँ होती है, तथा भाषा संबधित सांवेगिक अभिव्यक्ति में तालमेल करने में असमर्थता होती है। मनोविदालिता, मनोविक्षिप्तता विकृतियों का एक समूह है जिसमें चिंतन, संवेग तथा व्यवहार में अत्यधिक क्षुब्धता की विशेषता होती है। विकृत चिंतन जिसमें विचार तार्किक रूप से संबद्ध नहीं होते हैं, दोषपूर्ण प्रत्यक्षण एवं ध्यान होता है। यह रोगी को अन्य लोगों एवं वास्तविकता से दूर करके उसे व्यामोह तथा विभ्रम के काल्पनिक दुनिया में ले जाता है।

**मनोविदालिता के प्रकार –** DSM (IV) (2000) के अनुसार **सिजोफ्रेनिया** के पाँच प्रमुख प्रकार है –

1. **विघटित मनोविदालिता**
2. **कैटेटोनिक मनोविदालिता**
3. **व्यामोही मनोविदालिता**
4. **मिश्रित मनोविदालिता**
5. **अवशिष्ट मनोविदालिता**

1. **विघटित मनोविदालिता –** विघटित मनोविदालिता का मुख्य लक्षण संभ्राति (Confusion) संगतता (incoherence) तथा कुंठित प्रभाव (feat affect) आदि है। इस प्रकार में विभ्रम तथा व्यामोह विशेषकर लैंगिक, रोगभ्रमी (hypo chondrical) धार्मिक तथा दंडात्मक (persecutory) काफी होते है एवं घटियाा ढंग से संगठित होते है। रोगी में अपने शरीर से संबधित विचित्र विशेषकर शारीरिक ह्रास से संबधित विचार काफी आते है। विघटित मनोविछालिता के रोगी न तो अपनी देख–रेख ठीक ढंग से करते है और न ही इनका सामाजिक संबध ही उत्तम होता है।
2. **कैटेटोनिक मनोविदालिता –** इसमें पेशीय लक्षण (motor symptoms) बौद्धिक (Intellectual) तथा लक्षणों (emotional symptoms) से अधिक स्पष्ट होते है। सामान्यतः इस प्रकार के मनोविदालिता में तीन तरह की लाक्षणिक अवस्थाएँ होती है – एक अवस्था catatonic stupor का होता है जिसमें रोगी गतिहीन तथा अनुक्रियाहीन होने का लक्षण दिखलाता है। रोगी एक स्थिति में लम्बे समय तक चुपचाप सोता या खड़ा रहता है, वह किसी से बातचीत नहीं करना चाहता है तथा किसी के बात पर कोई ध्यान भी नहीं देता है। कभी – कभी वह सांकेतिक हाव – भाव, रूढ़िवादी गति तथा दृढ़ मनोवृत्ति भी दिखलाता है।
3. **व्यामोही मनोविदालिता –** मनोविदालिता के इस प्रकार का सबसे प्रमुख लक्षण व्यामोह तथा श्रव्य विभ्रम का एक क्रमबद्ध एवं संगठित तंत्र का होना है। व्यामोह में दंडात्मक व्यामोह (diliusion of persecuation) की प्रबलता होती है परन्तु इसके अतिरिक्त बड़प्पन का व्यामोह (diliusion of grendeour) , dilusion or reference भी पाया जाता है। जब ऐसे रोगियों के प्रत्यक्षण तथा चिंतन की सत्यता के बारे में दूसरों के द्वारा प्रश्न किया जाता है, तो उनके इस व्यामोही चिंतन व विभ्रमात्मक प्रत्यक्षणों के साथ–साथ उसमें क्रोध या चिंता भी उत्पन्न होती है। APA (1994) के अनुसार इसके विपरीत जिन रोगियों में बड़प्पन का व्यामोह अधिक होता है वे शांत एवं अकेले रहते है।
4. **मिश्रित मनोविदालिता –** इस श्रेणी में उस मानसिक रोगी को रखाा जाता है जिन्हें मनोविदालिता के रोगी के रूप में पहचान तो की जाती है किन्तु उसके मनोविदालिता के कोई स्पष्ट प्रकार में रखना संभव नहीं हो पाता है। जब रोगी में मनोविदालिता के लक्षण अचानक उत्पन्न होते है और लघु अवधि में ही वे दूर हो जाते

है, तो उसे प्रखर मिश्रित मनोविदालिता (acute undifferentiated schizophrenia) कहा जाता है। परन्तु मनोविदालिता के रोग की शुरूआत क्रमिक (gradual) होती है और उसके लक्षण लम्बे समय तक बने रहते है, तो इसे चिरकालिक मिश्रित मनोविदालिता (chronic undifferentiated schizophrenia) कहा जाता है।

5. **अवशिष्ट मनोविदालिता –** इस श्रेणी में मनोविदालिता के उन रोगियों को रखा जाता है जो मनोविदालिता के सम्पूर्ण कसौटी पर तो खरे नहीं उतरते है परन्तु फिर भी उनमें मनोविदालिता के लक्षण दीख पड़ते है। दूसरे शब्दों में, इस प्रकार के मनोविदालिता के भड़कीले लक्षण की संख्या तथा तीव्रता में तो कमी हो जाती है परन्तु फिर भी वे अवशिष्ट प्रारूप में बने रहते है। इसमें रोगी में भोथरें या अनुपयुक्त सांवेगिक प्रतिक्रिया, सामाजिक प्रत्याहार (Social withdraw) अनोखा व्यवहार (eccentric behavior) तथा कुछ आतार्किक चिंतन के लक्षण होते है। DSM IV (TR) (2000) के अनुसार इस प्रकार के मनोविदालिता के मुख्य लक्षण निम्न प्रकार है।

   - स्पष्ट सामाजिक अलगाव
   - समाजिक भूमिकाओं को करने में स्पष्ट दोष
   - व्यक्तिगत स्वास्थ्य एवं देखभाल में गंभीर दोष
   - अनुपयुक्त सांवेगिक अभिव्यक्ति
   - अत्यन्त विचित्र व्यवहार
   - असाधारण प्रत्यक्षज्ञानात्मक अनुभूतियाँ
   - भावशून्यता अथवा पहल की कमी।

इस प्रकार स्पष्ट हुआ कि मनोविदालिता के इस प्रकार में मनोविदालिता के प्रमुख लक्षण जैसे व्यामोह, विभ्रम, असंगतता तथा विघटित व्यवहार आदि तो अनुपस्थित रहते है किन्तु अन्य उपर्युक्त तरह के लक्षण उनमें दीखते है, जो निश्चित रूप से दुखदायी होते है।

**व्यामोही विकृतियाँ या स्थिर व्यामोही विकृतियाँ –** स्थिर व्यामोह (paranoia) से तात्पर्य एक वैसे मानसिक रोग से होता है जिसमें रोगी एक जटिल व्यामोह तंत्र विकसित कर लेता है परन्तु उसमें किसी प्रकार के विभ्रम (hallucination) भाषा तथा क्रिया–कलापों में गड़बड़ी तथा स्थिति भ्रान्ति आदि का कोई लक्षण नहीं होता है। स्पष्ट हुआ कि इस रोग में रोगी में व्यामोह तंत्र इतना जटिल (Complex) होता है कि उसके व्यवहार में असामान्यता तथा कुसायोजन (Maladjustment) स्पष्ट रूप से दिखते है। सुव्यवस्थित एवं स्थिर व्यामोह के अलावा इस तरह के रोगियों में और कोई भी लक्षण असामान्य नहीं होते है। DSM IV (TR) में इस रोग का नाम **व्यामोही विकृति** (delusional disorder) रखा गया है।

**स्थिर व्यामोही विकृति के प्रकार –** स्थिर व्यामोही विकृति के अनेक प्रकार बतलाये गए है, जिनमें निम्न प्रमुख है–

1. **दंडात्मक प्रकार (persecutory types) –**इस प्रकार की विकृति के रोगी में यह व्यामोह या गलत विश्वास उत्पन्न हो जाता है कि दूसरे लोग उसके प्रति कुछ साजिश कर रहे है, उन्हें तकलीफ देने का प्लान तैयार कर रहे है। इस तरह के व्यक्तियों के प्रति क्रोध तथा अहिंसा दिखाते है जिन्हें वे यह समझते है कि वह उन्हें चोट पहुँचा रहा है।

2. **ईर्श्यालू प्रकार** (Jealous type) – इस प्रकार के रागी में गलत विश्वास उत्पन्न हो जाता है, कि उसका लैंगिक साथी (sexual partner) अविश्वासी (unfaithful) है इस तरह के गलत विश्वास का आधार छोटे–छोटे सबूतों के आधार पर लगाये गये गलत अनुमान होते है।
3. **कामोन्मादी प्रकार** (Erotomanic type) – इस प्रकार के रोगी को यह गलत विश्वास हो जाता है कि कुछ उच्च–स्तरीय व्यक्ति या सम्मानित व्यक्ति उसके साथ प्यार करते और उसके साथ लैंगिक संबध की इच्छा रखते है। कभी–कभी इसमें रोगी किसी अपरिचित व्यक्ति से रोमांस करने का विश्वास विकसित कर लेता है। नैदानिक प्रतिदर्श इस प्रकार के रोग अधिकतर महिलाओं में होते है।
4. **आडम्बरी प्रकार** (Complex) –इस प्रकार के रागी में यह गलत विश्वास हो जाता है कि उसमें कोई असाधारण या दिव्य सूझ या शक्ति या योग्यता है। उसे यह भी गलत विश्वास हो जाता है कि उसने कोई महत्वपूर्ण खोज किया है। ऐसे रोगी प्रायः यह भी कहते पाये जाते है कि उनका किसी बड़े राजनैतिक नेता से संबध है या ईश्वर के दूत है।
5. **शरीरिक प्रकार** (Sometic type) – इस प्रकार के रागी को यह गलत विश्वास हो जाता है कि उसमें काई ना कोई शारीरिक क्षुब्धता उत्पन्न हो गयी है। वह इस विचार से हमेशा अत्यधिक परेशान रहता है। Sometic dilusion के कई प्रकार होते है। इसमें सबसे सामान्य वह है जिसमें रोगी को यह गलत विश्वास हो जाता है कि उसकी त्वचा, मुँह,
6. **मिश्रित प्रकार** (Mixed type) – इस श्रेणी में स्थिर व्यामोह के किसी रोगी को तब रखा जाता है, जिन रोगियों में कोई एक तरह का व्यामोही विषय की प्रबलता नहीं होती है।
7. **अविशिष्ट प्रकार** – इस प्रकार के स्थिर व्यामोह के किसी रोगी को तब रखा जाता है जब उसका प्रबल व्यामोही विश्वास के बारे में यह निश्चय नहीं किया जा सकता है कि किस प्रकार है। जैसे मान लिया जाए कि कोई व्यक्ति में संदर्भ व्यामोह तो होता है परन्तु आडम्बरी या दंडात्मक तत्व न हो, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि उसका व्यामोही विश्वास किस श्रेणी का है।

## 3.4 मनोरोगों के कारण –

मनोराग एक तरह का मानसिक पैटर्न या अनियमितता है, जो व्यक्ति के व्यवहार में शक्तिशाली रूप से परिलक्षित होता है तथा सामान्यतः कष्ट और विकृति से जुड़ा होता है, जिसे किसी भी संस्कृति में व्यक्ति का सामान्य विकास नहीं समझा जाता है।

सामान्यतः व्यक्ति किस प्रकार चिंतन, व्यवहार तथा प्रत्यक्षण करता है तथा उसके भीतर किसी तरह की भावनाएँ उत्पन्न होती है, इसके संयोग के रूप में भी मनोरोगों को परिभाषित किया जाता है यह विकृति सामाजिक संदर्भ में मस्तिष्क तथा तंत्रिका तंत्र की कार्य प्रणाली से संबधित है।

**विष्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार – '' अधिकांश देशों में हर तीसरा व्यक्ति अपने जीवन में कुछ समस्याओं से पीड़ित होता है जो नैदानिक रूप से मनोरोगों के सामान्य प्रकारों से मिलते जुलते है।''**

मनोरोगों के कारणों का वर्णन भिन्न – भिन्न रूपों में किया गया है तथा कुछ कारण अस्पष्ट है। असामान्यता के सिद्धान्त भी संयुक्त रूप से मनोरोगों के कारणों का वर्णन करते है, मनोरोगों के प्रमुख कारण निम्नलिखित है –

- **जैविक कारण –**

मनोरोगों का इतिहास यह सुनिश्चित करता है कि प्राचीन समय से ही मनोरोगों की उत्पत्ति में जैविक कारक एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। इस संदर्भ में सर्वप्रथम **हिप्पोक्रेट्स** ने अपने विचार प्रस्तुत किये तथा यह बताया कि मनोरोग जैविक कारकों के कारण उत्पन्न होते है, **हिप्पोक्रेट्स** जिन्हें आधुनिक औषधीशास्त्र का जनमा कहा जाता है, अपनी पुस्तक ''**हिप्पोक्रेट्स कोरपस'' में** उल्लेख करते हैं कि मानसिक रोगों का उपचार अन्य रोगों की तरह ही किया जा सकता है। उनका मत था कि मनोरोग, मस्तिष्कीय विकृति तथा आनुवांशिक कारणों से भी उत्पन्न हो सकते है, **हिप्पोक्रेट्स** ने मस्तिष्क को विवेक बुद्धि तथा संवेगों के लिए उत्तरदायी माना। इसके अतिरिक्त उन्होंने मनोवैज्ञानिक तथा अंतःनिरीक्षण कारकों को भी मनोरोगों का कारण माना है।

**हिप्पोक्रेट्स** के पश्चात् रोमन **शरीरशास्त्री गैलेन ने हिप्पोक्रेट्स** के विचारों को आगे बढ़ाया तथा एक शक्तिशाली एवं प्रभावशाली सिद्धान्त का निर्माण किया जिसे Homoural theory of Disorder भी कहा जाता है। **हिप्पोक्रेट्स ने** यह विचार व्यक्त किया था कि हमारा मस्तिष्क सामान्य रूप से चार शारीरिक द्रवों या रसों से संबधित होते है– रक्त, वात, पित्त तथा कफ, शरीरशास्त्रियों का मत है कि इन द्रवों की अधिकता या कम होने से मानसिक रोग उत्पन्न होते है। उदाहरण स्वरूप – वात जिसे अंग्रेजी में Black bile के नाम से जाना जाता है जिसका अर्थ है Melancholer, जिससे अंग्रेजी के melancholy शब्द की उत्पत्ति मानी जाती है। यह शब्द समान्यतः डिप्रेशन की अवस्था की ओर संकेत करता है। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा भी इस पद का उपयोग अनेक बार किया जाता है।

मनोरोगों के जैविक कारकों के अंतर्गत आनुवांशिकी तथा न्यूरोवैज्ञानिक की भूमिका का अध्ययन किया जाता हे। मनोरोगों की उत्पत्ति में मनुष्य के जीन्स महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। **मैक्क्लर्न 1997 के अनुसार** मनुष्य अपनी संपूर्ण सामान्य संज्ञानात्मक क्षमता का 62 प्रतिशत आनुवांशिक रूप से प्राप्त करता है। इसी प्रकार **बाउचर्ड, 1990** ने बताया कि 30–50 प्रतिशत व्यक्तित्व कारक जैसे शर्मिलापन तथा कार्य करने की क्षमता आदि आनुवांशिक रूप से प्राप्त होती है।

मनारोगों के संदर्भ में देखा गया है कि आनुवांशिक कारक पूर्ण रूप से उत्पत्ति सहायक होते है। यदि एक जैसे जुड़वा बच्चों में से किसी एक को मनोविदलता रोग है तो दूसरे बच्चे को भी रोग होने की 50 प्रतिशत तक संभावना है। व्यवहारिक आनुवांशिकी वैज्ञानिकों का मत है कि केवल कोई एक जीन मनोरोग उत्पन्न नहीं करता, इसके अतिरिक्त **न्यूरोविज्ञान** के अनुसार हमारा तंत्रिक तंत्र तथा मस्तिष्क भी मनोरोगों को बढ़ावा देने में सहायक है। अनेक तरह के न्यूरोट्रासमीटर जैसे एसाइटलकोलाइन, जो हमारी स्मृति को बनाये रखने तथा उसे नियंत्रित करने का कार्य करता है, इसी प्रकार अन्य न्यूरोट्रासमीटर भी अनेक कार्यो का संचालन करते है।

शोधकर्ताओं का यह भी मानना है कि मानसिक रोग अनेक बार अंतःस्त्रावी तंत्र के सही रूप से कार्य न करने के कारण भी उत्पन्न होते है। अन्तःस्रावी ग्रन्थियों से निकलने वाले हार्मोन हमारे रक्त में मिलकर शरीर की अनेक क्रियाओं का संचालन करते है। उदाहरण स्वरूप – तनाव के समय एड्रीनल ग्रंथि कार्टिसोल नामक हार्मोन स्रावित करता है, यदि इसका स्तर बढ़ जाये तो यह दुश्चिंता तथा मूड डिसार्डर की उत्पत्ति का कारण बनता है।

- **मनोगत्यात्मक सिद्धान्त –**

मनोरोगों के कारणों की व्याख्या करने वाले प्राचीनतक तथा प्रसिद्ध सिद्धान्तों में से एक मनोगत्यात्मक सिद्धान्त है। मनोविश्लेषकों का विचार है कि व्यक्ति का व्यवहार चाहे वह सामान्य हो या असामान्य, अधिकाशंतः मनोवैज्ञानिक बलों द्वारा निर्धारित होता है, जिसका व्यक्ति को चेतनात्मक रूप से ज्ञान नहीं होता है। इन्हीं मनोवैज्ञानिक बलों को

गत्यात्मक कहा गया है, जो एक दूसरे के साथ अन्तः क्रिया करते है जिसके परिणाम स्वरूप व्यक्ति का व्यवहार विचार तथा संवेग उत्पन्न होते है। असामान्य व्यवहार इन बलों के बीच तनाव या द्वंद के फलस्वरूप उत्पन्न होता है।

मनोगत्यात्मक सिद्धान्त के अनुसार कोई भी व्यवहार आकस्मिक नहीं होता। व्यक्ति के सभी व्यवहार उसके पूर्व अनुभवों द्वारा निर्धारित होते है। मनोगत्यात्मक सिद्धान्त सर्वप्रथम न्यूरोवैज्ञानिक **सिगमण्ड फ्रायड** द्वारा दिया गया, फ्रायड का मत था कि तीन केन्द्रीय बल हमारे व्यक्तित्स को निर्धारित करते है। मूलप्रवृत्ति, इच्छाएँ, तर्कसंगत विचार, नैतिक मूल्य, ये सभी बल एवं शक्तियाँ अचेतन स्तर पर संचालित होती है। ये गत्यात्मक है तथा अंतः क्रियात्मक है। फ्रायड ने इन तीन शक्तियों को **इड, इगो तथा सुपर इगो** नाम दिया।

**इड –**

इड या उपाहं मूलप्रवृत्तियों प्रणोदों का स्रोत है जन्मजात होता है तथा जिसमें दो परस्पर विरोधी मूलप्रवृत्ति होती है–जीवन मूलप्रवृत्ति तथा मृत्यु मूलप्रवृत्ति में संरचनात्मक प्रणोद होते है तथा मूलतः उनका स्वरूप लैंगिक होता है, इसकी ऊर्जा को लिबिडो कहा जाता है। जीवन मूलप्रवृत्ति को **इरोस** भी कहा जाता है। मृत्यु मूलप्रवृत्ति से तात्पर्य विध्संसात्मक प्रणोद से होता है जिससे व्यक्ति में आक्रामकता, बर्बादी, मृत्यु आदि की ओर उन्मुखता होती है, उपाहं का स्वरूप स्वार्थपरायण होता है जो मूलप्रवृत्ति आवश्यकताओं के तुरंत संतुष्टि से संबद्ध होता है। यह आनन्द नियम द्वारा निर्देशित होता है। उपाह मात्र व्यक्ति के मन में मानसिक प्रतिमाएँ तथा इच्छा पूरक दिवास्वप्न उत्पन्न करता है, वह कोई ऐसा वास्तविक क्रियाएँ नहीं कर पाता है जिससे कि उसके मूल प्रवृत्तिक माँग की पूर्ति हो सके।

**इगो –**

इगो अथवा अहं व्यक्तित्व का दूसरा महत्वपूर्ण उपतंत्र है जिसका विकास उपहं के बाद होता है। जीवन के दूसरे छमाही में ही उपाहं के आवेगों से ही अहं का विकास होता है तथा अहं मूलतः चेतन होता है। यह प्राथमिक प्रक्रिया द्वारा नहीं बल्कि गौण प्रक्रिया द्वारा कार्य करता है।

**सुपर इगो –**

सुपर इगो अथवा पराहं व्यक्तित्व का तीसरा महत्वपूर्ण उपतंत्र है। प्रायः व्यक्तित्व का नैतिक कमांडर होता है जो सामाजिक मूल्यों एवं नैतिकता के आलोक में सही तथा गलत का निर्णय लेता है। इस तरह से पराहं नैतिकता के नियम द्वारा निर्देशित होता है। जैसे–जैसे पराहं विकार होता है व्यक्ति में आंतरिक नियंत्रण की शक्ति बढ़ते जाती है तथा व्यक्ति में उपाहं के अप्रतिबंधित इच्छाओं से निबटने की क्षमता बढ़ते जाती है। यह अह के माध्यम से भी कार्य करता है तथा अहं को अनैतिक इच्छाओं को कार्यरूप देने से रोकता है।

इसके अतिरिक्त **फ्रायड** ने कुछ मनोलैंगिक विकास की अवस्थाओं का वर्णन किया है जिनके माध्यम से व्यक्तित्व का विकास होता है। प्रत्येक अवस्था व्यक्ति के समक्ष एक खास तरह की माँग रखता है और उसमें एक तरह का मानसिक संघर्ष उत्पन्न करता है जिसे दूर या खत्म करना आवश्यक होता है। यदि किसी कारण से यह मानसिक संघर्ष समाप्त नहीं हो पाता तो उससे आगे चलकर असामान्य व्यवहार उत्पन्न होने की संभावना बढ़ जाती है। ये पाँच अवस्थाएँ निम्नलिखित हैं –

1. **मुखावस्था**
2. **गुदावस्था**
3. **लिंग प्रधानावस्था**
4. **अप्रगटावस्था**
5. **जनेन्द्रियावस्था**

मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त में चिंता एक महत्वपूर्ण संप्रत्यय है जिसका असामान्य व्यवहार तथा मनोरोगों की उत्पत्ति से सीधा एवं प्रत्यक्ष संबध है। चिंता से तात्पर्य डर या आशंका से सामान्यीकृत भाव से है।

यह सिद्धान्त सबसे पहले यह दिखा सकने में समर्थ हुआ कि मानव मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं में क्षुब्धता होने से मानसिकक रोगों की उत्पत्ति होती हैं असामान्य व्यवहार में अचेतन अभिप्रेरणा एवं अहं रक्षात्मक प्रक्रियाओं की गत्यात्मक भूमिका होती है।बाद के व्यक्तित्व समायोजन तथा कुसामायोजन में आरंभिक बाल्यावस्था की अनुभूतियों की अहम् भूमिका होती है यदि ऐसी अनुभूतियाँ अनुकूल हुई तो उससे बाद में व्यक्तित्व में समायोजन तथा यदि ऐसी अनुभूतियाँ प्रतिकूल हुई तो उससे बाद में व्यक्तित्व में कुसमायोजन विकसित होता है। मानव व्यवहार को विचलित करने में तथा मानसिक विकृति को उत्पन्न करने में लैंगिक इच्छाओं विशेषकर दमित लैंगिक इच्छाओं की अहम् भूमिका होती हैं। इस सिद्धानत के अनुसार कुछ मनोरोग तथा आसामान्य व्यवहार उस समय विकसित होते है जब व्यक्ति अत्यंत कठिन समस्याओं का समाधान का प्रयास करता है और ऐसा प्रयार और कुछ नहीं बल्कि सामान्य अहं रक्षात्मक प्रक्रमों का मात्र एक अतिरंजित प्रारूप होता है।

- **व्यवहार सिद्धान्त –**

असामान्य व्यवहार के स्वरूप की व्याख्या एवं उपचार करने के लिए व्यवहारवादी विचारधारा की उत्पत्ति मनोविज्ञान के एक महत्वपूर्ण स्कूल जिसे व्यवहारवाद कहा जाता है, से हुआ है। व्यवहारवाद के तीन महत्वपूर्ण पूर्वकल्पना है जो असामान्य मनोविज्ञान पर सीधे लागू होती है और मनोरोगों की उत्पत्ति में सहायक है, ये निम्नलिखित है –

**पर्यावरणवाद –** इसके अंतर्गत इस बात पर बल डाला गया है कि सभी प्राणी पर्यावरण द्वारा निर्धारित होते है। हम लोग अपने गत साहचर्यो के आधार पर भविष्य के बारे में सीखते है। यही कारण है कि हम लोगों का व्यवहार दंड तथा पुरस्कार द्वारा व्यवस्थित किया जाता है। पुरस्कृत व्यवहार को हम भविष्य में करना चाहते है तथा दंडित व्यवहार को नहीं करना चाहते है।

**प्रयोगवाद –** यह पूर्वकल्पना का संबध इस बात से है कि प्रयोग के माध्यम से यह पता लगाया जा सकता है कि पर्यावरण के किस पहलू से व्यवहार प्रभावित होता है तथा किस तरह हम उसे परिवर्तित कर सकते है। अगर पर्यावरण के महत्वपूर्ण तथ्य को रोक लिया जाता है, व्यवहार की वर्तमान विशेषता समाप्त हो जायेगी और यदि महत्वपूण्र तथ्य को पुनर्स्थापित कर दिया जाता है, तो व्यवहार को वर्तमान विशेषता पुनः वापस आ जाती है।

**आशावाद –** यह पूर्वकल्पना का संबध परिवर्तन से है। अगर व्यक्ति पर्यावरण का प्रतिफल है और अगर वातावरण का वह सब पहलू जो उसे परिवर्तित किया है, को प्रयोग द्वारा ज्ञात किया जा सकता है, तो पर्यावरण में कभी परिवर्तन होने से व्यक्ति में भी परिवर्तन होगा।

तीनों पर्वकल्पनाओं का उपयोग असामान्य व्यवहार की व्याख्या में प्रत्यक्ष रूप से की गयी है– पहला सामान्य तथा असामान्य व्यवहार को गत अनुभूति से सीखाा जाता है। जब व्यक्ति अपअनुकूलित अर्जित आदतों को सीख लेता है, तो उससे उसमें असामान्य व्यवहार की उत्पत्ति होती है। दूसरा – हम लोग प्रयोग करके यह निर्धारित कर सकते है कि पर्यावारण के किस पहलू से असामान्य व्यवहार की उत्पत्ति होती है। तीसरा – अगर हम लोग पर्यावरण के इन पहलुओं को परिवर्तित कर देते हैं, व्यक्ति अपने पुराने कुसमायोजी व्यवहार को त्याग देता है और उसके जगह पर नया, समायोजी व्यवहार सीख लेगा।

व्यवहारवादी विचारधार के अनुसार कुसमायोजी व्यवहार मनोरोग या असामान्यता के दो मुख्य कारण होते है – व्यक्ति द्वारा समायोजी व्यवहार या निपुणता या संतोषजनक वैयक्तिक संबधों को विकसित करने की असफलता अप्रभावी या कुसमायोजी व्यवहार को सीखना, व्यवहार बाह्य तथा आंतरिक दोनों तरह के हो सकते है। इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति सीखे गये व्यवहारों का कुल योग है। यह सिद्धान्त मनोरोगों की उत्पत्ति में अधिगम की भूमिका पर प्रकाश डालता है, कई व्यवहार को दैनिक जीवन सही रूप में व्यतीत करने के लिए सहयोग प्रदान करते है। इसी प्रकार असामान्य व्यवहार भी सीखे जा सकते है।

यह सिद्धान्त अनुबंध प्रक्रिया पर आधारित है। व्यवहारवादियों द्वारा अनेक तरह के अनुबंधनों की पहचान की है जो सामान्य तथा असामान्य व्यवहारों को उत्पन्न करते है। उदाहरण स्वरूप– साधनात्मक अनुबंधन – एक प्रक्रिया जिसमें प्राणी मुक्त अनुक्रिया परिस्थिति में रहकर किसी व्यवहार को सीखता है। इस तरह के अनुबंधन की एक खास विशेषता यह है कि प्राणी इसमें अनुक्रिया स्वयं करता है न कि कोई विशेष उद्दीपक द्वारा उत्तेजित होने पर करता है।

इसी प्रकार क्लासिकी अनुबंधन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा उद्दीपक तथा अनुक्रिया के बीच साहचर्य स्थापित होता है। इस अनुबंधन के प्रवर्तक पैवलव का निष्कर्ष था कि यदि तटस्थ अधीपक को किसी उपयुक्त एवं स्वाभाविक उधीपक के साथ बार–बार दिया जाता है तो तटस्थ उधीपक के प्रति व्यक्ति वैसी ही अनुक्रिया करना सीख लेता है जैसा कि वह उपयुक्त एवं स्वाभाविक उधीपक के प्रति करता है। अतः असामान्य व्यवहार भी इन अनुबंधनों द्वारा सीखे जा सकते है जो आगे चलकर मनोरोगों का रूप धारण कर लेते है। इस सिद्धान्त द्वारा असामान्यता के अध्ययन क्षेत्र में अब तक जितना शोध किया गया है, उतना किसी अन्य माडल या सिद्धान्त द्वारा नहीं किया गया है।

**संज्ञानात्मक सिद्धान्त –**

संज्ञानात्मक विचारधारा या सिद्धान्त व्यवहारवादी सिद्धान्त के प्रति एक प्रतिक्रिया तथा परिणाम से विकसित हुआ है। संज्ञान एक सामान्य पद है जिसके तहत प्रत्यक्षण, स्मृति, चिंतन, तर्कणा आदि प्रक्रियाओं को रखा जाता है। संज्ञान दो कारणों से महत्वपूर्ण है। अनेक मानसिक रोगों में गंभीर संज्ञानात्मक क्षुब्धताएँ पायी जाती है। जैसे गंभीर रूप से विषादी रोगी किसी कार्य पर एकाग्रता नहीं दिखा पाते है। उसी तरह मनाविदालित रोगी में गंभीर संज्ञानात्मक क्षुब्धताएँ पायी जाती है।

कुछ संज्ञानात्मक पैटर्नस संबधित मानसिक विकृतियों के केवल लक्षण नहीं बल्कि वास्तविक कारण होते है।

संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों का मत है कि जो कुछ भी व्यक्ति सोचता है, विश्वास करता है, उम्मीद करता है तथा ध्यान देता है, उससे उसका व्यवहार प्रभावित होता है। जब ये सभी संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ दोषपूर्ण हो जाती है, तो उससे कुछ मनोवैज्ञानिम विकृतियाँ व्यक्ति में उत्पन्न हो जाती है और इन संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं में परिवर्तन लाकर उनकी विकृतियों की गंभीरता को कम किया जा सकता है। **एलबर्ट इलिस, 1962** का विचार था कि बाह्य घटनाएँ व्यक्ति में मानसिक विकृति उत्पन्न नहीं करती बल्कि उन घटनाओं के प्रति व्यक्ति की अपनी प्रतिक्रिया जो अतर्कसंगत विश्वास के कारण होती है, से मानसिक विकृति उत्पन्न होती है, इलिस ने इस पूरी प्रक्रिया की व्याख्या करने के लिए **ए बी सी मॉडल** का प्रतिपादन किया है। ए से तात्पर्य बाह्य घटनाओं या उत्तेजनों से उत्पन्न अनुभूतियों से होता है जिसका स्वरूप अतर्क संगत होता है। बी से तात्पर्य उसके बाद उत्पन्न उस विश्वास से होता है जिसका स्वरूप अतर्कसंगत होता है तथा सी से तात्पर्य व्यक्ति के उसके परिणाम से होता है जो

सांवेगिक एवं व्यवहारात्मक दोनों ही होता है, इस प्रक्रिया का सबसे महत्वपूर्ण पहलू जिससे मानव व्यवहार में कुसमायोजनशीलता आती है वह अतर्क संगत विश्वास है।

**ऐरोन बैक, 1976** ने असामान्य व्यवहार की व्याख्या में संज्ञानात्मक विकृति को महत्वपूर्ण बतलाया है। इनका मत है कि कुछ विशेष तरह के संज्ञानात्मक विकृति से विभिन्न तरह के मानसिक या मनोवैज्ञानिक समस्याएँ उत्पन्न होती है। इन संज्ञानात्मक विकृतियों तीन प्रमुख है –

**अतिरंजन –**

इस विकृति में व्यक्ति एक छोटी एवं साधारण घटना को बहुत ज्यादा महत्व देकर उसके बारे में सोचता है।

**अतिसामान्यीकरण –**

इस विकृति में साधारण एवं हल्का सबूत के आधार पर व्यक्ति बड़ा निष्कर्ष निकाल लेता है।

**चयनात्मक अमूर्तिकरण –**

इस तरह की विकृति में व्यक्ति सिर्फ कुछ विशेष तरह के सबूतों पर ध्यान देता है तथा समान रूप से अन्य महत्वपूर्ण सबूतों की उपेक्षा करता है संज्ञानात्मक सिद्धान्त के अनुसार असामान्य व्यवहार की व्याख्या में तीन कारकों की अहम् भूमिका है –

1. संज्ञानात्मक मूल्यांकन
2. आत्म पुनर्बलन
3. सूचना संसाधन

संज्ञानात्मक मॉडल में व्यक्ति के मानसिक विकृति को संज्ञान अर्थात् उसके चिन्तन, विश्वास आदि के रूप में विश्लेषित किया गया है। जिसका समर्थन विभिन्न मनोवैज्ञानिकों के शोधों से प्रत्यक्ष रूप से किया गया है। संज्ञानात्मक सिद्धान्त की एक विशेषता यह है कि इस सिद्धान्त में इस बात की व्याख्या होती है कि व्यक्ति अपनी अनुभूतियों को किस ढंग से पुर्नचिता करता है, कैसे उसका विशेष अर्थ निकालता है और पर्यावरणी उधीपकों को वे उस ढंग की सूचना में बदल देता है जिसका उपयोग किया जा सके। इससे असामान्यता तथा कुसमायोजन की व्याख्या तो होती है साथ ही साथ यह भी पता चल पाता है कि इसमें व्यक्ति के आंतरिक अनुभूतियों का कितना योगदान है।

- **मानवतावदी अस्तित्ववादी सिद्धान्त –**

मानवतावदी अस्तित्वात्मक सिद्धान्त मनोगतिकी सिद्धान्त के प्रति एक प्रतिक्रिया तथा परिणाम दोनों ही है, इस सिद्धान्त के अंतर्गत मनोरोग की व्याख्या करने में कुछ पूर्वकल्पनाओं को महत्वपूर्ण बतलाया है जिसमें निम्नलिखित प्रमुख है –

**व्यक्ति का अनोखापन –** चूँकि प्रत्येक व्यक्ति संसार को विभिन्न ढंग से प्रत्यक्षण करता है तथा अपने आत्म–निर्माण में विशेष ढंग से भाग लेता है, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति अपने ढंग का अनोखा होता है, इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति को व्यवहारवादी या मनोगति की सूत्रों के बंधन में बाँधना, उसके अस्तित्व के एक सीमित पहलू पर ही प्रकाश डालने के सामान है।

**मानव अंतः शक्ति –** मानवतावदी – अस्तित्ववादी सिद्धान्त में मानव अंतःशक्ति को महत्वपूर्ण माना गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार मानव जीवन अनुभव के द्वारा वर्द्धित होता है। इस विचारधारा के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में वह बनने की क्षमता होती है, जो वह चाहता है।

**स्वतंत्रता एवं उत्तरदायित्व –** मनुष्यों में आत्मचेतना का गुण होता है। यह गुण उन्हें इस बात की स्वतंत्रता प्रदान करता है कि वे अपने अस्तित्व के लिए अनेकों उपलब्ध साधन में से किसे चुनेंगे। ऐसा करके वे अपने भाग्य का निर्माता स्वयं होते हैं। इस तरह के व्यक्ति अपने भाग्य, अच्छा या बुरा, का मालिक स्वयं होता है।

**परिघटनात्मक विधि** – मानवतावादी अस्तित्ववपदी सिद्धान्त में परिघटनात्मक विधि को महत्वपूर्ण माना जाता है तथा व्यक्ति के व्यवहारों को समझाने के लिए इसे सबसे उपयुक्त समझा जाता है। इस विधि का सार तत्व यह है कि किसी व्यक्ति के व्यवहार को पूर्णरूपेण समझने के लिए यह आवश्यक है कि दुनिकया को उस व्यक्ति की आँखों से देखा जाए, अतः प्रेक्षण किये गए व्यक्ति के विचार को जानकर की उसके व्यवहार को समझा जा सकता है अन्यथा नहीं।

मानवतावादी–अस्तित्ववादी विचारधारा को अब सुविधा के लिए मानवतावादी व्याख्या तथा अस्तित्ववादी व्याख्या दो भागों में बाँटकर वर्णन किया जा रहा है।

**कार्ल रोजर्स** का मत है कि व्यक्ति का प्रत्येक व्यवहार एक ही अभिप्रेरणा से नियंत्रित होता है जिसे वस्तुवादी प्रवृत्ति कहा जाता है, वस्तुवादी प्रवृत्ति से तात्पर्य अपने आप को सुरक्षित रखते हुए आगे बढ़ाने की इच्छा से होती है। इसके एक स्तर पर तो व्यक्ति सिर्फ अपने आप को जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए जीवित रखता है तो उच्च स्तर पर इस वस्तुवादी प्रवृत्ति में व्यक्ति को अपनी इच्छा एवं अभिप्रेरणाओं की जाँच करने तथा अपनी क्षमताओं तथा अंतःशक्ति को पूरा करने की प्रवृत्ति भी सम्मिलित होती है। व्यक्ति द्वारा अपने अंतःशक्ति को जाँच ने तथा उसे पूरा करने की प्रक्रिया को आत्म सिद्धि की संज्ञा दी जाती है। यदि व्यक्ति के बचपन की कुछ अनुभूतियाँ ऐसी होती है जिनसे उसकी आत्मसिद्धि के मार्ग में बाधा पहुँचती है और व्यक्ति वास्तविकता से अलग हो जाता है, तो उससे व्यक्ति में असामान्य अथवा मनोरोग उत्पन्न हो जाता है।

**अस्तित्ववादी व्याख्या –**

अस्तित्ववादी व्याख्या में संसार में होने अर्थात व्यक्ति का संसार के साथ संबद्धता तथा अन्य लोगों के साथ उनकी सत्त अनुक्रिया को महत्वपूर्ण माना जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें सच्चे में रहने के लिए अपने नियमों के अनुसार संघर्ष करने की क्षमता पर भी बल डाला जाता है। जब व्यक्ति इस तरह की सतत् अनुक्रिया तथा क्षमता में अपने आप को सक्षम नहीं पाता है तो इससे उसमें अपवर्तन की स्थिति उत्पन्न होती है जो एक तरह का आध्यात्मिक मृत्यु के समान होता है जिसमें व्यक्ति को अपनी जिंदगी में अर्थहीनता दिखाई देती है और वह मृत्यु के अवश्यंभावी से काफी डरने लगता है। इन सबका परिणाम यह होता है कि उसमें मानसिक विकृति या असामान्यता विकसित हो जाती है।

इस सिद्धान्त में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी अनुभूति को पर्याप्त महत्व दिया जाता है जिसके कारण इस सिद्धानत में उन लोगों के लिए आंतरिक आकर्षकता काफी अधिक होती है जो इस पर ध्यान दिये होते है।

- **सामाजिक – सांस्कृतिक सिद्धान्त –**

सामाजिक सांस्कृतिक सिद्धान्त में असामान्य व्यवहार तथा मनोरोगों की व्याख्या सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण के पड़ने वाले प्रभावों के रूप में की जाती है। कुछ सामाजिक कारक जैसे गरीबी, विभेद तथा निरक्षरता का स्पष्ट प्रभाव मानसिक विकृति तथा मनोरोगों पर पड़ता देखा गया है। सामाजिक सांस्कृतिक कारकों का व्यक्तित्व पर पड़ने वाले कुसमायोजी प्रभाव को दिखलाने के लिए प्रयोगात्मक साक्ष्य की कमी है क्योंकि ऐसी परिस्थितियों के साथ नियंत्रित प्रयोग करना कठिन है।

सामाजिक सांस्कृतिक मॉडल को निम्नांकित तीन उपसिद्धानतों में वर्गीकृत किया गया है जिनके अनुसार मनोरोग तथा असामान्य व्यवहार की व्याख्या की गई है।

**सामाजीककरण मॉडल –**

इस मॉडल अथवा सिद्धान्त के अनुसार असामान्यता की व्याख्या दोषपूर्ण समाजीकरण के कारण होता है। समाजीकरण सामाजिक सीखना की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा यह निर्धारित होता है कि व्यक्ति सामाजिक मानक के अनुसार किस तरह के

व्यवहार करता है तथा सोचता है। समाजीकरण की यह प्रक्रिया माता – पिता की गलत मनोवृतियों, बच्चों की पालन–पोषण की दोषपूर्ण पद्धति, परिवार में मानसिक रोग से ग्रसित सदस्यों के व्यवहारों आदि से सबसे अधिक प्रभावित होती है। समाजीकरण सिद्धान्त के अनुसार समाज वैज्ञानिक द्वारा किये गये अध्ययनों से यह स्पष्ट हो गया है कि निम्नांकित तीन प्रमुख ऐसे कारक हैं, जिनसे व्यक्ति में असामान्य व्यवहार की उत्पत्ति होती है –

- माता पिता की विकृत मनोवृत्तियाँ
- बच्चों के पालन – पोषण की प्रणाली
- परिवार विकृति

**सामाजिक विघटन सिद्धान्त**

सामाजिक विघटन सिद्धान्त असामान्य व्यवहार तथा मनोरोगों की व्याख्या सामान्य सामाजिक विकृति के रूप में करता है और इस तरह से यह मॉडल समाजीकरण मॉडल से भिन्न है जहाँ असामान्य व्यवहार की व्याख्या किसी परिवार के विशष सामाजिक विकास में उत्पन्न गड़बड़ी के रूप में किया जाता है। सामाजिक विघटन सिद्धान्त के अनुसार असामान्य व्यवहार की उत्पत्ति तब होती है जब पूरे समाज में एक तरह की विकृति कुछ खास – खास कारकों जैसे सांस्कृतिक विघटन, शहरी विकृति, उच्च व्यक्तिगत एवं सामाजिक गतिशीलता, सामाजिक एवं आर्थिक बंधन तथा अन्य संबधित कारकों से उत्पन्न होती है। असामान्य व्यवहार की उत्पत्ति में इन कारकों की भूमिका निम्नांकित रूप से उल्लेखित की जाती है –

- **सांस्कृतिक विघटन**
- **गतिशीलता एवं प्रवसन**
- **सामाजिक एवं आर्थिक बंधन**

- **सांस्कृतिक विघटन –**

सांस्कृतिक सिद्धान्त के अनुसार असामान्यता या मनोरोगों की व्याख्या सांस्कृतिक एवं सामाजिक मानक के रूप में की जाती है न कि किसी प्रकार के सामाजिक विकृति के रूप में। इस सिद्धान्त के अनुसार कौन व्यवहार असामान्य कहलायेगा, इसका निर्धारण संस्कृति द्वारा किया जाजा है। मानवशास्त्रियो एवं मनोवैज्ञानिकों ने कुछ ऐसे अध्ययन किये है जिनसे यह पता चलता है कि कुछ खास – खास ऐसी संस्कृति है जिनके व्यवहार संबधी मानकों एवं आदतों में विचित्रता होने से वहाँ के लोगों में मनोरोग उत्पन्न होते है।

सांस्कृतिक सिद्धान्त के अनुसार असामान्य व्यवहार मूलतः संस्कृति के व्यवहार संबधी प्रक्रियाओं, आदतों आदि के रूप में समझा जाता है और चूँकि एक संस्कृति की ऐसी प्रक्रियाएँ एवं आदतों आदि के रूप में समझा जाता है। इसलिए एक संस्कृति से दूसरे संस्कृति में पाये जाने वाले असामान्य व्यवहारों में भी भिन्नता होती है। परन्तु भिन्न – भिन्न संस्कृतियों में किये गये क्षेत्र अध्ययनों से स्पष्टतः इस बात का प्रमाण मिलता है कि असामान्य व्यवहार का स्वरूप भिन्न–भिन्न संस्कृतियों में भिन्न–भिन्न न होकर करीब–करीब समान होता है।

- **डायथिसिस– तनाव सिद्धान्त –**

असामान्य व्यवहार की व्याख्या करने का यह ऐसा सिद्धान्त है जो जैविक, मनोवैज्ञानिक तथा पर्यावरणी कारकों को एक सतह पर लाता है और कोई विशेष स्कूल या विचारधारा जैसे मनोगतिकी, संज्ञानात्मक या व्यवहारवादी विचारधारा से संबद्ध नहीं होता है। यह सिद्धान्त असामान्य व्यवहार की व्याख्या डायथिसिस तथा तनाव के अन्तःक्रिया के रूप में करता है। डायथिसिस से तात्पर्य किसी विकृति या असामान्य व्यवहार व्यक्ति में उत्पन्न होने के पूर्ववृत्ति से होता है। तात्पर्य यह है कि जब व्यक्ति

में किसी विशेष तरह की मानसिक विकृति होने की पूर्ववृत्ति होती है और यदि वह व्यक्ति प्रर्यावरणी कारक अर्थात् विशेष तनाव की स्थिति से गुजरता है और यदि तनाव की मात्रा उसके नियंत्रण सीमा से बाहर हो जाता है, तो उस व्यक्ति में संबद्ध मानसिक विकृति के उत्पन्न होने की संभावना बढ़ जाती है। इसे ही मनोवैज्ञानियों एवं मनश्चिकित्सकों ने डायथिसिस – तनाव सिद्धान्त की संज्ञा दी है।

किसी मानसिक विकृति या असामान्य व्यवहार के लिये पूर्ववृत्ति होने से व्यक्ति में विकृति या असामान्यता के होने की संभावना काफी बढ़ जाती है। परन्तु इस बात की कोई गारंटी नहीं कि उस व्यक्ति में अमुक मनोरोग या विकृति होगी ही । इसका कारण यह है कि मॉडल का एक दूसरा भाग तनाव है जो इस बात का निर्धारण करता है कि संबद्ध पूर्ववृत्ति किस तरह से वास्तविक विकृति में रूपांतरित होगी। सामान्यतः इस संदर्भ में यहाँ तनाव है, जो इस बात का निर्धारण करता है कि संबद्ध पूर्ववृत्ति में रूपांतरित होगी, सामान्यतः इस संदर्भ में यहाँ तनाव से तात्पर्य कुछ ऐसे अनिष्टकर या दुःखद पर्यावरणी उद्दीपक से होती है जिसका स्वरूप या तो जैविक या मनोवैज्ञानिक कुछ भी हो सकता है। डायथिसिस–तनाव मॉडल का सबसे महत्वपूर्ण बिन्दु यह है कि किसी मानसिक विकृति या असामान्यता के उत्पन्न होने के लिए डायथिसिस तथा तनाव दोनों का होना अनिवार्य है, जैसे कुछ लोगों मे मनोविदालिता जैसे मनोरोग का एक जैविक पूर्ववृत्ति होता है, ऐसे लोगों को यदि जिंदगी में तनाव से होकर गुजरना पड़ता है तो उसमें मनोविदालिता का रोग उत्पन्न होने की उम्मीद उस व्यक्ति की तुलना में अधिक होती है। जिसमें ऐसी जैविक पूर्ववृत्ति नहीं पायी जाती है, परन्तु वैसे तनाव से होकर गुजरना पड़ता है।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि डायथिसिस–तनाव मॉडल में असामान्यता की पूर्ववृत्ति तथा तनाव दोनों के अंतःक्रिया का परिणाम माना गया है। दोनों में से कोई अकेले मानसिक रोग पैदा करने में सक्षम नहीं होता है।

- **गतिशीलता एवं प्रवसन**
- **सामाजिक एवं आर्थिक बंधन**

## 3.5 - असामान्य व्यवहारों का नैदानिक वर्गीकरण

प्रिय विद्यार्थियों, असामान्य या कुसमायोजी व्यवहार को वर्गीकृत करना नैदानिक मनोवैज्ञानिकों और मनश्चिकित्सकों के लिये एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य रहा है, क्योंकि निदान पर ही रोग के उपचार की प्रक्रिया निर्भर करती है। पाठकों, आपके मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी कि यहाँ वर्गीकरण से क्या अभिप्राय है? असामान्य व्यवहारों के नैदानिक वर्गीकरण का अर्थ उन्हें विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत करने से है, जिससे उन व्यवहारों का स्वरूप अधिक स्पष्ट हो सके और उन्हें ठीक ढंग से समझा जा सके। श्रेणीकरण करने की यह विधि निदान कहलाती है। निदान को परिभाषित करते हुये सेलिमैन तथा रोजनेहान ने कहा है, ''व्यवहारपरक एवं मनोवैज्ञानिक पैटर्न के अनुसार मनोवैज्ञानिक विकृतियों का श्रेणीकरण ही निदान कहलाता है। (Abnormality, 1998, P.117)

पाठकों, जब निदान के लिये मनोवैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया जाता है तो इसे **मनोनिदान** ( Psycholiagnosis) कहते है। असामान्य व्यवहारों के नैदानिक वर्गीकरण की आवश्यकता के अनेक कारण हैं, जिनमें से प्रमुख का विवेचन निम्नानुसार हैं–

1. निदान एक संचार–न्यूनता प्रदान करता है।
2. निदान पर उपचार की प्रक्रिया निर्भर करती है।
3. निदान से रोग के कारण समझने में सहायता मिलती है।
4. निदान से वैज्ञानिक अनुसंधान में सहायता मिलती है।
5. निदान तीसरे पार्टी के भुगतान करने में मदद करता है।

इन सभी का विस्तुत वर्णन निम्नानुसार है–

1. **निदान एक संचार–न्यूनता प्रदान करता है–** निदान के महत्व को बताते हुये मनश्चिकित्सकों का कहना है कि निदान मानसिक रोगों के बारे में एक संचार–न्यूनता प्रदान करता है। नैदानिक वर्गीकरण के द्वारा मनोरोगों के बारे में कम शब्दों में ठीक ढंग से संचार किया जाना संभव होता है। उदाहरण के लिये मान लिया जाये कि एक व्यक्ति में अनेक तरह के लक्षण दिखायी देते है। जैसे– अपने विचारों को ठीक ढंग से अभिव्यक्त न कर पाना, कार्य में मन न लगना, तनावग्रस्त महसूस करना, दृष्टि विभ्रम होना, ऐसा अनुभव होना कि लोग उससे हमेशा कुछ ना कुछ लेने की कोशिश करते है। अतः मनश्चिकित्सक इन सभी लक्षणों को एक नाम देकर इसका निदान कर सकते हैं–व्यामोही मनोविदालिता। अतः नैदानिक वर्गीकरण कर देने से इन सभी लक्षणों को अलग–अलग याद रखने की आवश्यकता नहीं रह जाती है, वरन व्यामोही मनोविदालिता, इतना कह देने भर से ही उपरोक्त सभी लक्षणों का समावेश इसके अन्तर्गत हो जाता है।
2. **निदान पर उपचार की प्रक्रिया निर्भर करती है–** किसी रोग के उपचार की दृष्टि से भी निदान का अत्यधिक महत्व है, क्योंकि सही उपचार सही निदान पर ही निर्भर करता है। मनोरोगों के उपचार के लिये अनेक उपचार विधियाँ प्रचलित है, किन्तु किस रोग के उपचार के लिये कौन सी विधि अपनायी जाये, यह रोग के सही निदान पर निर्भर है।
3. **निदान से रोग के कारण समझने में सहायता मिलती है**– मनश्चिकित्सकों का मत है कि निदान रोगों के कारणों को समझने में भी सहायक है।
4. निदान से वैज्ञानिक अनुसंधान में सहायता मिलती है– वैज्ञानिक अनुसंधान की दृष्टि से भी नैदानिक वर्गीकरण का अत्यधिक महत्व है। निदान द्वारा विभिन्न मनोरोगों के बारे में अनेक प्रकार के शोध किये जा सकते है।
5. **निदान तीसरे पार्टी के भुगतान करने में मदद करता है**– प्रायः ऐसा भी होता है कि मनोरोगों के उपचार में होने वाले व्यय का आंशिक या पूरा वहन बीमा कम्पनी अथवा मेडिकल संस्थान करते हैं। यह बात भारत की तुलना में विदेशों में अधिक देखने को मिलती है। ऐसी स्थिति में इन बीमा कंपनियों और मेडिकल संस्थानों को रोग के निदान के बारे में जानकारी प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है, जिससे वे पता लगा सकें कि पीड़ित व्यक्ति को क्या सचमुच में देखभाल की आवश्कयता है और इसके साथ–साथ उपचार की गुणवत्ता की जाँच के लिये भी निदान के बारे में जानना आवश्यक हो जाता है।

पाठकों, उपर्युक्त विवेचन से आप मनोरोगों के नैदानिक वर्गीकरण के महत्व को भली–भाँति जान गये होंगे।

असामान्य व्यवहारों के नैदानिक वर्गीकरण हेतु मनश्चिकित्सकों के द्वारा जो प्रयास किये गये हैं, उन्हें निम्न दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

**A अन्तर्राष्ट्रीय वर्गीकरण तंत्र (International classification system)**

**B भारतीय वर्गीकरण तंत्र (Indian classification system)**

**अन्तर्राष्ट्रीय वर्गीकरण तंत्र–** प्रिय विद्यार्थियों, असामान्य व्यवहारों के वर्गीकरण का प्रयास कोई नया नहीं है। कुसमायोजी व्यवहारों के नैदानिक वर्गीकरण हेतु मनश्चिकित्सकों द्वारा काफी प्राचीन समय से प्रयास किये जा रहे है, जिसका उल्लेख ग्रीक, रोमन एवं मिश्र के लोगों द्वारा प्रदत्त व्याख्याओं में स्वप्न रूप से देखने को मिलता है, किन्तु आधुनिक वर्गीकरण तंत्र पर उनका ज्यादा प्रभाव परिलक्षित नहीं होता है। वास्तव में देखा जाये तो असामान्य व्यवहारों के वैज्ञानिक वर्गीकरण तंत्र की ओर ध्यान 19वीं सदी में गया, जब अमेरिका एवं यूरोप के अनेक देशों में मनोरोगों के उपचार हेतु मानसिक अस्पताल खोलने की दिशा में अनेक सराहनीय, सार्थक प्रयास किये गये। सन्

1889 में पेरिस में ''काग्रेस ऑफ मेन्टल साइंस'' द्वारा एक एकाकी वर्गीकरण तंत्र का प्रतिपादन किया गया, किन्तु अनेक कारण ऐसे रहे, जिनकी वजह से इनका उपयोग बहुत ज्यादा लोकप्रिय नहीं हो सका। सन् 1882 में ग्रेट ब्रिटेन में ''स्टेटीस्टीकल कमेटी ऑफ दी रायल मेडिको साइकोलोजिकल एशोसियेशन'' द्वारा असामान्य व्यवहारों के वर्गीकरण का एक तंत्र प्रदिपादित किया गया। बाद में तीन बार इसका संशोधन भी किया गया, किन्तु यह वर्गीकरण तंत्र भी ज्यादा उपयोगी तथा प्रभावी सिद्ध नहीं हो सका। सन् 1886 में अमेरिका में ''एशोसिएशन फॉर मेडिकल सुपरीन्डिन्टेस ऑफ अमेरिकन इन्स्टीट्यूशन फॉर दी इनसेन'' द्वारा ब्रिटिश तंत्र के उक्त संशोधित प्रारूप को स्वीकार किया गया। इस एशोसिएशन को आध के **अमेरिकन मश्चिकित्सीय संघ** (American psychiatric Association) का अग्रदूत माना जाता है। सन् 1913 में इसी एशोसिएशन ने **इमिल क्रेपलिन** के विचारों को शामिल करते हुये एक नये वर्गीकरण तंत्र को स्वीकृति दी। पाठकों, जर्मन मनश्चिकित्सक इमिल क्रेपलिन को श्रेणीबद्ध वर्गीकरण तंत्र का जनक माना जाता है जिन्होंने मनोविक्षिप्ति के दो भेद बताये– 1. डिमेन्सिया प्रोकाफक्स तथा 2. उत्साही विषादी मनोविक्षिप्ति डिमेन्सिया प्राकोक्स को आजकल **मनोविदालिता** (सिजोफ्रेनिया) के नाम से जाना जाता है, किन्तु फिर भी क्रेपलिन के प्रयासों के परिणामस्वरूप कोई ऐसा वर्गीकरण तंत्र नहीं बन पाया, जिसको सभी ने स्वीकार किया है, लेकिन आधुनिक वर्गीकरण तंत्र पर क्रेपलिन का प्रभाव आज भी स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है।

पाठको, इसके उपरांत द्वितीय विश्वयुद्ध के ठीक बाद अन्तर्रास्ट्रीय स्तर पर दी प्रमुख वर्गीकरण तंत्रों का प्रादुर्भाव हुआ। सन् 1948 में **विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा इंटरनेशनल स्टेटीस्टीकल** क्लासिफिकेशन ऑफ डिजेज, इनजुरिज एण्ड **कॉजेज ऑफ डेथ** (International statistical classification of Disyases, injuries and causes of death of ICD) के छठवे संस्करण का प्रकाशन किया गया। इसकी मान्यता ब्रिटेन के साथ–साथ विश्व के अन्य देशों में भी अत्यधिक रहीं। इस वर्गीकरण तंत्र को प्रकाशित करने में अमेरिकन मनश्चिकित्सकों की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण रही। इसके बाद सन् 1952 में अमेरिकन मनश्चिकित्सक संघ ने एक अधिक प्रभावशाली वर्गीकरण तंत्र का प्रकाशन किया। इसे **''डायग्नोस्टिक एण्ड स्टेटी स्टिकल मैन्युअल ऑफ मेन्टल डिसऑर्डर–1** (Diagnostic and statistical manual of mental disorder-1 or DSM-1) नाम दिया गया। DSM-1 में कुछ खामियाँ रह गई, जिसके कारण इसका संशोधन किया गया। इसका संशोधित प्रारूप 1968 में प्रकाशित हुआ इसे DSM-II कहा गया। सन् 1960 वाले दशक में अनेक मनश्चिकित्सकों द्वारा DSM-II में दिये गये वर्गीकरण की व्यापक स्तर पर आलोचना की गई। **स्पिटजर एवं फिलिस्स** के मतानुसार इस वर्गीकरण में संगतता का अभाव था। इसके साथ ही DSM-II में दी गयी विभिन्न नैदानिक श्रेणियों को लेकर मनश्चिकित्सकों ने अर्थान्तर पाया। अतः सन् 1980 में DSM-II का पुनः संशोधन कर DSM-III का प्रकाशन किया गया। सन् 1979 में ICD के नवें संस्करण का प्रकाशन भी किया गया। इसे ICD-9 नाम दिया गया। DSM-III एवं ICD-9 इन दोनों वर्गीक्रण तंत्रों में संगतता को बनाये रखने के लिये अमेरिकन मनश्चिकित्सकों द्वारा अनेक प्रयास किये गये, लेकिन फिर भी इनमें कुछ अन्तर रह ही गये। DSM-III में पुनः कुछ संशोधन करके सन् 1987 में इसके संशोधित प्रारूप का प्रकाशन किया गया। इस संशोधित प्रारूप को DSM-IIIR (Revised) नाम दिया गया। सन् 1994 में DSM-IV का प्रकाशन हुआ, जो DSM-III R का संशोधित प्रारूप था। सन् 2000 में पुनः DSM-IV के मूलपाठ (Teret) में कुछ आवश्यक संशोधन किये गये। इसे **DSM-IVTR** (Teret Revision) कहा गया। पाठकों, DSM-IVTR की प्रमुख विशेषता यह है की इसके

अन्तर्गत DSM-IV द्वारा प्रस्तावित मनोरोगों की श्रेणियों में कोई परिवर्तन नहीं किये गये अपितु इन श्रेणियों में नयी मूल–पाठय् सामग्रियों (Teset Materials) को जोड़ा गया। पाठकों, DSM-IVTR में लगभग 250 मनोरोगों के अनेक प्रकारों का वर्णन किया गया है। सन् 1993 में ICD-9 का संशोधित प्रारूप प्रकाशित हुआ। इसे ICD-10 नाम दिया गया। **केन्डेल, 1991** के मतानुसार DSM-IV तथा ICD-10 में मानसिक रोगों के प्रकाशित वर्गीकरण कई दृष्टिकोणों से लगभग एक समान है। इन दोनों वर्गीकरण तंत्रों की विभिन्न श्रेणियों में यथासंभव संगतता बनाये रखने का भरसक प्रयास किया गया है। प्रिय विद्यार्थियों, हम यहाँ DSM-IVTR में किये गये मनोरोगों के वर्गीकरण का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

**SDM-IVTR वर्गीकरण –**

प्रिय विद्यार्थियों, DSM-IVRE मनोरोगों के नैदानिक वर्गीकरण का एक अत्यन्त वैज्ञानिक तंत्र है। इसकी उपयोगिता को बताते हुये **शेलिगमैन एवं रोजेनहान** ने कहा है, ''किसी भी हालत में DSM-IVTR आने वाले दशकों में नैदानिक बाइबिल के रूप में बना रहेगा।'' DSM-IVTR में मनोरोगों के वर्गीक्रण के लिये एक बहुआयामी वर्गीकरण तंत्र को अपनाया गया है, जो DSM-III-R से काफी मिलता–जुलता है। DSM-IV-TR में कुल पाँच आयाम है। इनमें से दो आयामों में अनेक प्रकार के मनोरोगों का वर्गीकरण किया गया है तथा शेष तीन आयामों में रोग एवं रोगी से संबंधित अन्य संगत सूचनाओं को जुटाने का प्रयास किया जाता है। इससे यह ज्ञात होता है कि मनोरोगों के स्वरूप को ठीक प्रकार से समझने में रोग के लक्षणों के अतिरिक्त अन्य सूचनाओं को भी महत्व दिया जाना चाहिये।

DSM-IVTR में मनोरोगों को एक ऐसे मनोवैज्ञानिक अथवा व्यवहारपरक पैटर्न के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसके कारण व्यक्ति में दुःख या तकलीफ या तनाव (Distrees) उत्पन्न हो अथवा जो व्यक्ति को एक या एक से अधिक कार्यक्षेत्रों में अयोग्य बना दिया हो। अतः किसी स्थिति को मनोरोग का नाम केवल तभी दिया जा सकता है, जब उसके कारण व्यक्ति में वास्तविक दुष्क्रिया उत्पन्न हो न केवल व्यक्ति एवं समाज के मध्य केवल क्षुब्धता उत्पन्न हुयी हो। उदाहरण के तौर पर DSM-IVTR के अनुसार सामाजिक विचलन (Social deviance) अपने आप में कोई मानसिक रोग नहीं है, इसके कारण व्यक्ति में कोई वास्तविक दुष्क्रिया उत्पन्न नहीं होती है, व्यक्ति एवं समाज के बीच केवल क्षुब्धता (Disturbance) उत्पन्न होती है।

पाठकों, DSM-IVTR के पाँचों आयामों का विस्तृत विवेचन निम्नानुसार है–

A आयाम–I: नैदानिक संलक्षण (Axis-I : Clinical syndromes)

B आयाम – II: व्यक्तित्व विकृतियाँ तथा मानसिक मंदता (Axis-II : Parsonality disorders and mental retardation)

C आयाम–III : सामान्य चिकित्सीय अवस्था (Axis-III : General medical conditions)

D आयाम– IV : मनोसामाजिक एवं पर्यावरणी समस्यायें (Axis-IV : Psychosocial and envilonmental problems)

E आयाम–V : कार्यो का सम्पूर्ण मूल्यांकन (Axis V : Global assessment of functioning)

**आयाम–1 नैदानिक संलक्षण–**

आयाम प्रथम में 16 मानसिक रोगों को रखा गया है, जिनमें दुश्चिता विकृतियाँ, मनोविदालिता, प्रमुख विषाद, द्विध्रुवीय मनःस्थिति विकृतियाँ आदि प्रमुख हैं। इस आयाम के अन्तर्गत ऐसी अवस्थायें भी रखी गई हैं जो मनोरोग की श्रेणी में तो नहीं आती हैं, किन्तु उनके लिये व्यक्ति को उपचार की आवश्यकता होती है। इसके अन्तर्गत व्यवसाय, स्कूल एवं वैवाहिक जीवन से सम्बन्धित समस्याओं को भी रखा गया है।

**आयाम–2 : व्यक्तित्व विकृतियाँ एवं मानसिक मंदता–**

दूसरे आयाम में ऐसे मनोरोगों को रखा गया है, जिनका प्रारंभ बाल्यावस्था या किशोरावस्था में होता है तथा जो वयस्कावस्था में स्थायी रूप ले लेते हैं। इसके अन्तर्गत दस प्रकार की व्यक्तित्व विकृतियों एवं मानसिक मंदता को रखा गया है। मनश्चिकित्सकों द्वारा प्रायः ऐसे मनोरोगों की उपेक्षा कर दी जाती थी। अतः DSM-IVTR में इन्हें एक अलग आयाम में स्थान दिया गया है, जिससे कि किसी भी प्रकार से इनकी अपेक्षा न हो सके।

**आयाम–3 : सामान्य चिकित्सीय अवस्था**

इसमें उन सभी चिकित्सकीय समस्याओं को रखा गया है, जो मनोरोग उत्पन्न करने में सहायक हो सकती हैं।

**आयाम–4 मनोसामाजिक एवं पर्यावरणी समस्यायें**

इस आयाम में ऐसे मनो सामाजिक एवं पर्यावरणी कारकों को रखा गया है जो मनोरोगों के निदान एवं उपचार को प्रभावित कर सकते हैं।

**आयाम–5 कार्यों का सम्पूर्ण मूल्यांकन**

इस आयाम के अन्तर्गत व्यक्ति के समायोजी कार्यों के स्तर का मापन किया जाता है। इसमें प्रमुख रूप से तीन कारकों पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया जाता है। प्रथम, परिवार तथा मित्रों के साथ सामाजिक सम्बन्ध द्वितीय पेशेवर कार्यवाही एवं तृतीय, खाली समय का उपयोग। इस आयाम में इन तीनों कारकों का मापन एक 100–बिन्दु मापनी पर किया जाता है, जिसमें 1 अत्यधिक निम्न एवं 100 अत्यधिक उच्च को इंगित करता है।

पाठकों, उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि DSM-IVTR के प्रथम दो आयामों में मनोरोगों का वर्गीकरण किया गया है तथा अंतिम तीन आयामों द्वारा रोग के वास्तविक लक्षणों के अतिरिक्त रोग एवं रोगी से संगत अन्य सूचनाओं को प्राप्त करने की कोशिश की जाती है, जिससे कि रोग के स्वरूप को ज्यादा अच्छे ढंग से समझा जा सके और उसके आधार पर एक अधिक कारगर उपचार पद्धति को अपनाया जा सके।

DSM-IVRT के प्रथम एवं द्वितीय आयाम में कुल मिलाकर लगभग 250 प्रकार के मनोरोगों का विवेचन किया गया है, जिन्हें 18 शीर्षकों में वर्गीकृत किया गया है। प्रथम आयाम में 16 तथा द्वितीय आयाम में 2 मनोरोगों की श्रेणियों को रखा गया है। इनका विस्तारपूर्वक विवेचन निम्नानुसार है–

**आयाम–1 के अन्तर्गत रखे गये प्रमुख मनोरोग निम्न हैं–**

1. दुश्चिंता विकृतियाँ (Ansiety disorders )
2. मनोविच्छेदी विकृतियाँ (Dissociative disorders)
3. कायप्रारूप विकृतियाँ (Somatoform disorders)
4. मनोविदालिता एवं अन्य मनोविक्षिप्तविकृतियाँ(Schizophrenia and other psychotic disorders)
5. मनस्थिति विकृतियाँ (Mood disorders)
6. लैंगिक एवं लिंग पहचान विकृतियाँ(Sexual and gender identity disorders)
7. नींद विकृतियाँ (Sleep Disorders)

8. भक्षण विकृतियाँ (Eating Disorders)
9. कृत्रिम या नकली विकृतियाँ (Factitious disorders)
10. समायोजन विकृतियाँ (Adjustment disorders)
11. आवेग नियंत्रण विकृतियाँ (Impulse control disorders)
12. द्रव्यसम्बद्ध विकृतियाँ (Sulistance related disorders)
13. वैसी विकृतियाँ जो सबसे पहले शैशवावस्था बाल्यावस्था या किशोरावस्था में लक्षित होती है।(Disorders isually first diagnosed in infancy, childhod or adolescence)
14. डिलिश्यिम, डिमेन्श्या, एमनेस्टिक एवं अन्य संज्ञानात्मक विकृतियाँ (Delis... Dementia, Amnestic and other cagnitive disorders)
15. सामान्य मेडिकल अवस्थाओं के कारण उत्पन्न मानसिक विकृति (Mental disorders due to general medical condition)
16. अन्य ऐसी अवस्थायें जिन पर नैदानिक ध्यान दिया जा सकता है (Other conditions that may be a focus of clinical attention)

इन सभी मनोरोगों का विस्तृत विवेचन निम्नानुसार है–

1. **दुश्चिंता विकृतियाँ–** इस वर्ग में उन मनोरोगों को रखा गया है, जिसमें किसी न किसी प्रकार की दुश्चिंता के कारण ही क्षुब्धता उत्पन्न होती है। इसमें दुर्भीति, विभिषिका विकृति, सामान्यीकृत दुश्चिंता विकृति, मनोग्रस्ति बाध्यताविकृति, उत्तरअभिघातज प्रतिबल विकृति एवं तीव्र प्रतिबल विकृतियाँ प्रमुख है।

2. **मनोविच्छेदी विकृतियाँ–** इसके अन्तर्गत वे मानसिक रोग आते हैं, जिनका प्रमुख लक्षण मनोवैज्ञानिक विच्छेदन होता है। इसके कारण व्यक्ति के चेतन मन में अकस्मात् परिवर्तन आने लगते हैं तथा उसकी स्मृति और पहचान प्रभावित होने लगती है। इसके तहत मनोविच्छेदी स्मृतिलोप, मनोविच्छेदी आत्मविस्तृत, बहुव्यक्तित्व अथवा मनोविच्छेदी पहचान विकृति एवं व्यक्तित्व लोप विकृति को रखा गया है।

3. **कायप्रारूप विकृतियाँ–** इस श्रेणी ऐसे मानसिक रोग आते हैं जिनके दैहिक लक्षणों का कारण जौविक या शारीरिक न होकर मानसिक होता है। इसमें रूपान्तर हिस्टीरिया, दर्दविकृति, रोगभ्रम, शारीरिक डायसमौर्फिक मनोरोगों को रखा गया है।

4. **मनोविदालिता तथा अन्य मनोविक्षिप्त विकृतियाँ–** इस श्रेणी में मनोविदालिता, स्थिर–व्यामोही विकृति, लघु मनोविक्षिप्त विकृति को रखा गया है।

5. **मनः स्थिति विकृतियाँ–** इस श्रेणी में ऐसे मनोरोगों को शामिल किया गया है जो व्यक्ति की मनः स्थिति में उतार–चढ़ाव से संबंधित होते हैं। इसमें एक ध्रुवीय विकृति एवं द्विध्रुवीय विकृति को रखा गया है। एक ध्रुवीय विकार में रोगी में केवल अवसाद के लक्षण दिखायी देते है, जबकि द्विध्रुवीय विकृति में रोगी में विषादी एवं उन्मादी दोनों तरक के लक्षण देखने को मिलते हैं।

6. **लैंगिक एवं लिंग पहचान विकृतियाँ–** इस श्रेणी में यौन तथा लिंग पहचान से सम्बद्ध तीन प्रकार के मनोरोगों को रखा गया है। ये हैं पाराफिलिथाज, लैंगिक दुष्क्रिया एवं लिंग पहचान विकृति।

7. **नींद विकृतियाँ –** इसमें नींद से संबंधित दो प्रमुख विकृतियों को रखा गया है। ये दो विकृतियाँ हैं– (1) डायसोमनियाज तथा (2) पारासोमनियाज।

8. **भक्षण विकृतियाँ–** इस श्रेणी में खाने की आदत से सम्बन्धित दो विकृतियों को प्रमुख रूप से रखा गया है। इनमें से पहली है–एनोरिक्सया नरवोसा एवं दूसरी हैं–बुलिमिया नरवोसा।

9. **कृत्रिम या नकली विकृतियाँ–** इस श्रेणी में ऐसे लोगों को रखा गया है, जो वास्तव में मनोरोगी नहीं होते हैं, किन्तु वे ऐसे असामान्य दैहिक अथवा मानसिक लक्षण दिखाते है, जिससे कि लोग उन्हें मनोरोगी समझकर उन पर विशेष रूप से ध्यान दें उनकी पर्याप्त देखभाल करें।

10. **समायोजन विकृतियाँ–** इसके अन्तर्गत ऐसे मनोरोगों को शामिल किया गया है। जिसमें जीवन के वृहत प्रतिबल (Majar stressors) से व्यक्ति में संवेगात्मक एवं व्यवहारात्मक लक्षण विकसित हो जाते है।

11. **आवेग नियंत्रण विकृतियाँ–** इस श्रेणी में ऐसे मनोरोगों आते हैं, जिनमें व्यक्ति का व्यवहार अनुपयुक्त होने के साथ–साथ स्वयं के नियंत्रण से भी बाहर हो जाता है। जैसे–आन्तरायिक विस्फोटक विकृतियाँ, चोर्यीन्माद, अग्निोन्माद तथा रोगात्मक जुआ।

12. **द्रव्यसम्बद्ध विकृतियाँ–** इस वर्ग में ऐसे लोगों को रखा गया है, जिनमें विभिन्न प्रकार के द्रव्य पदार्थों जैसे– अल्कोहल, अफीम, कोकेन, एम्फीटामाइन्स इत्यादि इतना अधिक खाने की बुरी आदत विकसित कर लेते हैं कि इसके कारण उनका सामाजिक समायोजन अथवा व्यावसायिक कार्यों में अत्यधिक असंतुलन पैदा हो जाता है।

**13. वैसी विकृतियाँ जो सबसे पहले शैशवावस्था, बाल्यावस्था या किशोरावस्था में लक्षित होती हैं–** इसके तहत ऐसे विकारों को रखा गया है, जिनके लक्षण सबसे पहले शैशवावस्था या बाल्यावस्था अथवा किशोरावस्था में दिखायी देते हैं तथा उनकी समायोजन क्षमता को बुरी तरह से प्रभावित कर देते है। इसके अन्तर्गत अलगाव चिन्ता विकृतियाँ, अधिगम विकृतियाँ, संचार विकृतियाँ, मल–मूत्र त्यागने से सम्बद्ध विकृतियाँ, ध्यान–ह्रास विकृतियाँ, शैशव आत्मविमोह आदि प्रधान है।

14. **डिलिरियम, डिमेन्सिया, एमनेस्टिक तथा अन्य संज्ञानात्मक विकृतियाँ–** इसके अन्तर्गत ऐसे मनोरोग आते है, जो व्यक्ति के संज्ञानात्मक कार्यों में दोष उत्पन्न होने के कारण होते हैं। प्रायः ऐसे रोगों के कारणों में द्रव्य दुरूपयोग, शारीरिक रोग, आघात एवं उम्र सम्बद्ध कमजोरी इत्यादि आते हैं।

15. **सामान्य मेडिकल अवस्थाओं के कारण उत्पन्न मानसिक विकृति**– इस श्रेणी में ऐसे मनोविकारों को रखा गया है, जिनकी उत्पत्ति का कारण सामान्य मेडिकल अवस्थायें होती हैं।

16. **अन्य ऐसी अवस्थायें जिन पर नैदानिक ध्यान दिया जा सकता है–** पाठकों, इस श्रेणी में मनश्चिकित्सकों के उन सभी अवस्थाओं को रखा है, जो किसी मनोरोग होने की कसौटी पर तो पूरी तरह खरा नहीं उतरते हैं, किन्तु फिर भी वे व्यक्ति के लिये परेशानी का कारण बनते है। इसमें अन्तर्वैयक्तिक संघर्ष, शैक्षिक एवं व्यावसायिक समस्यायें आदि को रखा गया है। ये एसी अवस्थायें हैं, जो व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य को अत्यधिक प्रभावित करती है।

पाठकों, उपरोक्त विवरण में हमने DSM-IVTR के प्रथम आयाम में वर्णित मनोरोगों के बारे में जाना। अब हम द्वितीय आयाम में उल्लिखित मनोरोगों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। आयाम–II में दो प्रकार के मनोरोगों को प्रमुख स्थान दिया गया है, जो निम्नानुसार हैं–

i- व्यक्तित्व विकृतियाँ (Personality Disorders)

ii- मानसिक मंदता (Mental Retardation)

i- **व्यक्तित्व विकृतियाँ–** आयाम–II में 10 प्रकार की व्यक्तित्व विकृतियों को रखा गया है। ये निम्न हैं–

(1) स्थिर व्यामोही व्यक्तित्व विकृति (Paraniod personality disorder)

(2) स्किजोआयड व्यक्तित्व विकृति (Schizoid personality disorder)

(3) स्किजोटाइपल व्यक्तित्व विकृति (Schizotypal personality disorder)

(4) हिस्ट्रीओनिक व्यक्तित्व विकृति (Histrionic personality disorder)

(5) आत्ममोही व्यक्तित्व विकृति (Narcissistic personality disorder)

(6) समाज विरोधी व्यक्तित्व विकृति (Antisocial Personality disorder)

(7) सीमान्तरेखीय व्यक्तित्व विकृति (Boarderline personality disorder)

(8) परिवर्जित व्यक्तित्व विकृति (Avoident personality disorder)

(9) अवलम्बित व्यक्तित्व विकृति (Dependent personality disorder)

(10) मनोग्रस्ति–बाध्यता व्यक्तित्व विकृति (Obsessive-compulsive personality disorder)

DSM-III-R में 12 प्रकार के व्यक्तित्व विकारों का उल्लेख किया गया था, किन्तु DSM-IVTR में इनकी संख्या 10 कर दी गई।

(2) **मानसिक मंदता–** इस श्रेणी में उन बच्चों को रखा गया है, जिनका बौद्धिक स्तर औसत से कम होता है। जिनमें समायोजी व्यवहार का अभाव होता है और जिसके लक्षण 18 वर्ष की आयु से पहले ही दिखायी देने लगते हैं। पाठकों, मानसिक मंदता को DSM-III-R में भी रखा गया था। DSM-IV-TR में इसका स्वरूप और अधिक स्पष्ट कर दिया गया।

प्रिय पाठकों, उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि DSM-IVTR में मनोरोगों को कुल 18 नैदानिक श्रेणियों में बाँटा गया है। इस नैदानिक वर्गीकरण की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें प्रत्येक मानसिक रोग के निदान के लिये कुछ कसौटियों का निर्धारण किया गया है। इस कसौटी को नैदानिक कसौटी (Diagnostic criteria) का नाम दिया गया है। क्रैड.प्प् और क्रैड.प्प्त् के समान ही क्रैड.प्टज्त् में भी वर्गीकरण के पोलोथेटिक उपागम को स्वीकार किया गया है। इस उपागम के अनुसार किसी व्रूक्ति को केवल तभी मानसिक रोगी कहा जा सकता है, तब उस व्यक्ति में संभाविक कसौटी लक्षणों की सूची में ऐ एक निश्चित संख्या में कुछ लक्षण विद्यमान हो।

**DSM-IVTR का मूल्यांकन–**

यद्यपि DSM-IVTR मनोरोगों के नैदानिक वर्गीकरण का एक अत्यन्त वैज्ञानिक एवं लोकप्रिय तंत्र है, तथापि कुछ नैदानिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा निम्न आधारों पर इसकी आलोचना की गई है–

1. आलोचकों का मत है कि DSM-IVTR में मनोरोगों की जितनी श्रेणियाँ बतायी गयी है, उनमें मानसिक रोगों का केवल वर्णन किया गया है, उनकी व्याख्या नहीं की गई है। कहने का आशय यह है कि रोग क्या है और उसके लक्षण क्या हैं, इसका विवेचन तो किया गया है, किन्तु कोई रोग किस तरह से उत्पन्न या विकसित होता है, इसको स्पष्ट नहीं किया गया है।
2. DSM-IVTR की दूसरी आलोचना इस आधार पर की जाती है कि इसके द्वारा केवल वैयक्तिक व्यवहार के बारे में विवेचन किया जाता है।
3. आलोचकों का यह भी मत है कि इस वर्गीकरण में मनोरोगों के बारे में नैदानिक निर्णय लेने के लिये जो नियम निर्धारित किये गये हैं, वे आदर्श नहीं है। उदाहरण के तौर पर उन्माद रोग के निदान हेतु DSM-IVTR में 7 लक्षणों की एक सूची बनायी गयी है, जिसमें से रोगी में कम से कम तीन लक्षणों का होना उन्माद के रूप में वर्गीकृत किये जाने के लिये आवश्यक है। किन्तु किस आधार पर यह संख्या तीन निर्धारित की गई है, इसका कोई स्पष्ट विवरण नहीं दिया गया है।

ऐसी ही बात अन्य मनोरोगों के निदान के संबंध में भी लागू होती है, जो आलोचकों के मतानुसार वैज्ञानिक नहीं है।

4. आलोचकों ने DSM-IVTR की विश्वसनीयता पर भी प्रश्नचिन्ह लगाया है उनका मत है कि DSM-IVTR के प्रथम एवं द्वितीय आयाम की विश्वसनीयता प्रतिदिन के उपयोग में हमेशा ही संतोषजनक परिणाम नहीं देती है,क्योंकि प्रत्येक मनोरोग के लिये बनी नैदानिक कसौटी की उपयुक्तता की जाँच करने में मनौचिकित्सक अपने आत्मगत मूल्यांकन से प्रेरित होते हैं।

प्रिय पाठकों, उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि यद्यपि DSM-IVTR में भी कुछ त्रुटियां है, जिनके कारण आलोचकों द्वारा इसकी आलोचना की गई है, तथापि इसकी उपयोगिता एवं महत्व को नकारा नहीं जा सकता। वर्तमान समय में विश्व के प्रायः सभी देशों में मनोरोगों के नैदानिक वर्गीकरण हेतु DSM-IVTR का सहारा लिया जाता है।

**भारतीय वर्गीकरण तंत्र–**

प्रिय विद्यार्थियों, अब तक हमने मनोरोगों के अन्तर्राष्ट्रीय वर्गीकरण तंत्र (DSM-IVTR) का अध्ययन किया है। अब हम मनोरोगों के भारतीय वर्गीकरण तंत्र के बारे में चर्चा करेंगे। पाठकें मनोरागों के भारतीय वर्गीकरण तंत्र में निम्न दो प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं–

A. भारत के अधिकांश मानसिक अस्पतालों तथा उपचारगृहों में ICD एवं DSM द्वारा प्रतिपादित वर्गीकरण को या तो पूरी तरह अपना लिया गया है, अथवा उसमें आंशिक संशोधन करके उन्हें अपनाया जा रहा है।

B. कतिपय भारतीय मनोवैज्ञानिकों एवं मनश्चिकित्सकों ने इन तंत्रों को पूरी तरह संतुष्ट न होने के कारण इनमें कुछ संशोधन के सुझाव दिये हैं, जिनमें एन. एन. विग तथा एम. सक्सेना, ए. वर्घीज एवं आर. गियल और उनके सहयोगियों के नाम उल्लेखनीय है। कतिपय भारतीय विद्वानों ने प्राचीन भारतीय साहित्य में उपयुक्त विकल्पी मॉडल की खोज करके उसका संबंध आधुनिक तंत्र प्रमुख रूप से ICD से स्थापित करने का प्रयास किया है, जिनमें के. सी. दूबे, एस. दूबे और एच. जी. सिंह के नाम प्रमुख हैं। प्रमुख विद्वान एच. जी. सिंह ने मनोरोगों को निम्न तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया है–

1. **गंभीर विकृतियाँ– (Severe Disorders)** इस श्रेणी मे निम्न रोगों को रखा गया है–

i- उन्माद (Insonity)
ii- मिरगी या अपस्पार (Epilepsy)
iii- ग्राही (Seizure ar hysterial fits)
iv- दुर्भीति (Phobia)
v- मनोविदालिता (Schizophrenia)
vi- पाप–भाव तथा हीनता भाव (Guit feeling and in feriality feeling)

2. **साधारण रोग (Mild disorders)**

साधारण रोग में निम्न रोगों को रखा गया है–

i- क्रोध (Anger)
ii- ईर्ष्या (Jealousy)
iii- मोह (Eraticism)
iv- दुःस्वप्न (Evildream)
v- बाह्य श्राप (Compulsive evil suggestion)

3. **स्वास्थ्य एवं संगठन (Healty and integration)**

इस श्रेणी में निम्नांकित रोगों को स्थान दिया गया है–

i- बुद्धि तथा स्मृति वर्द्धन (Inteligence and memory imptovement)

ii- पुस्तिकानी (Pustikani) या अहं उर्जन् (Ego energing)

iii- सामांसा सस्यानी (Samansa sasyani)

प्रिय पाठकों, एन. एन. विग तथा जी. सिंह द्वारा मनोविक्षिप्त के निम्न प्रकार बताये गये हैं–

i- मनोविक्षिप्ति विषादी प्रतिक्रिया (psychtic depressive reaction)

ii- हिस्ट्रकल मनोविक्षिप्ति (Hysterical psychosis)

iii- अज्ञात कारणों से उत्पन्न मनोविक्षिप्ति जिसमें संभ्रांतीय छवि की प्रधानता होती है।(psychoses of unknown etiology with predominantly confusional picture)

iv- अज्ञात कारणों से उत्पन्न मनोविक्षिप्ति जिसमें व्यामोही विभ्रात्मक तस्वीर की प्रधानता होती है।( psychosis of uncertain etiology with paranoid hallucinatory symptom)

v- उपज्ञात कारणों से उत्पन्न मनोविक्षिप्ति, जिसमें मनोविदाली भावात्मक लक्षणों की प्रधानता होती है।(psychosis of uncertain etiology with schizophvenic affective symptom)

vi- चिरकालिक मनोविक्षिप्ति–अभावात्मक एवं अमनोविदाली (Chronic psychosis-non-affective non- schizophuenic)

प्रिय विद्यार्थियों, जे. एम. तेजा ने विभिन्न प्रकार की मनोविक्षिप्तियों को निम्न पाँच श्रेणियों में वर्गीकृत किया है–

1. **अज्ञात कारणों से उत्पन्न अन्य मनोविक्षिप्ति**

i- प्रतिक्रियाशील विषादी मनोविक्षिप्ति (Reactive depressive psychoses)

ii- प्रतिक्रियाशील हिस्ट्रीकल मनोविक्षिप्ति (Reactive hysterical psychoses)

iii- तीव्र हिस्ट्रीकल मनोविक्षिप्ति (Acute hysterical psychoses)

iv- हिस्ट्रीकल स्वत्वात्मक अवस्था (Hysterical possessive states)

2. **प्रतिक्रियाशील संभ्राति** (Reactive confusion)

3. **तीक्ष्ण व्यामोही प्रतिक्रिया** (Acute paranoid reactions)

4. **प्रतिक्रियाशील मनोविक्षिप्ति** (Reactive psychosis)

5. **अविशिष्ट मनोविक्षिप्ति** (Unspecified psychosis)

इसी प्रकार कुछ भारतीय मनोवैज्ञानिकों एवं मनशिचिकित्सकों द्वारा विषादी स्नायु विकृतियों को दो ाागों में वर्गीकृत किया गया है–

i- स्नायुविकृति विषादी

ii- प्रतिक्रियावादी विषादी

प्रिय पाठकों, उपरोक्त विवरण के आधार पर निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि असामान्य व्यवहारों के नैदानिक वर्गीकरण के अब तक जितने भी तंत्र विकसित हुये हैं, उनमें DSM-IVTR की मान्यता सर्वाधिक है।

**अभ्यासार्थ प्रश्न–**

1. मनोरोगों की उत्पत्ति में केवल जैविक कारकों का योगदान होता है। ( सत्य / असत्य )
2. फोबिया चिन्ता विकार के अन्तर्गत आता है। ( सत्य / असत्य )
3. ICD-10 का प्रकाशन सन् 1990 में हुआ था। ( सत्य / असत्य )

4. DSM-I का प्रकाशन सन् 1952 में हुआ था। ( सत्य / असत्य )
5. DSM-IVTR का प्रकाशन सन् 2000 में हुआ था। ( सत्य / असत्य )
6. DSM-IVTR में कुल छः आयाम है। ( सत्य / असत्य )
7. DSM-IVTR के प्रथम आयाम में व्यक्तित्व विकार का वर्णन किया गया है। ( सत्य / असत्य )
8. सन् 1948 में WHO ने ICD-6 का प्रकाशन किया। ( सत्य / असत्य )
9. निदान से रोग के उपचार के बारे में जानकारी मिलती है। (सत्य / असत्य)
10 मनोग्रस्ति–बाध्यता विकार, एक चिन्ता विकार है। ( सत्य / असत्य)

## 3.6 सारांश–

प्रिय पाठकों, उपरोक्त विवरण से आप मनोरोगों के कारण, विभिन्न प्रकार तथा उनके नैदानिक वर्गीकरण के बारे में भलीभाँति जान गये होंगे। मनोरोगों की उत्पत्ति में जैविक कारकों के साथ–साथ मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, सांस्कृतिक कारकों की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। भिन्न–भिन्न लक्षणों के आधार पर मनोवैज्ञानिकों और मनशिचिकित्सकों ने मनोरोगों के अनेक प्रकार बताये हैं, जिनमें चिन्ता विकृति, व्यक्तित्व विकृति, मनोदशा विकृति, स्थिर–व्यामोही विकृति आदि प्रमुख है। मानसिक रोगियों का ठीक प्रकार से उपचार हो सके, उपचार के बारे में अधिकाधिक मार्गनिर्देशन प्राप्त हो सके, इस हेतु असामान्य व्यवहारों का नैदानिक वर्गीकरण किया गया है। मनोरोगों के नैदानिक वर्गीकरण की दृष्टि से अब तक सर्वाधिक लोकप्रिय तंत्र DSM-IVTR (2000) है, जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त है।

## 3.7 शब्दावली

ICD & International statistical classficalion of diseases, injuries and causes of Death.
**DSM-IVTR -** Diagnostic and statistical manual of mental disorder-IV test revision.
भक्षण – खाना (Eating)
निदान – लक्षणों के आधार पर रोग का निर्धारण
जैविक – शरीर संबंधी
काय – शरीर

## 3.8अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

(1) असत्य 2 सत्य 3 असत्य 4 सत्य 5 सत्य
6 असत्य 7 असत्य 8सत्य 9 सत्य 10 सत्य

## 3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सिंह, अरूण कुमार (2010) असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, बंग्लोरोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

## 3.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. डॉ. राज राजेश्वारी प्रसाद सिन्हा एवं डॉ. बी. के. मिश्र। 1987, असामान्य मनोविज्ञान, भारती भवन, ठाकुरबाड़ी रोड, कदमकुआँ, पटना।
3. डॉ. आर. के ओझा (1991) असामान्य मनोविज्ञान, भार्गव बुक हाउस, आगरा।

## 3.11 निबंधात्मक प्रश्न–

प्रश्न–1– मनोरोगों के कारणों पर प्रकाश डालिये।
प्रश्न–2 मनोरोगों के प्रकारों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
प्रश्न–3 असामान्य व्यवहारों के नैदानिक वर्गीकरण की विस्तार से व्याख्या कीजिए।

# इकाई 4. :–तनावः अर्थ, लक्षण, कारण, तनाव प्रबन्धन

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 तनाव का अर्थ एवं अवधारणा
4.4 तनाव के लक्षण
4.5 तनाव के कारण
4.6 तनाव प्रबन्धन
4.7 सारांश
4.8 शब्दावली
4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
4.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.12 निबंधात्मक प्रश्न

## 4.1 प्रस्तावना

तनाव एक ऐसा शब्द है जिससे हम सभी परिचित हैं। तनाव आज हमारे जीवन का अभिन्न अंग बन चुका है। हममें से प्रत्येक व्यक्ति को जीवन में इसका कम अथवा अधिक मात्रा में अनुभव अवश्य होता है। हम विद्यार्थी भी इस अनुभव से वंचित नहीं हैं। आज किसी न किसी रूप में हमें इसका अनुभव प्राप्त होता रहता है। तनाव के बारे में हम समाचारपत्रों, पुस्तकों, इंटरनेट आदि पर आये दिन लेखों को प्रकाशित होते देखते हैं। इन लेखों में सामान्यतया तनाव से बचने के उपायों का उल्लेख होता है। प्रत्येक विद्यार्थी के मन में इस विषय को लेकर कभी न कभी जिज्ञासा अवश्य होती है कि ये तनाव वास्तव में क्या है? इसके कारण एवं लक्षण क्या हैं? इससे किस प्रकार निपटा जा सकता हैं ? इन सभी जिज्ञासाओं का समाधान इस इकाई की विशेषता है।

## 4.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

1. तनावका अर्थ समझ सकेंगे।
2. तनाव की विभिन्न परिभाषाओं को जान सकेंगे।
3. तनाव के लक्षणों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे एवं उन्हें पहचानना सीख जायेंगे।
4. तनाव के विभिन्न कारणों से परिचित हो पायेंगे।
5. तनाव प्रबंधन के उपायों की जानकारी प्राप्त करेंगे।

## 4.3 तनाव का अर्थ एवं अवधारणा

तनाव वर्तमान जीवन की एक बड़ी समस्या है। मनोवैज्ञानिकों ने तनाव के कई तरीकों से परिभाषित कर उसे समझने का प्रयास किया है। इन मनोवैज्ञानिकों में हैंस सेली का नाम सर्वाधिक प्रमुखता से लिया जाता है। आइये हम तनाव की प्रमुख परिभाषाओं को जानें।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक हैंस सेली ने अपनी पुस्तक 'द स्ट्रेस ऑफ लाइफ' में तनाव को एक अनुक्रिया के रूप में परिभाषित करते हुए कहा है कि 'तनाव से तात्पर्य शरीर द्वारा उसके प्रति प्रस्तुत की गई मांग के प्रति अविशिष्ट अनुक्रिया से होता है।'( Stress refers to nonspecific response of the body to any demand made upon it.' Hans Seleye, 1979, The Stress of life, p 40)

मॉर्गन, किंग, विस्ज एवं स्कॉपलर के अनुसार – हमलोग तनाव को एक ऐसी आन्तरिक अवस्था के रूप में परिभाषित करते हैं जो शरीर के सम्मुख एक शारीरिक आवश्यकताओं (जैसे कि बीमारी की अवस्थाएँ, व्यायाम, तापमान की अतिरंजता आदि) या वैसे वातावरणीय एवं सामाजिक परिस्थितियॉ जिन्हें कि संभावित रूप से नुकसानदेह, नियंत्रण से बाहर तथा निबटने के उपलब्ध संसाधनों को चुनौति देने वाले के रूप में मूल्यॉकित किया जाता है, से उत्पन्न होता है। ('We will define stress as an internal state which can be caused by physical demands on the body (diseased conditions, exercise, extremes of temperature and the like) or by environmental and social situations which are evaluated as potentially harmful, uncontrollable or exceeding our resources for coping.'- Morgan, King, Weisz & Schopler: Introduction to Psychology, 1986, p. 321)

मनोवैज्ञानिक बैरोन अपनी पुस्तक 'मनोविज्ञान' में तनाव को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि– 'तनाव एक बहुआयामी प्रक्रिया है जो हम लोगों में वैसी घटनाओं के प्रति अनुक्रिया के रूप में उत्पन्न होती है जो हमारे शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रकार्यों को विकृत करता है या विकृत करने की धमकी देता है।' ('Stress is many-faceted process that occurs in us in response to events that disrupt or threaten to disrupt our physical or physiological functioning.' - Baron : Psychology, 1992, p. 443)।

वुड एवं वुड ने तनाव को इस प्रकार परिभाषित किया है–'अधिकतरमनोवैज्ञानिक तनाव को एक ऐसी घटना के प्रति शरीरक्रियावैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक अनुक्रिया के रूप में परिभाषित करते हैं जो व्यक्ति को चुनौती देती है अथवा धमकी देती है तथा जिसमें अनुकूलन अथवा समायोजन के किसी प्रकार की जरूरत होती है।' ('Most psychologists define stress as the physiological and psychological response to a condition that threatens or challenges the individual and requires some form of adaptation or adjustment.' - Wood &Wood : The World of Psychology. 1999, p.469)।

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से निम्न बातें स्पष्ट होती हैं कि

1. तनाव एक बहुआयामी प्रक्रिया एवं अनुक्रिया है।
2. तनाव नाम अनुक्रिया आसेधकों (stressors) के कारण उत्पन्न होती है।
3. तनाव उत्पन्न करने वाली सभी परिस्थितियॉ, वस्तु अथवा व्यक्ति आसेधक कहलाते हैं।
4. तनाव परिस्थितियों के मूल्यॉकन के स्वरूप पर निर्भर करता है। जब जीवन की परिस्थितियॉ व्यक्ति के सम्मुख चुनौतियों के रूप में सामने आती हैं तब व्यक्ति उन चुनौतियों से निपटने हेतु अपनी तैयारी को देखता है एवं उपलब्ध संसाधनों तथा अपनी योग्यता अथवा सहयोग का मूल्यॉकन करता है। यदि उसे उपलब्ध संसाधन एवं अपनी योग्यता तथा सहयोग की उपलब्धता चुनौतियों का यथोचित सामना करने हेतु पर्याप्त प्रतीत होते हैं तो उसे तनाव नहीं होता है। परन्तु यदि उसे उपलब्ध संसाधन, योग्यता अथवा सहयोग अपर्याप्त प्रतीत होते हैं तब उसे तनाव हो जाता है।उदाहरण के लिए यदि आप एक विद्यार्थी हैं जिसका मूल्यॉकन परीक्षा में प्राप्त अंकों के आधार पर किया जाता है, मान लीजिए कि एक दिन कक्षाध्यापक आपको यह सूचना देते हैं कि आज सायंकाल आपको पढ़ाई गयी किसी इकाई से प्रश्न पूछ कर आपकी परीक्षा ली जायेगी तथा इसमें प्राप्त होने वाले अंक मुख्य

परीक्षा में जुड़ेंगे। अब यदि आप सदैव तत्पर रहते हुए परीक्षा हेतु तैयार रहते हैं, अथवा आप समझते हैं कि सायंकाल तक आप परीक्षा में सफल होने हेतु पर्याप्त तैयारी कर लेंगे एवं जरूरी पुस्तकें एवं नोट्स आपके पास हैं तब आपको तनाव का अनुभव नहीं होगा। वहीं यदि आप परीक्षा हेतु सदैव तैयार नहीं रहते तथा जरूरी पुस्तकें अथवा नोट्स तैयार नहीं करते हैं तथा सायंकाल तक परीक्षा की तैयारी कर पाना आपके लिए संभव नहीं है तो होने वाली परीक्षा की यही परिस्थिति आपको तनावग्रस्त कर देगी।

5. तनाव न केवल परिस्थितियों के नकारात्मक होने पर ही उत्पन्न नहीं होता है बल्कि जीवन की सकारात्मक कही जाने वाली परिस्थितियॉ भी व्यक्ति को तनाव ग्रस्त बना देती हैं। उदाहरण के लिए यदि किसी महिला अथवा पुरूष को यदि अचानक अपनी नौकरी में तय अनुभव प्राप्त होने से पूर्व ही प्रोन्नति मिल जाती है तब उस पद के उपयुक्त कार्य निष्पादन करने के लिए उस पर स्वतः ही दबाव बढ़ जाता है जब उसे लगता है कि उपयुक्त कार्य निष्पादन हेतु जिस योग्यता अथवा कुशलता की जरूरत है उसकी योग्यता में कुछ अथवा अधिक बढ़ोत्तरी की आवश्यकता है तब उसे तनाव की अनुभूति होती है यह तनाव वस्तुतः सकारात्मक स्वरूप का होता है अतएव इसे सकारात्मक तनाव के रूप में जाना जाता है। इसी प्रकार का अनुभव व्यक्तियों को किसी उच्च अथवा अति उत्तम कुल में विवाह होने, बहुत बड़े सम्मान अथवा पुरस्कार से नवाजे जाने पर भी उत्पन्न होता है।कनाडा के प्रसि़द्ध विद्वान हैंस सेली ने इसी आधार पर तनाव को दो भागों में बॉटा है सकारात्मक तनाव एवं नकारात्मक तनाव। सकारात्मक तनाव को अंग्रेजी में यूस्ट्रेस (eustress) एवं नकारात्मक तनाव को उन्होंने डिस्ट्रेस(distress) कहा है।
6. तनाव का कोई न कोई कारण होता है तथा तनाव के बहुआयामी प्रभाव भी होते हैं। तनाव प्रारम्भ में संज्ञानात्मक कारणों से उत्पन्न होता है तथा बाद में इसके मनोवैज्ञानिक (psyhchological) एवं शरीरक्रियावैज्ञानिक (physiological) प्रभाव भी होते हैं।
7. तनाव की कोई तय समय सीमा नहीं होती है। तनाव आसेधकों के स्वरूप, उनकी तीव्रता, उपस्थिति की अवधि, एवं अनुभव कर्ता की क्षमता के अनुसार कम एवं लम्बी अवधि वाला हो सकता है। तनाव कम समय तक चलेगा या लम्बे समय तक चलेगा, यह बहुत कुछ तनाव उत्पन्न करने वाली घटनाओं या परिस्थितियों पर निर्भर करता है। जब व्यक्ति परिस्थितियों पर शीघ्र नियंत्रण पा लेता है तब उसे लघु अवधि का तनाव होता है तथा जब व्यक्ति को परिस्थितियों पर नियंत्रण पाने में अधिक समय लगता है तब उसे लम्बी अवधि का तनाव होता है।
8. साररूप में तनाव जीवन में उत्पन्न चुनौतियों के मूल्यॉकन के उपरान्त उसके प्रति की गयी एक विशेष अनुक्रिया होती है जिसके शारीरिक, मानसिक प्रभाव होते हैं।

**अभ्यास प्रश्न 1** –निम्नलिखित में से किस विद्वान ने तनाव को शारीरिक चुनौती के प्रति शरीर की अविशिष्ट अनुक्रिया के रूप में परिभाषित किया है?

क–हैस सेली
ख– मॉर्गन
ग– बैरॉन
घ– वुड

## 4.4 तनाव के लक्षण / अनुक्रियायें

आप तनाव के लक्षणों को अनुक्रियाओं के अध्ययन द्वारा सरलतापूर्वक समझ सकते हैं। मुख्यतः तनाव के प्रति व्यक्ति दो प्रकार की अनुक्रियायें करता है। 1. मनोवैज्ञानिक अनुक्रियायें (psychological responses) एवं शरीरक्रियावैज्ञानिक अनुक्रियायें

(physiological responses)। इन दोनों ही प्रकार के लक्षणों एवं अनुक्रियाओं का वर्णन निम्न पंक्तियों में किया जा रहा है।

मनोवैज्ञानिक अनुक्रियायें(psychological responses)

मनोवैज्ञानिक अनुक्रियाओं में वे सभी अनुक्रियाएँ सम्मिलित हैं जिन्हें मानसिक प्रक्रियाओं एवं भाव–.संवेग, व्यवहार के अन्तर्गत रखा जाता है। यहॉ पर मानसिक प्रक्रियाओं से हमारा तात्पर्य अवधान, प्रत्यक्षण, भाषा, अधिगम, स्मृति, समस्या समाधान क्षमता आदि सभी से है। भाव–संवेग में सभी संवेग (जैसे– क्रोध, हर्ष, विषाद, आक्रामकता आदि) एवं अनुभूतिपरक लक्षण एवं अनुक्रियायें सम्मिलित हैं।

संज्ञानात्मक लक्षण (cognitive symptoms) –

तनाव की अवस्था में व्यक्ति की एकाग्रता (concentration) प्रभावित होती है, जिससे व्यक्ति अपने कार्यों का उत्कृष्टता के साथ निष्पादन नहीं कर पाता है।

तनाव से व्यक्ति की तार्किक क्षमता(logical ability) भी प्रभावित होती हैं। व्यक्ति व्यवस्थित रूप से तर्कपूर्ण चिन्तन नहीं कर पाता है। चिन्तन में चिन्ता की भूमिका बढ़ जाती है एवं व्यक्ति कार्य विशेष के, परिस्थिति विशेष के सभी पहलुओं पर ठीक ढंग से विचार नहीं कर पाता है।

तनाव से व्यक्ति की अवधान क्षमता (attention ability) भी प्रभावित होती है। अवधान विस्तार (attention span) कम हो जाता है।

स्मृति क्षमता भी तनाव से प्रभावित होती है। तनाव की अवस्था में स्मृति शक्ति कमजोर हो जाती है फलतः व्यक्ति भूतकाल की घटनाओं को स्पष्ट रूप में बता नहीं पाता है तथा नयी जानकारियों को पूर्णरूप से अपनी स्मृति में धारण नहीं कर पाता है।

उपरोक्त संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के तनाव से प्रभावित होने के कारण व्यक्ति की समस्या समाधान क्षमता एवं सृजनात्मक क्षमता पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है एवं व्यक्ति की ये क्षमतायें भी कमजोर पड़ जाती हैं।

अभ्यास प्रश्न 2–निम्नलिखित में से कौन स लक्षण तनाव का संज्ञानात्मक लक्षण नहीं है?

क–याद न कर पाना

ख–एकाग्र न हो पाना

ग–क्षुब्ध अवधान

घ–क्रोधित हो जाना

**संवेगात्मक लक्षण** (Emotional symptoms) –

तनाव की अवस्था में व्यक्ति में कई प्रकार के सांवेगिक परिवर्तन होते देखे गये हैं। आप सभी ने अपने जीवन में इसे अवश्य ही अनुभव किया होगा। जब व्यक्ति तनाव की स्थिति में होता है तब उसमें नकारात्मक सांवेगिक अनुक्रियाओं की अधिकता हो जाती है। दूसरे शब्दों में नकारात्मक सांवेगिक अनुक्रियाओं की बारंबारता में बढ़ोत्तरी हो जाती है। तनाव के परिणाम स्वरूप होने वाली इन सभी नकारात्मक अनुक्रियाओं का वर्णन निम्नांकित पंक्तियों में किया जा रहा है।

**चिंता (anxiety)–** तनाव की अवस्था में व्यक्ति में प्रायः सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाली सांवेगिक अनुक्रिया चिंता है। आप सभी ने यह अनुभव किया होगा कि जब आप किसी तनावपूर्ण परिस्थिति का सामना करते हो तब उस परिस्थिति के संभावित परिणाम आपको डर, आशंका एवं घबराहट से भर देता है। इस अनुभव की प्रतिक्रिया दो रूपो में देखने को मिलती है एक तो सामान्य चिंता (normal anxiety) के रूप में एवं दूसरी स्नायुविकृत चिंता(neurotic anxiety) के रूप में।

सामान्य चिंता में चिंता की मात्रा कम होने के कारण यह व्यक्ति के परिस्थिति के साथ समायोजन में मददगार साबित होती है। दूसरे शब्दों में यह कार्यों के बेहतर निष्पादन

में मददगार भी साबित होती है एवं समस्या का समाधान ढूंढने के लिए हमें एकाग्रचित भी कर देती है।

स्नायुविकृत चिंता में चिंता की यह मात्रा उस सीमा तक बढ़ जाती जिससे व्यक्ति का परिस्थिति के साथ समायोजन विकृत हो जाता है। व्यक्ति तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थिति से इतना भयग्रस्त हो जाता है या आशंकित हो उठता है कि उसके कारण वह परिस्थिति के सभी पहलुओं पर ठीक प्रकार से विचार ही नहीं कर पाता है एवं उसकी समस्या समाधान क्षमता का ह्रास हो जाता है।

**क्रोध एवं आक्रामकता** (anger and aggression) – तनावपूर्ण परिस्थिति जब व्यक्ति के अपने लक्ष्य अथवा उद्देश्य की प्राप्ति में बाधा बन जाती है तो उससे व्यक्ति में कुंठा का भाव उत्पन्न हो जाता है यही कुंठा तदन्तर क्रोध एवं आक्रामकता को जन्म देती है। सर्वप्रथम तनावपूर्ण परिस्थिति के प्रति व्यक्ति में क्रोध उत्पन्न होता है तथा जब यह क्रोध लम्बे समय तक बरकरार रहता है तो इसकी परिणति आक्रामक व्यवहार के रूप में होने लगती है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक सिगमण्ड फ्रायड के अनुसार कभी–कभी जब तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थिति, वस्तु अथवा व्यक्ति के प्रति क्रोध उत्पन्न होने के बावजूद जब व्यक्ति उसके प्रति आक्रामक व्यवहार की अभिव्यक्ति नहीं कर पाता है तब उसका यह क्रोध विस्थापित होकर विस्थापित आक्रामक व्यवहार(displaced aggressive behaviour) में बदल जाता है। फ्रायड ने इसका वर्णन अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में सुरक्षा प्रक्रम (defense mechanism) के संप्रत्यय के अन्तर्गत इसका वर्णन किया है। उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति अपनी नौकरी में प्रोन्नति चाहता है, परन्तु किसी गलतफहमी की वजह से उसका बॉस उससे नाराज हो जाता है तथा उसे फटकार लगाता है तो इससे उस व्यक्ति में क्रोध उत्पन्न होता है परन्तु वह इस भय के कारण कि कहीं उसकी नौकरी ही खतरे में न पड़ जाये वह क्रोध की आक्रामक अभिव्यक्ति को नियन्त्रित कर लेता है। लेकिन वही व्यक्ति जब अपने इस गुस्से को किसी अन्य व्यक्ति पर जैसे कि उसकी पत्नी अथवा पुत्र पर आक्रामक व्यवहार के रूप में करता है तो यह विस्थापित आक्रामक व्यवहार कहलायेगा।

**विषाद (depression)** – तनाव पूर्ण अवस्था का प्रभाव व्यक्ति में अवसाद भाव की उत्पत्ति के रूप में भी देखने को मिलता है। सामान्य तौर पर आपने देखा होगा कि जब व्यक्ति के जीवन में उसके सम्मुख कुछ ऐसी चुनौतियॉ उत्पन्न हो जाती हैं जिनसे निपटने में व्यक्ति को असफलता हाथ लगती है तो व्यक्ति में गुस्सा अथवा आक्रामक अभिव्यक्ति के स्थान पर निराशा का भाव जन्म ले लेता है। व्यक्ति कई बार परिस्थिति के प्रति उदासीन भाव भी अपना लेता है जिसे भावशून्यता (apathy) भी कहते हैं। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार विषाद का अर्जित निस्सहायता (learned helplessness) से भी सीधा संबंध होता है। अर्जित निस्सहायता अवसाद की उत्पत्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह निस्सहायता व्यक्ति में तब उत्पन्न होती है जब जीवन की कठिनाइयों से वह स्वयं को घिरा हुआ देखता है तथा उनसे निपट नहीं पाता तथा वह ऐसी ही अन्य कठिनाईयों के संबंध में भी यह सोच लेता है कि इनसे वह अब बच नहीं सकता अतएव वह निस्सहाय महसूस करना सीख लेता है।

व्यवहारात्मक लक्षण (behavioural symptoms) –व्यवहारात्मक लक्षणों अथवा अनुक्रियाओं में वे सभी अनुक्रियायें आती हैं जो तनावपूर्ण परिस्थितियॉ उत्पन्न होने पर व्यक्ति द्वारा वातावरण, समाज अथवा परिस्थिति के प्रति स्थूल रूप में की जाती हैं। इनका वर्णन निम्नांकित है।

तनाव उत्पन्न होने पर व्यवहार में चिड़चिड़ापन (irritability) बढ़ जाता है। व्यक्ति के व्यवहार में झुंझुलाहट बढ़ जाती है।

तनावपूर्ण परिस्थिति के कारण व्यक्ति में आक्रामकता(aggressiveness) की मात्रा बढ़ जाती है। व्यक्ति जोर–जोर से चिल्ला कर अपनी खीझ प्रदर्शित करता है, अथवा कुर्सी, मेज आदि वस्तुओं को फेंककर उसकी अभिव्यक्ति करता है।

तनाव के कारण कई बार व्यक्ति परिहारी दृष्टिकोण (avoidance approach) अपना लेता है। परिणामस्वरूप वह परिहारी व्यवहार का प्रदर्शन करने लगता है। वह परिस्थितियों, व्यक्तियों आदि से बचने का प्रयास प्रारंभ कर देता है यथासंभव सामाजिक परिस्थितियों से लोगों से दूरी बना कर रखने लगता है।

तनाव सामान्यतया देखे जाने वाले व्यवहारात्मक प्रभाव हैं–

- साधारण मुद्दों पर बहस एवं झगड़ा करना
- अतिनिर्भरता
- अपनी बात समझा न पाना
- अतार्किकता
- प्रेम से किनारा करना
- **लैंगिक रूचि में कमी अथवा अधिकता**

तनाव के शरीरक्रियावैज्ञानिक लक्षण (physiological symptoms) उपरोक्त वर्णित सेक्शन में अब तक हमने तनाव के मुख्य रूप से केवल मनोवैज्ञानिक लक्षणों अथवा अनुक्रियाओं के बारे में बात की है परन्तु तनाव की अवस्था में तनाव से निबटने की तैयारी के रूप में इन मनोवैज्ञानिक अनुक्रियायों के अलावा व्यक्ति के शरीर में कई प्रकार की दैहिक या शरीरक्रियावैज्ञानिक अनुक्रियायें भी होने लगती हैं। इन अनुक्रियाओं का वर्णन निम्न पंक्तियों में किया जा रहा है।

ये अनुक्रियायें स्वायत्त तंत्रिका तंत्र (autonomic nervours system) के द्वारा प्रारंभ की जाती हैं।

तनाव हृदय गति, स्वसन गति, रक्तचाप और पाचन को प्रभावित करता है। जब आपातअवस्था टल जाती है तो व्यक्ति का शरीर पुनः पूर्वावस्था में लौट आता है।

व्यक्ति की मांसपेशियों में तनाव भी काफी बढ़ जाता है। लार की मात्रा में काफी कमी आ जाती है ताकि फेफड़ों को अधिक–से– अधिक हवा प्रवेश करने के मार्ग में कहीं कोई रूकावट नहीं आए। शायद यही कारण है कि तनावपूर्ण परिस्थिति में व्यक्ति को मुॅह सूखा होने का अनुभव होता है।

तनाव की स्थिति में एन्डोरफिन्स (स्वाभाविक दर्दनाशक )के स्राव में बढ़ोत्तरी हो जाती है तथा शरीर की त्वचा में पायी जाने वाली रक्त नलिकायें सिकुड़ जाती हैं ताकि शरीर मे कुछ घाव होने की स्थिति में कम मात्रा में रक्तस्राव हो।

तनाव की अवस्था में प्लीहा द्वारा अधिक मात्रा में लाल रक्त कणिकाओं का उत्सर्जन होता है ताकि अधिक से अधिक ऑक्सीजन शरीर के अंगों को मिल सके।

उपरोक्त सभी अनुक्रियायें स्वायत्त तंत्रिका तंत्र तथा अन्तःस्रावी ग्रन्थी विशेषकर एड्रीनल ग्रन्थि तथा पीयूष ग्रंथि की मदद से नियमित एवं नियंत्रित होती हैं। प्रायः ऐसी परिस्थिति में स्वायत्त तंत्रिका तंत्र के कार्यों पर एक प्रकार से हाइपोथैलेमस का नियंत्रण होता है।

तनाव का सबसे बड़ा प्रभाव हाइपरटेंशन होता है। उच्च रक्तचाप को ही हाइपरटेंशन कहा जाता है। हृदय द्वारा उत्पन्न किये जाने वाले दबाव से रक्त शरीर के विभिन्न भागों में पहुॅचता है। शरीर की आवश्यकतानुसार हृदय का यह दाब घटता–बढ़ता रहता है। दिन के समय के अनुसार भी यह बदलता रहता है। सुबह के समय जब हम गहरी निद्रा में सो रहे होते हैं यह दबाव सबसे कम रहता है एवं हमारे उठने के समय से

दिन शुरू करने अथवा व्यायाम के दौरान धीरे धीरे बढ़ता जाता है। जब यह रक्तचाप निरन्तर सामान्य से अधिक बना रहता है तो इसे हाइपरटेंशन कहा जाता है।

**तनाव एवं आपका रक्तचाप**

आर्काइव ऑफ इन्टरनेशनल मेडिसिन में उच्च रक्तचाप की रोकथाम से संबंधित रिपोर्ट के अनुसार 35 से 44 साल के उम्र समूह में आने वाले लोगों में से 15 प्रतिशत लोग उच्चरक्तचाप से पीड़ित हैं। 45 से 54 साल के उम्र समूह में उच्च रक्तचाप के मरीजों की संख्या 33 प्रतिशत एवं 55 से 64 वर्ष उम्र समूह के वर्ग में यह प्रतिशत बढ़कर 48 प्रतिशत पाया गया है।

क्या आप उच्च रक्तचाप से पीड़ित हैं? यदि आप 18 साल से अधिक उम्र के हैं तो अपना स्कोर देखिए। डायस्टोलिक (Diastolic) सिस्टोलिक (Systolic)

| | | |
|---|---|---|
| माइल्ड हाइपरटेंशन (mild hypertension) | 140-159 | 90-99 |
| मॉडरेट हाइपरटेंशन (moderate hypertension) | 160-179 | 100-109 |
| गंभीर हाइपरटेंशन (severe hypertension) | 180-209 | 110-119 |
| अति गंभीर हाइपरटेंशन (very severe hypertension) | Over 210 | Over 120 |

यदि आपका पारिवारिक इतिहास हाइपरटेंशन का है, तनावपूर्ण कार्य करते हैं, आप मोटे हैं अथवा पहले से ही आप कम से कम एक जोखिम ( डायबिटीज, धूम्रपान अथवा उच्च कोलेस्ट्रोल लेवल है ) भरी स्थिति है तो 40 की उम्र की बाद आप को नियमित चेकअप कराते रहना चाहिए।

हाइपरटेंशन के बहुत से कारणों में व्यक्ति की जीवनशैली प्रमुख है। सामान्य तौर पर यह पाया गया है कि हाइपरटेंशन के मरीजों का व्यवहार पैटर्न टाइप 'ए' प्रकार का होता है जैसे कि ये लोग लक्ष्य केंद्रित, आक्रामक एवं स्वयं को नीचा देखे जाने के प्रति बिल्कुल भी सहनशीलनहीं होते हैं और इसीलिए इनके उद्देश्य उच्च से उच्चतर होते हैं। इनका सिम्पेथेटिक नर्वस सिस्टम हमेंशा ही सतत रूप से बढ़ी हुई सक्रियता में रहता है जिसके कारण उच्च रक्तचाप की स्थिति बनी रहती है। सांवेगिक अवस्था भी रक्तचाप को प्रभावित करती है। उत्तेजना, गुस्सा एवं टेंशन रक्तचाप को बढ़ा देते हैं हालॉकि यह कुछ ही मिनटों में सामान्य स्तर पर वापस आ जाता है। यह पाया गया है कि हाइपरटेंशन परिवार में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में फैलता है। टाइप ए प्रकार के व्यक्तित्व के माता–पिता के बच्चों के रक्तचाप के रोगी होने की संभावना काफी बढ़ जाती है।

तनाव के दैहिक प्रभाव केवल हाइपरटेंशन अथवा हृदय की स्थिति तक ही सीमित नहीं है बल्कि यह रोगप्रतिरोधक क्षमता को भी प्रभावित करता है (Lovallo, 1997)। तनाव की वजह से रिह्यूमेटाइड आर्थ्राइटिस का खतरा भी बढ़ जाता है (Sternberg et al. 1991)।

तनाव के दैहिक प्रभावों एवं अनुक्रियाओं को प्रसिद्ध शरीरक्रियावैज्ञानिक हैंस सेली ने तनाव के स्वयं के द्वारा प्रतिपादित मॉडल 'सामान्य अनुकूलन संलक्षण' (General Adaptation Syndrome or GAS) में विस्तार से स्पष्ट किया है। सेली का यह मॉडल उनके द्वारा पशुओं पर किए गये अध्ययन पर आधारित था परन्तु उनका यह दावा था कि तनाव की अवस्था में मनुष्यों में भी यही दैहिक अनुक्रियायें होती हैं। इन दैहिक अनुक्रियाओं को सेली ने तीन अवस्थाओं में बॉटा है।

- चेतावनी की अवस्था (Stage of alarm reaction)
- प्रतिरोध की अवस्था (Stage of resistance)
- समापन की अवस्था (Stage of exhaustion)

इन अवस्थाओं का वर्णन निम्न प्रकार है।–

चेतावनी की अवस्था (Stage of alarm reaction) – जब व्यक्ति तनावपूर्ण परिस्थिति से घिर

जाता है तब उसके शरीर में दैहिक अनुक्रियायें प्रारम्भ हो जाती हैं सबसे पहले होने वाली अनुक्रियाओं को चेतावनी अनुक्रिया कहा जाता है। ये अनुक्रियायें दो उपअवस्थाओ के अन्तर्गत घटती हैं। पहली अनुक्रिया आघात अवस्था (shock phase) तथा दूसरी अवस्था प्रतिआघात (counter-shock phase) अवस्था कहलाती है। आसेधक से सामना होते ही व्यक्ति को आघात लगता है एवं वह आघात अवस्था में प्रवेश कर जाता है इसकी प्रथम प्रतिक्रिया स्वरूप दैहिक ताप न्यून हो जाता है, रक्तचाप गिर जाता है, हृदय गति मन्द हो जाती है तथा मांसेपेशियॉ शिथिल पड़ जाती हैं। इस अवस्था के तुरन्त पश्चात् प्रतिघात की अवस्था उत्पन्न होती है जिसमें शरीर अपने सुरक्षा क्रियाओं को बढ़ा देता है तथा सभी तरह की आपातकालीन अनुक्रियाऍ जैसे कि रक्तचाप, हृदय गति एवं श्वसन गति बढ़ जाती है। इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति की प्रतिरोध क्षमता में बढ़ोत्तरी होती है।

प्रतिरोध की अवस्था (Stage of resistance) –यदि चेतावनी अवस्था में आसेधक की चुनौतियॉ समाप्त नहीं होती बल्कि जारी रहती हैं एवं आसेधक की उपस्थिति बनी रहती है तब शरीर को इससे निबटने हेतु अन्य उपायों का सहारा लेना होता है। यह अवस्था प्रतिरोध की अवस्था कहलाती है क्योंकि इस अवस्था मे कुछ हारमोन्स का स्राव होता है जिनसे शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ जाती है। इसके पीयूष ग्रंथि (pituitary gland) द्वारा एड्रीनल ग्रंथि (adrenal gland) का नियंत्रण किया जाता है जो एड्रिनोकोरटिकोट्रोपिक हारमोन (adrenocorticotropic hormone – ACTH) का रक्त में उत्सर्जन करता है जिससे शरीर आसेधक के शरीर पर पड़ने वाले प्रभावों को रोक पाने में सक्षम हो जाता है। इस ACTH के स्राव की मात्रा का नियमन हाइपोथेलेमस (हाइपोथेलेमस आसेधक की लगातार मौजूदगी से उत्तेजित हो CRF के उत्सर्जन द्वारा पीयूष ग्रंथि को संदेश भेजता है) द्वारा कौरटिकोट्रोपिन–रिलीजिंग–फैक्टर (CRF) के उत्सर्जन द्वारा किया जाता है। इस अवस्था में एड्रीनल कॉर्टेक्स के उत्तेजन से कॉर्टिसोल नामक हारमोन्स स्रावित हो रक्त में मिलता है तथा शरीर को आसेधक के प्रतिरोध हेतु सक्षम बनाता है। लम्बे समय तक इसके स्रावित होने पर यह शरीर के लिए हानिकारक प्रभाव उत्पन्न करने लगता है एवं व्यक्ति की मृत्यु तक हो सकती है। इस समय किसी नये आसेधक की उपस्थिति होने पर व्यक्ति की

प्रतिरोधक क्षमता काफी घट जाती है और व्यक्ति समापन की अवस्था में पहुँच जाता है।

समापन की अवस्था (Stage of exhaustion) – प्राणी की शिथिलता बढ़ जाती है वह निष्क्रिय समान हो जाता है तथा रोगग्रस्त हो जाता है। शरीर की रोगप्रतिरोधक क्षमता के घट जाने से बीमारियों के जकड़ लेने की संभावना बढ़ जाती है। अल्सर, उच्चरक्तचाप, कैंसर एवं मधुमेह आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं एवं व्यक्ति की मृत्यु की संभावना बढ़ जाती है।

**अभ्यास प्रश्न 3–**एड्रिनोकोर्टिकोट्रोपिक हारमोन निम्नलिखित में से किस के द्वारा स्रावित किया जाता है?

क–एड्रीनल ग्रंथि
ख–पीयूष ग्रंथि
ग–हाइपोथैलेमस
घ–किडनी

## 4.5 तनाव के कारण (Etiology of stress)

तनाव उत्पत्ति के कारकों पर मनोवैज्ञानिकों द्वारा गहन अध्ययन किया गया है जिसके आधार पर तनाव उत्पत्ति के प्रमुख कारकों की एक सूची विनिर्मित की गयी है। निम्नांकित पंक्तियों में इन्हीं कारकों का वर्णन किया जा रहा है। इनमें प्रमुख हैं–

क) कुंठा (frustration) –
ख) दैनिक उलझनें (daily hasseles) –
ग) जीवन की तनावपूर्ण घटनायें (stressful events of life)–
घ) अभिप्रेरकों का द्वन्द(conflict of motives) –
च) कार्यसंबंधी स्रोत(work-related sources) –
छ) पर्यावरण संबंधी स्रोत (environmental sources) –

उपरोक्त सभी स्रोतों का वर्णन निम्नांकित है।

**क) कुंठा** (frustration) –तनाव की उत्पत्ति के प्रमुख स्रोतों में मनोवैज्ञानिक कारकों के रूप में कुंठा की उत्पत्ति भी तनाव का एक प्रमुख स्रोत है। कुंठा एक प्रकार की मनोदशा है यह तब उत्पन्न होती है जब व्यक्ति की चाहतों अथवा लक्ष्य प्राप्ति के बीच कोई बाधा खड़ी हो जाती है। या किसी अन्य व्यक्ति अथवा व्यक्तियों द्वारा बाधा खड़ी कर दी जाती है। उदाहरण के लिए ऐसे अनेक कारक हैं जो कि व्यक्ति की लक्ष्य प्राप्ति अथवा इच्छापूर्ति में बाधक हो सकते हैं जैसे–अनाथ होना, विकलांगता, दोषभाव, कुशलता की कमी, आत्मनियंत्रण की कमी, आर्थिक भेदभाव, जाति–धर्म–क्षेत्रीयता आधारित भेदभाव आदि। उदाहरण के लिए यदि आप का लक्ष्य नौकरी प्राप्त करना है परन्तु नौकरी हेतु साक्षात्कार देने के उपरान्त अन्य प्रतिभागियों से आप को ज्ञात होता है कि क्षेत्रीयता को वरीयता दी जा रही है और आप उस क्षेत्र के नहीं हैं तो यह क्षेत्र आधारित भेद आपको आपके लक्ष्य में एक बाधा के रूप में खड़ा दिखाई देगा। इससे आपके सम्मुख यह आसेधक का कार्य करेगा एवं आप तनाव ग्रस्त हो सकते हैं। इसी तरह यदि आप विकलांग हैं तथा नौकरी देने वाले एक पूर्णांग वाले व्यक्ति को विकलांग पर वरीयता दे रहे हैं तो आप को अपनी विकलांगता एक बाधा के रूप में प्रत्यक्षित होगी एवं आप तनावग्रस्त हो जायेंगे।

**ख) दैनिक उलझनें** (daily hassles) – लेजारस एवं कैनर जैसे मनोवैज्ञानिकों ने जीवन से जुड़ी छोटी–छोटी उलझनों से भी तनाव होने की बात को अपने अध्ययनों के माध्यम से सिद्ध किया है। उन्होंने इसके अध्ययन के लिए एक मापनी का भी निर्माण किया है। जिसे उलझन मापनी यानि 'हैजल्स स्केल' (hassles scale)कहा जाता है।

इसे मापनी में व्यक्ति को अपने पिछले महीने में घटी उन घटनाओं के बारे में बताना होता है जिन्में उसे उलझन का अनुभव हुआ था। इन उलझनों को तनाव के साथ संहसंबंधित करने पर सकारात्मक सहसंबंध प्राप्त हुए हैं। जिनसे यह साबित होता है कि दिन–प्रतिदिन की उलझनों से व्यक्ति में तनाव उत्पन्न होता है। इन उलझनों को इन मनोवैज्ञानिकों निम्नलिखित रूप से वर्गीकृत किया है।

1. **पर्यावरणीय उलझनें** (environmental hassles)–पर्यावरणीय उलझनों में वे सभी उलझनेंआती हैं जिनका संबंध आसपास के वातावरण से है। उदाहरण के लिए लोगों की भीड़ से उत्पन्न शोरगुल जैसे बाजार आदि, लाउडस्पीकर, भारी यातायात आदि से उत्पन्न उलझन, अपराध जैसे–चोरी, लूट, मारपीट आदि में बढ़ोत्तरी, पास–पड़ोस में होने वाले झगड़ें आदि।
2. **घरेलू उलझनें (**household hassles) – घर के दैनिक कार्यों जैसे कि घर की साफ–सफाई, भोजन बनाना, सब्जी खरीदना, बिजली–पानी–किराया जमा करना, दूध लेना, कपड़े धोना आदि को नित्यप्रति की घरेलू उलझनों के रूप में चिह्नित किया गया है।
3. **आन्तरिक उलझनें** (inner concern hassles) – स्वयं से संबंधित उलझनों को इस वर्ग में रखा जाता है। उदाहरण के लिए किसी स्वजन का नाराज हो जाना, पत्नी का रूठ जाना, मित्रों से मनमुटाव हो जाना आदि को आन्तरिक उल्झनों के रूप में चिह्नित किया जाता है।
4. **समयाभाव से उत्पन्न उलझनें** (hassles due to lack of time) – व्यक्ति द्वारा एक साथ कई भूमिकायें ले लेने पर या भूमिकायें होने पर उन्हें एक साथ पूरा करने के लिए प्रायः समय की कमी पड़ जाती है। इस प्रकार की उलझनें समयाभाव से उत्पन्न उलझनों के अन्तर्गत रखी जाती हैं।
5. **आर्थिक जिम्मेदारी से उत्पन्न उलझनें** (hassles arising due to financial responsibility) –किसी अन्य संबंधी का आर्थिक उत्तरदायित्व आ पड़ने अथवा किसी कंपनी, स्कूल आदि में आर्थिक जिम्मेदारी दिये जाने से जो उलझन होती हैं उसे इस श्रेणी के अन्तर्गत रखा जाता है।
6. **कार्य उलझनें** (work hassles) – कार्य में रूचि न होना, कार्य के स्वरूप से असंतुष्टि होना, कार्य की कमी होना, कार्य का अतिरिक्त भार होना, कार्य का उचित पारिश्रमिक न मिलना, कार्य के स्थान का उचित न होना, प्रोन्नति के अवसर का न होना, कार्य से हटाये जाने की संभावना आदि से उत्पन्न उलझनों को कार्य उलझनों के अन्तर्गत रखा जाता है।

**ग) जीवन की तनावपूर्ण घटनायें** (stressful events of life)– प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक होम्स एवं राहे(Holmes & Rahe,1967) ने जीवन की तनावपूर्ण घटनाओं पर गहन अध्ययन किया है। इस अध्ययन के अनुसार व्यक्ति के जीवन में बहुत प्रकार की घटनायें घटती रहती हैं। कुछ घटनायें सुखद् होती हैं एवं कुछ दुखद्। जो व्यक्ति इन घटनाओं से अपना सामंजस्य बिठा लेते हैं अर्थात परिस्थितियों से विचलित नहीं होते अर्थात् परिस्थितियों के साथ समायोजन कर लेते हैं उन्हें तनाव नहीं होता परन्तु वे व्यक्ति जो परिस्थितियों के साथ समायोजन नहीं कर पाते वे तनावग्रस्त हो जाते हैं। परिणाम स्वरूप व्यक्ति में कई प्रकार के दैहिक एवं भावनात्मक परिवर्तन होते हैं। जीवन की तनावपूर्ण घटनाओं से उत्पन्न तनाव को मापने के लिए होम्स एवं राहे ने 'सामाजिक पुनर्समायोजन रेटिंग मापनी का निर्माण किया है। इसके अन्दर विभिन्न प्रकार की 43 घटनाओं को रखा गया है जैसे कि विवाह विच्छेद, विवाह, पति अथवा पत्नी की मृत्यु, तलाक, परिवार के किसी सदस्य की बीमारी, ससुराल वालों से झगड़ा, घर के किसी सदस्य का गुम हो जाना आदि। इन घटनाओं के को इकाई मूल्य प्रदान

किये गये हैं। सर्वाधिक तनावपूर्ण घटना का इकाई मूल्य 100 रखा गया है। सभी इकाई मूल्यों को जोड़ने पर जो कुल अंक हासिल होते हैं वे तनाव को निर्धारित करते हैं। अधिक प्राप्तांक अधिक तनाव को बताते हैं।

यद्यपि यह सच है कि जीवन की महत्वपूर्ण घटनायें तनाव का कारण होती हैं। परन्तु यह सभी व्यक्तियों पर लागू नहीं होता है। क्योंकि व्यावहारिक तौर पर यह पाया गया है कि कुछ व्यक्तियों के लिए जो घटना अत्यंत महत्वपूर्ण होती है तथा जिससे उन्में गंभीर तनाव होता है वही घटना अन्य व्यक्तियों के लिए तनिक भी महत्वपूर्ण नही होती है अतः उन्हें उसके साथ समायोजन की आवश्यकता ही नहीं होती। ऐसी स्थिति में होम्स एवं राहे द्वारा विभिन्न प्रकार की घटनाओं के लिए निर्धारित इकाई मूल्य विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों के लिए कम अथवा ज्यादा भी हो सकते हैं। फिर भी जीवन की महत्वपूर्ण घटनाएँ तनाव का एक प्रमुख स्रोत हैं इससे इंकार नहीं किया जा सकता है।

**घ) अभिप्रेरकों का द्वन्द** (conflict of motives) – अभिप्रेरकों के बीच संघर्ष भी तनाव का एक महत्वपूर्ण स्रोत है।जब व्यक्ति को दो अभिप्रेरकों में से किसी एक को चुनना होता है तब उसमें संघर्ष उत्पन्न होता है। किसी एक अभिप्रेरक को चुनने का यह संघर्ष कई बार तनाव उत्पन्न कर देता है। उदाहरण के लिए समाज में प्रतिस्पर्धा एवं सहयोग दोनों के ही व्यवहार को बढ़ावा दिया जाता है जिसके कारण व्यक्ति के मन में प्रायः अभिप्रेरकों का संघर्ष छिड़ जाता है, एक ओर जहा प्रथम स्थान प्राप्त करने के लिए प्रतिस्पर्धा आवश्यक होती है वहीं दूसरों का समर्थन स्नेह व प्यार पाने के लिए सहयोग जरूरी होता है। प्रतिस्पर्धा में सहयोग बाधक होता है एवं सहयोग करने पर प्रतिस्पर्धा नहीं की जा सकती है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक कर्ट लेविन ने तीन प्रकार के अभिप्रेरकों के संघर्ष के बारे में वर्णन किया है। वे निम्न हैं।

1. **पहुॅच–पहुॅच संघर्ष** (approach-approach conflict) –जब व्यक्ति के सम्मुख उसकी पसंद के कम से कम दो अवसर होते हैं जिनमें से वह किसी एक को चुन सकता है तो ऐसी स्थिति में वह कौन से अवसर का चुनाव करे इसे लेकर उसके मन में जो संघर्ष उत्पन होता है उसे पहुॅच–पहुॅच संघर्ष कहा जाता है। उदाहरण के लिए यदि किसी व्यक्ति के सम्मुख नौकरी के दो उत्तम प्रस्ताव आते हैं जिनमें से एक प्रस्ताव विदेश में आकर्षक वेतनमान एवं सुविधाओं से संबंधित हो और दूसरा प्रस्ताव घर के पास अच्छे वेतनमान से संबंधित हो तो व्यक्ति के मन में विदेश में रहने व घर में से किसी एक से संबंधित नौकरी को चुनने की समस्या खड़ी हो जाती है। मन दोनों में से किसी को भी छोड़ना नहीं चाहता है परन्तु उसे एक को तो चुनना ही है, अतएव पहुॅच–पहुॅच संघर्ष उत्पन्न हो जाता है जिससे प्रकारान्तर से उसे तनाव का अनुभव होता है।
2. **परिहार–परिहार संघर्ष** (avoidance-avoidance) – जब व्यक्ति के सम्मुख ऐसी दो स्थितियॉ उत्पन्न हों जो नकारात्मक हों अथवा जोखिम भरी हों, जिनमें से उसे कोई भी स्थिति पसंद नहीं हो, और उसे किसी एक को चुनना ही हो तो ऐसी स्थिति में परिहार–परिहार संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। उदाहरण के लिए यदि किसी व्यक्ति को मौत की सजा मिले लेकिन उसे मौत के किन्हीं दो तरीकों जैसे कि जहर खाने से मृत्यु अथवा फांसी में से किसी एक का चयन करना हो तो परिहार–परिहार संघर्ष उत्पन्न हो जायेगा क्योंकि व्यक्ति वस्तुतः मरना सपंद नहीं करता अतएव वह दोनों से ही बचना चाहेगा।
3. **पहुॅच–परिहार संघर्ष** (approach-avoidance) –जब व्यक्ति को एक ही पसंद में वांछनीय एवं अवांछनीय दोनों ही अभिप्रेरकों का सामना करना पड़ता है तब पहुॅच–परिहार संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है। उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति अपनी पत्नी से तलाक लेना चाहता है परन्तु उसे तलाक के उपरान्त गुजारा भत्ता

नहीं देना चाहता तो ऐसी परिस्थति में उसमें पहुॅच–परिहार संघर्ष से तनाव उत्पन्न हो जाता है।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार उपरोक्त तीनों प्रकार के संघर्षों में पहुॅच–परिहार संघर्ष तनाव उत्पत्ति का सर्वाधिक प्रमुख स्रोत है।

**च) कार्य संबंधी स्रोत** (work-related sources) – यहॉ कार्य से तात्पर्य जीविका हेतु किये जाने वाले नौकरी अथवा पेशे से है। कार्य से संबंधित कई प्रकार के विभिन्न कारक होते हैं जो कि व्यक्ति में तनाव उत्पन्न कर सकते हैं। उदाहरण के लिए दिये गये कार्य की प्रकृति का रूचिपूर्ण न होना, परिणामस्वरूप ऐसे कार्य को प्रारम्भ में तो व्यक्ति आराम से संपादित करता है परन्तु बाद में उसमें उसके प्रति ऊब का भाव विकसित हो जाता है, जो लम्बे समय तक जारी रहने पर तनाव उत्पन्न करता है। यदि कार्यस्थल पर व्यक्ति को यह महसूस होता है कि कार्यस्थल का भौतिक वातावरण जैसे कि पानी, हवा, रोशनी, तापमान आदि उचित परिमाण में नहीं है अथवा अनुपयुक्त है तो इससे उसमें तनाव उत्पन्न हो जाता है। इसके अलावा यदि किसी व्यक्ति को उसकी क्षमता से अधिक कार्य दे दिया जाता है जिसे वह समय पर पूरा नहीं कर पाता, अथवा कई भूमिकायें एक साथ निर्वहन हेतु दे दी जाती हैं जिनमें सामंजस्य रख पाना उसके लिए कठिन हो जाता है तब इन कारणों से उसमें तनाव उत्पन्न हो जाता है। कार्य में अपनी भूमिका स्पष्ट नहीं होने पर, योग्यता अनुरूप कार्य नहीं मिलने पर, बॉस एवं अन्य सहयोगियों की अधिक प्रत्याशायें होने पर भी व्यक्ति तनाव का अनुभव करता है।

**छ) प्रर्यावरण संबंधी स्रोत** (environmental sources) – पर्यावरण भी तनाव उत्पत्ति का एक प्रमुख स्रोत है। पर्यावरण पर्यावरणीय बदलावों के रूप में व्यक्ति को तनावग्रस्त करने की सामर्थ्य रखता है। पर्यावरण में घटने वाली प्राकृतिक घटनायें जैसे कि, भूस्खलन, भूकंप, बाढ़, हिमस्खलन, तीव्र आंधी, तूफान, चक्रवात, भारी वर्षा व्यक्ति में तनाव उत्पन्न कर देते हैं। जब लोग ऐसे वातावरण में निवास करते हैं जहॉ भूकंप बार–बार आते रहते हैं अथवा भूस्खलन, बाढ़, तूफान अथवा चक्रवात जैसी घटनायें बार–बार घटती रहती हैं तों उनसे प्रभावित होने की संभावना के कारण व्यक्ति तनावग्रस्त हो जाता है। केवल स्वाभाविक घटनायें ही नहीं बल्कि मनुष्य निर्मित पर्यावरणीय कारक भी व्यक्ति में तनाव उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जैसे रिहायशी इलाकों में शोरगुल प्रदूषण, परमाणु परीक्षण, औद्योगिक कचरा प्रदूषण, वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण आदि।

**अभ्यास प्रश्न 4**–एक व्यक्ति तो विवाह हेतु दो उत्तम लड़कियों के प्रस्ताव आये हैं जिनमें से उसे एक का चयन करना है इससे उसमें तनाव उत्पन्न हो गया है। बताऍ कि यह किस प्रकार के अभिप्रेरण संघर्ष का परिणाम है ?

क–परिहार–परिहार संघर्ष
ख–पहुॅच–पहुॅच संघर्ष
ग–पहुॅच–परिहार संघर्ष
घ–परिहार–पहुॅच संघर्ष

## 4.6 तनाव प्रबंधन

उपरोक्त बिन्दुओं में हमने तनाव के स्वरूप उसके लक्षणों एवं कारणों को जाना आइये अब हम तनाव से निबटने के उपायों एवं प्रबंधन के बारे में जानें।

तनाव प्रत्येक व्यक्ति को अनुभव होता है एवं प्रत्येक व्यक्ति इस तनाव से सफलतापूर्वक निबटने हेतु स्वविकसित तरीके भी अपनाता है। इन तरीकों में समायोजी व्यवहार का प्रदर्शन सबसे पहले होता है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक रीता अग्रवाल के अनुसार तनाव से निबटने हेतु व्यक्ति दो प्रकार के समायोजी व्यवहार का प्रदर्शन करता है। पहला 'उपागम समायोजी योजना'(approach coping strategies) एवं दूसरा 'परिहार

समायोजी योजना(avoidance coping strategies)। पहले वाली योजना मे व्यक्ति आसेधक का सामना करने का प्रयास करता है एवं यह संरचनात्मक तरीका कहलाता है जैसे कि तनाव से निबटने हेतु मीटिंग बुलाना, आसेधक का अध्ययन करना, विशेषज्ञों से परामर्श लेना, जानकारी जुटाना आदि। ये सभी वे तरीके हैं जिनमें समस्या के समाधान पर ध्यान दिया जाता है। इसके विपरीत दूसरी योजना में आसेधक के समाधान में विश्वास नहीं करता है बल्कि एक प्रकार से परिस्थिति से पलायन करने का प्रयास करता है जैसे कि सिरदर्द का बहाना बनाना, पहले से ही छुट्टी ले लेना, सोने चले जाना, मद्यमान, द्रव्य–औषध अथवा धूम्रपान करना अथवा अव्यवस्थित खानपान करना आदि। इन तरीकों से समस्या हल नहीं होती है बल्कि व्यक्ति को कुछ देर के लिए तनावपूर्ण परिस्थिति से बच जाता है।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक लेजारस एवं फोकमेन (1984) ने भी दो तरह के समायोजी व्यवहारों का वर्णन किया है। 1. समस्या केंद्रित समायोजी व्यवहार (problem focused coping) एवं 2. संवेग केंद्रित समायोजी व्यवहार (emotion focused coping)। समस्या केंद्रित समायोजी व्यवहार सीधे–सीधे समस्या पर आक्रमण करता है, यह व्यक्ति को समस्या के प्रति सजग बनाता है एवं समस्या को उसके सम्मुख स्पष्ट करता है। यह घटना के हानिकारक प्रभाव को कम करने का प्रयास करता है। वहीं दूसरी ओर संवेग केंद्रित समायोजी व्यवहार तनावपूर्ण घटना के कारण उत्पन्न भावनात्मक क्षुब्धता की मात्रा को कम करने का एक साधारण प्रयास भर होता है। दोनों ही प्रकार के समायोजी व्यवहार के अपने गुण एवं दोष हैं। समस्या केंद्रित समायोजी व्यवहार जहॉ ऊर्जा एवं समय की दृष्टि से अधिक खर्चीला है परन्तु समस्या का समाधान करता है। वहीं संवेग केंद्रित समायोजी व्यवहार इस दृष्टि से कम खर्चीला दिखलाई पड़ता है परन्तु इसमें समस्या के वास्तविक समाधान की संभावना अति न्यून होती है। रीता अग्रवाल का मानना है कि आत्मविश्वास में कमी होने पर व्यक्ति समस्या केंद्रित समायोजी व्यवहार के स्थान पर संवेग केंद्रित समायोजी व्यवहार अपना लेता है। हालॉकि यदि व्यक्ति यदि अपने दोनों प्रकार के समायोजी व्यवहारों का हानि–लाभ विश्लेषण अथवा मूल्यॉकन करे तथा अपनी गलती को स्वीकार करे तो वह अपने इन तरीकों में परिस्थिति अनुसार बदलाव ला सकता है। अन्ततः समस्या समाधान हेतु व्यक्ति को संवेग केंद्रित समायोजी व्यवहार से समस्या केंद्रित समायोजी व्यवहार की ओर रूख कर लेना चाहिए हालांकि इसके लिए अतिरिक्त प्रयास की जरूरत होती है।

तनाव प्रबंधन के कुछ वैयक्तिक तरीके (some individual based stress management technique) –

शिथिलीकरण (Relaxation) – शिथिलिकरण बहुत से तरीकों से किया जा सकता है इसके लिए किसी विशेषज्ञ के परामर्श अथवा प्रशिक्षण की भी कोई आवश्यकता नहीं होती है। इसके कई व्यावहारिक तरीके हैं। जैसे कि–

1. **संगीत सुनना** (Listening to music) – इसके अन्तर्गत व्यक्ति को अपनी पसंद अनुसार संगीत का चयन करना चाहिए। यह संगीत शास्त्रीय से अर्द्धशास्त्रीय एवं आधुनिक पॉप संगीत हो सकता है। हालॉकि विद्वानों का भरोसा है कि उपकरण संगीत सुनना शिथिलीकरण के लिए उत्तम होता है।
2. **टहलना (**Going for a walk) –यदि कोई व्यक्ति प्रकृति प्रेमी है तो उसके लिए टहलने से बेहतर कोई अन्य तरीका नहीं है। व्यक्ति चाहे पार्क में टहले अथवा प्रदूषण रहित सड़क किनारे दोनों ही स्थितियों मे यह तनाव को दूर भगाता है क्योंकि यह तनाव के परिणामस्वरूप निर्मित ऊर्जा को मुक्त कर देता है।
3. **व्यायाम करना** (exercising) – व्यायाम द्वारा भी तनाव के द्वारा उत्पन्न एवं शरीर में जकड़न उत्पन्न करने वाली ऊर्जा मुक्त होती है, एवं टहलने के समान ही लाभ

देती है। इससे व्यक्ति शिथिलता को प्राप्त होता है तनाव कम हो जाता है वह व्यक्ति पुनः तरोताजा हो जाता है।

4. **कुछ नया करना अलग गति से करना** (do something different at a different speed) – यदि किसी व्यक्ति को प्रतिदिन अतिरिक्त कार्यभार उठाना पड़ता है तो यदि वह दो तीन दिन की छुट्टी मनाये तथा कोई काम न करे तो यह उसके रोजमर्रा के कार्य से एकदम अलग तरह का कार्य होगा एंव वह पुनः तनाव रहित हो तरोताजा हो सकेगा। बच्चों के साथ खेलना, टीवी देखना, उपन्यास पढ़ना, जीवन साथी के साथ बातचीत करना, लॉग ड्राइव पर जाना आदि इसके उदाहरण हैं।
5. **स्वयं का लाड़ करना** (pampering oneself) – भारतीय संस्कृति में व्यक्ति स्वयं से पहले अपने परिवार की आवश्यकताओं एवं पसंद का ध्यान रखता है एवं यह भारतीय गृहणी के संदर्भ में तो दोगुना सत्य है क्योंकि गृहणी के लिए उससे पहले उसका परिवार पति एवं बच्चे ही आते हैं। हालांकि इन सभी की इच्छाओं का ध्यान रखते रखते वह तनाव का शिकार भी हो जाती है। महिला अथवा पुरूष दोनो ही यदि सप्ताह अथवा पंद्रह दिन में कोई एक दिन ऐसा निकालें जिस दिन वे केवल अपना लाड़ करें तो इससे भी उनका तनाव दूर हो सकता है। जैसे कि वे किसी दिन अपने लिए कोई वह वस्तु खरीदें जिसे अपने लिए खरीदने की उनकी दिली ख्वाहिश थी। कुछ नया करें किसी नयी जगह पर जायें इसलिए नहीं कि परिवार चाहता है बल्कि इसलिए कि वे स्वयं चाहते हैं। इसके असंख्य तरीके हैं तब जबकि कोई करना चाहे।
6. **बेंसन रिलेक्सेशन प्रविधि** (Bension relaxation technique) – वे लोग जिन्हे ऑफिस में रिलैक्स होने की जरूरत होती है। बेंसन ने एक ऐसी रिलेक्सेशन प्रविधि विकसित की है जिसे कि भारतीय ध्यान का पश्चिमी स्वरूप कहा जा सकता है। इसका अभ्यास आफिस एवं घर दोनों ही जगहों पर किया जा सकता है। इसमें केवल 15 मिनट की जरूरत होती है। इसे खाना खाने के दो घंटे बाद किया जा सकता है।

**समय प्रबंधन** (Time management) – हम में से बहुत से लोग सामान्यतया इसलिए तनावग्रस्त हो जाते हैं क्योंकि सही से अपने समय का प्रबंधन नहीं करते हैं। हम में से कुछ लोग 28 घंटों में किये जाने वाले कार्य को 24 घंटे में निपटाने की कोशिश करते हैं एवं कुछ लोग बहुत सारा समय बर्बाद कर देते हैं एवं कार्य पूरा न हो पाने के कारण तनावग्रस्त हो जाते हैं। यदि व्यक्ति प्रभावशाली तरीके से समय प्रबंधन करना सीख ले तो वह तनाव का काफी कुशलतापूर्वक समाना कर सकता है। समय प्रबंधन के कुछ महत्वपूर्ण सूत्रों में निम्नांकित सम्मिलित हैं–

1. प्रतिदिन किये जाने वाले कार्यों की सूची तैयार करें।
2. कार्यों की प्राथमिकतायें तय करें।
3. प्रमाद का त्याग करें।
4. कार्य को बॉटें।
5. इन्तजार के समय को अपने कार्य के समय में तब्दील करें। असामान्य तरीके से हम में से बहुत से लोगों का समय रेलवे स्टेशन पर, डॉक्टर के क्लीनिक में, ऑफिस में, लाउन्ज में, एयरपोर्ट पर इन्तजार में व्यय होता है। इस समय का उपयोग बुद्धिमानीपूर्वक चिठ्ठियों का जवाब देने में, अखबार पढ़ने में, पुस्तक पढ़ने में आदि हल्के कार्यों को पूरा करने में किया जा सकता है। इससे इन कार्यों के लिए अतिरिक्त समय निकालने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी एवं समय भी बचेगा।
6. लोगों से मिलने जुलने के लिए निर्धारित समय की व्यवस्था बनायें।

7. रीता अग्रवाल के अनुसार समय प्रबंधन के तीन महत्वपूर्ण है।
   इसे करें ( यदि यह जरूरी हो) –Do it (if it is important)
   कार्य को बॉटें (यदि कोई दूसरा इसे करने में सक्षम हो) – Delegate it (if someone else is capable of doing it)
   इसे नष्ट करें ( करने में होने वाली परेशानी अथवा दूसरों को कार्य सौंपने पर भी यदि लाभ न होने की संभावना हो) - Destroy it (if it is not worth the trouble of doing or delegating it)

**स्वास्थ्य** (health) –स्वयं को स्वस्थ रखें एवं इसके लिए जीवन में स्वस्थ जीवनशैली का समावेश करें। इसके लिए आप भारतीय आयुर्वेद में वर्णित शारीरिक मानसिक स्वास्थ्य में उन्नति हेतु वर्णित नियमों का पालन कर सकते हैं। चरक संहिता में महर्षि चरक ने सदाचार हेतु सद्वृत्त एवं उत्तम स्वास्थ्य हेतु स्वस्थवृत्त का वर्णन किया है। सद्वृत्त के अनुसार व्यक्ति को ईश्वर, गुरू एवं बड़ों के प्रति श्रद्धा एवं सम्मान का भाव रखना चाहिए, तथा जरूरतमंदों की सहायता करनी चाहिए। दूसरों से ईर्ष्या नही करनी चाहिए। निर्णय क्षमता को बढ़ाना चाहिए। संयम का पालन करना चाहिए। जीवन के सुख दुख से विचलित नहीं होना चाहिए। स्वस्थवृत्त में रितुचर्या एवं दिनचर्या का वर्णन किया गया है। इसमें व्यायाम, आहार , विहार एवं चर्या पर जोर दिया गया है। इनका भली भांति पालन करने से व्यक्ति मौसम में होने वाले बदलावों के कारण तनाव ग्रस्त होने से बच सकता है तथा सदाचार का पालन करते रहने से मानसिक शांति बनी रहती है।

**अच्छी निद्रा लें** (take a good sleep) – तनाव से बचने के लिए अच्छी निद्रा लेने की आदत डालनी चाहिए। निद्रा ही वह स्थिति है जिसमें व्यक्ति के शरीर की मरम्मत होती है अर्थात शरीर को पुनः तरोताजा बनाने की प्रक्रिया है निद्रा। एक व्यक्ति को कम से कम 7 घंटे की निद्रा अवश्य लेनी चाहिए।

**सामाजिक बनें (**be social)– मनुष्य स्वभावतः एक सामाजिक प्राणी है। अतएव उसे अपने व्यवहार में इसकी अभिव्यक्ति करनी चाहिए। सामाजिक होने से व्यक्ति को अपने विचारों एवं भावों की अभिव्यक्ति का अवसर मिलता है जिससे व्यक्ति की भावनात्मक पीड़ा कम हो जाती है। लोगों का सहयोग एवं समर्थन मिलने से व्यक्ति तनावपूर्ण परिस्थितियों का सामना आसानी से करने में सक्षम हो जाता है।

योग एवं योगिक क्रियाओं को जीवन में अपनायें –महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र में अष्टांगयोग का वर्णन किया है जिसमें योग के आठ अंग बताये गये हैं ये निम्न हैं यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि। इनमें प्रथम चार बहिरंग एवं अंतिम चार अन्तरंग योग के अन्तर्गत आते हैं। प्रथम चार जहॉ स्वरूप एवं क्रिया में स्थूल हैं वही अंतिम चार क्रिया में सूक्ष्म। इनको जीवन में अपनाने से व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक शांति तो प्राप्त करता ही है बल्कि उसे आध्यात्मिक लाभ भी प्राप्त होते हैं।

**अभ्यास प्रश्न 5**– निम्नलिखित में से किसने समस्या केंद्रित समायोजी व्यवहार की व्याख्या की है–

क– हैस सेली
ख–लेजारस
ग–रीता अग्रवाल
घ–बेंसन

## 4.7 सारांश

तनाव जीवन का अभिन्न अंग है।तनाव जीवन में उत्पन्न चुनौतियों के मूल्यॉकन के उपरान्त उसके प्रति की गयी एक विशेष अनुक्रिया होती है जिसके शारीरिक, मानसिक

प्रभाव होते हैं। तनाव मुख्य रूप में दो प्रकार का होता है यूस्ट्रेस एवं डिस्ट्रेस। तनाव के न केवल शारीरिक प्रभाव होते हैं बल्कि इसके संज्ञानात्मक, संवेगात्मक एवं व्यवहारात्मक प्रभाव भी होते हैं। कुल मिलाकर तनाव एक बहुआयामी प्रक्रिया है। तनाव के बहुत से कारणों से होता है, कुंठा, दैनिक जीवन की उलझनें, अभिप्रेरकों का संघर्ष, कार्य, वातावरण, पर्यावरण, जीवन की महत्वपूर्ण घटनायें इसका प्रमुख स्रोत होते हैं। समय प्रबंधन, शिथिलिकरण के अभ्यास, अच्छी निद्रा, जीवन में सदवृत्त, स्वस्थवृत्त एवं योग को जीवन को अंग बना लेने एवं समस्या समाधान केंद्रित समायोजी व्यवहार को अपनाने से व्यक्ति तनाव का सामना सफलतापूर्वक कर सकता है।

## 4.8 शब्दावली

**तनाव**(Stress)–'मानसिक प्रक्रियाओं एवं व्यवहार के अध्ययन का विज्ञान ही मनोविज्ञान है।

**यूस्ट्रेस**(Eustress)–जीवन में घटने वाली सकारात्मक घटनाओं जैसे कि उच्च कुल में विवाह होना, अच्छी नौकरी लगना, पुरस्कार प्राप्त होना आदि से उत्पन्न तनाव को सकारात्मक तनाव या अंग्रेजी में यूस्ट्रेस कहा जाता है।

**डिस्ट्रेस**(Distress)–जीवन में घटने वाली नकारात्मक घटनाओं जैसे कि तलाक होगा, नौकरी छूट जाना, सजा मिलना आदि से उत्पन्न तनाव को नकारात्मक तनाव या अंग्रेजी में डिस्ट्रेस कहा जाता है।

**आसेधक**(Stressor)–चुनौती उत्पन्न करने वाली वस्तुओं, घटनाओं एवं परिस्थितियों का आसेधक कहा जाता है।

**तनाव अनुक्रिया**(Stress response)–इन आसेधकों के प्रति की गई प्रतिक्रिया को तनाव जन्य अनुक्रिया कहा जाता है।

**मानसिक प्रक्रियायें** (Mental Processes)–चिंतन, समस्या समाधान, निर्णय, प्रत्यक्षण, विचार आदि मानसिक प्रक्रियाओं के विभिन्न उदाहरण हैं।

**चिंता**(Anxiety) –सामान्य रूप में अतार्किक भय को चिंता कहा जाता है।

स्नायुविकृत चिंता(Neurotic anxiety) –जब चिंता की मात्रा में इतनी वृद्धि हो जाती है कि परिस्थितियों के साथ उसके समायोजन में विकृति होने लगती है, व्यक्ति भय से आशंकित हो जाता है साथ ही उसकी समस्या–समाधान क्षमता का ह्रास होने लगता है तो ऐसी चिंता स्नायुविकृत चिंता कहलाती है।

**अवसाद(**Depression) –अवसाद से तात्पर्य मनोदशा में उत्पन्न उदासी से होता है। दुख, निराशा, निस्सहायता, दोषभाव, रूचि में कमी, अभिप्रेरण में कमी, नींद में कमी अथवा अधिकता आदि इसके प्रमुख लक्षण हैं।

**भावशून्यता**(Apathy) –संवेगों के प्रति उदासीन भाव भावशून्यता कहलाता है।

**अर्जित निस्सहायता** (learned helplessness)–यह निस्सहायता व्यक्ति में तब उत्पन्न होती है जब जीवन की कठिनाइयों से वह स्वयं को घिरा हुआ देखता है तथा उनसे निपट नहीं पाता तथा वह ऐसी ही अन्य कठिनाईयों के संबंध में भी यह सोच लेता है कि इनसे वह अब बच नहीं सकता अतएव वह निस्सहाय महसूस करना सीख लेता है ।

## 4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 –(क)हैंस सेली।
अभ्यास प्रश्न 2 –(घ) क्रोधित हो जाना
अभ्यास प्रश्न 3 –(क) एड्रीनल ग्रंथि।
अभ्यास प्रश्न 4 –(ख) पहॅुच–पहॅुच संघर्ष
अभ्यास प्रश्न 5 –(ख) लेजारस

## 4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

रॉबर्ट ए. बैरोन (2006) साइकोलॉजी, दिल्ली – पियर्सन प्रेंटिस हाल।
सैमुअल वुड एवं एलेन वुड (2000) द इसेंशियल वर्ल्ड ऑफ साइकोलाजी, यू एस ए– एलिन एण्ड बेकन।
पैट मिलनर एवं स्टीफेन पामर (2004) इन्टीग्रेटिव स्ट्रेस काउन्सलिंग, लन्दन –सेज पब्लिकेशन।
स्टीफेन पामर एवं विंडी ड्राइडेन (2002) काउन्सलिंग फॉर स्ट्रेस प्राब्लम, लन्दन – सेज पब्लिकेशन।
डॉ अरूण कुमार सिंह (2010) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, दिल्ली – मोतीलाल बनारसीदास।
रीता अग्रवाल (2001) स्ट्रेस इन लाइफ एण्ड एट वर्क, दिल्ली – सेज पब्लिकेशन्स।
सी.पी. खोखर (2003) स्ट्रेस, कोपींग एण्ड हेल्थ, मेरठ – शलभ पब्लिशिंग हाउस।

## 4.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

## 4.12 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 – तनाव से आप क्या समझते हैं? तनाव के संप्रत्यय पर विभिन्न मनोवैज्ञानिकों के मत का विश्लेषण कीजिए।
प्रश्न 2 – तनाव के मनोवैज्ञानिक एवं शरीरक्रियावैज्ञानिक प्रभावों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
प्रश्न 3 – तनाव के 'सामान्य अनुकूलन संलक्षण' मॉडल का वर्णन कीजिए।
प्रश्न 4 – तनाव उत्पत्ति के कारणों पर प्रकाश डालें।
प्रश्न 5 – तनाव से निबटने के विभिन्न उपायों का वर्णन करें।

# इकाई 5 :–दुर्भीतिः अर्थ, लक्षण, कारण, प्रकार एवं उपचार

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 दुर्भीति का अर्थ एवं अवधारणा
5.4 दुर्भीति के लक्षण
5.5 दुर्भीति के प्रकार
5.6 दुर्भीति के कारण
5.7 दुर्भीति का उपचार
5.8 सारांक्ष
5.9 पारिभाषिक शब्दावली
5.10 स्वमूल्यॉकन हेतु प्रश्न
5.11 सन्दर्भ ग्रन्थ
5.12 निबंधात्मक प्रश्न

## 5.1 प्रस्तावना

दुर्भीति जिसे अंग्रेजी के फोबिया शब्द से जाना जाता है, वस्तुतः चिंता विकृति के प्रमुख प्रकारों में गिना जाता है। चिंता एक संवेग है जिसमें अविवेकपूर्ण नकारात्मक विचारों की श्रृंखला चलती है, तथा व्यक्ति अपने साथ कुछ बुरा होने की नकारात्मक भययुक्त आशंका से ग्रस्त रहता है। जब तक यह अविवेकपूर्ण डर व्यक्ति के नियंत्रण में बना रहता है तब तक सामान्य चिंता के रूप में परिभाषित होता है। यही जब नियंत्रण से बाहर हो जाता है तक चिंता विकृति का रूप ले लेता है जिसकी एक विशेष परिणति दुर्भीति के रूप में होती है। दुर्भीति से ग्रस्त लोगों को आज हम अपने आस–पास आसानी से पा और पहचान सकते हैं, आवश्यकता है बस इसके बारे में जानकारी प्राप्त करने की। दुर्भीति का मुख्य लक्षण भय है एवं भय से हम सभी परिचित हैं अन्तर इतना है कि दुर्भीति एक विशिष्ट प्रकार की भय विकृति है। भय क्यों होता है? भय से सामना कैसे किया जा सकता है? प्रत्येक विद्यार्थी को इन प्रश्नों के उत्तर पाने की जिज्ञासा होती है दुर्भीति रूपी इसी अतार्किक भय के अर्थ, स्वरूप, लक्षण, प्रकार, कारण एवं उपचार से संबंधित सभी जिज्ञासाओं का समाधान आप इस इकाई में पायेंगे यही इस इकाई की विशेषता है।

## 5.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

1 दुर्भीतिका अर्थ समझ सकेंगे।
2 दुर्भीति की विभिन्न परिभाषाओं को जान सकेंगे।
3 दुर्भीति के लक्षणों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे एवं उन्हें पहचानना सीख जायेंगे।
4 दुर्भीति के विभिन्न कारणों से परिचित हो पायेंगे।
5 दुभीर्ति के प्रकारों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
6 दुभीर्ति के उपचार के तरीकों के बारें में जानेंगे।

## 5.3 दुर्भीति का अर्थ एवं अवधारणा

भय एवं चिंता का अनुभव हम सभी लोगों को दिन–प्रतिदिन के जीवन में होता रहता है। बहुत से लोगों को सांपों से ,ऊॅचाई से, खतरनाक तूफान से, बजबजाते कीड़ों से, मधुमक्खियों से, अथवा खतरनाक जानवरों से सामान्य तौर पर डर अवश्य लगता है,

एवं लोग इसे अभिव्यक्त भी करते हैं। ये सभी जीव व परिस्थितियॉ हमारी सुरक्षा के प्रति वास्तविक खतरा उत्पन्न कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में ये हमें वास्तविक रूप में हानि पहुॅचा सकते हैं। हालांकि इन खतरनाक जीवों एवं परिस्थितियों एवं घटनाओं के प्रति हमारी डर रूपी प्रतिक्रिया एक बिन्दु तक हमारे अनुकूलन के दायरे में आती है। परन्तु यदि भय की यह प्रतिक्रिया इतनी अधिक बढ़ जाये कि हमारे दिन प्रतिदिन के कार्यों के निष्पादन को नकारात्मक रूप में प्रभावित करने लगे अथवा तीव्र सांवेगिक, भावनात्मक विक्षुब्धता उत्पन्न करने लगे तो यह फोबिया का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। यह अतार्किक भय जो किसी न किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा परिस्थिति विशेष की उपस्थिति के कारण उत्पन्न होता है तथा दैनिक जीवन के साधारण कहे जाने वाले कार्यों के निष्पादन तक को प्रभावित करने लगता है को ही दुर्भीति कहा जाता है। बहुत से मनोवैज्ञानिकों ने दुर्भीति को परिभाषित किया है इन परिभाषाओं के अवलोकन से हम दुर्भीति के संप्रत्यय को भली भॉति समझ सकते हैं। आइये इन परिभाषाओं के बारे में जाने।

दुर्भीति की परिभाषाऍ –

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक सेलिगमैन एवं रोजेनहान ने अपनी पुस्तक 'एबनॉरमेलिटी' में दुर्भीति को एक सतत भय प्रतिक्रिया के रूप में परिभाषित किया है – उनके अनुसार दुर्भीति सतत् भय प्रतिक्रिया है जो खतरे की वास्तविक के अनुपात से काफी दूर होती है।' ( 'A phobia is a persistent fear reaction that is strongly out of proportion on the reality of the danger' Seligman & Rosenhan, 1998, Abnormality, p 125) दूसरे शब्दों में व्यक्ति को वातावरण में उपस्थित जिस भी उद्दीपक से अपने अस्तित्व के लिए खतरा उत्पन्न होता महसूस होता है उसे वह वास्तविकता के दृष्टिकोण से नहीं देख पाता, उद्दीपक द्वारा उसे हो सकने वाली वास्तविक हानि के अनुमानित मूल्यॉकन तथा व्यक्ति द्वारा किये गये मूल्यॉकन में काफी सार्थक अन्तर होता है आनुपातिक नहीं होता है। उदाहरण के लिए यदि किसी महिला को छिपकली से भय लगता है। तथा वह इसके वजह से जिस भी जगह, कमरा, किचन अथवा स्नानागार में छिपकली के होने की संभावना हो उसमें नहीं जाती है तथा इसकी वजह से वह कमरे में सोती नहीं है, किचन में खाना नहीं पका पाती है अथवा स्नाानागार में स्नान नहीं कर पाती है। तो यह उसकी छिपकली की उपस्थिति के प्रति उसकी सतत् भय प्रतिक्रिया होगी। सामान्य तौर पर छिपकली एक ऐसा जीव है जो कि मनुष्यों के लिए सीधे तौर पर किसी गतिविधि अथवा प्रतिक्रिया के रूप में कोई खतरा उत्पन्न नहीं करती है इसलिए महिला उपरोक्त वर्णित सीमा तकि सतत् रूप से भय की प्रतिक्रिया वास्तविकत खतरे के अनुमान से कहीं अधिक है। अतएव इस महिला को दुर्भीति से ग्रस्त माना जायेगा।

एक विशेष प्रकार के दुर्भीति प्रकार का उदाहरण

नौ साल की उम्र में जेसिका का ऊॅचाई के प्रति डर इतना शक्तिशाली था कि वह इस डर के कारण अपने स्कूल भवन की एक मंजिल से ज्यादा ऊॅचाई पर नहीं जा सकती थी। वह अपने स्कूल के साथियों के साथ फील्ड ट्रिप पर जाने से ही घबरा जाती थी, तथा उसका यह डर तब विभीषिका में बदल जाता था जब उसे यह ज्ञात होता था कि वहॉ सीढ़िया चढ़नी पड़ेंगी। ऐसे ही उसे एक बार अपने साथियों के साथ म्यूजियम जाने पर स्कूल के साथियों के सामने डर एवं शर्मिन्दगी का सामना करना पड़ा। उस म्यूजियम में उसे सीढ़ियॉ चढ़ कर कई तलों तक पर जाना था परन्तु वह दूसरे तल तक ही चढ़ने में सफल रही लेकिन फिर उसे अपने अतार्किक डर की वजह से वहॉ से उतरना पड़ा उतरने में भी उसका भय इतना ज्यादा था कि वह पेट के बल लेट कर ही वह वहॉ से उतर सकी।

बैरोन, मनोविज्ञान, 1992, पृष्ठ – 553

कोमर (2010) के अनुसार – किसी विशिष्ट वस्तु, गतिविधि अथवा परिस्थिति के प्रति स्थायी एवं अकारणीय भय ही दुर्भीति है (' A persistant and unreasonable fear of a particular object, activity or situation.'- Ronald J. Comer : Abnormal Psychology, 2010, p. 134)।

डेविसन एवं नील के अनुसार –'मनोरोगविज्ञानियों के द्वारा दुर्भीति को एक विघटनकारी, भय–जनित परिहार जो किसी विशेष वस्तु अथवा परिस्थिति से उत्पन्न खतरे के अनुपात से अधिकत होता है तथा जिसे पीड़ित व्यक्ति द्वारा आधारहीन समझा जाता है, के रूप में परिभाषित किया है। ('Psychologists define phobia as a disrupting, fear-mediated avoidance, out of proportion to the danger posed by a particular object or situation and indeed, recognized by the sufferer as groundless.'- Davison & Neale : Abnormal Psychology, 1996, p. 130)

मनोवैज्ञानिक बैरोन अपनी पुस्तक 'मनोविज्ञान' में दुर्भीति को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि– 'वस्तुओं एवं घटनाओं के प्रति तीव्र अविवेकपूर्ण भय ही दुर्भीति है'।' (Phobias are intense, irrational fears of objects or events.' - Baron : Psychology, 1992, p. 543)।

डी.एस.एम.–4टी.आर में दुर्भीति को इस प्रकार परिभाषित किया गया है – 'विशिष्ट वस्तु, गतिविधि, या परिस्थिति (दुर्भीति उद्दीपक) का सतत् अतार्किक भय जो कि उससे बचने की बाध्यकारी इच्छा के रूप में परिणत होता है।' ('A persistent, irrational fear of a specific object, activity, or situation (the phobic stimulus) that results in a compelling desire to avoid it. This often leads either to avoidance of the phobic stimulus or to enduring it with dread'. – DSM-IV-TR. 2005, p.826)।

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण सेदुर्भीति से संबंधित कई महत्वपूर्ण बिन्दु स्पष्ट होते हैं –

1 दुर्भीति चिंता विकृति का एक प्रकार है।
2 दुर्भीति में तीव्र अतार्किक भय सतत् बना रहता है।
3 दुर्भीति में विक्षुब्धता की मात्रा इतनी बढ़ जाती है कि पीड़ित दिन प्रतिदिन के कार्यों को ठीक प्रकार से निष्पादित करने में असमर्थता महसूस करता है क्योंकि अतार्किक भय उसकी हिम्मत का ह्रास कर देता है।
4 दुर्भीति किसी भी वस्तु, व्यक्ति, घटना व परिस्थिति के विरूद्ध उत्पन्न हो सकती है।
5 साररूप में किसी भी वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति अथवा के घटना के कारण व्यक्ति में उत्पन्न अतार्किक सतत् भय का आवश्यकता से परे की उस सीमा में पहुॅच जाना जिसके कारण कि उसका दुश्चिंता उत्पन्न हो जाये तथा उसके दैनिक जीवन के क्रियाकलापों का निष्पादन नकारात्मक रूप से प्रभावित होने लगे तो इस प्रकार का भय ही दुर्भीति है।

**अभ्यास प्रश्न 1** –निम्नलिखित में से कौन सा कथन दुर्भीति के संबंध में सत्य है?

क–लम्बे समय तक बनी रहने वाली चिंता है।
ख– उद्दीपक की अनुपस्थिति में दुश्चिंता उत्पन्न करने वाला अतार्किक भय है।
ग–उद्दीपक से जुड़ा दुश्चिंता उत्पन्न करने वाला अतार्किक भय है।
घ–मनोदशा में उदासीहै।

## 5.4 दुर्भीति के लक्षण (Symptoms of phobia)

अमेरिकन साइकियेट्रिक एसोशियेसन (American psychiatric association) ने दुर्भीति के लक्षणों को बिन्दुवार स्पष्ट किया है।

1– किसी विशिष्ट वस्तु अथवा परिस्थिति से इतना अधिक सतत् भय जो वास्तविक खतरे के अनुपात से कहीं अधिक होता है।

2– व्यक्ति को उस विशिष्ट परिस्थिति या वस्तु से सामना होने पर अत्यधिक चिंता या विभीषिका आघात (panic attack) लगना।

3– व्यक्ति में यह समझ बनी रहती है कि उसे आवश्यकता से अधिक भय हो रहा है। उसे अवास्तविकता का भी प्रायः बोध रहता है।

4– व्यक्ति दुर्भीति उत्पन्न करने वाली वस्तु या परिस्थिति से दूर रहना पसंद करता है।

5– अगर उपर्युक्त लक्षण किसी अन्य विशेष रोग से उत्पन्न न हुए हों।

**अभ्यास प्रश्न 2**–निम्नलिखित में से कौन सा संवेग दुर्भीति से संबंधित है?

क–डर

ख– प्रसन्नता

ग–उदासी

घ–क्रोध

## 5.5 दुर्भीति के प्रकार (Types of phobia)

डायग्नोस्टिक मैनुअल फार मेंटल डिस्आर्डर में प्रमुख रूप से दुर्भीति के तीन प्रकारों का वर्णन किया गया है –

(अ) विशिष्ट दुर्भीति(Specific phobia)

(ब) एगोराफोबिया (Agoraphobia)

(स)सामाजिक दुर्भीति (Social phobia)

इनका विस्तृत वर्णन निम्नांकित पंक्तियों में किया गया है–

डी.एस.एम चेकलिस्ट (DSM Checklist)

विशिष्ट दुर्भीति (Specific Phobia)

1. विशिष्ट वस्तु, गतिविधि अथवा परिस्थिति के प्रति स्थायी एवं छाप छोड़ने वाला, अनुपात से कहीं अधिक और अतार्किक तथा कम से कम छः महीने तक डर रहना। (Marked and persistant fear of a specific object, activity or situation that is excessively and unreasonabl, lasting at least six months.)
2. किसी वस्तु के प्रति प्रायः तुरंत उत्पन्न चिंता। (Immediate anxiety usually produced by exposure to the object.)
3. अनुपात से कहीं अधिक एवं अकारणीय डर की पहचान होना। (Recognition that the fear is excessive and unreasonable.)
4. भय उत्पन्न करने वाली परिस्थिति से बचने की कोशिश। (Avoidance of the feared situation.)
5. सार्थक डिस्ट्रेस एवं विघटन (Significant distress and impairment.)

(अ) विशिष्ट दुर्भीति (specific phobia) – विशिष्ट दुर्भीति को ही दुर्भीति के प्रारंभिक अध्ययनों में सामान्य दुर्भीति के रूप में वर्णित किया गया है। विशिष्ट दुर्भीति किसी एक विशिष्ट जीव, वस्तु अथवा परिस्थिति से संबंधित होती है। इससे पीड़ित व्यक्ति में किसी एक विशिष्ट जीव, वस्तु अथवा परिस्थिति की उपस्थिति या उसके अनुमान मात्र से उत्पन्न होती है। उदाहरण के लिए यदि किसी व्यक्ति को कुत्ते से दुर्भीति है तो

उसके नाम लेने मात्र से ही उसमें भय उत्पन्न हो जायेगा एवं दुर्भीति के लक्षण प्रकट हो जायेंगे। सम्पूर्ण दुर्भीति के सभी रोगियों में से केवल 3 प्रतिशत ही विशिष्ट दुर्भीति से पीड़ित पाये जाते हैं।

यह विशिष्ट दुर्भीति भी कई प्रकार की होती है प्रमुख रूप से इसके चार प्रकार हैं–1. पशु दुर्भीति प्रकार, 2. वास्तविक वातावरण दुर्भीति प्रकार, 3. रोग एवं चोट से संबंधित दुर्भीति प्रकार, 4. रक्तदुर्भीति प्रकार।

इनका वर्णन निम्न है।–

1. पशु दुर्भीति (animal phobia)प्रकार – पशु दुर्भीति विशिष्ट दुर्भीति के प्रकारों में सबसे सामान्य प्रकार है। जब किसी व्यक्ति को किसी विशेष पशु अथवा कीटों से अतार्किक एवं असंगत भय उत्पन्न होता है तब उस प्रकार की दुर्भीति को पशु दुर्भीति कहा जाता मनोवैज्ञानिकों के अनुसार यह दुर्भीति पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं में काफी अधिक पायी जाती है तथा इसका प्रारंभ बाल्यावस्था से ही हो जाता है।

कुछ प्रमुख पशु दुर्भीति के प्रकार निम्नांकित हैं–

| | |
|---|---|
| कुत्ता से भय | साइनोफोबिया (Cynophobia) |
| बिल्ली से भय | एलूरोफोबिया (Ailurophobia) |
| कीटों से भय | इन्सेक्टोफोबिया (Insectophobia) |
| मकड़ी से भय | एरेकनोफोबिया (Arachnophobia) |
| घोड़ों से भय | इक्यूनोफोबिया (Equinophobia) |
| चिड़यों से भय | एबिसोफोबिया (Avisophobia) |
| कृन्तकों से भय | रोडेन्टोफोबिया (Rodentophobia) |
| जीवाणुओं से भय | माइसोफोबिया (Mysophobia) |
| सॉपों से भय | ओफिडियोफोबि (Ophidiophobia) |

अरूण कुमार सिंह– आधुनिक असामान्यमनोविज्ञान, 2001, पृष्ठ – 292

2. **वास्तविक वातावरणदुर्भीति प्रकार** (Natural environmenttype phobia) जब व्यक्ति में दुर्भीति प्राकृतिक वातावरण में उपस्थित वस्तुओं अथवा उद्दीपकोंजैसे कि तूफान, ऊॅचे स्थान, पानी, नदी, समुद्र की वजह से उत्पन्न होता है तब उसे प्राकृतिक वातावरण दुर्भीति के अन्तर्गत रखा जाता है। इस दुर्भीति का प्रारम्भ भी बचपनावस्था से ही होता है।

कुछ प्रमुख प्राकृतिक वातावरण दुर्भीति के प्रकार निम्नांकित हैं–

| | |
|---|---|
| ऑधी–तूफान से भय | ब्रौनटोफोबिया (Brontophobia) |
| ऊॅचाई से भय | एक्रोफोबिया (Acrophobia) |
| अॅधेरा से भय | नाइक्टोफोबिया (Nyctophobia) |
| बंद जगहों से भय | क्लाऊस्ट्रोफोबिया (Claustrophobia) |
| अकेलापन से भय | मोनोफोबिया (Monophobia) |
| आग से भय | पायरोफोबिया (Pyrophobia) |
| भीड़ से भय | ऑकलोफोबिया(Ochlophobia) |
| हवाई जहाज में यात्रा से भय | एवियाफोबिया (Aviaophobia) |

अरूण कुमार सिंह, आधुनिक असामान्यमनोविज्ञान, 2001, पृष्ठ – 293

3. **रोग एवं चोट से संबंधित दुर्भीति प्रकार**(Illness and injury phobia) – जब बीमारी, चोट, जख्म या अन्य तरह की शारीरिक परेशानी हो जाने की आशंका मात्र से व्यक्ति में असंगत या अतार्किक भय उत्पन्न हो जाता है तो उसे इस दुर्भीति के प्रकार के अन्तर्गत रखा जाता है। इस प्रकार की दुर्भीति में व्यक्ति में चोट लगने, बीमारी हो जाने, अंग–भंग हो जाने की डर युक्त आशंका उत्पन्न हो जाती है। यह दुर्भीति मुख्य रूप से मध्यावस्था (middle age) मे होती है। इस प्रकार की दुर्भीति के प्रमुख उदाहरणों में मृत्यु दुर्भीति (thanatophobia), कैंसर दुर्भीति (cancerophobia), एवं यौनरोग दुर्भीति (venerophobia) आदि आते हैं।

4. **रक्त दुर्भीति** (Blood phobia)– रक्त को देखने मात्र से अथवा उन परिस्थितियों में जिनमें रक्त दिखने की संभावना होती है जैसे कि किसी को घाव हो जाने पर, कोई दुर्घटना घट जाने पर, मेडिकल जॉच, शल्यचिकित्सा, मरहम–पट्टी आदि के कारण उत्पन्न दुर्भीति को रक्त दुर्भीति के अन्तर्गत रखा जाता है। मनुष्य की कुलजनसंख्या में से तकरीबन चार से पॉच प्रतिशत जनसंख्या में रक्त दुर्भीति पायी जाती है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार महिलाओं में पुरूषों की तुलना में रक्त दुर्भीति के अधिक मामले देखने को मिलते हैं। इसका प्रारम्भ अधिकतर उत्तर बाल्यावस्था में होता है।

**अभ्यास प्रश्न 3–** एक व्यक्ति किसी इमारत की छत पर जाने, पानी की टंकी पर चढ़ने, पहाडों पर चढ़ने की कल्पना मात्र से ही बहुत डर लगता है। बताऍ कि यह निम्नांकित में से दुर्भीति के किस प्रकार के अन्तर्गत आता है ?

क– रक्त दुर्भीति
ख– चोट दुर्भीति
ग– पशु दुर्भीति
घ– प्राकृतिक वातावरण से उत्पन्न दुर्भीति

**(ब) एगोराफोबिया** (Agoraphobia)– एगोराफोबिया दुर्भीति का एक प्रमुख प्रकार है यह विशेष प्रकार की दुर्भीति है जिसका संबंध ऐसे सार्वजनिक स्थानों से होता है जहॉ भीड़–भाड़ होती है अथवा बहुत से अजनबी लोग होते हैं एवं रोगी को यह यकीन होता है कि यदि वह अकेला उन जगहों पर गया तो उसके साथ दुर्घटना घट जाने पर ऐसी जगह पर उसका बचाव संभव नहीं होगा एवं ना ही उसे कोई जल्दी बचाने ही आ पायेगा। ऐसे सार्वजनिक स्थानों में अथवा आम–जगहों में भीड़ भरे बाजार, मेला, यात्री बस, प्लेन अथवा रेल में सफर, आदि प्रमुख हैं। यह दुर्भीति पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं में अधिक पाया जाता है। इसका प्रारंभ प्रायः किशोरावस्था एवं शुरूआती वयस्कावस्था में होता है। दुर्भीति के रोगियों में से 60 प्रतिशत केसेज एगारोफोबिया के पाये जाते हैं।

एगारोफोबिया का सीधा संबंध विभीषिका दौरा (पैनिक अटैक, panic attack) जिसे आतंक का हमला भी कहा जा सकता हैनामक चिंता विकृति से है। प्रायः किसी सार्वजनिक स्थान पर विभीषिका दौरे के बार–बार होने पर तथा किसी प्रकार की मदद उपलब्ध नहीं होने पर व्यक्ति में इस प्रकार के सार्वजनिक स्थानों पर जाने की कल्पना मात्र से डर उत्पन्न होने लगता है तथा यह डर दुर्भीति के रूप में बदल जाता है। इसके परिणामस्वरूप वह ऐसे किसी भी स्थान पर जाने से बचने की कोशिश करता है।

अमेरिकन साइकियेट्रिक एसोसियेशन के मनोविकृति मैन्युअल डी.एस.एम–4 में एगारोफोबिया को को पैनिक अटैक के एक उपप्रकार के रूप में वर्गीकृत किया है तथा इसके दो प्रकारों का वर्णन किया है। पैनिक अटैक की वजह से होने वाला एगारोफोबिया एवं पैनिक अटैक का इतिहास रहित एगारोफोबिया। जीवन में कभी

पैनिक अटैकन होने की स्थिति में भी जब एगारोफोबिया विकसित हो जाता है तो उसे उपरोक्त दूसरे प्रकार में ही रखा जाता है। एगारोफोबिया में पैनिक अटैक के अन्य लक्षणों के अलावा तनाव, डिजीनेस अर्थात् घुमड़ी, थोड़ा–बहुत अवसाद आदि भी देखने को मिलते हैं। आइये अब दुर्भीति के अन्य प्रकार सामाजिक दुर्भीति के बारे में जानकारी प्राप्त करें।

### (स) सामाजिक दुर्भीति (Social phobia)

बहुत से व्यक्तियों में दूसरों से बातचीत करने, अथवा लोगों का सामना करने की परिस्थिति के बारे में सोचने से ही चिंता उत्पन्न होने लगती है। मनोरंजन जगत की प्रसिद्ध गायिका बारबरा स्ट्रीसेन्ड, अभिनेता सर लॉरेन्स ओलीवर, तथा फुटबाल खिलाड़ी रिकी विलियम इन सभी ने कई साक्षात्कारों में यह खुलासा किया कि दर्शकों के समक्ष परफार्मेंस देने से पूर्व उनमें तीव्र चिंता उत्पन्न हो जाती थी। प्रसिद्ध अभिनेता टॉम हैंक एवं शो–होस्ट डेविड लिटरमैन ने भी जीवन में विभिन्न अवसरों पर जनता के समक्ष होनेपर दर्दभरी चिंतायुक्त शर्म का अनुभव होने की बात बतायी है। लोगों के समक्ष उपस्थित होने पर इस प्रकार की चिंता उत्पन्न होने पर इस प्रकार के लोग इनका सामना करने में प्रायः सक्षम साबित होते हैं। परन्तु इसके विपरीत सामाजिक दुर्भीति के रोग की स्थिति में इसका उलट परिणाम देखने में आता है। इसमें सामाजिक परिस्थिति जिसमें अपरिचित लोग सम्मिलित हों या दूसरों के द्वारा मूल्यॉकन किये जाने की संभावना हो आलोचना की संभावना हो, सामाजिक दुर्भीति उत्पन्न हो जाती है। आइये डी.एस.एम में वर्णित सामाजिक दुर्भीति के लक्षणों का निम्न सारणी में अवलोकन करें।

डी.एस.एम चेकलिस्ट (DSM Checklist)

सामाजिक दुर्भीति (Social Phobia)

1. सामाजिक या निष्पादन परिस्थिति जिसमें अपरिचित लोग शामिल हो या दूसरों के द्वारा छॅटनी की संभावना हो के प्रति स्थायी एवं छाप छोड़ने वाला, तथा स्वयं को अपमानित या व्याकुल करने वाला, कम से कम छः महीने तक रहने वाला डर। (Marked and persistant fear of social or performance situations involving exposure to unfamiliar people or possible scrutiny by others, lasting at least six months concern about humiliating or embracing oneself.)
2. समाजिक परिस्थितिका सामना होने पर प्रायःउत्पन्न चिंता। (anxiety usually produced by exposure to the social situation.)
3. अनुपात से कहीं अधिक एवं अकारणीय डर की पहचान होना। (Recognition that the fear is excessive and unreasonable.)
4. भय उत्पन्न करने वाली परिस्थिति से बचने की कोशिश। (Avoidance of the feared situation.)
5. सार्थक डिस्ट्रेस एवं विघटन (Significant distress and impairment.)

सामाजिक दुर्भीति चिंता विकृति का ही एक प्रमुख प्रकार है इसकी शुरूआत प्रायः किशोरावस्था में होती है क्योंकि किशोरावस्था ही वह अवस्था होती है जिसमें व्यक्ति अपनी परिवार से अलग पहचान बनाने की कोशिश करता है तथा इसमें प्रायः उसमें

परिवारजनों से अलग चलने की प्रवृत्ति होती है। इस तरह इसी अवस्था में वह समाज के अन्य लोगों से अंतःक्रिया का सामना करता है। यह विकृति पुरूषों एवं महिलाओं में समान रूप से पायी जाती है। यह चिंता विकृति अन्य अनेक चिंता विकृतियों के साथ होते पायी जाती है। आइये अब एक अभ्यास प्रश्न को हल कीजिए तथा अपनी जानकारी की जॉच कीजिए।

**अभ्यास प्रश्न 4**– निम्नांकित को सुमेलित कीजिए।

(1) ऑधी–तूफान से भय (a) पाइरोफोबिया(Pyrophobia)

(2) आग से भय (b)ब्रौनटोफोबिया(Brontophobia)

(3) मृत्यु से भय (c) मोनोफोबिया (Monophobia)

(4) अकेलापन से भय (d)थैनाटोफोबिया(Thanatophobia)

| | (1) | (2) | (3) | (4) |
|---|---|---|---|---|
| (क) | (a) | (b) | (c) | (d) |
| (ख) | (a) | (c) | (d) | (b) |
| (ग) | (b) | (d) | (a) | (c) |
| (घ) | (b) | (a) | (d) | (c) |

## 5.6 दुर्भीति के कारण(Etiology of Phobia)

अब तक आपने इस इकाई में दुर्भीति का अर्थ लक्षण एवं विभिन्न प्रकारों के संदर्भ में अपनी जानकारी बढ़ाई है। आइये अब दुर्भीति नामक चिंता विकृति की उत्पत्ति के विभिन्न कारणों के बारे में जानें।

दुर्भीति की उत्पत्ति के कारणों पर मनोवैज्ञानिकों एवं मनोचिकित्सकों के द्वारा काफी गहन अध्ययन किया गया है एवं उसके आधार पर विभिन्न सिद्धान्तों के प्रकाश में उनका विश्लेषण भी किया गया है। इस बिन्दु के अन्तर्गत हम चार प्रमुख सिद्धान्तों के प्रकाश में दुर्भीति उत्पत्ति के कारणों की चर्चा करेंगे। ये चार सिद्धान्त निम्न हैं–

(1) मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त
(2) संज्ञानात्मक सिद्धान्त
(3) जैविक सिद्धान्त
(4) व्यवहारात्मक सिद्धान्त

आइये सर्वप्रथम मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त के प्रकाश में दुर्भीति उत्पत्ति के कारणों की चर्चा करें।

(1) **मनोविश्लेशणात्मक सिद्धान्त आधारित कारण** (causes based on psychoanalytical theory) – मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त का प्रतिपादन सर्वप्रथम सिगमण्ड फ्रायड द्वारा किया गया था। तथा फ्रायड ही वह पहले वैज्ञानिक थे जिन्होंने दुर्भीति के कारणों की मनोगत्यात्मक दृष्टि से व्याख्या की। फ्रायड ने चेतना के विभिन्न स्तरों पर इड (उपाहं), ईगो (अहॅ) एवं सुपर ईगो (पराहं) के बीच होने वाली अंतःक्रिया के परिणामों के आधार पर दुर्भीति उत्पत्ति की व्याख्या की। उनके अनुसार जब व्यक्ति में किन्हीं कारणों से चिंता उत्पन्न होती है तब वह उस चिंता को दूर करने के लिए एक विशेष प्रकार का सुरक्षा प्रक्रम (डिफेंस मेकेनिज्म) अपना लेता है। दुर्भीति भी एक प्रकार का सुरक्षा प्रक्रम है। व्यक्ति के मन में उत्पन्न होने वाली चिन्ताओं के मूल में प्रायः इड की अनैतिक इच्छायें होती हैं। अनैतिक इच्छायें वे होती हैं जिन्हें समाज की दृष्टि में घृणित माना जाता है। जब व्यक्ति को यह अहसास होता है कि उसके मन में अनैतिक इच्छायें उत्पन्न हो रही हैं तब उसके मन में चेतना के चेतन स्तर पर चिंता उत्पन्न होने लगती है जिन्हें वह दमित कर बचने का प्रयास करता है जिससे वह मन

की गहराई में कहीं अर्धचेतन अथवा अचेतन में प्रतिस्थापित हो जाती है तथा बाद में अवचेतन रूप में विभिन्न प्रकार की दुर्भीति का स्वरूप ग्रहण कर लेती है। दूसरे शब्दों में व्यवहार में किसी वस्तु अथवा परिस्थिति के प्रति दुर्भीति के रूप में सामने आती है। फ्रायड के अनुसार छोटे बच्चों में बहुधा पायी जाने वाली पशु दुर्भीति बंधियाकरण के अचेतन के डर से संबंधित होती है। बंधियाकरण के बारे में फ्रायड के मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त का अध्ययन कर इसके बारे में आप विस्तृत जानकारी हासिल कर सकते हैं। इनका मत था कि जब अचेतन लैंगिक इच्छाएँ चेतन में प्रवेश करने की कोशिश करती हैं, तो ईगों इन अनैतिक इच्छाओं के वजह से उत्पन्न चिंता को किसी दूसरे वस्तु या उद्दीपक पर स्थानान्तरित कर देता है जो फिर बाद में वास्तव में खतरनाक जैसा प्रतीत होता है। तथा व्यक्ति में दुर्भीति उत्पन्न हो जाती है। दुर्भीति पर संज्ञानात्मक विचारधारा को मानने वाले मनोवैज्ञानिकों ने भी अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है। आइये संज्ञानात्मक दृष्टि से दुर्भीति के कारणों को समझें।

**(2) संज्ञानात्मक सिद्धान्त आधारित कारण** (causes based on cognitive theory)

संज्ञानात्मक विचार धारा के अनुसार किसी भी प्रकार की मनोविकृति के उत्पन्न होने का कारण उसके विचार, विश्वास एवं पूर्वकल्पनाओं में समाहित रहता है। विचारों का स्वरूप, विश्वासों की विवेकपूर्णता एवं पूर्वकल्पनाओं की विषयवस्तु का मनोविकृति होने में अहम् भूमिका होती है। दुर्भीति की सभी परिभाषाओं में अतार्किक भय एवं जिन्दगी के प्रति खतरे की आशंका पर सर्वाधिक जोर दिया गया है। भय की अतार्किकता एवं खतरे का अनुमान अथवा वास्तविक या अवास्तविक मूल्यॉकन दोनों ही संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं से संबंधित हैं। व्यक्ति का अवधान, प्रत्यक्षण, संप्रत्यय रचना उनकी समझ तथा सोचने विचारने की प्रक्रिया ये सभी संज्ञानात्मक प्रक्रियायें हैं। जब इन मानसिक प्रक्रियाओं की दिशा सकारात्मक की अपेक्षा सार्थक रूप से नकारात्मक हो जाती है तब व्यक्ति का अनुमान उसके निर्णय गलत होने लगते हैं। वह गलत विचारों एवं विश्वासों के साथ अपने मन को मिला लेता है परिणाम स्वरूप दुविधा, आशंका उसके मन का घेर लेती हैं एवं एक प्रकार का आन्तरिक चेतनागत भय उसमें व्याप्त हो जाता है जो व्यक्ति विशेष, वस्तु विशेष अथवा परिस्थिति विशेष के प्रति दुर्भीति के रूप में उत्पन्न होने लगता है।

संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं में सूचना संधाधन की प्रक्रिया एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जो कि निर्णय लेने में अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययन में पाया है कि दुर्भीति विकृति से ग्रस्त व्यक्ति परिस्थितियों को या उनसे मिलने वाली सूचनाओं को इस ढंग से संसाधित करते हैं कि उससे उनकी दुर्भीति और भी अधिक मजबूत हो जाती है। निश्चय ही यह संसाधित करने का ढंग नकारात्मक होता है तथा व्यक्ति को उसके विघटन की दिशा में अग्रसारित कर देता है।

**(3) जैविक सिद्धान्त आधारित कारण** (causes based on biological theory)

जैविक सिद्धान्तों में व्यक्ति की मनोविकृति एवं दुर्भीति के लिए दैहिक एवं जैविक कारकों पर अधिक बल दिया जाता है। जैव मनोवैज्ञानिकों के अनुसार एक ही तरह के तनाव एवं चिंता वाली परिस्थितियों से घिरे होने पर भी कुछ व्यक्ति दुर्भीति से ग्रस्त हो जाते हैं एवं कुछ ग्रस्त नहीं होते । इसके कारण के रूप में ये वैज्ञानिक जैविक प्रकार्यों के ठीक ढंग से सम्पन्न नहीं हो पाने को जिम्मेदार ठहराते हैं। इन जैविक कारकों में स्वायत्त तंत्रिका तंत्र (ऑटोनॉमिक नर्वस सिस्टम)तथा आनुवांशिक कारक (जेनेटिक फैक्टर) सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। स्वायत्त तंत्रिका तंत्र जब प्रर्यावरणीय कारणों से बहुत जल्दी उत्तेजित होने लगता है तब स्वायत्त अस्थिरता उत्पन्न होती है। स्वायत्त अस्थिरता वाले मानसिक रोगियों में दुर्भीति के सर्वाधिक लक्षण पाये जाते हैं। वैज्ञानिक गैबी के अनुसार स्वायत्त अस्थिरता काफी हद तक आनुवांशिक रूप से निर्धारित होती है अतएव दुर्भीति में आनुवांशिक कारक भी महत्वपूर्ण होते हैं। कुछ ऐसे अध्ययन हुए हैं

जो स्पष्ट रूप से प्रमाणित करते हैं कि दुर्भीति होने की संभावना उन व्यक्तियों में अधिक होती है जिनके माता–पिता तथा तुल्य संबंधियों में इस तरह की विकृति पूर्व में उत्पन्न हो चुकी हो। हैरिस एवं उनके सहयोगियों (1983) के द्वारा किये गये एक अध्ययन के अनुसार ऐसे व्यक्ति जिनको एगारोफोबिया हो चुका है उनके आनुवांशिक रूप से अति निकट संबंधियों में आनुवांशिक रूप से दूर के संबंधियों की अपेक्षा एगारोफोबिया के होने की संभावना सार्थक रूप से अधिक पायी जाती है। वैज्ञानिक टौरग्रेसन (1983) ने भी अपने अध्ययन में यह स्पष्ट किया है कि एकांगी जुड़वॉ बच्चों में भ्रातीय जुड़वॉ बच्चों की तुलना में एगोराफोबिया की सुसंगतता दर अधिक होती है। उपरोक्त अध्ययन हमें इस निष्कर्ष पर पहुॅचने पर मजबूर करते हैं कि दुर्भीति के अध्ययन में जैविक कारकों की भी अहम् भूमिका होती है।

उपरोक्त सभी विचारधारायें एवं सिद्धान्त दुर्भीति की व्याख्या अपने अपने तरीके से करते हैं परन्तु वैज्ञानिक अध्ययनो के द्वारा सर्वाधिक समर्थन दुर्भीति की व्यवहारवादी व्याख्या को मिला है जिसका वर्णन निम्नांकित है।

(4) **व्यवहार सिद्धान्त पर आधारित कारण** (causes based on behavioural theories)– व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों जैसे कि वॉल्फे एवं किंग का मत है कि दुर्भीति के रोगी पहले किसी वस्तु, परिस्थिति से अथवा अनुबंधन की प्रक्रिया के द्वारा डरना सीखते हैं। एवं जब एक बार इनके प्रति या प्रक्रिया से उसके मन में डर बैठ जाता है तक उससे बचने की प्रक्रिया के रूप में वह उस वस्तु एवं परिस्थिति से बचने के कोशिश करने लगता है एवं बचने के तरीके अपनाने लगता है(Wolfe. 2005 ; King etal., 2004)। हालॉकि इससे प्रकारान्तर में यह विशेष भय उसे और अधिक अपनी गिरफ्त में ले लेता है। दूसरे शब्दों में परिहारी व्यहार अपनाने से दुर्भीति या अतार्किक भय और अधिक बढ़ जाता है।

उपरोक्त व्याख्या से स्पष्ट होता है कि व्यक्ति में दुर्भीति उत्पन्न होने का मुख्य कारण दोषपूर्ण सीखना होता है। इस दोषपूर्ण सीखना की व्याख्या निम्नांकित है –मनोवैज्ञानिकों के अनुसार इस बात के कई प्रमाण हैं कि क्लासिकी अनुबंधन के द्वारा किसी भी व्यक्ति को डरना एवं उसी प्रकार नहीं डरना सिखलाया जा सकता है (Miller, 1948; Mowrer, 1947, 1939)। मनोवैज्ञानिक वाटसन एवं रेनर ने अपने एक प्रसिद्ध प्रयोग में एक छोटे बच्चे एलबर्ट को सफेद चूहों से डरना सिखलाया। इस प्रयोग में वाटसन ने पहले तो कुछ सप्ताह तक एलबर्ट को सफेद चूहे के साथ खेलने एवं खुशी मनाने का मौका दिया। परन्तु उसके बाद प्रयोग के तौर पर जब एलबर्ट चूहे के पास गया तो उसके पीछे स्टील की छड़ से जोर की भय उत्पन्न करने वाली आवाज की गयी। इससे एलबर्ट घबराकर डर गया। इसके बाद यही प्रयोग एलबर्ट के साथ बार बार दोहराया गया एवं परिणामस्वरूप एलबर्ट ने सीखने के युग्म सिद्धान्त के तहत सफेद चूहे की उपस्थिति में उससे डरना सीख लिया। बाद में उसका यह डर सामान्यीकरण की प्रक्रिया के तहत अन्य अनेक सफेद चीजों जैसे कि फर, रूई, खरगोश आदि से भी उत्पन्न होने लगा।

अनुबंधन के अलावा व्यवहार सीखने के एक प्रमुख सिद्धान्त 'मॉडलिंग' के द्वारा भी भय को सीखने की व्याख्या की गयी है। मॉडलिंग के सिद्धान्त का प्रतिपादन मनोवैज्ञानिक एलबर्ट बन्डूरा (1966) द्वारा किया गया है। इसके अनुसार अन्य लोगों को किसी विशेष प्रकार की वस्तु, परिस्थिति अथवा घटना से डरता देखकर अन्य व्यक्ति भी डरना सीख जाते हैं बशर्ते वह वस्तु, परिस्थिति, घटना अथवा डरने वाले व्यक्ति का उनके लिए मूल्य हो अथवा उनसे वे प्रभावित होते हों।

भले ही व्यवहारात्मक सिद्धान्तों एवं आधारित अध्ययनों को दुर्भीति की मुकम्मल व्याख्या के लिए सर्वाधिक समर्थन प्राप्त हुआ हो परन्तु उपरोक्त प्रयोगों की वैधता हेतु किए गए

कुछ प्रयोगों में क्लासिकी अनुबंधन के तहत अथवा मॉडलिंग के द्वारा भय उत्पन्न नहीं किया जा सका है जिससे इन व्याख्याओं के निर्दोष होने की संभावना कम हो जाती है।

अभी तक आपने दुर्भीति की उत्पत्ति के विभिन्न सिद्धान्तों की व्याख्या द्वारा दुर्भीति की उत्पत्ति के कारणों को समझा है आइये अब इससे निपटने के तरीकों की चर्चा करें।

## 5.6 दुर्भीति का उपचार

प्रत्येक सैद्धान्तिक मॉडल अपने अपने तरीके से दुर्भीति के उपचार की विधियों का वर्णन एवं व्याख्या करता है तथा इनकी प्रभावशीलता के समर्थन पर जोर देता है। किन्तु इन सभी सैद्धान्तिक मॉडलों में जिस मॉडल की विधियों सर्वाधिक सफल एवं प्रभावशाली सिद्ध हुयी हैं वह दुर्भीति के उपचार का व्यावहारिक मॉडल है। वस्तुतः दुर्भीति के विभिन्न प्रकारों में भी विशिष्ट दुर्भीति के उपचार में इसकी सफलता का दायरा अन्य सैद्धान्तिक मॉडल आधारित प्रविधियों की तुलना में कहीं अधिक व्यापक पाया गया है। अतएव हम यहॉ पर मुख्य रूप से व्यवहारात्मक विधियों की चर्चा करेंगे।

**विशिष्ट दुर्भीति का उपचार** – विशिष्ट दुर्भीति के उपचार में एक्सपोजर तकनीकें सर्वाधिक सफल साबित हुई हैं। इन एक्सपोजर तकनीकों में असंवेदीकरण (डीसेन्सिटाइजेशन), फ्लडिंग एवं मॉडलिंग प्रमुख हैं। चूँकि इन सभी तकनीकों में व्यक्ति को डर उत्पन्न करने वाले उद्दीपक के सम्मुख एक्सपोज किया जाता है अतएव इन्हें सम्मिलित रूप से एक्सपोजर तकनीक के अन्तर्गत रखा जाता है। इन तकनीकों का वर्णन निम्नांकित है।

**क्रमबद्ध असंवेदीकरण (सिस्टमेटिक डीसेन्सटाइजेशन)** – इस तकनीक का विकास जोसेफ वोल्पे द्वारा किया गया है। इस तकनीक के द्वारा जिन व्यक्तियों का इलाज किया जाता है उन्हें क्रमानुसार धीरे धीरे चिंता उत्पन्न करने वाली परिस्थिति से सामना कर भय से मुक्त होना सिखलाया जाता है। इसके अन्तर्गत सर्वप्रथम व्यक्ति द्वारा चिकित्सक की सहायता से भय उत्पन्न्न करने वाली परिस्थिति से जुड़ी सभी घटनाओं को क्रमानुसार सर्वाधिक न्यून भय उत्पन्न करने वाली घटना से लेकर अधिकतम भय उत्पन्न करने वाली घटना के क्रम में व्यवस्थित कर सारणी विनिर्मित की जाती है। इसके उपरान्त द्वितीय चरण में इन सभी घटनाओं से होने वाले भय से मुक्त होने की प्रक्रिया के रूप में पेशीय शिथिलीकरण (मसल्स रिलेक्सेशन) का अभ्यास कराया जाता है। वोल्पे के अनुसार चूँकि भय एवं रिलेक्स अवस्था दोनों एक ही समय पर साथ–साथ नहीं हो सकते हैं। अतएव एक की अनुपस्थिति में दूसरा उसके स्थानापन्न का रूप ले लेता है। इस सिद्धान्त को वोल्पे ने रेसीप्रोकल इन्हिबिशन प्रिंसिपल का नाम दिया। इसी के आधार पर वोल्पे ने कहा कि यदि दुर्भीति से पीड़ित व्यक्ति को सीखने के क्लासिकी अनुबंधन के माध्यम से डर उत्पन्न करने वाली परिस्थिति से रिलेक्स अवस्था को युग्मित करना सिखला दिया जाये तो वह चिंता उत्पन्न करने वाली परिस्थिति से नहीं डरना सीख जायेगा तथा यह उसके व्यवहार में एक सकारात्मक एवं स्वास्थ्यपरक परिवर्तन होगा। परन्तु इसके लिए जरूरी है कि व्यक्ति को रिलेक्स करना आता हो। अतएव वोल्पे ने पेशीय शिथिलीकरण के प्रशिक्षण पर जोर दिया। क्रमबद्ध असंवेदीकरण की इस प्रक्रिया के अन्तर्गत पेशीय शिथिलीकरण का अभ्यास हो जाने के बाद रोगी को भय सारणी में वर्णित प्रथम परिस्थिति सामने एक्सपोज किया जाता है। दुर्भीति के रोगी में परिस्थिति से सामना होते ही भय उत्पन्न होने लगता है इसी समय पर उसे पेशीय शिथिलीकरण की प्रक्रिया शुरू करने के लिए चिकित्सक द्वारा निर्देश दिया जाता है इसका बार बार अभ्यास करने पर उक्त परिस्थिति से व्यक्ति भयमुक्त होना सीख जाता है। इसके उपरान्त भय सारणी में वर्णित दूसरी परिस्थिति में व्यक्ति को भयमुक्त होने के लिए पेशीय शिथिलीकरण का अभ्यास कराया जाता है, एवं यह प्रक्रिया भय सारणी

में लिखित अधिकतम भय उत्पन्न करने वाली परिस्थिति से भयमुक्त होने तक चलती रहती है।

क्रमबद्ध असंवेदीकरण की यह प्रविधि दो प्रकार से उपयोग में लायी जा सकती है। प्रथम **इन विवो डीसेन्सिटाइजेशन** के रूप में एवं द्वितीय **कोवर्ट डीसेन्सिटाइजेशन** के रूप में। इन विवो डीसेन्सिटाइजेशन में व्यक्ति को चिंता–भय उत्पन्न करने वाली वास्तविक परिस्थिति अथवा उद्दीपक का सामना करना पड़ता है, तथा कोवर्ट डीसेन्सिटाइजेशन में यह प्रक्रिया कल्पना के माध्यम से पूरी की जाती है। इसके अन्तर्गत चिकित्सक द्वारा चिंता उत्पन्न करने वाली परिस्थिति का काल्पनिक चित्रण किया जाता है तथा भय उत्पन्न होने पर रोगी को पेशीय शिथिलीकरण का अभ्यास करने को कहा जाता है। दोनों ही प्रकार की विधियों में व्यक्ति क्रमबद्ध रूप से भय उत्पन्न करने वाली प्रत्येक परिस्थिति से भय मुक्त होना सीखता है तथा असंवेदीकरण के कई सत्र होने के उपरान्त वह दुर्भीति से पूरी तरह मुक्त हो जाता है।

**फ्लडिंग** – विशिष्ट दुर्भीति से निपटने की इस विधि में क्रमबद्ध असंवेदीकरण की प्रक्रिया से उलट प्रक्रिया अपनायी जाती है इस विधि में अधिकतम चिंता–भय उत्पन्न करने वाली परिस्थिति में व्यक्ति को एक्सपोज कर दिया जाता है तथा उसे तब तक उस परिस्थिति में रहना पड़ता है जब तक कि उसके भय का स्तर कम न हो जाये। इस विधि में रोगी को किसी भी प्रकार के शिथिलीकरण का अभ्यास नहीं कराया जाता है। यह विधि इस सिद्धान्त पर कार्य करती है कि जब व्यक्तियों को भय उत्पन्न करने वाली परिस्थिति से बार बार यथोचित समय तक सामना कराया जाता है तथा जब उसे उससे कोई हानि नहीं होती है तब व्यक्ति यह समझ जाता है तथा अनुभव कर लेता है कि चिंता उत्पन्न करने वाली यह परिस्थिति के प्रति उसका नजरिया तार्किक रूप से गलत था तथा यह परिस्थिति उतनी हानिकारक अथवा खतरनाक नहीं है जितना वह उसे समझता है। चूँकि इस विधि में रोगी को अधिकतम भय उत्पन्न करने वाली परिस्थिति में प्रारम्भ में ही सामना करा दिया जाता है अतएव इस प्रकार वह व्यक्ति भय की बाढ़ से घिर जाता है इसीलिए इस विधि को फ्लडिंग नाम से पुकारा जाता है। इस विधि में वास्तविक एवं काल्पनिक दोनों ही प्रकार की चिंता उत्पन्न करने वाली परिस्थिति का उपयोग चिकित्सा हेतु किया जा सकता है।

**मॉडलिंग** – इस विधि में उपरोक्त दोनों ही विधियों से भिन्न प्रकार का तरीका दुर्भीति के उपचार हेतु अपनाया जाता है। इस विधि में रोगी के बजाय सर्वप्रथम चिकित्सक दुर्भीति उत्पन्न करने वाली परिस्थिति का सामना करता है। वह रोगी को चिंता उत्पन्न करने वाली परिस्थिति के सम्मुख उपस्थित हो निडर रहकर उसका सामना करना सिखलाता है। इसके अन्तर्गत चिकित्सक वास्तव में रोगी के सम्मुख एक मॉडल की भूमिका निभाता है अतएव इस विधि को मॉडलिंग नाम दिया गया है। इस विधि का प्रतिपादन अल्बर्ट बण्डूरा द्वारा किया गया है। चिकित्सक द्वारा चिंता उत्पन्न करने वाली परिस्थिति में मॉडलिंग कर निडर रहना प्रदर्शित करने के उपरान्त रोगी को भी वैसा ही व्यवहार उक्त परिस्थिति में करने के लिए निर्देशित किया जाता है। बार बाद इसका अभ्यास करने के परिणामस्वरूप रोगी दुर्भीति से मुक्त हो जाता है। यह विधि भी दो प्रकार से इस्तेमाल में लायी जाती है। पार्टिसिपेन्ट मॉडलिंग एवं नॉन पार्टिसिपेन्ट–ऑब्जरवेशनल मॉडलिंग। नॉन पार्टिसिपेन्ट–ऑब्जरवेशनल मॉडलिंग में व्यक्ति केवल चिकित्सक के प्रदर्शन को बार–बार देखकर ही यह धारणा विनिर्मित करता है कि उसका भय आधारहीन है, एवं वास्तव में परिस्थिति इतनी हानिकारक नहीं है जितना कि उसने समझा था।

**एगोराफोबिया का उपचार** – एगोराफोबिया के उपचार में मनोचिकित्सक बहुत वर्षों बाद भी कोई बहुत गहरी छाप नहीं छोड़ पाये हैं जिससे यह कहा जा सके कि विशिष्ट दुर्भीति के समान ही एगोराफोबिया का उपचार की भी सफल तकनीक खोजी जा चुकी

है। हालॉकि अपना घर से बाहर निकलकर सार्वजनिक स्थल पर हो सकने वाली परेशानी के अनुमानित भय के इस दुर्भीति के उपचार हेतु ऐसी कई प्रविधियों का विकास किया जा चुका है जिनसे पूरी तरह नही तो काफी हद तक इस चिंता को कम किया जा सकता है। इन प्रविधियों के विकास में भी व्यवहारवादी चिकित्सक ही अग्रगामी रहे हैं एवं उन्होंने इस दुर्भीति के उपचार के लिए एक्सपोजर तकनीक का उपयोग किया है। इसके अन्तर्गत चिकित्सक रोगी को उसके घर से क्रमिक रूप से कदम दर कदम बाहर निकलने के लिए प्रेरित करते हैं तथा धीरे–धीरे सार्वजनिक स्थल तक ले जाते हैं। इस हेतु चिकित्सक बहुत बार सपोर्ट एवं रीजनिंग का भी प्रयोग करते हैं।

एगारोफोबिया के उपचार हेतु उपयोग की जाने वाली एक्सपोजर तकनीक के साथ कुछ अन्य विशेष युक्तियों को भी समावेशित किया जाता है, इनमें **सपोर्ट ग्रुप** एवं **होम बेस्ड सेल्फ–हेल्प प्रोग्राम** का उपयोग रोगी को स्वयं के उपचार हेतु हरसंभव प्रयास करने हेतु अभिप्रेरित करने के लिए किया जाता है।

**सपोर्ट ग्रुप** एप्रोच की विधि में एगारोफोबिया से ग्रस्त लोगों का एक छोटा समूह एक साथ एक्सपोजर सत्र हेतु घर से बाहर निकलता है यह सत्र कई घंटों तक चलता है। इस दौरान समूह के सदस्य एक दूसरे को सपोर्ट करते हैं एवं अंततः उनके एक दूसरे साथ दो दो के समूह बन जाते हैं जो कि अब समूह की सुरक्षा से बाहर निकलकर एक्सपोजर टास्क को अपने आप परफार्म करते हैं।

**होम बेस्ड सेल्फ–हेल्प प्रोग्राम** में क्लीनिशियन रोगी एवं उसके परिवार वालों को एक्सपोजर थेरेपी को स्वयं निष्पादित करने हेतु निर्देश देता है। तकरीबन 60 से लेकर 80 प्रतिशत तक एगारोफोबिया के रोगी इन चिकित्सा विधियों के माध्यम से घर से बाहर सार्वजनिक स्थल तक जा पाने में समर्थ होते हैं एवं उनकी यह सुधरी दशा काफी लम्बे समय तक कायम रहती है। वस्तुतः यह पाया गया है कि इन चिकित्सा विधियों के प्रभाव पूर्णता को प्राप्त नहीं होता है बल्कि आंशिक होता है। अतएव दुर्भाग्य से एगारोफोबिया के पुनः प्रभावी हो जाने की संभावना सदैव बनी रहती है। एवं बहुत से रोगी इससे पुनः पीड़ित हो जाते हैं। हालॉकि इन रोगियों को पुनः उपचार देने पर यह बहुत शीघ्र ही एगारोफोबिया से उबर जाते हैं।

**सामाजिक दुर्भीति (सोशियल फोबिया) का उपचार** – रोजेनबर्ग एवं उनके सहयोगियों के अनुसार पिछले 15 वर्षों में ही सामाजिक दुर्भीति के उपचार में मनोचिकित्सक सफलता प्राप्त कर पाये हैं उससे पूर्व तो इसके उपचार के बारे में सोचना भी असंभव सा प्रतीत होता था। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक बेक के अनुसार इसके दो प्रमुख कारण हैं कि इन पिछले वर्षों में मनोवैज्ञानिक दो महत्वपूर्ण बातें काफी हद तक समझ चुके हैं जिनमें पहली यह है कि सोशियल फोबिया के रोगी में भय उफान पर होता है। एवं दूसरी यह कि इस रोग से पीड़ित व्यक्तियों बातचीत शुरू करने की कुशलता की कमी होती है, अपनी जरूरतें दूसरों को बता नहीं पाते एवं दूसरों की अपेक्षाओं को पूरा नहीं कर पाते हैं। इन बातों से परिचित हो जाने के उपरान्त आज के चिकित्सक रोगियों को इन कौशलों का प्रशिक्षण देने के साथ साथ सर्वप्रथम उफनते भय का कम करने पर जोर देते हैं एवं उपचार में आशातीत सफलता प्राप्त करते हैं।

मनोवैज्ञानिक रविन्द्रन एवं स्टीन के अनुसार सामाजिक दुर्भीति को कम करने में एन्टी–एन्जाइटी ड्रग्स एवं बेन्जाडाइएजोपीन की तुलना में **एन्टी–डिप्रेसेन्ट ड्रग्स** काफी कारगर साबित होती हैं। इसके अलावा साइकोथेरेपी की कई विधियॉ भी इन ड्रग्स के समान ही कारगर सिद्ध हुई हैं। शोध मनोवैज्ञानिक अबरामोविट्ज के अनुसार उन रोगियों में जिन्हें एन्टी–डिप्रेसेन्ट ड्रग्स साइकोथेरेपी के साथ प्रदान की जाती है उनमें इस सामाजिक दुर्भीति से पुनः पीड़ित होने की संभावना केवल ड्रग्स लेने वाले रोगियों की तुलना में न के बराबर होती है। सामाजिक दुर्भीति के इलाज के लिए जिन

साइकोथेरेपी प्रविधियों का सर्वाधिक प्रयोग किया जाता है उनमें **एक्सपोजर थेरेपी** एवं **कॉग्निटिव थेरेपी** प्रमुख हैं। एक्सपोजर थेरेपी के अन्तर्गत सिस्टमेटिक डीसेन्सिटाइजेशन तकनीक का सर्वाधिक प्रयोग किया जाता है। एवं कॉग्निटिव थेरेपी में व्यक्ति के नकारात्मक विचारों को सकारात्मक विचारों से प्रतिस्थापित कर उसके विश्वासों को मजबूत बनाने पर जोर दिया जाता है। प्रसिद्ध संज्ञानात्मक चिकित्सक एलबर्ट एलिस ने सोशियल फोबिया के उपचार में **रेशनल–इमोटिव थेरेपी** का सफलता पूर्वक इस्तेमाल किया है।

सामाजिक दुर्भीति को पूरी तरह दूर करने के लिए चिकित्सकों द्वारा व्यावहारिक कुशलताओं के प्रशिक्षण पर जोर दिया जाता है। इस हेतु कई तकनीकों का उपयोग किया जाता हैं। इनमें मॉडलिंग, रिहर्सल, पुनर्बलन, फीडबैक एवं एसर्टिवनेस ट्रेनिंग प्रमुख है।

**अभ्यास प्रश्न 5–** निम्नलिखित में से किस प्रविधि का इस्तेमाल व्यावहारिक कौशल सिखलाने के लिए किया जाता है–

क– एसर्टिवनेस ट्रेनिंग
ख– सिस्टेमेटिक डीसेन्सीटाइजेशन
ग– फ्लडिंग
घ– रेशनल–इमोटिव थेरेपी

## 5.7 सारांश

किसी भी वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति अथवा के घटना के कारण व्यक्ति में उत्पन्न अतार्किक सतत भय का आवश्यकता से परे की उस सीमा में पहुॅच जाना जिसके कारण कि उसका दुश्चिंता उत्पन्न हो जाये तथा उसके दैनिक जीवन के क्रियाकलापों का निष्पादन नकारात्मक रूप से प्रभावित होने लगे तो इस प्रकार का भय ही दुर्भीति है। डायग्नोस्टिक मैनुअल फार मेंटल डिस्आर्डर में प्रमुख रूप से दुर्भीति के तीन प्रकारों का वर्णन किया गया है –(अ) विशिष्ट दुर्भीति(Specific phobia) (ब) एगोराफोबिया (Agoraphobia) (स)सामाजिक दुर्भीति (Social phobia)। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि दुर्भीति क्लासिकी अनुबंधन अथवा मॉडलिंग की प्रक्रिया के माध्यम से व्यक्ति द्वारा सीखा गया व्यवहार होता है जिसे वह परिहारी व्यवहार द्वारा सशक्त करता रहता है।

फोबिया के उपचार हेतु कई विधियों में सर्वाधिक सफल विधि व्यवहारात्मक चिकित्सा विधि है। जिसकी कई तकनीकों का इस्तेमाल आजकल दुर्भीति के उपचार हेतु सफलता पूर्वक किया जा रहा है। इन तकनीकों में एक्सपोजर थेरेपी के अन्तर्गत सिस्टेमेटिक डीसेन्सीटाइजेशन, फ्लडिंग, प्रमुख हैं। इसके अलावा मॉडलिंग, तथा अन्य व्यवहारात्मक कौशल प्रशिक्षणों का प्रयोग भी किया जाता है। सोशियल फोबिया के उपचार में एन्टीडिप्रेसेन्ट ड्रग्स एवं विहेवियरण स्किल ट्रेनिंग की अहम् भूमिका होती है।

## 5.8 शब्दावली

**चिंता विकृति**(Anxiety disorder)–'चिंता विकृति से तात्पर्य वैसे विकृति से होता है जिसमें क्लायंट या रोगी में अवास्तविक चिंता एवं अतार्किक भय की मात्रा इतनी अधिक होती है कि उससे उसकी सामान्य जिन्दगी के व्यहार में असामंजस्य बढ़ जाता है इसमें चिंता की अभिव्यक्ति व्यक्ति द्वारा पूर्णतया स्पष्ट रूप में की जाती है।

**दुर्भीति**(Phobia)–किसी विशिष्ट वस्तु, गतिविधि अथवा परिस्थिति के प्रति स्थायी एवं अकारणीय भय ही दुर्भीति है।

**विशिष्ट दुर्भीति**(Specific phobia)–विशिष्ट दुर्भीति को ही दुर्भीति के प्रारंभिक अध्ययनों में सामान्य दुर्भीति के रूप में वर्णित किया गया है। विशिष्ट दुर्भीति किसी एक विशिष्ट जीव, वस्तु अथवा परिस्थिति से संबंधित होती है। इससे पीड़ित व्यक्ति में

किसी एक विशिष्ट जीव, वस्तु अथवा परिस्थिति की उपस्थिति या उसके अनुमान मात्र से उत्पन्न होती हैं।

**एगोराफोबिया**(Agoraphobia)–एगोराफोबिया दुर्भीति का एक प्रमुख प्रकार है यह विशेष प्रकार की दुर्भीति है जिसका संबंध ऐसे सार्वजनिक स्थानों से होता है जहॉ भीड़–भाड़ होती है अथवा बहुत से अजनबी लोग होते हैं एवं रोगी को यह यकीन होता है कि यदि वह अकेला उन जगहों पर गया तो उसके साथ दुर्घटना घट जाने पर ऐसी जगह पर उसका बचाव संभव नहीं होगा एवं ना ही उसे कोई जल्दी बचाने ही आ पायेगा।

**सामाजिक दुर्भीति** (Social phobia)–सामाजिक परिस्थिति जिसमें अपरिचित लोग सम्मिलित हों या दूसरों के द्वारा मूल्यॉकन किये जाने की संभावना हो आलोचना की संभावना हो, से उत्पन्न दुर्भीति को सामाजिक दुर्भीति कहा जाता है।

**क्लासिकी अनुबंधन**(classical conditioning)–जब किसी तटस्थ उद्दीपक को विशेष अनुक्रिया उत्पन्न करने वाले उद्दीपक के साथ इस प्रकार अनुबंधित किया जाता है कि व्यक्ति उस उद्दीपक के प्रति की जाने वाली अनुक्रिया तटस्थ उद्दीपक के प्रति करना सीख लेता है तो इसे क्लासिकी अनुबंधन की संज्ञा दी जाती है।

**मॉडलिंग**(Modelling) –दूसरों के द्वारा किये जा रहे व्यवहार को देखकर अथवा उसके बारे में सुनकर उसका अनुकरण करना सीख लेना मॉडलिंग कहलाता है।

**क्रमबद्ध असंवेदीकरण** (Systematic Desensitization) – भय उत्पन्न करने वाली परिस्थिति से धीरे धीरे असंवेदित होना तथा भय की जगह पर शिथिलीकरण का क्लासिकी अनुबंधन के माध्यम से प्रतिस्थापित होने की प्रकिया जिससे दुर्भीति का उपचार किया जाता है, क्रमबद्ध असंवेदीकरण कहलाती है।

**फ्लडिंग**(Flooding) –वह उपचार पद्धति जो कि व्यवहारात्मक सिद्धान्त पर आधारित है एवं जिसमें सर्वाधिक भय उत्पन्न करने वाली परिस्थिति में दुर्भीति के रोगी को एक्सपोज कर दिया जाता है तथा तब तक रहने के लिए बाध्य किया जाता है जब तक कि उसका भय कम न हो जाये।

**कोवर्ट असंवेदीकरण (**Covert Desensitizationn) – क्रमबद्ध असंवेदीकरण की वह प्रकिया जिसमें कल्पनात्मक वर्णन के माध्यम से रोगी में चिकित्सक द्वारा क्रमबद्ध रूप से भय के विभिन्न स्तरों से रोगी को असंवेदित होना तथा भय के स्थान पर रिलेक्स होना सिखलाया जाता है।

**संज्ञानात्मक चिकित्सा** (Cognitive Therapy)– वह चिकित्सा विधि जिसमें मनोरोगों का उपचार करने हेतु नकारात्मक विचारों, विश्वासों एवं धारणाओं को सकारात्मक विचारों, विश्वासों एवं धारणाओं के द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है एवं इस प्रकार संज्ञान को पुनर्संरचित किया जाता है, संज्ञानात्मक चिकित्सा कहलाती है।

## 5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 –(ग) उद्दीपक से जुड़ा दुश्चिंता उत्पन्न करने वाला अतार्किक भय है।

अभ्यास प्रश्न 2 –(क) डर

अभ्यास प्रश्न 3 –(घ) प्राकृतिक वातावरण से उत्पन्न दुर्भीति

अभ्यास प्रश्न 4 –(घ)b, a, d, c

अभ्यास प्रश्न 5 –(क) एसर्टिवनेस ट्रेनिंग

## 5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

रोनाल्ड, जे. कोमर (2014) फन्डामेंटल्स ऑफ एबनॉरमल साइकोलॉजी, न्यूयॉर्क – वर्थ पब्लिशर।

कारसन, बुचर एवं मिनेका (1998 अपडेटेड थर्ड एडीसन) एबरॉरमल साइकोलॉजी एण्ड मॉर्डन लाइफ, लंदन – एडिसन, विसली, एजुकेशनल पब्लिशर इन्क।
बारलो एण्ड डूरण्ड (2012) एबनॉरमल साइकोलॉजी – एन इन्टीग्रेटेड एप्रोच, बेलमाउन्ट– वर्ड्सवर्थ सिनेज लर्निंग।
रॉबर्ट ए. बैरोन (2006) साइकोलॉजी, दिल्ली – पियर्सन प्रेंटिस हाल।
सैमुअल वुड एवं एलेन वुड (2000) द इसेंशियल वर्ल्ड ऑफ साइकोलाजी, यू एस ए– एलिन एण्ड बेकन।
डॉ अरूण कुमार सिंह (2010) आधुनिकअसामान्य मनोविज्ञान, दिल्ली – मोतीलाल बनारसीदास।

## 5.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

Phobias, Familiar and not so familiar

Animals (पशुओं से डर) – zoophobia(जूफोबिया)

Beards(दाढ़ी से भय) – pogonophobia(पोगोनोफोबिया)

Being afraid(घबराने का डर) – pobophobia(पोबो फोबिया)

Blood (रक्त से डर)– hematophobia(हेमेटोफोबिया)

Books (किताबों से डरं)– bibliophobia(बिबलियोफोबिया)

Churches (गिरिजाघर से डर)– ecclesiaphobia(एक्लेसियाफोबिया)

Corpses(शव से डर) – necrophobia(नेक्रोफोबिया)

Crossing a bridge(पुल पार करना) – gephyrophobia(जिफाइरोफोबिया)

Crowds(भीड से डऱ) – ochlophobia(ऑक्लोफोबिया)

Darkness (अंधेरा से भय)– nectophobia(नेक्टोफोबिया)

Demons or Devils (दुष्ट एवं दानव से डर)– Demonophobia(डेमोनोफोबिया)

Dogs(कुत्तों से डर) – cynophobia(साइनोफोबिया)

Dolls(खिलौना गुड़िया से डर) – pedeophobia(पीडोफोबिया)

Drugs (औषधियों से डर)– pharmacophobia(फॉरमाकोफोबिया)

Enclosed spaces (बंद जगहों से भय)– claustrophobia(क्लास्ट्रोफोबिया)

Eyes(ऑखों से भय)- Ommatophobia(ओम्माटोफोबिया)

Fire (आग से भय)– pyrophobia(पाइरोफोबिया)

Flood (बाढ़ से डर)– antlophobia(एन्टलोफोबिया)

Flowers (फूलों से डर)– antholophobia(एन्थोलोफोबिया)

Flying (उड़ने से डर)– aerophobia(एइरोफोबिया)

Fog (धुंध से भय)– homichlophobia(होमीक्लोफोबिया)

Fur (फर से भय)– doraphobia(डोराफोबिया)

Germs (जीवाणुओं से भय)– spermophobia(स्पर्मोफोबिया)

Ghosts (भूतों से डर)– phasmophobia(फास्मोफोबिया)

God(ईश्वर से डर) – theophobia(थियोफोबिया)

Graves (कब्र से डर)– taphophobia(टैफोफोबिया)

Heat(गर्मी से डर) – thermaphobia(थरमाफोबिया)

Heights(ऊँचाई से भय) – acrophobia(एक्रोफोबिया)

Homosexuality(समलैंगिगता से भय) – homophobia(होमोफोबिया)

Horses(जूफोबिया) – hippophobia(जूफोबिया)

Ice, Frost(जूफोबिया) – cryophobia(जूफोबिया)

Insects (कीटों से डर)– entomophobia(एन्टोमोफोबिया)

Machinery(मशीनों से डर) – mechanophobia(मेकानोफोबिया)

Marriage (विवाह से डर)– gamophobia(गामोफोबिया)

Meat (मांस से डर)– carnophobia(कारनोफोबिया)

Mice(चूहों) – musophobia(म्यूसोफोबिया)

Mirrors(आइने से डर)– eisoptrophobia(इसोप्ट्रोफोबिया)

Money(रूपयों से डर) – chrometrophobia(क्रोमेट्रोफोबिया)

Night(रात्रि से भय)– nectophobia(नेक्टोफोबिया)

Noise or loud talking(शोर अथवा जोर जोर की बातचीत से भय) – Phonophobia(फोनोफोबिया)

Odors(गंध से भय) – osmophobia(ओस्मोफोबिया)

Pleasure (आनन्द से भय)– hedonophobia(हेडोनोफोबिया)

Poison(जहर से भय) – toxiphobia(टॉक्सीफोबिया)

Poverty (गरीबी से डर)– peneophobia(पीनियोफोबिया)

Pregnancy (प्रेग्नेन्सी)– maieusiophobia(मेयीयूसियोफोबिया)

Railway (रेलवे से डर)– siderodromophobia(साइडेरोड्रोमोफोबिया)

Rain (बारिश)– ombrophobia(ओमब्रोफोबिया)

Rivers(नदी से भय) – potamophobia(पोटामोफोबिया)

Robbers (डैकैतों से डर)– harpaxophobia(हारपैक्सोफोबिया)

Satan (शैतान से डर)– satanphobia(सैटनफोबिया)

Sexual intercourse( रतिक्रिया से भय) – coitophobia(कोइटोफोबिया)

Shadows(छाया से भय) – sciophobia(सियोफोबिया)

Sleep(निद्रा से भय) – hypnophobia(हिप्नोफोबिया)

Snakes(सर्प से भय) – ophidiophobia(ओफिडियोफोबिया)

Snow (बर्फ से भय)– chionophobia(चिओनोफोबिया)

Speed (तेज गति से डर)– tachophobia(टैकोफोबिया)

Spiders (मकड़ियों से डर)– arachnophobia(आर्कनोफोबिया)

Strangers (अजनबियों से डर)– xenophobia(जिनोफोबिया)

Sun(सूरज से भय) –heliophobia(हीलियोफोबिया)

Surgery(शल्यचिकित्सा से भय) –ergariophobia(अरगेरियोफोबिया)

Teeth(दॉतों से भय) – odontophobia(ओडोन्टोफोबिया)

Travel(यात्रा से भय)- hodophobia(होडोफोबिया)

Trees(पेड़ों से भय) – dendrophobia(डेनड्रोफोबिया)

Water (पानी से डर)– hydrophobia(हाइड्रोफोबिया)

Wind (बहती हवा से डर)– anemophobia(एनिमोफोबिया)

Worms(कृमि से भय) – helminthophobia(हेल्मिन्थोफोबिया)

Wounds, injury(घाव एवं चोट) – traumatophobia(ट्रॉमेटोफोबि
(Wan vagnor, 2007 and Melville, 1978)

## 5.12 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 –दुर्भीति से आप क्या समझते हैं? दुर्भीति के विभिन्न लक्षणों का वर्णन कीजिए।
प्रश्न 2 –दुर्भीति के विभिन्न कारणों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
प्रश्न 3 –दुर्भीति के प्रकारों का वर्णन कीजिए।
प्रश्न 4 –दुर्भीति को परिभाषित कीजिए एवं इसकी उत्पत्ति के मनोविश्लेषणात्मक तथा व्यवहारात्मक तथा संज्ञानात्मक व्याख्या पर प्रकाश डालें।
प्रश्न 5 –दुर्भीति से निबटने के विभिन्न उपायों का वर्णन करें

# इकाई 6 :–सामान्यीकृत चिंता विकृतिः अर्थ, लक्षण, कारण, एवं उपचार

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 सामान्यीकृत चिंता विकृति का अर्थ एवं अवधारणा
6.4 सामान्यीकृत चिंता विकृति के लक्षण
6.5 सामान्यीकृत चिंता विकृति के कारण
6.6 सामान्यीकृत चिंता विकृति का उपचार
6.7 सारांक्ष
6.8 शब्दावली
6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.10 सन्दर्भ ग्रन्थ
6.11 निबंधात्मक प्रश्न

## 6.1 प्रस्तावना

सामान्यीकृत चिंता विकृति जिसे अंग्रेजी में जनरलाइज्ड एंजाइटी डिस्आर्डर कहा जाता है इसका संक्षिप्त रूप जी.ए.डी. है।जी.ए.डी. चिंता विकृति के प्रमुख प्रकारों में से एक है। हम जानते हैं कि चिंता एक संवेग है जिसमें अविवेकपूर्ण नकारात्मक विचारों की श्रृंखला चलती है। तथा व्यक्ति अपने साथ कुछ बुरा होने की नकारात्मक भययुक्त आशंका से ग्रस्त रहता है। जब तक यह अविवेकपूर्ण डर व्यक्ति के नियंत्रण में बना रहता है तब तक सामान्य चिंता के रूप में परिभाषित होता है। यही जब नियंत्रण से बाहर हो जाता है तक चिंता विकृति का रूप ले लेता है जिसकी एक विशेष परिणति सामान्यीकृत चिंता विकृति के रूप में होती है। सामान्यीकृत चिंता विकृति से ग्रस्त लोगों को आज हम अपने आस–पास आसानी से पा और पहचान सकते हैं, आवश्यकता है बस इसके बारे में जानकारी प्राप्त करने की। सामान्यीकृत चिंता विकृति के लक्षण कौन से हैं? इसके होने की वजह क्या है? इससे निपटने का उपाय क्या है?इन सभी जिज्ञासाओं का समाधान आप इस इकाई में पायेंगे यही इस इकाई की विशेषता है।

## 6.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

1 सामान्यीकृत चिंता विकृतिका अर्थ समझ सकेंगे।
2 सामान्यीकृत चिंता विकृतिकी विभिन्न परिभाषाओं को जान सकेंगे।
3 सामान्यीकृत चिंता विकृति के लक्षणों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे एवं उन्हें पहचानना सीख जायेंगे।
4 सामान्यीकृत चिंता विकृति के विभिन्न कारणों से परिचित हो पायेंगे।
5 सामान्यीकृत चिंता विकृति के प्रकारों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
6 सामान्यीकृत चिंता विकृति के उपचार के तरीकों के बारें में जानेंगे।

## 6.3 सामान्यीकृत चिंता विकृति(Generalized anxiety disorder : GAD) का अर्थ एवं अवधारणा

जब अधिक चिंता दीर्घकाल तक बनी रहती है तो वह सामान्यीकृत चिंता विकृति का रूप ले लेती है। बहुत से मनोवैज्ञानिकों ने सामान्यीकृत चिंता विकृति को परिभाषित किया है इन परिभाषाओं के अवलोकन से हम सामान्यीकृत चिंता विकृति के संप्रत्यय को भली भॉति समझ सकते हैं। आइये इन परिभाषाओं के बारे में जाने।

**सामान्यीकृत चिंता विकृति की परिभाषाएँ –**

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक रोनाल्ड जे कोमर ने अपनी पुस्तक 'फण्डामेंटल्स ऑफ एबनॉरमल साइकोलॉजी' में सामान्यीकृत चिंता विकृति को एक स्थायी एवं सतत रूप से जीवन की बहुत सी घटनाओं एवं गतिविधियों के प्रति होने वाली अत्यधिक चिंता प्रतिक्रिया के रूप में परिभाषित किया है – उनके अनुसार सामान्यीकृत चिंता विकृतिएक ऐसी चिंता विकृति है जिसे कि बहुत सी घटनाओं एवं गतिविधियों के बारे में होने वाली स्थायी एवं अत्यधिक दुश्चिंता एवं चिंता के रूप में देखा जाता है।' ( 'A disorder marked by persistent and excessive feelings of anxiety and worry about numerous events and activities'Ronald J. Comer, 2014, Fundamentals of Abnormal Psychology, p 98) एक अन्य मनोवैज्ञानिक डेविसन एवं उनके सहयोगी नील के अनुसार – 'सामान्यीकृत चिंता विकृति तीव्र, अनियंत्रणीय, अकेंद्रित, स्थायी और सतत चिंता के रूप में चित्रित किया जाता है जो कि डिस्ट्रेसिंग एवं अनोत्पादिक होती है एवं जिसमें पेशीय तनाव, चिड़चिड़ापन और विचलन के दैहिक लक्षण समाहित होते हैं। ( 'Anxiety disorder characterized by intense, uncontrollable, unfocused, chronic, and continuous worry that is distressing and unproductive, accompanied by physical symptoms of tenseness, irritability, and restlessness.'- Davison & Neale : Abnormal Psychology an Integrative Approach, 2012, p. 582)

मनोवैज्ञानिक कार्सन, बुचर एवं मिनेका अपनी पुस्तक 'एबनॉरमल साइकोलॉजी' में दुर्भीति को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि– 'वस्तुओं एवं घटनाओं के प्रति तीव्र अविवेकपूर्ण भय ही दुर्भीति है'। (Generalized anxiety disorder is characterized by chronic excessive worry about a number of events and activities' Carson, Butcher and Mineka: Abnormal Psychology and Modern Life, 1998, p. 176)।

आइये अब सामान्यीकृति चिंता विकृति को उसके नैदानिक विवरण द्वारा भली प्रकार समझने की कोशिश करते हैं।

हम आपसे कुछ प्रश्न पूछता हैं।

क्या आपके घर–परिवार में कोई चिंतातुर व्यक्ति है?

क्या आपके परिवार में कोई परफेक्शनिष्ट अर्थात कोई ऐसा व्यक्ति है?जिसे किसी कार्य को त्रुटिरहित सम्पूर्णता के स्तर तक पूर्ण करने से पूर्व चैन न मिलता हो एवं सामान्य तौर पर उसे यह त्रुटिरहित पूर्णता प्रायः प्राप्त ही न होती हो।

चिंता के नियम से चलने वाली आइरिन –सामान्यीकृत चिंता विकृति का विशिष्ट उदाहरण

20 वर्षीय आइरिन एक कॉलेज में पढ़ती थी, उसके बहुत कम दोस्त एवं सहेलियॉ थीं। वह जीवन की सामान्य गतिविधियों एवं घटनाओं के संबंध में उसे होने वाली अत्यधिक चिंता की समस्या लेकर मनोवैज्ञानिक क्लीनिक में आयी थी। उसे अपने जीवन को नियंत्रित नहीं कर पाने की चिंता सताये जा रही थी। यद्यपि कक्षा में उसके औसत रूप से अच्छे अंक प्राप्त होते थे परन्तु उसे लगता था कि वह अगली परीक्षा में जरूर फेल हो जायेगी। अपने संबंध में महसूस होने वाली उसकी इसी चिंता की वजह से उसे कुछ ही हफतों में अपने कई कोर्सेज को पूरा होने से पहले ही छोड़ना पड़ा। उसे यह चिंता सताने लगी थी कि कोर्स मैटीरियल उसे समझ में ही नहीं आयेगा। इसके एक महीने के उपरान्त ही उसने पहले साल में ही कॉलेज छोड़ दिया। इससे उसकी चिंता काफी हद तक कम हुई परन्तु कुछ हफ्तों के बाद उसे थोड़े समय के लिए उसे अवसाद ने घेर लिया। जिससे उबरने के लिए उसने एक जूनियर कॉलेज में शार्ट टर्म कोर्स में दाखिला ले लिया। यहॉ पर उसने दो साल तक पढ़ाई की एवं परीक्षा में 'ए' ग्रेड प्राप्त की । इसके बाद उसने एक चार वर्षीय कॉलेज कोर्स में दाखिला ले लिया परन्तु कुछ ही समय बाद उसे फिर से लगने लगा कि वह इस कोर्स को नहीं चला सकती अतः उसे साइको क्लीनिक की शरण में जाना पड़ा। ऐसा नहीं था कि आइरिन को केवल कॉलेज की पढ़ाई से समस्या थी बल्कि उसे अपने दोस्तों एवं परिवारीजनों के साथ उसके संबंधों को भी नहीं सम्भाल पाने की चिंता भी सताती रहती थी। इसके अलावा उसे अपने स्वास्थ्य को लेकर भी चिंता सताती रहती थी। वह थोड़ी मोटी थी इसके कारण उसे हल्की हाइपरटेंशन की समस्या थी, इसके लिए वह खाना भी बहुत भय से खाती थी। भोजन का प्रत्येक कौर उसे मृत्यु की ओर ले जाता प्रतीत होता था। अत्यधिक चिंता के कारण वह अपना बल्डप्रेशर बार–बार चेक करवाती रहती थी एवं थोड़ा सा भी अन्तर होने पर उसकी चिंता और भी बढ़ जाती थी। शायद इसी कारण उसकी बहुत ही कम सहेलियॉ थीं। उसके माता–पिता उसे बड़ी मुश्किल से सम्भालते थे, क्लीनिक से सहायता लेने से उसकी चिंता कुछ हद तक कम हुई।बारलो एवं डूरण्ड (2012), एबनॉरमल साइकोलॉजी – एन इन्टीग्रेटिव एप्रोच, पृष्ठ – 130

बैरोन, मनोविज्ञान, 1992, पृष्ठ – 553

आप के आस पास एवं साथ रहने वाले सभी व्यक्ति भी परेशान एवं आश्चर्यचकित हो रहे हैं। पाठकों इन्हीं लक्षणों एवं विशेषताओं से युक्त मनोरोग ही सामान्यीकृत चिंता विकृति के रूप में पहचाना जाता है। आइये आइरिन के बारे में जानें जो कि सामान्यीकृत चिंता विकृति से पीड़ित थी।

डी.एस.एम.–4टी.आर में सामान्यीकृत चिंता विकृति को इस प्रकार परिभाषित किया गया है – 'घटनाओं एवं गतिविधियों जैसे कि कार्य अथवा स्कूल में निष्पादन के बारे में कम से कम छः महीने तक होने वाली अत्यधिक दुश्चिंता एवं आशंका' ही सामान्यीकृति चिंता कहलाती है। (Excessive anxiety and worry (apprehensive expectation), occurring more days than not for at least 6 months about a number of events or activities (such as work or school performance)'. – DSM-IV-TR. 2005, p.827)।

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से सामान्यीकृत चिंता विकृति से संबंधित कई महत्वपूर्ण बिन्दु स्पष्ट होते हैं –

1 सामान्यीकृत चिंता विकृति चिंता विकृति का एक प्रकार है।
2 सामान्यीकृत चिंता विकृति में तीव्र चिंता एवं आशंका सतत् व्याप्त रहती है।
3 सामान्यीकृत चिंता जीवन में सामान्य तौर पर घटने वाली घटनाओं एवं रोजमर्रा के कार्यों एवं गतिविधियों से संबंधित होती है।

4 सामान्यीकृत चिंता विकृति में व्यक्ति में भविष्य के प्रति नकारात्मक दृष्टि उत्पन्न हो जाती है एवं व्यक्ति स्वयं रोजमर्रा के कार्यों को ठीक प्रकार से नहीं कर पायेगा इसकी अत्यधिक चिंतातुर आशंका मन में घर कर जाती है।

साररूप में जीवन की कोई भी साधारण, असाधारण घटना, किसी भी गतिविधि चाहे वह ऑफिस के कार्यों को निपटाने से संबंधित हो अथवा स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय की पढ़ाई के कार्यों को करने से संबंधित हो या फिर मित्रों, परिवारजनों के संबंधों को निभाने की कुशलता से जुड़ी हो को नहीं निष्पादित कर पाने की आशंका तथा स्वयं को न नियंत्रित कर पाने एवं सम्भाल पाने का अतार्किक डर ही सामान्यीकृत चिंता विकृति है।

**अभ्यास प्रश्न 1** –निम्नलिखित में से कौन सा कथन सामान्यीकृत चिंता विकृति के संबंध में असत्य है?

**क–** लम्बे समय तक बनी रहने वाली चिंता है।

**ख**–परिस्थितियों को नियंत्रित न कर पाने की आशंका होती है।

**ग**–इसमें कोई डर नहीं रहता है।

**घ**–दैनिक जीवन के कार्यों से संबंधित होती है।

## 6.4 सामान्यीकृत चिंता विकृति के लक्षण (Symptoms of generalized anxiety disorder)

अमेरिकन साइकियेट्रिक एसोशियेसन (American psychiatric association) ने सामान्यीकृत चिंता विकृति के लक्षणों को बिन्दुवार स्पष्ट किया है।

1–इसमें व्यक्ति सतत् प्रवाही चिंता (free floating anxiety) से ग्रस्त रहता है।

2–जीवन की दैनिक घटनाओं एवं रोजमर्रा के कार्यों के ठीक से न कर पाने की आशंका सतत बनी रहती है।

3–व्यक्ति को यह लगता है कि उसका स्वयं पर से आत्मनियंत्रण खो रहा है।

4– व्यक्ति में सतत प्रवाही चिंता तीन महीने से ज्यादा समय तक बनी रहती है।

5– व्यक्ति को बेचैनी की समस्या लगातार बनी रहती है तथा साथ ही मॉसपेशीय तनाव भी बना रहता है।

6– व्यक्ति के व्यवहार में भी बार बार बदलाव आता रहता है।

7–व्यक्ति में डिस्ट्रेस एवं बिक्षुब्धता सार्थक मात्रा में बढ़ जाती है।

सामान्यीकृत चिंता विकृति के लक्षणों को डायग्नोस्टिक एण्ड स्टेटिस्टिकल मैनुअल –4 टेक्स्ट रिवीजन के अध्ययन से भली भॉति समझा जा सकता है। आइये सामान्यीकृत चिंता विकृति के नैदानिक कसौटी को उसके मौलिक स्वरूप में समझें।

**डी.एस.एम 4 टी.आर.– सामान्यीकृत चिंता विकृति की नैदानिक कसौटी (DSM-IV- TR : The Diagnostic Criteria for Generalized Anxiety Disorder)**

**सामान्यीकृत चिंता विकृति (Generalized anxiety disorder)**

1. कार्य अथवा स्कूल निष्पादन जैसे गतिविधियों या घटनाओं के प्रति कम से कम छ महीने से ज्यादा दिनों तक होने वाली अपरिमित चिंता और संबंधित समस्याओं के बारे में सोचनीय आशंका(Excessive anxiety and worry (apprehensive expectation),

occurring more days than not for at least 6 months about a number of events or activities such as work or school performance).

2. व्यक्ति चिंता को नियत्रित करना कठिन पाता है।(The person finds it difficult to control the worry.)
3. चिंता अथवा सोचनीय आशंका कम से कम निम्नांकित छः लक्षणों में से किन्ही तीन से संबंधित हों जिनमें से कम से कम कुछ लक्षण छः महीने से ज्यादा दिनों तक रहे हों (नोट – बच्चों के लिए केवल एक लक्षण का होना ही पर्याप्त है)। (The anxiety and worry are associated with at least three or more of the following six symptoms(with at least some symptoms present for more days than not for the past 6 months)(Note: Only one item is required in children.):

   1 बेचैनी अथवा भावनाओं का उफान पर होना (Restlessness or feeling keyed up or on edge)

   2 शीघ्र थक जाना (Being easily fatigued)

   3 एकाग्रचित्त होने में कठिनाई अथवा मन में शून्यता होना(Difficulty concentrating or mind going blank)

   4 चिड़चिड़ापन(Irritability)

   5 मांसपेशीय तनाव (Muscle tension)

   6 विक्षुब्ध निद्रा, निद्रा न आना या निद्रा बरकरार न रहना, निद्रा में बेचैनी, असंतोषजनक निद्रा (Sleep disturbance (difficulty falling or staying asleep or restless, unsatisfying sleep)

4. एक्सिस फर्स्ट डिस्आर्डर के दायरे तक ही चिंता एवं सोचनीय आशंका सीमित नहीं रहे अर्थात् चिंता एवं आशंका पैनिक डिस्आर्डर, सामाजिक दुर्भीति, मनोग्रस्तता बाध्यता, विलगाव चिंता विकृति, एनोरेक्सिया नर्वोसा या हाइपोकोन्ड्रियासिस की वजह से नहीं हो तथा न ही पोस्ट्रॉमेटिक स्ट्रेस डिस्आर्डर का हिस्सा हो। (The focus of the anxiety and worry is not confined to features of an Axis I disorder; that is, the anxiety or worry is not about having a panic attack (as in panic disorder), being embarrassed in public (as in social phobia), being contaminated (as in obsessive compulsive disorder), being away from home or close relatives ( as in separation anxiety disorder),gaining weight (as in anorexia nervosa), or having a serious illness (as in hypochondriasis), and is not part of posttraumatic stress disorder.)
5. सामाजिक, व्यावसायिक और कार्य के दूसरे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में इस चिंता एवं सोचनीय आशंका एवं दैहिक लक्षणों ने नैदानिक रूप से सार्थक दुश्चिंता एवं विघटन उत्पन्न किया हो।(The anxiety, worry, or physical symptoms cause clinically significant distress or impairment in social, occupational, or other important areas of functioning.)
6. यह विक्षुब्धता किसी द्रव्य के प्रत्यक्ष फिजियोलॉजिकल प्रभाव की वजह से न हो उदाहरण के लिए किसी अन्य बीमारी में उपयोग होने वाली दवा के सेवन से अथवा औषध व्यसन

अथवा सामान्य रूग्णता (जैसे कि हाइपरथाइरोडिज्म) की वजह से न हो, एवं मात्र मनोदशा विकृति, साइकोटिक विकृति अथवा साइकोटिक विकृति या फिर पर्वेसिव डेवलपमेंटल डिस्आर्डर के दौरान न हो। (The disturbance is not due to the direct physiological effects of asubstance (e.g., drugs of abuse [or] medication) or a general medical condition (e.g., hyperthyroidism), and does not occur exclusively during a mood disorder, psychotic disorder, or a pervasive developmental disorder.)।

उपयुक्त नैदानिक कसौटी के प्रकाश में यह स्पष्ट हो गया है कि सामान्यीकृति चिंता विकृति से जो व्यक्ति पीड़ित होता है उसे सामान्यीकृत चिंता विकृति से ग्रस्त घोषित करने हेतु न्यूनतम् जरूरी लक्षण क्या होने चाहिए एवं कितने समय तक रहे होने चाहिए। आइये अब सामान्यीकृति चिंता विकृति के संबंध में अपनी जानकारी की परीक्षा करें। निम्नलिखित प्रश्न पर विचार करें।

**अभ्यास प्रश्न 2**–निम्नलिखित में से कौन सा लक्षण सामान्यीकृत चिंता विकृति की नैदानिक कसौटी का भाग नहीं है?

क–शीघ्र थक जाना

ख–बेचैनी अथवा भावनाओं का उफान पर होना

ग–मांसपेशीय तनाव

घ–निद्रा में भ्रमण करना

## 6.5 सामान्यीकृत चिंता विकृति के कारण (Etiology of Generalized Anxiety Disorder)

सामान्यीकृत चिंता विकृति पश्चिमी देशों के लोगों में सर्वाधिक पायी जाती है। मनोवैज्ञानिक केसलर एवं उनके सहयोगियों द्वारा 2010 एवं 2005 में किये गये सर्वेक्षणों, रिटर, ब्लैकमोर एवं हीम्बर्ग द्वारा 2010 में किये गये सर्वेक्षण के मुताबिक किसी भी साल अमेरिका की कुल जनसंख्या के 4 प्रतिशत व्यक्तियों में इस विकृति के लक्षण पाये जाते हैं एवं इसी दर से यह विकृति कनाडा, ब्रिटेन एवं अन्य पश्चिमी देशों में भी पायी जाती है। कुलमिलाकर सम्पूर्ण जनसंख्या के 6 प्रतिशत व्यक्तियों को उनके जीवन काल में सामान्यीकृत चिंता विकृति से जूझना पड़ता है जो कि एक चिंतनीय मुद्दा है। वैसे तो यह विकृति किसी भी उम्र में हो सकती है परन्तु बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था में इसकी शुरूआत सर्वाधिक पायी गयी है। पुरूषों के मुकाबले यह विकृति महिलाओं में दो गुना पायी जाती है। इस दौड़ में महिलाओं ने पुरूषों को काफी पीछे छोड़ दिया है। मनोवैज्ञानिक वैंग एवं उनके सहयोगियों द्वारा 2011 में किये गये अध्ययन एवं के द्वारा किये गये एक सर्वे के अनुसार इस विकृति से पीड़ित लोगों की संख्या का एक चौथाई भाग वर्तमान में चिकित्सकीय प्रक्रिया में शामिल हैं अर्थात इतने लोग अपना उपचार करवा रहे हैं।

अब प्रश्न उठता है कि इस सामान्यीकृत चिंता विकृति के विकसित होने के पीछे कौन से कारण अथवा कारक जिम्मेदार हैं। वैसे तो कारण एवं कारक कई हो सकते हैं परन्तु जो प्रमुख हैं एवं जिन की आपको जानकारी होनी चाहिए वे पॉच महत्वपूर्ण कारक निम्नांकित हैं। –

क)सामाजिक–सांस्कृतिक कारक(Sociocultural factor) –

ख)मनोगत्यात्मक कारक(Psychodyamic factor) –

ग) मानवतावादी कारक(Humanistic factor )–

घ) संज्ञानात्मक कारक (Cognitive factor) –

च) जैविक कारक(Biological factor) –

छ) व्यवहारात्मक कारक (Behavioural factor)–

उपरोक्त सभी कारकों अथवा दृष्टिकोण का वर्णन निम्नांकित है।

**क) सामाजिक–सांस्कृतिक कारक**(Sociocultural factor) –समाज–सांस्कृतिक सिद्धान्त निर्माताओं के अनुसार सामान्यीकृत चिंता विकृति से सबसे ज्यादा उन लोगों मे विकसित होती है जो कि ऐसी सामाजिक दशाओं से गुजर रहे हों जो कि उनके लिए वाकई खतरनाक हों। जैकब, प्रिंस एवं गोल्डबर्ग (2010) एवं स्टीन और विलियम (2010) ने अपने शोध में पाया है कि वे लोग जो समाज में काफी गंभीर दशाओं में जीवन यापन कर रहें हों एवं जिन्हें अपने अस्तित्व के लिए चुनौतियों का सामना करना पड़ता हों उन लोगों में इस विकृति से संबंधित प्रधान लक्षणों जैसे कि तनाव का सामान्य अहसास, चिंता, थकान, एवं विक्षुब्ध निद्रा का विकसित होना स्वाभाविक एवं सामान्य बात है।उदाहरण के लिए मनोवैज्ञानिक बॉम एवं उनके सहयोगियों (2004) द्वारा एक दुर्घटनाग्रस्त न्यूक्लियर पॉवर प्लांट के नजदीक निवास करने वाली दो से तीन वर्ष के बच्चों की माताओं एवं सामान्य जगह पर निवास करने वाली ऐसी ही माताओं में मनोरोगों के स्तर के अध्ययन में पॉवर प्लांट के नजदीक रहने वाली माताओं में चिंता एवं मनोदशा विकृति की मात्रा सामान्य जगह पर निवास करने वाली महिलाओं की अपेक्षा 5 गुना अधिक पायी गयी जो कि दुर्घटना के एक वर्ष उपरान्त कम होने के बाद भी सामान्य की अपेक्षा कई गुना ज्यादा बनी रही।

सोशियो कल्चरल थ्योरिस्ट के अनुसार सामान्यीकृत चिंता विकृति की दर आर्थिक दृष्टि से विपन्न लोगों में ज्यादा पायी जाती है। क्योंकि गरीबी स्वयं में ही एक अभिशाप है एवं यह गरीब लोगों को ऐसे क्षेत्रों में निवास करने के लिए मजबूर कर देती है जहॉ स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव हो अथवा स्वास्थ्य की दृष्टि से उपयुक्त न हों, इसके अलावा इन इलाकों में शिक्षा की पर्याप्त सुविधा उपलब्ध न होने के कारण आपराधिक घटनाओं की दर भी बढ़ी चढ़ी रहती है, तथा रोजगार के अवसर भी न्यून होते हैं, इन परिस्थितियों के कारण इस प्रकार के सामाजिक–सांस्कृतिक वातावरण में वास करने वाले लोगों में सदैव ही अपने स्वास्थ्य एवं जान–माल की चिंता बनी रहती है जो कि कालान्तर में चिंता एवं मनोदशा विकृति का रूप ग्रहण कर लेती है। जैकब एवं उनके सहयोगी (2010) तथा स्टीन और विलियम (2010) ने अपने अध्ययनों में सामान्यीकृत चिंता विकृति की दर ऐसे वातावरण में रहने वाले लोगों में सामान्य की अपेक्षा काफी उच्च पायी है। केसलर एवं उनके सहयोगियों (2010) ने तो इसे दो गुना बताया है। सोशियो कल्चरल थ्योरिस्ट के अनुसार न केवल गरीबी बल्कि जाति के आधार पर भी सामान्यीकृत चिंता विकृति की दर में सार्थक अन्तर पाया गया है। वे लोग जो रंग में श्वेत हैं उनमें काले लोगों की अपेक्षा सामान्यीकृत चिंता विकृति दो गुना कम पायी गयी है।

यद्यपि यह सत्य है कि तमाम सामाजिक–सांस्कृतिक कारकों पर किये गये अध्ययन यह दर्शाते हैं कि इन कारकों का सार्थक असर सामान्यीकृत चिंता विकृति के विकसित होने की दर पर पड़ता है, किन्तु फिर भी दावे के साथ यह नहीं कहा जा सकता है कि केवल यही कारण इस चिंता विकृति की उत्पत्ति एवं विकास के लिए सम्पूर्ण रूप से जिम्मेदार हैं। क्योंकि इन्हीं सामाजिक–सांस्कृतिक दशाओं में जीवनयापन करने वाले ही बहुत से गरीब

पिछड़े एवं अशिक्षित लोगों में इस विकृति के लक्षण विकसित होते हुए नहीं पाये गये हैं। जो इस ओर इशारा करते हैं कि शोध द्वारा उपलब्ध जानकारी अभी पर्याप्त नहीं है एवं सच्चाई का प्रकटीकरण जरूरी है। इसे और स्पष्ट करने के लिए हम अन्य विचारधाराओं का सहारा भी ले सकते हैं इनका वर्णन आगे की पंक्तियों में किया जा रहा है।

**ख) मनोगत्यात्मक कारक** (Psychodyamic factor) –प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक सिगमण्ड फ्रायड (1933, 1917) के अनुसार अपने शारीरिक एवं मानसिक विकास के दौर में सभी बच्चे कभी न कभी चिंता के अनुभव से गुजरते हैं एवं इससे निपटने के लिए वे इगो डिफेंस मेकेनिज्म का प्रयोग भी करते हैं। जब बच्चों के माता–पिता अथवा बड़ों के द्वारा किन्हीं उपायों से इन बच्चों के इड की वजह से उत्पन्न इच्छाओं एवं आवेगों को नियंत्रित कर उन्हें स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्त करने से रोका जाता है तो उनमें तंत्रिका–तापी चिंता उत्पन्न (न्यूरोटिक एन्जाइटी) हो जाती है। जब यही बच्चे वास्तविक खतरे का अनुभव करते हैं तक उन्हें वास्तविक चिंता (रियल एन्जाइटी) का अनुभव होता है। एवं इन्हीं बच्चों को नैतिक चिंता (मोरल एन्जाइटी) का अनुभव तब होता है जब उन्हें उनके इड के द्वारा उत्पन्न इच्छाओं एवं आवेगों की अभिव्यक्ति के लिए दण्डित किया जाता है।

मनोगत्यात्मक कारण आधारित व्याख्या : जब बाल्यावस्था चिंता हल हुए बिना ही रह जाती है।

फ्रायड के अनुसार जब एक बालक न्यूरोटिक अथवा नैतिक चिंता की सामान्य से अधिक मात्रा से ग्रसित होता है तब उसे सामान्यीकृत चिंता होने की सारी परिस्थितियॉ विनिर्मित हो जाती हैं। विकास की शुरूआती अवस्थाओं के अनुभव बाालक में अप्रासंगिक रूप से उच्च चिंता उत्पन्न कर सकते हैं। उदारहरण के लिए जब एक बालक को शैशवावस्था में भूख लगने पर दूध के लिए मचलने एवं हर बार रोने पर दण्ड स्वरूप नितंबों पर आघात किया जाता है तो ऐसा बालक दो वर्ष की विकासात्मक अवस्था में दण्ड मिलने पर अपनी पैंट गीली कर देता है तथा घुटने पर चलने की अवस्था में अपने जननांगों को प्रदर्शित करता है। इसके परिणामस्वरूप अन्ततः बालक इस निष्कर्ष पर पहुॅच सकता है कि उसके इड की इच्छायें एवं आवेग काफी हानिकारक हैं और उसकी वजह से उसमें इन इच्छाओं अथवा आवेगों के उत्पन्न होने पर अकुलाहक चिंता उत्पन्न होने की प्रवृत्ति जन्म ले सकती है।

विपरीत नजरिये से यदि देखें तो ऐसे बच्चे का इगो सुरक्षा प्रक्रम (ईगो डिफेंस मेकेनिज्म) इतना कमजोर होता है कि वह सामान्य चिंता का भी सक्षमता के साथ सामना नहीं कर पाता है। फ्रायड के अनुसार वे बच्चे जिन्हें कि उनके माता पिता के द्वारा अत्यधिक सुरक्षा प्रदान की जाती है। जिनकी छोटी से छोटी एवं बड़ी से बड़ी कठिनाइयों को माता–पिता स्वयं हल करते हैं एवं उनका बचाव करते हैं, विपरीत परिस्थितिओं का सामना करने का अवसर ही नहीं मिल पाता जिसके फलस्वरूप उनमें एक मजबूत एवं प्रभावी सुरक्षा प्रक्रम विकसित ही नहीं हो पाता है। जब वयस्क जीवन में उन्हें कठिन परिस्थितियों से उनका सामना होता है तब वे उससे निपट ही नहीं पाते हैं, उनका ईगो सुरक्षा प्रक्रम काफी कमजोर होता है एवं वे अपनी चिंता को नियंत्रित नहीं कर पाते हैं।

हालांकि प्रायः मनोगत्यात्मक थ्योरिस्ट सामान्यीकृत चिंता की व्याख्या करने के फ्रायड के कुछ विशिष्ट तरीकों से असहमति जताते हैं परन्तु उनमें से बहुत से इस बात से भी काफी सहमत हैं कि इस विकृति के चिन्हों को बच्चों एवं उनके माता–पिता के बीच प्रारंभिक संबधों में पनपी असहजता में ढूॅढ़ा जा सकता है (शार्फ, 2012)। इन मनोगत्यात्मक

व्याख्याओं को अनुसंधानकर्ताओं ने बहुत से तरीकों से जॉचने परखने का प्रयास किया है। ऐसे ही एक प्रयास में अनुसंधानकर्ताओं ने यह परिकल्पना कि सामान्यीकृत चिंता विकृति के रोगी चिंता से बचने के लिए सुरक्षा प्रक्रम अपनाते हैं, कि जॉच की। इसके तहत उन्होंने पहले से ही इस रोग से ग्रसित व्यक्तियों से योजना के तहत उन घटनाओं पर बात करने के लिए कहा जिनसे उनमें पहले काफी व्याकुलतादायक चिंता उत्पन्न हो जाती थी। परिणाम में ज्यादातर रोगियों द्वारा उन घटनाओं को भूल जाने की बात, तुरंत की गयी बात को भी भूल जाने की बात अनुक्रिया के रूप में कही गयी। इसके अलावा कुछ रोगी तो बातचीत की दिशा को ही बदल दिया। फ्रायड के अनुसार पीड़ादायक घटनाओं को भूल जाना चिंता दूर करने हेतु प्रयुक्त किया गया एक सुरक्षा प्रक्रम होता है जिसे दमन (रिप्रेशन) कहा जाता है। कुछ रोगी तो इस सुरक्षा प्रक्रम को इस सीमा तक अपनाते हैं कि वे नकारात्मक संवेगों के अनुभव को ही सिरे से नकार देते हैं। वे कहते हैं कि उन्हें तो जीवन में इस प्रकार का अनुभव कभी हुआ ही नहीं (लुबोर्स्की, 1973)।

दूसरे तरह के प्रयासों में अनुसंधानकर्तो ने ऐसे बच्चों पर अपना ध्यान केंद्रित किया है जिन्हें उनके इड की इच्छाओं एवं आवेगों की अभिव्यक्ति की वजह से बचपन में अतिरंजित दण्ड दिया गया। बुश, मिलॉर्ड एवं शियर (2010) के अनुसार ऐसे बच्चों जीवन की अन्य अवस्थाओं में व्याकुलतापरक चिंता की काफी मात्रा से ग्रस्त रहते हैं। इसके अलावा मेनफ्रेडी एवं उनके सहयोगियों (2011) अपने शोध से यह प्रमाणित किया है कि जिन बच्चों को बचपन में उनके माता–पिता द्वारा काफी सुरक्षित जीवन जीने की सुविधा मिलती है उनमें आगे चलकर सामान्यीकृत चिंता विकसित होने की संभावना काफी बढ़ जाती है।

यह सत्य है कि उपरोक्त वर्णन में जिन अध्ययनों की चर्चा की गयी है वे सामान्यीकृत चिंता विकृति में मनोगत्यात्मक कारकों की वकालत करने में सफल रहे हैं परन्तु बहुत से ऐसे मनोवैज्ञानिक हैं जिन्होंने इन अध्ययनों की प्रामाणिकता पर कुछ अनुत्तरित प्रश्नों एवं संभावनाओं के माध्यम से सवाल उठाये हैं। उनके अनुसार चिंता उत्पन्न करने वाली घटनाओं के संदर्भ में चिकित्सा की शुरूआत में ही चिकित्सक द्वारा सीधे सवाल पूछे जाने पर भूल जाने अथवा बातचीत की दिशा मोड़ने की रोगी द्वारा की गयी प्रतिक्रिया स्वाभाविक भी हो सकती है, क्योंकि इस बात की पूरी संभावना हो सकती है कि वे जानबूझकर जीवन की नकारात्मक घटनाओं पर ध्यान केंद्रित करने की बजाय जीवन के सकारात्मक पहलुओं पर ध्यान केंद्रित करना चाह रहे हों। अथवा चिकित्सक में उनका विश्वास उत्पन्न होने से पूर्व इस पर बात शुरू करना उन्हें व्याकुल करता हो। आइये अब इस चिंता विकृति के विकसित होने के कारण को मानवतावादी नजरियें से समझने का प्रयास करते हैं।

**ग) मानवतावादी कारक** (Humanistic factor )–मानवतावादी सिद्धान्तनिर्माताओं का सर्वाधिक जोर सदैव स्वाभाविकता एवं सहज प्रवृत्ति पर रहा है। उन्होंने सदैव परिस्थितियों एवं दैहिक दशाओं में मानवीय इच्छाशक्ति, अनुभव करने की शक्ति एवं आत्मशक्ति में सदैव मानवीय इच्छाशक्ति उसके चेतन अनुभवों एंव आत्मशक्ति को ही महत्व दिया है। उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में स्वयं को जानने अपनी संभावनाओं को तलाशने एवं उनका विकास करने की संवारने की स्वाभाविक मूलवृत्ति होती है। जब तक व्यक्ति अपनी इस स्वभाव पर नैसर्गिक एवं ईमानदार दृष्टि रखता है तथा वातावरण एवं परिस्थितियों से प्रभावित नहीं होता है तब तक उसका स्वस्थ मानसिक विकास होता रहता है। जब व्यक्ति स्वयं को स्वीकारने की मूलवृत्ति के बजाय सामाजिक वातवरण एवं परिस्थितियों के कारण सत्य को नकारने लगता है तथा अपने सहज चिंतन, भाव एवं व्यवहार पर ध्यान नहीं देता

है, तो इससे उसमें कालान्तर में कुंठा का भाव जन्म लेता है जो उसमें चिंता को बढ़ावा देता है एवं जब व्यक्ति को उसकी संभावना का एवं उनकी वास्तविकता का ज्ञान नहीं हो पाता है तथा सहज प्रवृत्ति की विपरीत दिशा में चल पड़ता है तो उसमें सामान्यीकृत चिंता विकसित होने की संभावना बढ़ जाती है एवं वह उससे ग्रस्त हो जाता है।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक कार्ल रोजर्स ने बच्चों में इस चिंता विकृति के विकसित होने को कारणों को मानवतावादी नजरिये से काफी उत्तम ढंग से स्पष्ट किया है। उनके अनुसार वे बालक जिन्हें बचपन में बड़ों के द्वारा सहज रूप से विकसित होने हेतु शर्तरहित सकारात्मक सम्मान (अनकंडीशनल पॉजिटिव रिगार्ड) नहीं प्राप्त होता है वे आगे चलकर स्वयं के क्रूर आलोचक हो जाते हैं उनमें अपने फैसलों की उपयुक्तता पर भरोसा नहीं होता है। तथा वे अपने मूल्यॉकन काफी कठोर मानकों पर करते हैं। अपने इन मानकों एवं मानदण्डों पर खरा उतरने के लिए वे अपने सहज स्वभाव का तिरस्कार करते हैं अपने सत्य विचारों एवं भावनाओं पर ध्यान नहीं देते ये उन्हें अपने लक्ष्यों को हासिल करने में बाधा प्रतीत होते हैं। अपनी सहज प्रवृत्ति का इस सीमा तक तिरस्कार करते रहने से उनमें तीव्र चिंता उत्पन्न होती रहती है जो कि आगे चलकर दीर्घ एवं स्थायी चिंता में बदल जाती है एवं सामान्यीकृत चिंता का स्वरूप ग्रहण कर लेती है। आइये अब सामान्यीकृत चिंता के संज्ञानात्मक कारकों के बारे में जानें।

**घ) संज्ञानात्मक कारक** (Cognitive factor) –सामान्यीकृत चिंता विकृति की कारणात्मक व्याख्या संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों के द्वारा संज्ञान में होने वाली संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के आधार पर की गयी है। संज्ञानात्मक प्रक्रियाओ में व्यक्ति द्वारा प्रयुक्त चिंतन प्रक्रिया, समस्या–समाधान प्रक्रिया, उसका प्रत्यक्षण, अवधान, स्मृति आदि आते हैं। इन मानसिक प्रक्रियाओं का प्रयोग जब व्यक्ति अपअनुकूलित तरीके से करता है या दूसरे शब्दों में उसमें अपअनुकूलित स्वभाव विकसित हो जाता है तब उसके मनोरोगी होने की संभावना बढ़ जाती है।

संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों के अनुसार सामान्यीकृत चिंता विकृति के विकसित होने के पीछे व्यक्ति का नकारात्मक चिंतन, विकृत विश्वास, धारणायें एवं मान्यतायें होती हैं। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक एलबर्ट एलिस (2011) के अनुसार बहुत से व्यक्ति अपने जीवन में अतार्किक एवं अविवेकपूर्ण धारणाओं द्वारा निर्देशित होते हैं जो कि उन्हें जीवन की घटनाओं एवं सामान्य परिस्थितियों में भी अनुपयुक्त ढंग से व्यवहार करने के लिए प्रेरित करती हैं। एलिस ने इन्हे मूल अविवेकपूर्ण धारणायें (बेसिक इर्रेशनल बिलीफ) कहकर सम्बोधित किया है। एवं वह दावा करते हैं कि सामान्यीकृत चिंता विकृति से ग्रस्त लोगों में निम्नांकित प्रकार की दृढ़ एवं अविवेकपूर्ण धारणायें होती हैं (एलिस, 1967)। –

एक मनुष्य के लिए अत्यंत जरूरी है कि उसके समुदाय के प्रत्येक महत्वपूर्ण व्यक्ति द्वारा उसे स्नेह, अपनापन एवं अनुमोदन प्राप्त हो।

"It is a dire necessity for an adult human being to be loved or approved of by virtually every significant other person in his community."

जब कोई जैसा चाहता, व पसन्द करता है, वैसा उस तरीके से नहीं होता है तो यह स्थिति बहुत दुखदायक एवं दुर्घटनास्वरूप है।

"It is awful and catastrophic when things are not the way one would very much likethem to be."

यदि किसी को स्वयं को मूल्यवान समझना है तो उसे पूर्ण रूप से योग्य, उपयुक्त एवं सभी क्षेत्रों उपलब्धि हासिल करने वाला होना चाहिए।

"One should be thoroughly competent, adequate, and achieving in all possible respectsif one is to consider oneself worthwhile."

एलिस कहते हैं कि वे व्यक्ति जिनकी धारणाये एवं मान्यतायें उपरोक्त प्रकार की होती हैं उनका सामना किसी तनावपूर्ण परिस्थिति से होता है तो वे उसे परिस्थिति के प्रति नकारात्मक अनुक्रिया ही देते हैं दूसरे शब्दों में उनकी इसी प्रकार की धारणाओं की वजह से वे ऐसी परिस्थितियॉ जो कि व्यक्ति के जीवन में सकारात्मक परिणाम लाती हैं जैसे कि नई नौकरी लगना, जीवन साथी से पहली भेंट, कोई परीक्षा आदि से सामना होने पर काफी तनाव में आ जाते हैं एवं सामान्य लोगों के समान इनका सामना करने के बावजूद पूर्ण रूप से त्रुटिरहित कार्य निष्पादन करने की स्वयं से अतिरंजित अपेक्षा की वजह से चिंताग्रस्त हो जाते हैं। उनका प्रत्यक्षण भी नकारात्मक हो जाता है एवं वह इन घटनाओं को इतने खतरनाक नजरिये से देखते हैं कि इनके प्रति असहज प्रतिक्रिया देते हैं एवं भय भी महसूस करने लगते हैं। इन्हीं धारणाओं, विश्वासों एवं मान्यताओं से चिपके रहने के कारण यही चिंता लम्बे समय तक बनी रहने पर सामान्यीकृत चिंता विकृति से ग्रस्त हो जाते हैं एवं उन्हें इसके उपचार के लिए मनोचिकित्सक का सहारा लेना पड़ता है।

प्रख्यात संज्ञानात्मक सिद्धान्तवादी मनोवैज्ञानिक एरोन बेक कहते हैं कि सामान्यीकृत चिंता विकृति से ग्रस्त व्यक्ति अपने मन में ऐसी मूक धारणायें रखते हैं जो कि इंगित करती हैं कि वे भयानक खतरे में हैं। उदाहरण के लिएक्लार्क एवं बेक (2012) कुछ धारणाओं को सामने रखते हैं जैसे – 'एक परिस्थिति अथवा एक व्यक्ति तब तक असुरक्षित है जब तक कि वह सुरक्षित साबित न हो जाये (A situation or a person is unsafe until proven to be safe)।' या – 'सर्वाधिक बुरा क्या हो सकता है इसकी कल्पना कर लेना हमेशा ही सबसे अच्छा है( It is always best to assume the worst)।'फेरारी एवं उनके सहयोगियों (2011) के अनुसार एलिस एवं बेक दोनों के ही प्रस्तावों के समय से ही अन्य मनोवैज्ञानिक एवं शोधार्थी अपने अध्ययनों के आधार पर यह कहते रहे हैं कि सामान्यीकृत चिंता विकृति के रोगी भी विशेष रूप से खतरे के सबंध में कुसमायोजी या अपअनुकूलित धारणाओं को अपने मन में धारण कर के रखते हैं। एलिस एवं बेक की व्याख्याओं को आधार मानने के उपरान्त से ही सामान्यीकृत चिंता विकृति के विकास के कारकों की व्याख्या नये तरीके से की जाने लगी है आइये उन नये नजरिये के बारे में जानें।

**सामान्यीकृत चिंता विकृति की नवीन संज्ञानात्मक व्याख्यायें**– एलिस एवं बेक के विवेचनों के आधार पर कई सामान्यीकृत चिंता विकृति की कई नवीन व्याख्यायें हाल ही के वर्षों में नये तरीकों से की गयी है। इन नये तरीकों में तीन तरीके सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं– 1. मेटाकॉग्निटिव थ्योरी(Metacognitive theory), 2. अनिश्चितता सिद्धान्त की असहनशीलता(The intolerance of uncertainty theory) 3. परिहार सिद्धान्त (Avoidance theory)।

इनका विस्तृत वर्णन निम्नांकित है –

**मेटाकॉग्निटिव थ्योरी** (Metacognitive theory)–एड्रियन वेल्स (2011) के द्वारा विकसित की गयी इस थ्योरी के अनुसार सामान्यीकृत चिंता विकृति से ग्रस्त लोग अपरोक्ष

अथवा अव्यक्त रूप में चिंता के संदर्भ में अपनी सकारात्मक एवं नकारात्मक विचार रखते हैं। सकारात्मक दृष्टि से वे इस विचार में विश्वास करते हैं कि जीवन में आने वाली चुनौतियों को सावधानी पूर्वक बेहतर मूल्यॉकन में चिंता करना एक बेहतर तरीका है। एवं इस विचार पर विश्वास कर वे सतत् रूप से चिंता ही करते रहते हैं। वहीं दूसरी ओर वे चिंता के संबंध में नकारात्मक विचारों को भी अपनी धारणाओं का हिस्सा बनाकर रखते हैं और चिंता के प्रति उनका यही नकारात्मक नजरिया मानसिक विकृति के विकास के द्वार खोल देता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि हमारा समाज ही उन्हें यह सिखाता है कि चिंता करना एक बुरी आदत है एवं यह हमारे मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। फलतः बार बार चिंता करने पर व्यक्ति अपनी चिंता करने की आदत के नकारात्मक परिणामों के प्रति अपने चिंतन में अतिसंवेदनशील हो जाता है एवं वह बहुत चिंता कर रहा है इस बात की भी वह चिंता करने लगता है, और उसे यह अपने नियंत्रण से बाहर प्रतीत होती है। इसका परिणाम उस व्यक्ति के जीवन में सामान्यीकृत चिंता विकृति के रूप में सामने आता है।

सामान्यीकृत चिंता विकृति की इस व्याख्या को वेल्स (2011) एवं फेरारी (2010) द्वारा किये गये अध्ययनों के परिणामों से सकारात्मक बल एवं समर्थन मिलता है।

**अनिश्चितता सिद्धान्त की असहनशीलता** (The intolerance of uncertainty theory)–सामान्यीकृत चिंता विकृति की एक अन्य नवीन प्रकार की व्याख्या जिसे कि अनिश्चितता सिद्धान्त की असहनशीलता के रूप में समझाया गया है के अनुसार कुछ व्यक्तियों में सहनशीलता की इतनी कमी होती है कि वे इस जानकारी को कि उनके साथ भी जीवन में नकारात्मक घटनायें घट सकती हैं, यह जानते हुए कि ऐसा होने की संभावना काफी कम अथवा न के बराबर है इसको सहन नहीं कर पाते हैं।चूँकि जीवन में कौन सी घटना कब घटेगी यह पूर्णतया निश्चित नहीं होता है एवं घटनायें अनिश्चित तरीके से घटती हैं अतएव इन अनिश्चित घटनाओं के जितने भी उदाहरण ऐसे व्यक्तियों को मिलते जाते हैं वे उन्हें और भी चिंतिंत कर देते हैं और वे इस बात की चिंता करने लगते हैं कि आने वाली घटना निश्चित ही उनके लिए परेशानी का सबब बन जायेगी। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फिशर एवं वेल्स (2011) तथा डग्ज एवं उनके सहयोगियों (2010) के अनुसार सहनशीलता की ऐसी कमी एवं सतत् चिंता ऐसे व्यक्तियों को वो सभी जरूरी चीजें मुहया कराती हैं जिससे सामान्यीकृत चिंता विकृति विकसित हो सके। कल्पना कीजिए कि आपने पहली बार नौकरी पाने के लिए आवेदन किया है एवं साक्षात्कार हो जाने के उपरान्त साक्षात्मकारकर्ताओं द्वारा कुछ दिनों के उपरान्त परिणाम बताने के लिए कहा है। ऐसे में परिणाम क्या होगा? यह सोच सोच कर आप परेशान अवश्य होंगे। यदि आप नकारात्मक घटनाओं के प्रति अतिसंवेदनशील हैं एवं इसकी अनिश्चितता से परेशान रहते हैं तो चिंता की यह परिस्थिति आप के लिए असहनीय हो जायेगी। यही स्थिति सामान्यीकृत चिंता विकृति से ग्रस्त व्यक्ति की भी होती है।

**परिहार सिद्धान्त** (Avoidance theory)– अंत में सामान्यीकृत चिंता विकृति की एक अन्य नये तरह की व्याख्या परिहार सिद्धान्त के द्वारा भी की जाती है। इस व्याख्या का श्रेय शोधार्थी थॉमस बोरकोवेक को जाता है उनके अनुसार इस विकृति से ग्रस्त व्यक्ति के शरीर का उत्तेजन स्तर जिसे कि अंग्रेजी में एराउजल कहा जाता है सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा कहीं ज्यादा होता है। इस प्रकार के व्यक्तियों की हृदय गति, श्वसन दर, नाड़ी गति आदि तीव्र होती हैं। इसके अलावा ऐसे व्यक्तियों में अपने इस उत्तेजना स्तर को चिंता के द्वारा

कम करने की प्रवृत्ति पायी जाती है। मनोवैज्ञानिक न्यूमेन एवं उनके सहयोगियों (2011) ने इस प्रवृत्ति के पीछे छिपे कारणों का विश्लेषण किया है उनके अनुसार बढ़े हुए शारीरिक उत्तेजन के कारण व्यक्ति में बेचैनी एवं तनाव बढ़ जाता है जिससे बचने के लिए ऐसे व्यक्ति ज्यों ही चिंता करना प्रारंभ करता है उसका ध्यान शरीर से हट जाता है एवं चिंता के संज्ञानात्मक पहलू की ओर केंद्रित हो जाता है। परिणाम स्वरूप तात्कालिक रूप से यह चिंता उसकी शारीरिक उत्तेजना को शांत करने में सफल हो जाती है परन्तु दीर्घावधि में ऐसा करने की आदत अपअनुकूलित होने के कारण व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती है। फलतः व्यक्ति सामान्यीकृत चिंता विकृति से ग्रस्त हो जाता है।

**अभ्यास प्रश्न 3–** निम्नलिखित में से कौन से मनोवैज्ञानिक ने असहनशीलता को सामान्यीकृत चिंता विकृति के कारण के रूप में समझाया है?

क–एल्बर्ट बण्डूरा

ख–फिशर एवं वेल्स

ग–एरोन बेक

घ– कार्ल रोजर्स

**च) जैविक कारक** (Biological factor) – जैविक मनोवैज्ञानिकों का विश्वास है कि सामान्यीकृत चिंता विकृति जैविक कारकों की वजह से होती है। बरसों से मनोवैज्ञानिक इसका अध्ययन परिवारों के बीच रक्त संबंधों के शोध के माध्यम से करते रहे हैं। इस के अन्तर्गत मनोवैज्ञानिक किसी को सामान्यीकृत चिंता विकृति हो जाने पर उसके परिवार अथवा रिश्तेदारों में किसे या कितने और व्यक्तियों को यह चिंता विकृति है अथवा हुई थी इसका पता लगा कर यह जानने की कोशिश करते हैं कि कहीं यह आनुवांशिक तो नहीं है। क्योंकि यदि इस विकृति का कारण जैविक आनुवांशिकता है तो रक्त संबंधों में आने वाले अन्य व्यक्तियों में इसके पाये जाने की संभावना अथवा भविष्य में होने की संभावना स्वाभाविक रूप से बढ़ जायेगी। एवं इस प्रकार जैविक संबंधियों में इस विकृति के पनपने की संभावना दर भी समान होगी। स्कीनले एवं उनके सहयोगियों (2011) ने अपने अनुसंधानों द्वारा यह प्रमाणित भी किया है कि जैविक संबंधियों में सामान्य लोगों की अपेक्षा इस विकृति के पनपने की दर कहीं ज्यादा होती है। इस विकृति से ग्रस्त 15 प्रतिशत रक्त संबंधियों में अथवा जैविक संबंधियों में यह विकृति पायी जाती है जो अन्यों में पाये जाने वाली विकृति से काफी ज्यादा है। यह जैविक निकटता जितनी ही अधिक होती है विकृति के पनपने की संभावना भी उतनी ही अधिक होती है।

हाल ही के वर्षों में मार्टिन एवं नेमरॉफ (2010) जैसे जैवशास्त्रियों ने सामान्यीकृत चिंता विकृति के जैविक कारकों से जुड़ाव के संदर्भ में खोजें की हैं एवं प्रमाण जुटाये हैं। इस प्रकार की सर्वप्रथम खोज सन् 1950 में हुई थी, जिसमें शोधार्थियों ने बेन्जोडाइएजेपीन (Benzodiazepines) नामक औषध को चिंता को कम करने में सक्षम पाया था। बेन्जोडाइएजेपीन स्वयं में औषधियों का एक परिवार है जिसमें एल्प्राजोलम(alprazolam), लोराजेपाम(lorazepam), एवं डाइजेपॉम(diazepam) जिसे क्रमशः अन्य नामों जैनैक्स(xanax), एटीवाम(ativam) एवं वैलियम (valium) कहा जाता है सम्मिलित होती हैं। हालॉकि शुरूआत में शोधार्थी यह जानने में असफल रहे कि बेन्जोडाइएजेपीन किस प्रकार चिंता स्तर में कमी लाती है। परन्तु बाद में उन्नत रेडियोएक्टिव तकनीकी के विकास से इस बात का पता चला कि ब्रेन में कुछ ऐसे स्थान हैं जो कि बेन्जोडाइएजेपीन द्वारा प्रभावित होते हैं। स्पष्ट रूप में ब्रेन में कुछ ऐसे न्यूरोन होते हैं जिनमें कि

बेन्जोडाइएजेपीन के रिसेप्टर पाये जाते हैं। अनुसंधानकर्ताओं ने आखिरकार कुछ ऐसे न्यूरोट्रांस्मीटर का पता लगा लिया जिन्हें कि बेन्जोडाइएजेपीन रिसेप्टर के द्वारा रिसीव किया जाता है। इस प्रकार के न्यूरोट्रांस्मीटरों में गाबा (GABA)– गामा अम्यूनोब्यूटॉयरिक एसिड(Gama aminobutyric acid) नामक न्यूरोट्रांस्मीटर मुख्य है। अनुसंधानकर्ताओं के मुताबिक इस गामा अम्यूनोब्यूटॉयरिक एसिड की मात्रा में कमी अथवा बढ़ोत्तरी की दशा में चिंता की अनुक्रिया प्रभावित होती है। दूसरे शब्दों में जब इस न्यूरोट्रांस्मीटर को रिसीव करने वाले बेन्जोडाइएजेपीन रिसेप्टर की मात्रा में कमी हो जाती है या इनकी इस न्यूरोट्रांस्मीटर को रिसीव करने की क्षमता में कमी हो जाती है तो चिंता अनुक्रिया के फीडबैक सिस्टम पर इसका सार्थक प्रभाव पड़ने लगता है। परिणामस्वरूप व्यक्ति इसके परिणाम बहुत बार सामान्यीकृत चिंता विकृति के रूप में सामने आते हैं।

हाल ही में हुये अन्य शोध यह दर्शाते हैं कि सामान्यीकृत चिंता विकृति की यह न्यूरोट्रांस्मीटर आधारित व्याख्या इतनी सरल भी नहीं है यह अत्यंत ही जटिल है क्योंकि कुछ अध्ययनों में चिंता की अनुक्रियाओं में मस्तिष्क के न्यूरोसर्किट में सम्मिलित मस्तिष्क के अन्य हिस्सों की भागीदारी होने के भी प्रमाण प्राप्त हुये हैं इन हिस्सों में प्रीफ्रंटल कॉर्टेक्स, एन्टीरियर सिंगुलेट, एवं एमाइग्डेला प्रमुख हैं। स्कीनले एवं उनके सहयोगियों (2011) द्वारा किये गये हाल ही के अध्ययन यह दर्शाते हैं कि मस्तिष्क के इन हिस्सों से जुड़ा ब्रेन सर्किट सामान्यीकृत चिंता विकृति के मरीजों में अनुपयुक्त तरीके से अनुक्रिया करता है जो कि यह प्रमाणित करता है कि इनका भी इस विकृति के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका है।

**छ) व्यवहारात्मक कारक** (Behavioural factor)– व्यवहारात्मक मनोवैज्ञानिकों के अनुसार सामान्यीकृत चिंता विकृति दुर्भीति नामक चिंता विकृति के समान ही सीखी गयी विकृति होती है। इस विकृति के सीखने या पनपने के पीछे क्लासिकी अनुबंधन (क्लासिकल कन्डीशनिंग) का सिद्धान्त कार्य करता है इसके अनुसार व्यक्ति व्यक्ति चिंता उत्पन्न करने वाली परिस्थिति के प्रति जो अनुक्रिया स्वाभाविक रूप से करता है उसे ही सामान्य उद्दीपक के प्रति भी एसोसियेसन के सिद्वान्त के आधार पर करना सीख जाता है। हालांकि ऐसा प्रथम बार में ही नहीं हो जाता है बल्कि बार बाद चिंता उत्पन्न करने वाली परिस्थिति की उत्पत्ति के समय में ही सामान्य उद्दीपक की उपस्थिति होने पर व्यक्ति उस दूसरे उद्दीपक को भी चिंता से ही जुड़ा हुआ समझता है तथा उसके प्रति भी चिंता की अनुक्रिया करना सीख लेता है।

क्लासिकी अनुबंधन के अलावा मॉडलिंग भी इस चिंता विकृति के विकास में काफी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है जब चिंता के स्वभाव वाला व्यक्ति चिंता से ग्रस्त अन्य व्यक्तियों को सामान्यीकृत चिंता विकृति से ग्रस्त देखता है तब उसे इस बात का प्रमाण मिल जाता है कि यह समस्या केवल उसे ही नहीं है बल्कि अन्य लोगों को भी है एवं वे भी उससे निपट नहीं पा रहे हैं फलतः उस व्यक्ति में भी स्वयं अपनी चिंता से पीछा नहीं छुड़ा पाने की मनोदशा विकसित हो जाती है और उसकी सामान्यीकृत चिंता विकृति और भी गंभीर हो जाती है।

इसके अलावा उद्दीपक सामान्यीकरण (stimulus generalization) की प्रक्रिया सामान्यीकृत चिंता विकृति की उत्पत्ति में एवं विकास में अन्य सिद्धान्तों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उद्दीपक सामान्यीकरण से तात्पर्य उद्दीपक से मिलते जुलते अन्य उद्दीपकों के प्रति भी समान अनुक्रिया करने से होता है। अर्थात् यदि व्यक्ति चिंता उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों से मिलती जुलती अन्य परिस्थितियों के प्रति भी जो कि

चिंता उत्पन्न करने की दृष्टि से उतनी गंभीर परिस्थितियॉ वास्तव में नहीं होती हैं, चिंता की अतिरंजित प्रतिक्रिया बार बार करता है तो यह उद्दीपक सामान्यीकरण का उत्तम उदाहरण होगा। व्यवहारवादियो के अनुसार इसी सिद्धान्त के तहत लोगों में सामान्यीकृत चिंता विकृति का विकास होता है।

**अभ्यास प्रश्न 4–** निम्नलिखित में से कौन से न्यूरोट्रांस्मीटर सामान्यीकृत चिंता विकृति के लिए जिम्मेदार है–

क– सेरीटोनिन
ख– गाबा
ग– डोपामाइन
घ– केटाकोलामाइन

## 6.6 सामान्यीकृत चिंता विकृति का उपचार(Treatment of generalized anxiety disorder)

उपरोक्त पंक्तियों में आपने अभी तक सामान्यीकृत चिंता विकृति के कारणों के संबंध में ज्ञान प्राप्त किया है अपनी समझ को बढ़ाया है। आइये अब इस बिन्दु के अंतर्गत सामान्यीकृत चिंता विकृति के उपचार की कतिपय प्रविधियों के बारे में ज्ञान प्राप्त करें।

मनोगत्यात्मक प्रविधियॉ (psychodyanamic techniques)–सामान्यीकृत चिंता विकृति के उपचार में मनोगत्यात्मक चिकित्सकों द्वारा प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक सिगमण्ड फ्रायड द्वारा प्रतिपादित फ्री–एसोशियेसन, इन्टरप्रिटेशन ऑफ ट्रांसफेरेन्स, रेजिस्टेंस एवं स्वप्न विश्लेषण तकनीक का सर्वाधिक उपयोग किया है। फ्री–एसोसियेशन तकनीक के अन्तर्गत व्यक्ति की चिंता से जुड़ें पहलुओं के संबंध में रोगी की समझ को बढ़ाने के लिए उदासीन उद्दीपकों के माध्यम से चिंता के कारणों का पता लगाया जाता है तथा कारण पता लगने पर उन्हें रोगी को समझाया जाता है। फ्रायड का विश्वास था कि सामान्यीकृत चिंता विकृति जैसी चिंता विकृति न्यूरोटिक चिंता का एक प्रकार है एवं यह इड के आवेगों पर ईगो के नियंत्रण के कम होने से पनपती है। जब व्यक्ति को यह समझा दिया जाता है कि उसकी चिंता किन कारणों से उत्पन्न हुई है और वह किस प्रकार अपने ईगो की शक्ति को बढ़ा सकता है तब उसकी चिंता कम होने लगती है। फ्री– एसोसियेशन के समान ही ट्रांस्फेरेशन का अध्ययन, रेजिस्टेंस का विश्लेषण एवं स्वप्नों के विश्लेषण द्वारा भी रोगी की विकृति के संदर्भ में अन्तदृष्टि को खोलने का कार्य किया जाता है। अन्तर्दृष्टि के विकास से व्यक्ति खुद–ब–खुद ही विकृति के रहस्यों को समझ जाता है फलत उसकी चिंता में कमी आती है।

मानवतावादी एप्रोच आधारित उपचार (humanistic approach based treatment)–मानवतावादी विचारधारा पर आधारित प्रविधियों में प्रसिद्व मानवतावादी मनोवैज्ञानिक कार्ल रोजर्स के द्वारा प्रतिपादित कलायंट केंद्रित चिकित्सा प्रविधि(client centered therapy) सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रविधि है। हालांकि यह प्रविधि व्यवहारात्मक प्रविधियों की तुलना में बेहतर साबित नहीं होती है परन्तु फिर भी यह चिंता को कम करने में कुछ हद तक सफल अवश्य हुई है। इस प्रविधि के अन्तर्गत मानवतावादी चिकित्सक रोगी को बिना शर्त सकारात्मक सम्मान (अन्कंडीशलन पॉजिटिव रिगार्ड) देने के सिद्धान्त के तहत व्यक्ति को एक ऐसा स्वीकारात्मक एवं आरामदायक वातावरण उपलब्ध कराते हैं

जिसमें व्यक्ति स्वयं को शांत एवं रिलैक्स करने में सहज ही सक्षम हो पाता है एवं इस शान्ति एवं रिलेक्सेशन में उसे अपनी चिंता के कारणों को बेहतर ढंग से समझने एवं समाधान ढूँढ़ने का समुचित अवसर मिलता है जिससे उसकी चिंता काफी हद तक कम हो पाती है। मनोचिकित्सकों के अनुसार यह चिकित्सा विधि चिंता को कुछ हद तक कम करने में अवश्य सफल रहती है परन्तु इसका प्रभाव प्लेसिबो प्रविधि के समान ही रहता है तथा तात्कालिक ही रहता है अर्थात कुछ समय उपरान्त व्यक्ति पुनः चिंता की समस्या से ग्रस्त हो जाता है।

**संज्ञानात्मक चिकित्सा** (cognitive therapy)– संज्ञानात्मक चिकित्सा सामान्यीकृत चिंता विकृतियों का उपचार रोगी के विचारों, विश्वासों, धारणाओं एवं मान्यताओं में परिवर्तन लाने के माध्यम से करती है। इसके अन्तर्गत प्रसिद्ध संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक एरोन बेक एवं एल्बर्ट एलिस द्वारा प्रतिपादित चिकित्सा विधियों का उपयोग किया जाता है। मनोवैज्ञानिक एरोन बेक ने बेक–संज्ञानात्मक चिकित्सा प्रविधि का प्रतिपादन किया है यह चिकित्सा विधि रोगी के नकारात्मक विचारों को सकारात्मक विचारों से प्रतिस्थापित कर रोगी की सामान्यीकृत चिंता का निवारण करती है। यह चिकित्सा प्रविधि इस सिद्धान्त पर आधारित है कि व्यक्ति को चिंता विकृति होने के लिए उसके नकारात्मक विचार जिम्मेदार होते हैं जिनकी उत्पत्ति के पीछे रोगी के पास कोई वाजिब तर्क नहीं होता है इनका स्वरूप भी ऑटोमेटिक होता है अर्थात ये रोगी के नियंत्रण में नहीं होते हैं एवं सतत् रूप से उसके चिंतन का हिस्सा बने रहते हैं। बेक संज्ञानात्मक चिकित्सा के द्वारा इन्हे सकारात्मक विचारों द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया जाता है। जिससे व्यक्ति की चिंता काफी हद तक नियंत्रण में आ जाती है।

एलिस द्वारा प्रतिपादित रेशनल इमोटिव थेरेपी (Rational emotive therapy) का उपयोग भी इस विकृति के उपचार हेतु किया जाता है। यह चिकित्सा विधि इस सिद्धान्त पर आधारित है कि यदि रोगी के चिंता के संबंध में विकृत धारणाओं एवं मान्यताओं को उपयुक्त तर्क के माध्यम से चुनौति दी जाये तो उसकी चिंता के संबंध में समझ बढ़ती है एवं चिंता का सामान्यीकरण करने की प्रवृत्ति घटती है।

जैविक उपचार प्रविधियॉ (Biological treatment methods)– जैविक उपचार विधियों में एन्टी एन्जाइटी औषधियॉं को सामान्यीकृत चिंता विकृति के उपचार में सर्वाधिक सफल पाया गया है। हैडली एवं उनके सहयोगियों (2012) द्वारा किये गये अध्ययन के अनुसार इस विकृति के उपचार हेतु बेन्जोजाइएजेपीन का प्रयोग काफी कारगर पाया गया है इसके प्रयोग से चिंता को प्रभावित करने वाले एक प्रमुख न्यूरोट्रांस्मीटर गामा अम्यूनोब्यूटॉयरिक एसिड के प्रकार्यों पर काफी हद तक नियंत्रण पाया जा सकता है फलतः सामान्यीकृत चिंता विकृति को कम करने में यह सकारात्मक रूप से सार्थक भूमिका निभाता है। बाल्डविन एवं उनके सहयोगियों (2011) तथा कोमर एवं उनके सहयोगियों (2011) के अनुसार हाल के दिनों में एन्टीएन्जाइटी औषधियों के अलावा एन्टीसाइकोटिक औषधियॉ भी समान रूप से सामान्यीकृत चिंता विकृति के उपचार में सफल पायी गयी हैं।

इन औषधियों के प्रयोग के अलावा रिलेक्सेशन प्रशिक्षण एवं बायोफीडबैक प्रशिक्षण जैसी प्रविधियों को भी जैविक उपचार अथवा मेडिकल उपचार की श्रेणी में रखा जाता है जिसके अन्तर्गत सामान्यीकृत चिंता विकृति से ग्रस्त व्यक्ति को चिंता होने पर कैसे रिलेक्स होने का प्रशिक्षण दिया जाता है तथा बायोफीडबैक प्रशिक्षण के माध्यम से अपने अनैच्छिक

अनुक्रियाओं जैसे कि पल्स रेट, हृदय गति एवं श्वसन दर आदि पर आत्मशक्ति के माध्यम से नियंत्रण करना सिखलाया जाता है।

**व्यवहारात्मक चिकित्सा** (Behavioural treatment)– व्यवहार चिकित्सा प्रविधियों में उन सभी चिकित्सा प्रविधियों का प्रयोग सामान्यीकृत चिंता विकृति के उपचार हेतु किया जाता है जिन्हें कि दुर्भीति के इलाज हेतु उपयोग में लाया जाता है। जैसे कि असंवेदीकरण (डीसेन्सीटाइजेशन), फ्लडिंग, मॉडलिंग आदि। असंवेदीकरण प्रविधि में चिंता उत्पन्न करने वाले सभी उद्दीपक परिस्थितियों के प्रति व्यक्ति को असंवेदित होना सिखलाया जाता है इसके लिए उसे रिलेक्सेशन प्रशिक्षण भी दिया जाता है। सामान्य तौर पर इसके अन्तर्गत चिंता को दूर करने के लिए क्रमबद्ध असंवेदीकरण प्रविधि का उपयोग किया जाता है। इसके अलावा कुछ विशेष परिस्थितियों में फ्लडिंग तकनीक का भी इस्तेमाल किया जाता है इसके अन्तर्गत व्यक्ति को तब तक चिंता उत्पन्न करने वाली परिस्थिति में रखा जाता है जब तक कि उसकी चिंता में कमी न आ जाये। चूँकि इस प्रविधि में चिंता की बाढ़ सी आ जाती है अतएव इसे फ्लडिंग नाम से जाना जाता है।

स्पष्ट है कि सामान्यीकृत चिंता विकृति के उपचार की बहुत सी प्रविधियॉ प्रचलित हैं परन्तु मनोवैज्ञानिकों के अनुसार अभी भी इस विकृति का पूर्णरूपेण निराकरण कर देने में समर्थ विधि को खोजा जाना अभी बाकी है।

**अभ्यास प्रश्न 5**– निम्नलिखित में से कौन से मनोवैज्ञानिक के द्वारा रेशनल इमोटिव थेरेपी का प्रतिपादन किया गया है?

क–एल्बर्ट एलिस
ख–एरोन बेक
ग–सिगमण्ड फ्रायड
घ–कार्ल रोजर्स

## 6.7 सारांश

1. सामान्यीकृत चिंता विकृति चिंता विकृति का एक प्रकार है। सामान्यीकृत चिंता विकृति जिसे अंग्रेजी में जनरलाइज्ड एंजाइटी डिस्आर्डर कहा जाता है इसका संक्षिप्त रूप जी. ए.डी. है। हम जानते हैं कि चिंता एक संवेग है जिसमें अविवेकपूर्ण नकारात्मक विचारों की श्रृंखला चलती है। तथा व्यक्ति अपने साथ कुछ बुरा होने की नकारात्मक भययुक्त आशंका से ग्रस्त रहता है।
2. साररूप में जीवन की कोई भी साधारण, असाधारण घटना, किसी भी गतिविधि चाहे वह ऑफिस के कार्यों को निपटाने से संबंधित हो अथवा स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय की पढ़ाई के कार्यों को करने से संबंधित हो या फिर मित्रों, परिवारजनों के संबंधों को निभाने की कुशलता से जुड़ी हो को नहीं निष्पादित कर पाने की आशंका तथा स्वयं को न नियंत्रित कर पाने एवं सम्भाल पाने का अतार्किक डर ही सामान्यीकृत चिंता विकृति है।
3. सम्पूर्ण जनसंख्या के 6 प्रतिशत व्यक्तियों को उनके जीवन काल में सामान्यीकृत चिंता विकृति से जूझना पड़ता है जो कि एक चिंतनीय मुद्दा है। वैसे तो यह विकृति किसी भी उम्र में हो सकती है परन्तु बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था में इसकी शुरूआत सर्वाधिक पायी गयी है। पुरूषों के मुकाबले यह विकृति महिलाओं में दो गुना पायी जाती है।

4. सामान्यीकृत चिंता विकृति के विकसित होने की व्याख्याछः प्रकार से की जाती है जिनमें सामाजिक–सांस्कृतिक कारक (Sociocultural factor), मनोगत्यात्मक कारक (Psychodyamic factor) ,मानवतावादी कारक (Humanistic factor),(Cognitive factor) , जैविक कारक (Biological factor) , एवं व्यवहारात्मक कारक (Behavioural factor) प्रमुख हैं।
5. **सामान्यीकृत** चिंता विकृति के उपचार हेतु सामाजिक–सांस्कृतिक वातावरण को उपयुक्त बनाने के अलावा अन्य उपचार प्रविधियों में फ्री एसोशियेसन, रेटिस्टेंस एनॉलिसिस, स्वप्न विश्लेषण जैसी मनोगत्यात्मक विधियों के प्रयोग के साथ रेशनल इमोटिव थेरेपी,बेक–कॉग्निटिव थेरेपी, मॉडलिंग, क्रमबद्ध असंवेदीकरण एवं फ्लडिंग जैसे संज्ञानात्मक एवं विहेवियरल चिकित्सा पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है। इन प्रविधियों के अलावा जैविक उपचार प्रणाली के अन्तर्गत एन्टीएन्जाइटी औषधियॉ एवं एन्टीसाइकोटिक औषधियों के साथ बायोफीडबैक प्रशिक्षण का उपयोगकियाजाता है।
6. सभी प्रकार की चिकित्सा प्रविधियों में व्यवहारात्मक चिकित्सा प्रविधियॉ सामान्यीकृत चिंता विकृति के उपचार में सर्वाधिक सफल सिद्ध हुई हैं।

## 6.8 शब्दावली

**चिंता विकृति** (Anxiety disorder)–'चिंता विकृति से तात्पर्य वैसे विकृति से होता है जिसमें क्लायंट या रोगी में अवास्तविक चिंता एवं अतार्किक भय की मात्रा इतनी अधिक होती है कि उससे उसकी सामान्य जिन्दगी के व्यहार में असामंजस्य बढ़ जाता है इसमें चिंता की अभिव्यक्ति व्यक्ति द्वारा पूर्णतया स्पष्ट रूप में की जाती है।

**सामान्यीकृत चिंता विकृति** (Generalized Anxiety Disorder)–'सामान्यीकृत चिंता विकृति तीव्र, अनियंत्रणीय, अकेंद्रित, स्थायी और सतत चिंता के रूप में चित्रित किया जाता है जो कि डिस्ट्रेसिंग एवं अनोत्पादिक होती है एवं जिसमें पेशीय तनाव, चिड़चिड़ापन और विचलन के दैहिक लक्षण समाहित होते हैं।

**तंत्रिकातापी चिंता** (Neurotic anxiety)–इड की वजह से उत्पन्न इच्छाओं एवं आवेगों को नियंत्रित कर उन्हें स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्त करने से रोका जाता है तो तंत्रिका–तापी चिंता उत्पन्न (न्यूरोटिक एन्जाइटी) हो जाती है।

**नैतिक चिंता** (Moral anxiety)–नैतिक चिंता (मोरल एन्जाइटी) का अनुभव तब होता है जब व्यक्ति को इड के द्वारा उत्पन्न इच्छाओं एवं आवेगों की अभिव्यक्ति के लिए उसके सुपर ईगो द्वारा दण्डित किया जाता है।

**वास्तविक चिंता** (Real anxiety)–वास्तविक खतरा सामने होने पर अस्तित्व के प्रति उत्पन्न चिंता वास्तविक चिंता (रियल एन्जाइटी) कहलाती है।

**इड** (Id)– फ्रायड द्वारा प्रतिपादित मन के संरचनात्मक मॉडल में इड की व्याख्या की गयी है। इड साइकिक ऊर्जा का प्रमुख स्रोत कहा गया है। यह पूर्णतः अचेतन होता है। इसका वास्तविकता से कोई संबंध नहीं होता है। यह आनन्द सिद्धान्त पर कार्य करता है।

**ईगो**(Ego)– फ्रायड द्वारा प्रतिपादित मन के संरचनात्मक मॉडल में इड के साथ ईगो की भी व्याख्या की गयी है। इगो इड से अपने हिस्से की साइकिक ऊर्जा ग्रहण करता है। यह अंशतः चेतन एवं अंशतः अचेतन होता है। यह व्यक्ति का वास्तविकता से परिचय कराता

है। इस रूप में यहवास्तविकता सिद्धान्त पर कार्य करता है। इसका कार्य इड की अनैतिक इच्छाओं तथा सुपर ईगो पर नियंत्रण करता होता है एवं सामंजस्य बनाना होता है।

**सुपर ईगो**(Super Ego)– फ्रायड द्वारा प्रतिपादित मन के संरचनात्मक मॉडल में ईगो के अन्तरतम से सुपर ईगो का उद्भव माना गया है।यह भी अंशतः चेतन एवं अंशतः अचेतन होता है। यह आदर्श सिद्धान्त पर कार्य करता है। नैतिक मानकों का पालन करवाना इसका स्वभाव होता है।

**उद्दीपक सामान्यीकरण** (stimulus generalization)–उद्दीपक सामान्यीकरण से तात्पर्य उद्दीपक से मिलते जुलते अन्य उद्दीपकों के प्रति भी समान अनुक्रिया करने से होता है।

## 6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 –(ग)इसमें कोई डर नहीं रहता है।
अभ्यास प्रश्न 2 –(घ) निद्रा में भ्रमण करना
अभ्यास प्रश्न 3 –(ख) फिशर एवं वेल्स
अभ्यास प्रश्न 4 –(ख)गाबा
अभ्यास प्रश्न 5 –(क)एल्बर्ट एलिस

## 6.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

रोनाल्ड, जे. कोमर (2014) फन्डामेंटल्स ऑफ एबनॉरमल साइकोलॉजी, न्यूयॉर्क–वर्थ पब्लिशर।
कारसन, बुचर एवं मिनेका (1998 अपडेटेड थर्ड एडीसन) एबरॉरमल साइकोलॉजी एण्ड मॉर्डन लाइफ, लंदन – एडिसन, विसली, एजुकेशनल पब्लिशर इन्क।
बारलो एण्ड डूरण्ड (2012) एबनॉरमल साइकोलॉजी – एन इन्टीग्रेटेड एप्रोच, बेलमाउन्ट – वर्ड्सवर्थ सिनेज लर्निंग।
रॉबर्ट ए. बैरोन (2006) साइकोलॉजी, दिल्ली – पियर्सन प्रेंटिस हाल।
सैमुअल वुड एवं एलेन वुड (2000) द इसेंशियल वर्ल्ड ऑफ साइकोलाजी, यू एस ए– एलिन एण्ड बेकन।
डॉ अरूण कुमार सिंह (2010) आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, दिल्ली – मोतीलाल बनारसीदास।

## 6.11 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 –सामान्यीकृत चिंता विकृति से आप क्या समझते हैं? इसके के विभिन्न लक्षणों का वर्णन कीजिए।
प्रश्न 2 –सामान्यीकृत चिंता विकृति के विभिन्न कारणों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
प्रश्न 3 –सामान्यीकृत चिंता विकृति के प्रकारों का वर्णन कीजिए।
प्रश्न 4 –सामान्यीकृत चिंता विकृति को परिभाषित कीजिए एवं इसकी उत्पत्ति के मनोविश्लेषणात्मक तथा व्यवहारात्मक तथा संज्ञानात्मक व्याख्या पर प्रकाश डालें।
प्रश्न 5 –सामान्यीकृत चिंता विकृति से निबटने के विभिन्न उपायों का वर्णन करें।
प्रश्न 6 – डी. एस. एम. 4 टी – आर के अनुसार सामान्यीकृति चिंता विकृति के डायग्नोस्टिक कसौटी का वर्णन एवं एक उपयुक्त केस स्टडी के माध्यम से करें।

# इकाई 7 :–मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति : अर्थ, लक्षण, कारण, एवं उपचार

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति का अर्थ एवं अवधारणा
7.4 मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति के लक्षण
7.5 मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति के कारण
7.6 मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति के उपचार
7.7 सारांक्ष
7.8 शब्दावली
7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.10 सन्दर्भ ग्रन्थ
7.11 निबंधात्मक प्रश्न

## 7.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में आपने कई चिंता विकृतियों के बारे में जानकारी प्राप्त की है। प्रस्तुत इकाई में आप मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति के बारे में जानकारी प्राप्त करने जा रहे हैं। मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति चिंता विकृति का ही एक प्रमुख प्रकार है। आपने कई ऐसे व्यक्तियों के बारे में सुना होगा जो अपने हाथों अथवा शरीर के किसी भाग के गंदगी से छू जाने की आशंका मात्र से पूरी तरह नहाये बिना नहीं रह सकते, या फिर ऐसे व्यक्तियों के बारे में सुना अथवा पढ़ा होगा जिन्हें ताला लगाने के बाद भी उसे दस बार चेक करने के बाद ही उसके बंद होने की तसल्ली होती है। ये कुछ ऐसे उदाहरण हैं जोसामान्य रूप हमें अपने गॉव, कसबे अथवा शहर में देखने को मिल जाते हैं। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार ये सभी उदाहरण मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति के उदाहरण हैं। इस विकृति के हो जाने पर व्यक्ति की रोजमर्रा की जिन्दगी गंभीर रूप से प्रभावित हो जाती है। आप कल्पना कीजिए कि यदि आपको आपका हाथ धूल से छू जाने पर उसे हर हाल में साबुन से धोने की मानसिक बाध्यता होती है तो आप अपनी पढ़ाई, नौकरी अथवा भ्रमण आदि के कार्य कैसे पूरे कर पायेंगे। इस रोग के जल्द उपचार की बहुत जरूरत होती है। इस विकृति के उत्पन्न होने के क्या कारण हैं? इसके लक्षण कौन–कौन से हैं? इसका उपचार की कौन सी विधियॉ हैं? इन सभी का उत्तर हम इस इकाई के अध्ययन से जान सकते हैं।

## 7.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

1 मनोग्रस्तता –बाध्यता विकृतिका अर्थ समझ सकेंगे।
2 मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृतिकी विभिन्न परिभाषाओं को जान सकेंगे।
3 मनोग्रस्ता–बाध्यता विकृति के लक्षणों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे एवं उन्हें पहचानना सीख जायेंगे।
4 मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति के विभिन्न कारणों से परिचित हो पायेंगे।
5 मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति के प्रकारों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

6 मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति के उपचार के तरीकों के बारें में जानेंगे।

## 7.3 मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति (Obsessive-Compulsive Disorder) का अर्थ एवं अवधारणा

मनोग्रस्तता बाध्यता विकृति एक चिंता विकृति है अतएवं अन्य चिंता विकृतियों जैसे कि सामान्यीकृत चिंता विकृति एवं दुर्भीति के समान ही अतार्किक भय एवं आशंका इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं। इस विकृति में अपने आप व्यक्ति के मन में किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा घटना के संबंध में व्यक्ति के मन में नकारात्मक विचार या खयाल सतत् रूप में आते रहते हैं, इन विचारों की असंगतता तथा निरर्थकता को समझने के बावजूद व्यक्ति इनकी पुनरावृत्ति होती रहती है। एक प्रकार से ये व्यक्ति के नियंत्रण से बाहर हो जाता है। इस स्थिति से बचने के लिए व्यक्ति समाधान के रूप में अनुक्रिया स्वरूप कुछ विशेष व्यवहार करता है जिनकी उसे बाद में नशे के समान करने की बाध्यकारी आदत पड़ जाती है तथा जिन्हें दोहराने से ही उसका भय एवं आशंका कुछ समय के लिए दूर होते हैं। इस विकृति में दो घटनायें क्रमिक रूप में घटती हैं प्रथम मनोग्रस्तता तथा दूसरी बाध्यता। जिस चिंता विकृति में ये दोनों विकृतियॉ होती हैं उसे ही मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति कहा जाता है। मनोग्रस्ता एवं बाध्यता दोनों ही प्रकार के संप्रत्ययों को मनोवैज्ञानिकों ने परिभाषित कर समझाने का प्रयास किया है इन परिभाषाओं के अवलोकन से हम मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति को भली भॉति समझ सकते हैं। आइये इन परिभाषाओं के बारे में जाने।

**मनोग्रस्तता की परिभाषाएँ –**

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डेविसन एवं नील (1996) ने अपनी पुस्तक 'एबनॉरमल साइकोलॉजी' में मनोग्रस्तता को बिन बुलाये आवेग एवं प्रतिमाओं के रूप में समझाया है– उनके अनुसार मनोग्रस्तता अन्तर्वेधी एवं पुनः–पुनः आने वाले विचार, प्रतिमायें अथवा आवेग होते हैं जो कि बिना आमंत्रण मन में आते हैं एवं अनुभव करने वाले व्यक्ति को असंगत एवं अनियंत्रणीय दिखायी पड़ते हैं।'

( 'Obsessions are instrusive and recurring thoughts, impulses and images that come unbidden to the mind and appear irrational and uncontrollable to the individual experiences them' Davison&Neale, 1996, Abnormal Psychology, p 150) दूसरे शब्दों में मनोग्रस्तता से ग्रस्त व्यक्ति के मन में लगातार ऑटोमेटिक रूप से भय एवं आशंकायुक्त विचार आते रहते हैं, व्यक्ति यह समझता है कि ये विचार अतार्किक हैं असंगत हैं परन्तु वह इन्हे नियंत्रित नहीं कर पाता है एक प्रकार से इन विचारों की पुनरावृत्ति उसके नियंत्रण से बाहर रहती है।

एक अन्य मनोवैज्ञानिक सेलिगमैन एवं रोजेनहान (1998) के अनुसार –'मनोग्रस्तता ऐसे पुनरावर्ती विचारों, प्रतिमाओं एवं आवेगों का कहा जाता है जो चेतन में अनचाहे प्रवेश करते हैं और प्रायः कुत्सित होते हैं और उनको नियंत्रित करना या समाप्त करना कठिन होता है।' Obsession are repetitive thoughts, images or impulses that invade consciousness, are often abhorrent and are very difficult to dismiss or control.'- Seligman & Rosenhan : Abnormality, 1998, p. 163)

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक रोनाल्ड जे कोमर ने अपनी पुस्तक 'फण्डामेंटल्स ऑफ एबनॉरमल साइकोलॉजी' में मनोग्रस्तता को एक स्थायी रूप से आने वाले ऐसे विचारों, उकसाहटों एवं

छवियों के रूप में परिभाषित किया है जो कि व्यक्ति की चेतना को बेध देते हैं।– उनके अनुसार मनोग्रस्तता एक ऐसी चिंता विकृति है जिससे ग्रस्त व्यक्ति का मन सतत् भय एवं आशंका उत्पन्न करने वाले विचारों उकसाहटों एवं छवियों से आक्रांत रहता है।' ( 'Obsessions are persistent thoughts, urges, or images that seems to invade a person's consciousness' Ronald J. Comer, 2014, Fundamentals of Abnormal Psychology, p 127)

**बाध्यता (compulsion) की परिभाषायें –**

**डेविसन एवं नील के अनुसार** – 'बाध्यता एक आवर्ती व्यवहार है जिसे व्यक्ति अपनी व्यथा को कम करने के लिए तथा कुछ संकट या विपत्ति को रोकने के विचार से करने के लिए बाधित महसूस करता है। (' A compulsion is a repetitive behaviour that the person feels driven to perform in order to reduce distress or prevent sme calamity from occuring.'- Davison & Neale : Abnormal Psychology, 1996, p. 150)

मनोवैज्ञानिक किस्कर अपनी पुस्तक '**डिस्ऑर्गेनाइज्ड पर्सनैलिटी**' में बाध्यता को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि– 'बाध्यता मनोग्रस्तता की कार्य में परिणति है। बाध्यता से ग्रसित लोग कुछ निश्चित व्यवहार बार–बार करते रहते हैं तब भी जबकि वो जानते हैं कि इसे किये जाने का कोई अर्थ नहीं है।' (Compulsions are obsessions carried into action. People who suffer from compulsions repeat certain actions over and over again, even though they realize that there is no sense to it.' - Kisker : Disorganized Personality, 1985, p. 202)।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक रोनाल्ड जे कोमर ने अपनी पुस्तक '**फण्डामेंटल्स ऑफ एबनॉरमल साइकोलॉजी**' में बाध्यता को ऐसे व्यवहारों एवं मानसिक प्रकार्यों के रूप में परिभाषित किया है जिन्हें कि चिंता को रोकने एवं उसकी मात्रा को कम करने हेतु करना व्यक्ति द्वारा जरूरी समझा जाता है। उनके अनुसार 'बाध्यतायें ऐसे दृढ़ व्यवहार अथवा मानसिक प्रकार्य हैं जिन्हें व्यक्ति चिंता की रोकथाम हेतु अथवा कम किये जाने हेतु निष्पादित करना अति आवश्यक महसूस करता है ।' ('Compulsions are repetitive and rigid behaviours or mental acts that people feel they must perform in order to prevent or reduce anxiety' Ronald J. Comer, 2014, Fundamentals of Abnormal Psychology, p 127)।

उपरोक्त परिभाषाओं के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति में मानसिक एवं व्यावहारिक रूप से व्यक्ति बंधा हुआ होता है एक प्रकार वह मानसिक विचारों एवं व्यवहारात्मक कार्यों के बंधन में स्वयं को जकड़ा हुआ महसूस करता है एवं उससे बाहर नहीं निकल पाता है। परिणामस्वरूप उसे अतिरंजित दुश्चिंता घेर लेती है वह उसका रोजमर्रा का जीवन एवं गतिविधियॉ उससे प्रभावित होने लगती हैं। इस विकृति को निम्न बाक्स में वर्णित रिचर्ड के केस द्वारा बेहतर तरीके से समझा जा सकता है।

मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति से ग्रस्त रिचर्ड का केस

रिचर्ड एक 19 साल का नवयुवक था, जो कि कॉलेज का विद्यार्थी था एवं फिलॉसफी में रूचि रखता था। परन्तु अब उसे कॉलेज से अपना नाम दाखिला वापस लेना पड़ा क्योंकि वह कॉलेज में स्वयं के द्वारा किये जाने वाले कर्मकाण्डों से परेशान हो गया था। उसने अपनी स्वच्छता का ख्याल रखना सिर्फ इसलिए छोड़ देना पड़ा क्योंकि उसे धोने एवं सफाई करने के कार्यो के दौरान इतने बाध्यकारी व्यवहारों को करना पड़ता था कि उसके बाद उसके पास और कुछ करने के लिए समय ही नहीं बचता था। बाध्यकारी रूप से लगातार नहाते रहना न नहाने जैसा हो जाता था अतएव उसने इसके विरोध के रूप में अपने बाल संवारना, नाखून काटना, दाढ़ी बनाना, कपड़े बदलना, दॉत मॉजना आदि छोड़ ही दिया था। वह बारंबार अपने कमरे से बाहर निकल जाता था, तथा टायलेट जाने पर उसे जो बाध्यकारी व्यवहारो को करने से गुजरना पड़ता था उससे बचने के लिए उसने टॉयलेट में भी उल्टे कार्य करना शुरू कर दिया था जैसे कि वह कमोड में मूत्र त्याग करने की बजाय वहॉ पड़े मग में मूत्र विसर्जन कर देता था। वह खाना भी परिवार के सभी सदस्यों के सो जाने की उपरान्त ही देर रात्रि में खाता था क्योंकि खाना खाने की स्थिति में आने के लिए उसे अपने फेफड़ों को पूरी तरह वायु रहित करने की बाध्यकारी जरूरत पड़ती थी। पूरी तरह वायु को बाहर निकाल देने के बाद भी उसे खांसने आदि की क्रियायें करना पड़ती थीं, एवं फेफड़ों के वायुरहित हो जाने पर वह अपना मुॅह पूरी तरह उतने अधिक भोजन से एक ही बार में भर लेता था, जितना कि वह एक बार में ठूॅस सकता था। खाने में भी वह वही चीजें खाता था जिन्हें वह बैक्टीरिया रहित समझता था। वह भोजन में मक्खन मूॅगफली, अखरोट, बादाम, चीनी, दूध आदि ही लेता था। चलते या टहलते समय भी वह बहुत छोटे–छोटे कदमों से अपने अॅगूठों पर चलता था तथा चलते समय लगातार पीछे एवं बगल में सुरक्षा का जायजा लेते हुए चलता था।

मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति से ग्रस्त किसी भी साधारण रोगी की भॉति ही रिचर्ड को सतत् रूप से नकारात्मक विचारों का आक्रमण सहन करना पड़ता था। उनसे उत्पन्न चिंता से बचने के लिए ह ीवह बाध्यकारी कार्यो को सतत् अंजाम देता रहता था। उसके केस में ये व्यवहार उसके कामुकता एवं आक्रामकता एवं धर्म से संबंधित थे। वह अपने कामुक एवं आक्रामक विचारों एवं कल्पनाओं को दमित करने के लिए ही बाध्यकारी व्यवहारों को अंजाम देता था क्योंकि उसे भय था कि यदि ये चीजें उसके नियंत्रण में नहीं रहीं तो उनके भयानक परिणाम हो सकते थे।

बारलो एवं डूरण्ड, इसेंशियल्स ऑफ एबनॉरमल साइकोलॉजी, 2013, पृष्ठ – 152

उपरोक्त परिभाषाओं एवं रिचर्ड के केस अध्ययन के विश्लेषण से मनोग्रस्तता एवं बाध्यता से संबंधित कई महत्वपूर्ण बिन्दु स्पष्ट होते हैं –

1 मनोग्रस्तता का संबंध विचारों, व कल्पनाओं से होता है।
2 ऐसे विचार एवं कल्पनाओं से संबंधित चिंतन अर्थहीन होते हैं।

3 ऐसे विचार या चिंतन का स्वरूप पुनरावर्ती होता है तथा रोगी के मन में जबरदस्ती प्रवेश कर उसकी चित्त की शांति को भंग कर देते हैं।
4 रोगी का इन विचारों, कल्पनाओं के उत्पन्न होने व अनाधिकृत प्रवेश पर कोई नियंत्रण नहीं रहता है। रोगी चाहकर भी इन्हें उत्पन्न होने से नहीं रोक पाता है।
5 बाध्यता में भी व्यक्ति न चाहते हुए एक ही क्रिया को बार–बार दोहराता है।
6 मनोग्रस्तता के समान ही बाध्यता में भी व्यक्ति द्वारा की गयी अनुक्रियायें अवांछित ही नहीं बल्कि अतार्किक एवं असंगत भी होती हैं।

**सार रूप में मनोग्रस्तता**–बाध्यता विकृति में रोगी के मन में बार–बार नकारात्मक विचारों की श्रृंखला चलने लगती है जिनसे रोगी छुटकारा पाना चाहता है क्योंकि ये विचार उसकी मानसिक शांति को नष्ट कर उसमें दुश्चिंता को जन्म देते हैं जिनसे बचने के लिए उसे कुछ अवांछनीय क्रियाओं को करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। रोगी जानता है कि ये क्रियायें अर्थहीन, असंगत एवं अतार्किक हैं परन्तु वह उन्हें करने से स्वयं को रोकने में स्वयं को मजबूर महसूस करता है।

**अभ्यास प्रश्न 1** –निम्नलिखित में से कौन सा कथन मनोग्रस्तता के संबंध में असत्य है?
क– मनोग्रस्तता में उद्दीपक वस्तु व्यक्ति के सम्मुख मौजूद होती है।
ख– मनोग्रस्तता चिंता विकृति का एक प्रकार है।
ग– मनोग्रस्तता में नकारात्मक विचारों की श्रृंखला बार–बार चलती है।
घ– मनोग्रस्तता से बचने के लिए व्यक्ति बाध्यकारी क्रियाओं को करता है।

## 7.5 मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति के लक्षण (Symptoms of obsessive-compulsive disorder)

मनोग्रस्तता– बाध्यता विकृति के लक्षणों को निम्नांकित पंक्तियों में बिन्दुवार स्पष्ट किया गया है।

1– मनोग्रस्तता बाध्यता विकृति से ग्रस्त व्यक्ति के मन में अवॉछनीय विचार, कल्पनायें, या प्रतिमायें अनचाहे ही अनधिकृत रूप से उठते रहते हैं।

2– इस विकृति से ग्रस्त व्यक्ति के मन में उठने वाले ये विचार, कल्पनायें एवं प्रतिमाओं का स्वरूप व्यक्ति के मन की शांति को नष्ट कर देता है। मन की शांति नष्ट होने के पीछे इन विचारों, कल्पनाओं एवं प्रतिमाओं की विषयवस्तु का कामुक, आक्रामक एवं अनैतिक होना होता है।

3– कामुक, आक्रामक एवं अनैतिक विषयवस्तु से संबंधित विचार, कल्पनाओं एवं प्रतिमाओं के अवॉछनीय रूप से उठने पर व्यक्ति को इनके उजागर हो जाने पर संभावित परिणामों के संबंध में भय एवं आशंका उत्पन्न हो जाती है, जिसे कि व्यक्ति नियंत्रित करना चाहता है।

4– व्यक्ति चाह कर भी इन विचारों, कल्पनाओं एवं प्रतिमाओं को उत्पन्न होने अथवा मन में प्रवेश करने से सीधे–सीधे नहीं रोक पाता है। जिससे उसके मन में चिंता उत्पन्न होती है।

5– व्यक्ति को यह पता होता है कि उसके मन में बार–बार उठने वाले इन विचारों, कल्पनाओं एवं प्रतिमायें अर्थहीन, असंगत एवं अतार्किक हैं।

6– मनोग्रस्तता से उत्पन्न अतिरंजित दुश्चिंता से बचने के लिए व्यक्ति कुछ विशेष प्रकार की अनुक्रिया करने के लिए बाध्य हो जाता है। जब जब उसके मन में मनोग्रस्त चिंतन

शुरू होता है उसके बचने के लिए पूर्व में किये गये बाध्यकारी व्यवहार को करने से वह स्वयं को चाह के भी नहीं रोक पाता है। जबर्दस्ती स्वयं को रोकने का प्रयास करने पर चिंता की बारंबारता एवं तीव्रता और भी बढ़ जाती है।

मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति के लक्षणों को डायग्नोस्टिक एण्ड स्टेटिस्टिकल मैनुअल के अध्ययन से भली भॉति समझा जा सकता है। आइये मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति के नैदानिक कसौटी को उसके मौलिक स्वरूप में समझें।

**डी.एस.एम 5.– सामान्यीकृत चिंता विकृति की नैदानिक कसौटी (DSM-V : The Diagnostic Criteria for Obsessive-Compulsive Disorder)**

मनोग्रस्तता बाध्यता विकृति (Obsessive-Compulsive disorder)

7. मनोग्रस्ता, बाध्यता अथवा दोनों का पाया जाना (Presence of obsession, compulsion or both) :

मनोग्रस्तता बिन्दु 1 एवं 2 द्वारा परिभाषित की जाती है (Obsession are defined by (1) and (2):

**a.** आवर्तिक एवं सतत् विचारों, आवेगों या प्रतिमाओं का अवांछनीय रूप से विक्षुब्धता की अवस्था में अनुभव होना जिसकी वजह से ज्यादातर व्यक्तियों में चिंता या दुश्चिंता को गंभीर स्तर तक उत्पन्न हो जाती है।(Recurrent and persistent thoughts, urges, or images, that are experienced at some time during the disturbance, as intrusive and unwanted, and that in most individuals cause marked anxiety or distress).

**b.** इस प्रकार के विचारों, आवेगों या प्रतिमाओं को व्यक्ति द्वारा नजरअंदाज करने का प्रयास करना, अथवा दूसरे विचारों या क्रियाओं द्वारा उन्हें सुप्त करने का प्रयास करना (जैसे बाध्यकारी क्रिया करना)(The individual attempts to ignore or suppress such thoughts, urges, or images, or to neutralize them with some other thought or action (i.e., by performing a compulsion).

बाध्यता बिन्दु 1 एवं 2 के द्वारा परिभाषित की जाती है। (Compulsions are defined by (1) and (2):

i. मनोग्रस्तता के प्रति अनुक्रिया के रूप में व्यक्ति द्वारा बाध्यकारी रूप में किये जाने वाले आवर्ति व्यवहार (उदाहरण के लिए, हाथ धोना, वस्तुओं को क्रमबद्ध करना, कार्य ठीक से हुआ या नहीं बार–बार चेक करना) अथवा मानसिक प्रक्रियायें (उदाहरण के लिए, प्रार्थना करना, गिनती गिनना, म नही मन शब्दों को दोहराना आदि)। Repetitive behaviors (e.g., hand washing, ordering, checking) or mental acts (e.g., praying, counting, repeating words silently) that the individual feels driven to perform in response to an obsession or according to rules that must be applied rigidly.)

ii. व्यवहारों अथवा मानसिक क्रियाओं को चिंता एवं डिस्ट्रेस की रोकथाम के उद्देश्य से किया जाना, अथवा भय उत्पन्न करने वाली घटना या परिस्थिति को रोकने के उद्देश्य से करना, हालांकि ये व्यवहार या मानसिक क्रिया का वास्तव में जिसके लिये प्रयोग किया जा रहा है उससे वास्तविक रूप में कोई संबंध नहीं होता है। (The behaviors or mental acts are aimed at preventing or reducing anxiety or distress, or preventing some dreaded

event or situation; however, these behaviors or mental acts are not connected in a realistic way with what they are designed to neutralize or prevent, or are clearly excessive.)

8. मनोग्रस्ता या बाध्यता का समय व्यर्थ करने वाला होना (उदाहरण के लिए, इनमें एक घंटे से ज्याद समय व्यर्थ होना) अथवा गतिविधियों के विभिन्न क्षेत्रों जैसे कि सामाजिक, व्यावसायिक आदि में नैदानिक रूप से महत्वपूर्ण दुश्चिंता उत्पन्नक या विघटनकारी होना।(The obsessions or compulsions are time-consuming (e.g., take more than 1 hour per day) or cause clinically significant distress or impairment in social, occupational, or other important areas of functioning.)
9. मनोग्रस्तता एवं बाध्यता से संबंधित लक्षण किसी पदार्थ ( जैसे – व्यसन औषधि, या दवा) के फिजियोलॉजिकल प्रभावों का परिणाम न रहे हों, अथवा किसी अन्य रोग दशा जनित न हों। (The obsessive-compulsive symptoms are not attributable to the physiological effects of a substance (e.g., a drug of abuse, a medication) or another medical condition.)
10. विक्षुब्धता किसी अन्य मनोरोग के द्वारा बेहतर तरीके से व्याख्या की जाने वाले स्थिति में न हो (उदाहरण के लिए, सामान्यीकृत चिंता विकृति आदि जनित अतिरंजित चिंता आदि के रूप में न हो) ।(The disturbance is not better explained by the symptoms of another mental disorder (e.g., excessive worries, as in generalized anxiety disorder; preoccupation with appearance, as in body dysmorphic disorder; difficulty discarding or parting with possessions, as in hoarding disorder; hair pulling, as in trichotillomania [hair-pulling disorder]; skin picking, as in excoriation [skin-picking] disorder; stereotypies, as in stereotypic movement disorder; ritualized eating behavior, as in eating disorders; preoccupation with substances or gambling, as in substance-related and addictive disorders; preoccupation with having an illness, as in illness anxiety disorder; sexual urges or fantasies, as in paraphilic disorders; impulses, as in disruptive, impulse-control, and conduct disorders; guilty ruminations, as in major depressive disorder; thought insertion or delusional preoccupations, as in schizophrenia spectrum and other psychotic disorders; or repetitive patterns of behavior, as in autism spectrum disorder).)

उपयुक्त नैदानिक कसौटी के प्रकाश में यह स्पष्ट हो गया है कि मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति से जो व्यक्ति पीड़ित होता है उसे मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति से ग्रस्त घोषित करने हेतु न्यूनतम् जरूरी लक्षण क्या होने चाहिए एवं कितने समय तक रहे होने चाहिए। आइये अब मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति के संबंध में अपनी जानकारी की परीक्षा करें। निम्नलिखित प्रश्न पर विचार करें।

**अभ्यास प्रश्न 2**–डेविड के मन में बारंबार ये ख्याल आता है कि यदि वह सड़क पर टहलने जायेगा तो उसके साथ दुर्घटना घट जायेगी, इस ख्याल से उत्पन्न चिंता से बचने के लिए वह प्रभु ईशु का बारंबार स्मरण करता है। जब तक वह इस क्रिया को कर नहीं लेता उसकी चिंता कम नहीं होती है। डेविड द्वारा बार बार ईशु स्मरण करना .....कहलाता है–

क– मनोग्रस्तता
ख– बाध्यता
ग– व्यामोह
घ– कल्पना

## 7.5 मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति के कारण (Etiology of Obsessive Compulsive Disorder)

उपरोक्त पंक्तियों में आपने मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति के लक्षणों एवं नैदानिक कसौटी के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त की। इस विकृति के उत्पत्ति के पीछे क्या कारण हैं इसके विकास के पीछे कौन से प्रमुख कारक हैं उनके बारे में जानने से पूर्व इस विकृति के संबंध में कुछ सामान्य बातें जान लें।

केसलर एवं उनके सहयोगियों (2010) के अनुसार अमेरिका समेत संपूर्ण विश्व के देशों में एक दिये गये वर्ष में मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति से पीड़ित होने वाले व्यक्तियों की संख्या सामान्य व्यक्तियों की संख्या का 1 से 2 प्रतिशत होती है। अर्थात विश्व में हर 100 व्यक्तियों में से कोई 1 या दो व्यक्ति इस विकृति से ग्रस्त होते हैं। अपने संपूर्ण जीवन काल में लगभग 3 प्रतिशत व्यक्ति कभी न कभी इस विकृति का अनुभव अवश्य करते हैं। मतसुनागा एवं सीदत (2011) के अनुसार यह महिला एवं पुरूषों में समान रूप में पाया जाता है। इसके अलावा दुनिया की सभी संस्कृतियों, जातियों, के लोगों में इसके विकसित होने एवं पाये जाने की दर समान है। यह विकृति के पनपने की सर्वाधिक मुफीद अवस्था प्रारंभिक वयस्कावस्था है। वैसे तो इसके लक्षणों की अभिव्यक्ति में बदलाव आता रहता है परन्तु केसलर एवं उनके सहयोगियों (1999) ने आंकलन किया है कि इस विकृति से ग्रस्त विश्व के 40 प्रतिशत रोगी उपचार की इच्छा महसूस करते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि इस मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति के विकसित होने के पीछे कौन से कारण अथवा कारक जिम्मेदार हैं। वैसे तो कारण एवं कारक कई हो सकते हैं परन्तु जो प्रमुख हैं एवं जिन की आपको जानकारी होनी चाहिए वे चार महत्वपूर्ण कारक निम्नांकित हैं। –

क) मनोगत्यात्मक कारक(Psychodyamic factor) –
ख) संज्ञानात्मक कारक (Cognitive factor) –
ग) जैविक कारक(Biological factor) –
घ) व्यवहारात्मक कारक (Behavioural factor)–

उपरोक्त सभी कारकों अथवा दृष्टिकोण का वर्णन निम्नांकित है।

**क) मनोगत्यात्मक कारक** (Psychodyamic factor) – जैसा कि आप सभी जानते हैं कि चिंता विकृतियॉ तब पनपती हैं जब बच्चे स्वयं के इड के आवेगों एवं इच्छाओं की तीव्रता से भयभीत हो जाते हैं और इससे उत्पन्न चिंता को कम करने के लिए ईगो सुरक्षा प्रक्रम (ego defence mechanism) का उपयोग करते हैं। अब प्रश्न उठता है कि मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति चिंता विकृति से किस प्रकार भिन्न है? इस दृष्टिकोण से देखने पर हम पाते हैं कि मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति में चिंता उत्पन्न करने वाले इड आवेगों एवं चिंता को कम करने वाले ईगो सुरक्षा प्रक्रम के बीच संघर्ष अचेतन की गहराइयों में नहीं होता है बल्कि वह संघर्ष व्यक्त विचारों एवं क्रियाओं में होता है। यहॉ पर ये इड आवेग

प्रायः मनोग्रस्त विचारों का स्वरूप ग्रहण कर लेते हैं एवं ईगो सुरक्षा प्रक्रम इनके विरोधी विचारों अथवा बाध्यकारी क्रियाओं के रूप में दिखलाई पड़ते हैं। उदाहरण के लिए यदि कोई महिला अपनी कल्पना में अपनी मॉ को सदैव बिस्तर पर क्षत–विक्षत रक्त बहती अवस्था में पड़ा हुआ बार–बार देखती है तो वह इसका सामना अपने घर में बार–बार सुरक्षा का जायजा लेने के अतिरंजित व्यवहार के रूप में कर सकती है।

मनोगत्यात्मक विचारधारा के मनोवैज्ञानिकों में सिगमण्ड फ्रायड ने मनोग्रस्तता बाध्यता विकृति को स्वयं के द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व के मनोविश्लेशणात्मक सिद्धान्त में वर्णित मनोलैंगिक विकास की पॉच अवस्थाओं में से क्रमानुसार द्वितीय अवस्था जिसे कि गुदा अवस्था कहा गया है, से संबंधित माना है। उनके अनुसार इस विकृति के बीज इसी अवस्था में रोपित होते हैं। उनके अनुसार यह अवस्था बच्चे के टॉयलट प्रशिक्षण की अवस्था होती है इसमें बच्चे की उम्र दो वर्ष के आसपास होती है। इसमें बच्चे को मल निष्कासन की कला का प्रशिक्षण दिया जाता है। इसमें सही समय पर मल निष्कासन को प्रोत्साहित किया जाता है एवं गलत समय या गलत जगह पर करने पर दण्डित किया जाता है अथवा मलावरोध का प्रशिक्षण दिया जाता है। कुल मिलाकर बच्चे को इस अवस्था में अपनी शारीरिक क्रियाओं पर नियंत्रण स्थापित करना सिखाया जाता है। यदि बच्चे को दण्ड मिलता है तो बच्चे में इसके प्रति गुस्से का भाव पनपता है एवं यदि वह अपनी दैहिक क्रियाओं पर नियंत्रण रखने में असफल रहता है तो उसे शर्म का अनुभव होता है। एरिक्सन (1963) एवं सुल्लीवान (1953) जैसे मनोवैज्ञानिकों के अनुसार गुस्से के भाव की जड़ें कही न कही उसके असुरक्षा के भाव में निहित होती हैं। खैर किसी भी दृष्टि से देखें दोनों ही स्थितियों में बच्चे में उसके इड के गुस्से से संबंधित आवेगों को अभिव्यक्त करने एवं साथ ही नियंत्रित करने की नितान्त आवश्यकता होती है। अपने गुस्से को अभिव्यक्त करने एवं रोकने की ये अकुलाहट मन में संघर्ष को जन्म देती है। यदि इस संघर्ष या द्वन्द का समाधान ठीक प्रकार से नहीं होता है अथवा यह संघर्ष लम्बे समय तक लगातार चलता है तो इससे मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति पनपती है। इस तर्कपूर्ण व्याख्या के बावजूद मनोवैज्ञानिकों को इस परिकल्पना के समर्थन में समुचित प्रमाण नहीं मिल पाये हैं (बुश एवं उनके सहयोगी 2010, फिट्ज 1990)।

**ख) संज्ञानात्मक कारक** (Cognitive factor) – संज्ञानात्मक सिद्धान्तवादी तो मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति के कारणों की व्याख्या की शुरूआत ही इस बात से करते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति के मन में आवर्ती, अवांछित एवं आक्रांतक विचार चलते रहते हैं। किसी भी व्यक्ति के मन में किसी दूसरे को नुकसान पहुॅचाने अथवा गंदगी के कीड़ों अथवा वायरस, बैक्टीरिया से अस्वस्थ होने का विचार कभी भी पनप सकता है। इनमें से बहुत से व्यक्ति इन विचारों को नजरअंदाज अथवा निरस्त कर लेते हैं। लेकिन वे व्यक्ति जिनमें यह विकृति पनप जाती है वे स्वयं को इन विचारों के पनपने के कारण दोषी मानते हैं, एवं यह अपेक्षा करते हैं कि उनके इन विचारों के कारण कोई भयानक अघटनीय घटना न घट जाये। तर्क के परे उन्हें यह यकीन होता है कि इन विचारों की उत्पत्ति कोई अवांछनीय घटना घटने का कारण बन जायेगी (क्लार्क एवं बेक, 2010)। इस प्रकार के नकारात्मक परिणामों से बचने के लिए वे न्यूट्रलाइजिंग (Neutralizing) तकनीक का प्रयोग करते हैं जिसके अन्तर्गत वे इस प्रकार से सोचने एवं व्यवहार करने का प्रयास करते हैं कि जिससे समस्या सुधर जाये (सालकोवस्किस, 2010)।

ये न्यूट्रलाइजिंग व्यवहार कई प्रकार के हो सकते हैं जैसे कि – अन्य लोगों से यह भरोसा दिलाने का निवेदन करना कि कुछ भी अघटनीय नहीं घटेगा, प्रयासपूर्वक अच्छा एवं सकारात्मक सोचने का प्रयास करना, अपने हाथों को धोना, या संभावित खतरे के स्रोतों की जॉच करना आदि। जब एक न्यूट्रलाइजिंग प्रयास से व्यक्ति की व्याकुलता में थोड़ी सी भी कमी आती है तो यह व्यवहार पुनर्बलित हो जाता है एवं पुनः व्याकुलता उत्पन्न होने पर वह पुनः न्यूट्रलाइजिंग व्यवहार करने का प्रयास करता है। बार–बार यही न्यूट्रलाइजिंग व्यवहार करने पर यह बाध्यकारी व्यवहार का रूप ले लेता है एवं बाध्यता (compulsion) बन जाता है। यह घटना बार बार घटने पर ठीक इसी समय व्यक्ति की यह भरोसा भी मजबूत होता जाता है कि उसके मन में प्रवेश करने वाले ये अवांछनीय विचार वास्तव में नुकसानदेय हैं। जैसे जैसे व्यक्ति का इन विचारों के प्रति भय बढ़ता जाता है वैसे वैसे से विचार उसके मन में उतना ही अधिक बारंबारता से आने लगते हैं एवं अंततः मनोग्रस्तता का रूप ग्रहण कर लेते हैं।

इस व्याख्या के प्रमाण के रूप में मनोवैज्ञानिकों ने पाया है कि जो व्यक्ति मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति से पीड़ित होते हैं उनमें सामान्य लोगों की अपेक्षा नकारात्मक आक्रांतक विचार कई गुना अधिक मात्रा में आते हैं। ये व्यक्ति सामान्य लोगों की अपेक्षा कहीं अधिक एवं व्यापक रूप में न्यूट्रलाइजिंग तकनीक का इस्तेमाल करते हैं, एवं इनके इस्तेमाल के उपरान्त उन्हें चिंता में कमी का अनुभव होता है (सैफ़ान, 2005, सालकोवस्किस एवं सहयोगी, 2003)।

यद्यपि सभी लोगों को मन को आक्रान्त करने वाले विचारों का अनुभव होता है, परन्तु सभी को यह विकृति नहीं होती है। ऐसा क्यों होता है? इसके पीछे क्या कारण हैं? इन्हें जानने के लिए शोधार्थियों ने अध्ययन किये हैं एवं पाया है कि इन लोगों में कुछ खास तरह की प्रवृत्तियॉ पायी जाती हैं जो कि निम्नांकित हैं–

इन व्यक्तियों के नैतिकता एवं सदाचार के असाधारण रूप से उच्च मानदण्ड होते हैं।

ये अपने विचारों के क्रियाओं के समान समर्थ मानते हैं एवं विश्वास करते हैं कि उनके ये विचार संभावित नुकसानदेह परिणाम उत्पन्न कर सकते हैं।

इन व्यक्तियों में यह धारणा पायी जाती है कि उनमें अपने सभी विचारों एवं व्यवहारों को पूर्णतया नियंत्रित करने की क्षमता होनी चाहिए।

**अभ्यास प्रश्न 3**– निम्नलिखित में से किस मनोलैंगिक अवस्था में मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति के पनपने की संभावना सर्वाधिक होती है?

क– मुखावस्था

ख– गुदावस्था

ग– यौवनावस्था

घ– जननांग अवस्था

उपरोक्त पंक्तियों में हमने संज्ञानात्मक कारकों के बारे में जानकारी प्राप्त की है। आइये अब इस विकृति के जैविक कारणों के बारे में जानें।

**ग) जैविक कारक**(Biological factor) – हाल के वर्षों में दो दिशाओं में किए गए अनुसंधानों ने यह सिद्ध कर दिया है कि मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति की उत्पत्ति में न केवल जैविक कारकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है वरन जैविक प्रक्रियाओं पर आधारित उपचार भी खोजा जा चुका है। इन दो महत्वपूर्ण शोधों का संकेत प्रथम तो 1.

न्यूरोट्रांस्मीटर सीरोटोनिन की असामान्य रूप से न्यून सक्रियता पाये जाने की ओर है। एवं दूसरा संकेत 2. मस्तिष्क के महत्वपूर्ण हिस्सों में असामान्य कार्यप्रणाली की ओर है।
सीरोटोनिन गाबा एवं नॉरइपिनेफ्राइन जैसे ही मस्तिष्क रसायनों की तरह ही एक न्यरोन से दूसरे न्यूरोन तक संदेश पहुँचाने का कार्य करता है। दो क्लीनिकल अनुसंधानकर्ताओं के द्वारा एक अन्य प्रयोग के दौरान अचानक ही सीरोटोनिन द्वारा मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति में निभाई जा रही भूमिका का पता लगा लिया गया। ये अनुसंधानकर्ता वास्तव इस विकृति पर दो एन्टीडिप्रेसेंट औषधियों के प्रभाव का अध्ययन कर रहे थे जिसमें उन्होंने आश्चर्यजनक रूप से इन औषधियों क्लोमिप्रमाइन एवं फ्लूक्सेटाइन ने चिंता को कम कर दिया (स्टीन एवं फिनबर्ग, 2007)। चूँकि ये दवायें सामान्यक्रम में सीरोटोनिन एक्टिविटी को बढ़ाती हैं अतएव कुछ अनुसंधानकर्ता इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यह विकृति शायद सीरोटोनिन की क्रम सक्रियता की वजह से हुई है। जबकि वास्तव में यह देखा गया है कि केवल वे ही एन्टीडिप्रेसेन्ट औषधियॉ इस विकृति में फायदा पहुँचाती हैं जो कि सीरोटोनिन की सक्रियता को बढ़ाती हैं। जेनाइन (1999) ने अपने अध्ययन में पाया कि जो एन्टीडिप्रेसेंट औषधियॉ अन्य न्यूरोट्रांस्मीटरर्स की संक्रियता पर ज्यादा असर डालती थीं उनसे इस विकृति में कोई खास लाभ प्राप्त नहीं होता है। कुछ अन्य वैज्ञानिकों ने ग्लूटामेट, गाबा एवं डोपामाइन को भी मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति में भी कुछ हद तक भूमिका निभाते पाया है(स्पूरन एवं सहयोगी, 2010, लैम्बर्ट एवं किन्सले, 2005)।
जैविक कारकों में न्यूरोट्रांस्मीटर्स के अलावा मस्तिष्क के विभिन्न हिस्सों में होने वाली असामान्य गतिविधि से भी मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति के विकास को जोड़ा जाता है। इन हिस्सों में ऑखों के ऊपरी हिस्से में स्थित ऑरबिटोफ्रंटल कॉर्ट्रेक्स एवं बेसल गैंगिलिया संरचना में पाया जाने वाले कॉडेट न्यूक्लियाई प्रमुख हैं। ये मस्तिष्क सर्किट में स्थित मस्तिष्क के वो हिस्से हैं जो कि संवेदी सूचनाओं को विचारों एवं क्रियाओं में परिवर्तित कर देते हैं। यह सर्किट ऑर्बिटोफ्रंटल कॉट्रेक्स से शुरू होता है, जहॉ प्रायः लैंगिक, हिंसक एवं अन्य मूल आवेग पैदा होते हैं। ये आवेग फिर कॉडेट न्यूक्लियाई तक भेजे जाते हैं जो कि एक फिल्टर के रूप में कार्य करता है यह तीव्र आवेगों को छॉटकर थैलेमस में भेज देता है। एन्ड्रास एवं सहयोगियों (2011) के अनुसार जब ये आवेग थैलेमस तक पहुँच जाते हैं तब व्यक्ति इनके बारे में बाध्यकारी रूप में सोचने के लिए मजबूर हो जाता है एवं यह बाध्यता यहॉ तक होती है कि वह इन आवेगों को व्यवहार रूप में करने भी लगता है। कुछ सिद्धान्तवादियों का यह मत है कि या तो ऑरबिटोफ्रंटल कॉट्रेक्स अथवा कॉडेट न्यूक्लियाई में से कम से कम एक मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति से ग्रस्त व्यक्ति में असामान्य रूप से एक्टिव होता है, जो कि सतत् रूप से परेशानी पैदा करने वाले विचारों एवं क्रियाओं को जन्म देता रहता है। स्टीन एवं फाइनबर्ग (2007) के अनुसार इस मस्तिष्क सर्किट के कुछ अन्य हिस्सों को भी इस विकृति के संबंध में चिह्नित किया गया है। इन हिस्सों में सिंगुलेट कॉर्टेक्स एवं एमाइगडेला प्रमुख हैं। मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति में इनकी भी महत्वपूर्ण भूमिका पायी गयी है।

**घ) व्यवहारात्मक कारक** (Behavioural factor)– व्यवहारात्मक दृष्टि से यदि हम मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति के कारणों का विश्लेषण करें तो हम पाते हैं कि अभी तक इस दिशा में हुए शोध कार्यों में व्यवहारवादियों ने मुख्य रूप से मनोग्रस्तता के बजाय बाध्यता विकृति की व्याख्या एवं उपचार विधियों पर ज्यादा जोर दिया है। प्रसिद्ध व्यवहारवादी फ्रॉस्ट एवं स्कीटिकी (2001) की व्याख्या के अनुसार ऐसे रोगियों से बाध्यकारी

व्यवहार शुरूआत में यादृच्छिक (randomly) रूप से होता है। होता कुछ यूँ है कि जब मन को ग्रसने वाले विचार बारंबार अनचाहे मन में प्रविष्ट होते हैं या मन इनसे आक्रांत हो जाता है तब उत्पन्न भय के अतिरेक में व्यक्ति द्वारा यूँ ही संयोग से कुछ सामान्य क्रियायें जैसे कि हाथ धोना, विशेष प्रकार से कपड़े पहनना इत्यादि हो जाती हैं। इससे उनका ध्यान तात्कालिक रूप से भय के संवेग से हट जाता है। जब ऐसी घटना बार–बार घटती है तो व्यक्ति को लगता है कि भय की परिस्थिति में उसके द्वारा इन संयोग जनित क्रियाओं के किए जाने से उसके डर में कमी आती है, चिंता दूर होती है, अथवा ये क्रियायें उसके लिए गुड लक लेकर आती हैं। तब वह चिंता एवं भय उत्पन्न करने वाली परिस्थिति एवं विचार से इन क्रियाओं के बीच एक अतार्किक संबंध को देखने लगता है। एवं मनोग्रस्ति विचार आने पर उन्हीं क्रियाओं को बार–बार करने लगता है। अन्ततः उसे इसकी आदत पड़ जाती है एवं वह इन क्रियाओं को किए बिना चिंता से उबर नहीं पाता है। फलतः बाध्यकारी व्यवहार को अंजाम देना उसकी मजबूरी बन जाती है।

प्रसिद्व नैदानिक वैज्ञानिक रैकमैन एवं उनके सहयोगी (1972) उपरोक्त व्याख्या अर्थात 'बाध्यकारी व्यवहारों को अंजाम देने पर व्यक्ति को उसे हो रही चिंता की अनुभूति के कम होने के रूप में पुरस्कार प्राप्ति होती है' को अपने एक प्रयोग से पहले ही प्रमाणित कर चुके हैं। अपने इस प्रयोग में उन्होंने 12 ऐसे प्रतिभागियों को लिया जिन्हें बाध्यकारी क्रिया के रूप में हाथ में धोने की आदत थी। ऐसे व्यक्तियों को उन्होंने ऐसे पदार्थ के सम्पर्क में कुछ समय के लिए रखा जिसे वे प्रदूषित एवं सेहत के लिए हानिकारक समझते थे एवं जिससे उनके मन में नकारात्मक मनोग्रस्ति विचार अनचाहे ही आने शुरू हो जाते थे। उनकी यह परिकल्पना थी कि ऐसे व्यक्ति अवश्य ही प्रदूषित पदार्थ के सम्पर्क में आने पर हाथ धोने का बाध्यकारी व्यवहार करेंगे एवं इस व्यवहार की बारंबारता अवश्य ही बढ़ जायेगी। उनकी यह परिकल्पना सत्य सिद्ध हुई सभी प्रतिभागियों ने चिंता उत्पन्न होने पर हाथ धोने की बाध्यकारी क्रिया की एवं चिंता में कमी को पुरस्कार स्वरूप अनुभव किया।

**अभ्यास प्रश्न 4–** मस्तिष्क सर्किट के निम्नलिखित में से कौन सा मस्तिष्क क्षेत्र मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति से संबंधित नहीं है?

क– ऑर्बिटोफ्रंटल कॉर्टेक्स
ख– सिंगुलेट कॉर्टेक्स
ग– कॉडेट न्यूक्लियाई
घ– पैराइटल कॉर्टेक्स

## 7.6 मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति का उपचार(Treatment of obsessive-compulsive disorder)

उपरोक्त पंक्तियों में आपने अभी तक मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति के कारणों के संबंध में ज्ञान प्राप्त किया है अपनी समझ को बढ़ाया है। आइये अब इस बिन्दु के अंतर्गत मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति के उपचार की कतिपय प्रविधियों के बारे में ज्ञान प्राप्त करें।

**मनोगत्यात्मक प्रविधियॉ (psychodyanamic techniques)–** मनोग्रस्तता बाध्यता विकृति के उपचार की प्रक्रिया के अन्तर्गत रोगी के अचेतन में चल रहे संघर्ष एवं इससे बचने के लिए प्रयोग किये जा रहे ईगो सुरक्षा प्रक्रम को चेतन मन के तल पर उजागर किया जाता है। इस विकृति के उपचार में मनोगत्यात्मक चिकित्सकों द्वारा, प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक सिगमण्ड फ्रायड द्वारा प्रतिपादित फ्री–एसोशियेसन, इन्टरप्रिटेशन ऑफ

ट्रांसफेरेन्स, रेजिस्टेंस एवं स्वप्न विश्लेषण तकनीक का सर्वाधिक उपयोग किया है। फ्री–एसोसियेशन तकनीक के अन्तर्गत व्यक्ति की चिंता से जुड़ें पहलुओं के संबंध में रोगी की समझ को बढ़ाने के लिए उदासीन उद्दीपकों के माध्यम से चिंता के कारणों का पता लगाया जाता है तथा कारण पता लगने पर उन्हें रोगी को समझाया जाता है। फ्रायड का विश्वास था कि मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति जैसी चिंता विकृति न्यूरोटिक चिंता विकृति का एक प्रकार है एवं यह ईड के आवेगों पर ईगो के नियंत्रण के कम होने से पनपती है। जब व्यक्ति को यह समझा दिया जाता है कि उसकी चिंता किन कारणों से उत्पन्न हुई है और वह किस प्रकार अपने ईगो की शक्ति को बढ़ा सकता है तब उसकी चिंता कम होने लगती है। फ्री– एसोसियेशन के समान ही ट्रांस्फेरेशन का अध्ययन, रेजिस्टेंस का विश्लेषण एवं स्वप्नों के विश्लेषण द्वारा भी रोगी की विकृति के संदर्भ में अन्तदृष्टि को खोलने का कार्य किया जाता है। अन्तर्दृष्टि के विकास से व्यक्ति खुद–ब–खुद ही विकृति के रहस्यों को समझ जाता है फलत मनोग्रस्ति विचारों की रोकथाम होती है एवं प्रभाव स्वरूप बाध्यकारी व्यवहार को अंजाम देने की जरूरत नहीं रह जाती है। सार रूप में मनोग्रस्तता बाध्यता विकृति से व्यक्ति को छुटकारा मिल जाता है। मनोगत्यात्मक प्रविधियों की प्रभावशीलता पर हुए शोध अभी तक इसके बहुत अधिक सफल होने की पुष्टि नहीं कर पाये हैं परिणामस्वरूप आधुनिक मनोगत्यात्मक चिकित्सक अब संक्षिप्त–मनागत्यात्मक चिकित्सा प्रविधियों के उपयोग की ओर अग्रसर हो रहे हैं (ब्राम एवं बिजॉरविन्सन, 2004)।

**संज्ञानात्मक चिकित्सा (cognitive therapy)–**संज्ञानात्मक चिकित्सा मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृतियों का उपचार रोगी के विचारों, विश्वासों, धारणाओं एवं मान्यताओं में परिवर्तन लाने के माध्यम से करती है। इसके अन्तर्गत प्रसिद्ध संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक एरोन बेक एवं एल्बर्ट एलिस द्वारा प्रतिपादित चिकित्सा विधियों का उपयोग किया जाता है। मनोवैज्ञानिक एरोन बेक ने बेक–संज्ञानात्मक चिकित्सा प्रविधि का प्रतिपादन किया है यह चिकित्सा विधि रोगी के नकारात्मक विचारों को सकारात्मक विचारों से प्रतिस्थापित कर रोगी की चिंता का निवारण करती है। यह चिकित्सा प्रविधि इस सिद्धान्त पर आधारित है कि व्यक्ति को चिंता विकृति होने के लिए उसके नकारात्मक विचार जिम्मेदार होते हैं जिनकी उत्पत्ति के पीछे रोगी के पास कोई वाजिब तर्क नहीं होता है इनका स्वरूप भी ऑटोमेटिक होता है अर्थात् ये रोगी के नियंत्रण में नहीं होते हैं एवं सतत् रूप से उसके चिंतन का हिस्सा बने रहते हैं। बेक संज्ञानात्मक चिकित्सा के द्वारा इन्हे सकारात्मक विचारों द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया जाता है। जिससे व्यक्ति की चिंता काफी हद तक नियंत्रण में आ जाती है।

एलिस द्वारा प्रतिपादित रेशनल इमोटिव थेरेपी (Rational emotive therapy) का उपयोग भी इस विकृति के उपचार हेतु किया जाता है। यह चिकित्सा विधि इस सिद्धान्त पर आधारित है कि यदि रोगी के चिंता के संबंध में विकृत धारणाओं एवं मान्यताओं को उपयुक्त तर्क के माध्यम से चुनौति दी जाये तो उसकी चिंता के संबंध में समझ बढ़ती है एवं चिंता का सामान्यीकरण करने की प्रवृत्ति घटती है।

संज्ञानात्मक चिकित्सक अपने क्लायंट की मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति से संबंधित संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं को समझने में मदद करते हैं। प्रारंभ में वे अपने क्लायंट को इस संबंध में शिक्षित करते हैं किस प्रकार अनचाहे विचारों की गलत विवेचना के कारण, जिम्मेदारी के अतिरंजित भाव के कारण, एवं न्यूट्रलाइजिंग व्यवहार इस विकृति के लक्षणों को उत्पन्न करने एवं और अधिक स्थायित्व देने में सहायक हो रहे हैं। इसके दूसरे चरण

में चिकित्सक क्लायंट को उसके विकृत चिंतन को पहचानने, उसे चुनौती देने एवं संशोधित करने हेतु निर्देशित करते हैं। बहुत से शोध अध्ययनों में यह पाया गया है कि संज्ञानात्मक सिद्धान्तों पर आधारित इन प्रविधियों का उपयोग करने से मनोग्रस्ति विचारों एवं बाध्यकारी व्यवहारों की बारंबारता एवं असर में कमी आती है (क्लार्क एवं बेक, 2010, रूफर एवं सहयोगी, 2005)।

जैविक उपचार प्रविधियॉ (Biological treatment methods)– जैविक उपचार विधियों में कुछ एन्टी डिप्रेसेन्ट औषधियों को मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति के उपचार में सर्वाधिक सफल पाया गया है (फाइनबर्ग एवं क्रेग, 2010, एवं सिम्पसन, 2010)। दूसरे शब्दों में ये औषधियॉ मनोग्रस्तता एवं बाध्यता को कम करने में कारगर साबित हुई हैं। अब हम अच्छी तरह से जानते हैं कि ये औषधियॉ न केवल मस्तिष्क में सीरोटोनिन एक्टिविटी को बढ़ाते हैं बल्कि ऑर्बिटोफ्रंटल कॉर्टेक्स एवं कॉडेट न्यूक्लियाई में भी सामान्य एक्टिविटी को सुनिश्चित करती हैं(स्टीन एवं फाइनबर्ग, 2007)। बारेग्गी एवं सहयोगियों (2004) के अनुसार ये एन्टीडिप्रेसेन्ट औषधियॉ मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति से ग्रस्त रोगियों में 50 से 80 प्रतिशत तक सुधार लाने में सफल साबित हुई हैं। हालॉकि इनके इस्तेमाल से मनोग्रस्तता अथवा बाध्यता पूरी तरह समाप्त नहीं होती है, परन्तु इनकी बारंबारता को 50 प्रतिशत तक कम करने में ये अवश्य सफल होती हैं।

व्यवहारात्मक चिकित्सा (Behavioural treatment)– व्यवहार चिकित्सा प्रविधियों में उन सभी चिकित्सा प्रविधियों में से जिनका प्रयोग चिंता विकृति के उपचार हेतु किया जाता है उनमें से कुछ विशिष्ट प्रविधियों को वर्तमान अनुसंधानों में मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति के उपचार में काफी प्रभावकारी पाया गया है। इन प्रविधियों में एक्सपोजर एवं रेस्पॉन्स प्रिवेन्शन प्रमुख हैं। मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि जिस प्रकार संयोग जन्य क्लासिकी अनुबंधन एवं क्रियाप्रसूत अनुबंधन के सिद्धान्त के तहत व्यक्ति मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति स्वयं में विकसित कर लेता है उसी प्रकार उसे इससे बचना भी सिखाया जा सकता है। इस संदर्भ में मनोवैज्ञानिकों का मत है कि यदि रोगी बाध्यकारी व्यवहार को सिर्फ इसलिए अंजाम देते हैं कि वे यह समझते हैं कि यह व्यवहार बुरी घटना कमो घटने से रोकेगा एवं अच्छे परिणाम लायेगा तो उसे इसकी व्यर्थता को सिखलाना जरूरी है अर्थात् यह समझाना जरूरी है कि वास्तव में उसके द्वारा किया जाने वाला बाध्यकारी व्यवहार अच्छे परिणाम नहीं लाता एवं उसका अच्छे अथवा बुरे परिणामों से कोई सार्थक संबंध नहीं है। आधुनिक समय में मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति से ग्रस्त रोगी के उपचार के लिए एक्सपोजर एवं रेस्पॉन्स प्रिवेन्शन प्रविधि का इस्तेमाल किया जाता है। इसके अन्तर्गत रोगी को बार–बार मनोग्रस्ति विचार उत्पन्न करने वाली, चिंता उत्पन्न करने वाली परिस्थिति के समक्ष एक्सपोज किया जाता है, तथा साथ ही उसे इसके प्रति बाध्यकारी व्यवहार के रूप में की जाने वाली अनुक्रिया को करने से रोका जाता है। चूँकि बाध्यकारी व्यवहार को करने से स्वयं को रोक पाना रोगी के लिए अत्यंत ही कठिन होता है उसे इसके लिए उच्च प्रेरणा की जरूरत होती है अतएव प्रायः चिकित्सक स्वयं ही उदाहरण प्रस्तुत करके मॉडलिंग द्वारा उसके अभिप्रेरण को बढ़ाते हैं।

आजकल बहुत से व्यवहारवादी चिकित्सक एक्सपोजर एवं रेस्पॉन्स प्रिवेन्शन चिकित्सा विधि का इस्तेमाल व्यक्तिगत एवं समूह चिकित्सा दोनों के ही रूप में मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति से निपटने हेतु कर रहे हैं। कुछ चिकित्सक इसके अलावा रोगियों को अपने घरों पर सेल्फ–हेल्प ग्रुप बनाकर करने के लिए भी प्रोत्साहित करते हैं एवं इसका प्रशिक्षण भी देते

हैं (अब्रामोविट्ज एवं सहयोगी, 2011, सिम्पसन एवं सहयोगी, 2011)। इसे कियान्वित करने के लिए वे रोगियों को गृहकार्य के रूप में एक्सपोजर एवं रिस्पॉन्स प्रिवेन्शन का इस्तेमाल करने का कार्य देते हैं। ऐसे ही एक सफाई–बाध्यता से पीड़ित एक महिला को दिये गये गृहकार्य को उदाहरण के लिए देखिए–

बाथरूम के फर्श को एक सप्ताह तक पोछा मत लगाइये। एक सप्ताह बाद इसे तीन मिनट के अन्दर एक साधारण पोछे से साफ कीजिए। इसके अलावा दूसरे कार्यों को करने के लिए भी इसी पोछे को बिना साफ किये इस्तेमाल कीजिए।

एक मुलायम रोंयेदार स्वेटर खरीदिये एवं इसे एक सप्ताह तक पहनिए। रात को सोने से पहले इसे उतारिये परन्तु इसके गंदे रोयें मत हटाइये। एक सप्ताह तक घर की सफाई मत कीजिए।

आप, आपके बच्चे एवं आपके पति घर में पूरे समय जूते पहने रहें उन्हें उतारें नहीं एवं एक सप्ताह तक सफाई न करें।

एक बिस्कुट को प्रदूषित फर्श पर गिराइये तथा तुरंत उठाकर खा लीजिए।

बेडशीट एवं कंबल को फर्श पर फेंक दीजिए तथा फिर पलंग पर बिछा दीजिए तथा एक सप्ताह तक बेडशीट एवं कंबल मत बदलिए।

एमेलकेम्प (1982) द्वारा दिये गये इस गृहकार्य के परिणाम स्वरूप इस महिला के सफाई–बाध्यता में काफी कमी आयी तथा वह इसे एक साधारण रूटीन में बदलने में सफल रही।

अब्रामोविट्ज एवं उनके सहयोगियों (2011) के अनुसार लगभग 55 से 85 प्रतिशत के बीच इस बाध्यता विकृति से पीड़ित रोगियों में इस चिकित्सा प्रविधि (एक्सपोजर एवं रेस्पॉन्स प्रिवेन्शन) के इस्तेमाल से काफी सार्थक बदलाव देखने में आते हैं।

अनुसंधानों से यह ज्ञात हुआ है कि जब केवल एक प्रकार की चिकित्सा विधि अर्थात् केवल एन्टीडिप्रेसेन्ट औषधि का इस विकृति को दूर किये जाने हेतु इस्तेमाल किये जाने पर इस विकृति के पुनः लौट आने की संभावना काफी बढ़ जाती है। केवल एन्टीडिप्रेसेन्ट ही नहीं बल्कि अन्य चिकित्सा विधियों जैसे कि संज्ञानात्मक, व्यवहारात्मक अथवा मनोगत्यात्मक किसी भी चिकित्सा विधि का अकेले इस्तेमाल करने पर इसके पुनः होने की संभावना सदैव बनी रहती है। इसकी रोकथाम के लिए आजकल चिकित्सक इन सभी चिकित्सा पद्धतियों को एक साथ समूह में इस्तेमाल कर रहे हैं जिसके परिणाम इन्हें अकेले इस्तेमाल करने की तुलना में कहीं अधिक बेहतर हैं। कुल मिलाकर उपरोक्त वर्णन एवं अनुसंधानों के परिणामों के विश्लेषण से यही निष्कर्ष निकलता है कि समग्र उपचार प्रक्रिया के तहत इन सभी चिकित्सा प्रविधियों का संयुक्त रूप से प्रयोग किये जाने से मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति को उपचार ज्यादा सफलता पूर्वक किया जा सकता है।

**अभ्यास प्रश्न 5**– एन्टीडिप्रेसेन्ट औषधियॉ ओ.सी.डी के उपचार में कितनी सफल रही हैं।

क– 40 से 80 प्रतिशत तक।

ख– 60 से 90 प्रतिशत तक।

ग– 50 से 80 प्रतिशत तक।

घ– 70 से 80 प्रतिशत तक।

## 7.7 सारांश

1. **मनोग्रस्तता**–बाध्यता विकृति चिंता विकृति का एक प्रकार है। मनोग्रस्तता बाध्यता विकृति जिसे अंग्रेजी में ऑब्सेसिव–कम्पल्सिव डिस्आर्डर कहा जाता है इसका संक्षिप्त

रूप ओ.सी.डी. है। जिसमें अविवेकपूर्ण नकारात्मक विचारों की श्रृंखला चलती है। ये विचार लैंगिक, हिंसक तथा अनैतिक चीजों से संबंधित होते हैं तथा इन्हें व्यक्ति चाहकर भी रोक नहीं पाता है तथा इनकी वजह से व्यक्ति अपने साथ कुछ बुरा होने की नकारात्मक भययुक्त आशंका से ग्रस्त रहता है। इसके परिणाम स्वरूप वह कोई अतार्किक, अविवेकपूर्ण बाध्यकारी अनुक्रिया करता है जिससे उसकी चिंता में कमी आती है। बाद में यह उसकी आदत बन जाती है तथा बाध्यता का रूप ग्रहण कर लेती है।

2. **सार रूप में मनोग्रस्तता**–बाध्यता विकृति में रोगी के मन में बार–बार नकारात्मक विचारों की श्रृंखला चलने लगती है जिनसे रोगी छुटकारा पाना चाहता है क्योंकि ये विचार उसकी मानसिक शांति को नष्ट कर उसमें दुश्चिंता को जन्म देते हैं जिनसे बचने के लिए उसे कुछ अवांछनीय क्रियाओं को करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। रोगी जानता है कि ये क्रियायें अर्थहीन, असंगत एवं अतार्किक हैं परन्तु वह उन्हें करने से स्वयं को रोकने में स्वयं को मजबूर महसूस करता है।
3. विश्व में हर 100 व्यक्तियों में से कोई 1 या दो व्यक्ति इस विकृति से ग्रस्त होते हैं। अपने संपूर्ण जीवन काल में लगभग 3 प्रतिशत व्यक्ति कभी न कभी इस विकृति का अनुभव अवश्य करते हैं। मतसुनागा एवं सीदत (2011) के अनुसार यह महिला एवं पुरूषों में समान रूप में पाया जाता है। इसके अलावा दुनिया की सभी संस्कृतियों, जातियों, के लोगों में इसके विकसित होने एवं पाये जाने की दर समान है। यह विकृति के पनपने की सर्वाधिक मुफीद अवस्था प्रारंभिक वयस्कावस्था है। वैसे तो इसके लक्षणों की अभिव्यक्ति में बदलाव आता रहता है परन्तु केसलर एवं उनके सहयोगियों (1999) ने आंकलन किया है कि इस विकृति से ग्रस्त विश्व के 40 प्रतिशत रोगी उपचार की इच्छा महसूस करते हैं।
4. **मनोग्रस्तता**–बाध्यता विकृति के विकसित होने की व्याख्या 4 प्रकार से की जाती है जिनमें मनोगत्यात्मक कारक (Psychodyamic factor), संज्ञानात्मक कारक (Cognitive factor) , जैविक कारक (Biological factor) , एवं व्यवहारात्मक कारक (Behavioural factor) प्रमुख हैं।
5. **मनोग्रस्तता–**बाध्यता विकृति के उपचार हेतु संज्ञानात्मक विधियों जैसे रेशनल इमोटिव थेरेपी, बेक–कॉग्निटिव थेरेपी, न्यूट्रालाइजिंग तकनीक का प्रयोग किया जाता है। मनोगत्यात्मक विधियों के अन्तर्गत फ्री–एसोशियेसन, स्वप्न विश्लेषण का प्रयोग किया जाता है। व्यवहारात्मक चिकित्सा के अन्तर्गत एक्सपोजर एवं रेस्पॉन्स प्रिवेन्शन, मॉडलिंग, जैसी चिकित्सा पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है। इन प्रविधियों के अलावा जैविक उपचार प्रणाली के अन्तर्गत एन्टीडिप्रेसेन्ट औषधियॉ का उपयोग किया जाता है।
6. केवल एन्टीडिप्रेसेन्ट ही नहीं बल्कि अन्य चिकित्सा विधियों जैसे कि संज्ञानात्मक, व्यवहारात्मक अथवा मनोगत्यात्मक किसी भी चिकित्सा विधि का अकेले इस्तेमाल करने पर इसके पुनः होने की संभावना सदैव बनी रहती है। इसकी रोकथाम के लिए आजकल चिकित्सक इन सभी चिकित्सा पद्धतियों को एक साथ समूह में इस्तेमाल कर रहे हैं जिसके परिणाम इन्हें अकेले इस्तेमाल करने की तुलना में कहीं अधिक बेहतर हैं। कुल मिलाकर उपरोक्त वर्णन एवं अनुसंधानों के परिणामों के विश्लेषण से यही निष्कर्ष निकलता है कि समग्र उपचार प्रक्रिया के तहत इन सभी चिकित्सा प्रविधियों का संयुक्त रूप से प्रयोग किये जाने से मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति को उपचार ज्यादा सफलता पूर्वक किया जा सकता है।

## 7.8 शब्दावली

**मनोग्रस्तता** (Obsession)– अनधिकृत रूप से पुनः–पुनः आने वाले विचार, कल्पनायें एवं प्रतिमायें अथवा आवेग जब मन को ग्रस लेते हैं तो यही मनोग्रस्तता कहलाती है। मनोग्रस्तता से पीड़ित व्यक्ति इन्हें चाहकर भी रोक नहीं पाता ये उसे अनियंत्रणीय प्रतीत होते हैं।

**बाध्यता** (Compulsion)– बाध्यता मनोग्रस्तता की कार्य में परिणति है। बाध्यता से ग्रसित लोग कुछ निश्चित व्यवहार बार बार करते रहते हैं तब भी जबकि वो जानते हैं कि इसे किये जाने का कोई अर्थ नहीं है।

**डिस्ट्रेस**(Distress)–जीवन में घटने वाली नकारात्मक घटनाओं जैसे कि तलाक होगा, नौकरी छूट जाना, सजा मिलना आदि से उत्पन्न तनाव को नकारात्मक तनाव या अंग्रेजी में डिस्ट्रेस कहा जाता है।

**न्यूट्रलाइजिंग** (Neutralizing)– व्यक्ति द्वारा अवॉछनीय नकारात्मक विचारों को रोकने के लिए इस प्रकार से सोचना या व्यवहार करना कि जिससे आन्तरिक रूप से समस्या का समाधान हो जाये अथवा अस्वीकारणीय विचारों की क्षतिपूर्ति हो जाये।

**एक्सपोजर एवं रेस्पॉन्स प्रिवेन्शन** (Exposure and Response Prevention)–यह मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति के उपचार की एक पद्धति है जिसके तहत एक रोगी को मनोग्रस्ति विचारों अथवा चिंता उत्पन्न करने वाली परिस्थिति के समक्ष एक्सपोज किया जाता है तथा साथ ही बाध्यकारी व्यवहार को न करने (रेस्पॉन्स प्रिवेन्शन) के लिए निर्देशित किया जाता है।

**मानसिक प्रक्रियायें** (Mental Processes)–चिंतन, समस्या समाधान, निर्णय, प्रत्यक्षण, विचार आदि मानसिक प्रक्रियाओं के विभिन्न उदाहरण हैं।

**चिंता**(Anxiety) –सामान्य रूप में अतार्किक भय को चिंता कहा जाता है।

**स्नायुविकृत चिंता**(Neurotic anxiety) –जब चिंता की मात्रा में इतनी वृद्धि हो जाती है कि परिस्थितियों के साथ उसके समायोजन में विकृति होने लगती है, व्यक्ति भय से आशंकित हो जाता है साथ ही उसकी समस्या–समाधान क्षमता का ह्रास होने लगता है तो ऐसी चिंता स्नायुविकृत चिंता कहलाती है।

**अवसाद**(Depression) –अवसाद से तात्पर्य मनोदशा में उत्पन्न उदासी से होता है। दुख, निराशा, निस्सहायता, दोषभाव, रूचि में कमी, अभिप्रेरण में कमी, नींद में कमी अथवा अधिकता आदि इसके प्रमुख लक्षण हैं।

**व्यक्तिगत चिकित्सा** (Individual Therapy) – मानसिक चिकित्सा का एक प्रकार जिसमें चिकित्सक द्वारा एक समय में केवल एक मनोरोगी के रोग का इलाज किया जाता है। इसमें चिकित्सक का पूरा ध्यान एक रोगी पर होता है।

**सामूहिक चिकित्सा** (Group Therapy)– मानसिक चिकित्सा का एक प्रकार जिसमें रोगी एक प्रकार के मानसिक रोग से ग्रस्त रोगियों का एक समूह निर्माण करता है तथा उन रोगियों का एक साथ इलाज प्रारंभ करता है। इस विधि में रोगियों को अन्य रोगियों से अपनी समस्या अन्तर्व्यक्त करने का मौका मिलता है। कम समय में कई रोगियों का इलाज एक साथ होना संभव होता है।

## 7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 –(क) मनोग्रस्तता में उद्दीपक वस्तु व्यक्ति के सम्मुख मौजूद होती है।
अभ्यास प्रश्न 2 –(ख) बाध्यता।
अभ्यास प्रश्न 3 –(ख) गुदा अवस्था।
अभ्यास प्रश्न 4 –(घ) पैराइटल कॉर्टेक्स।
अभ्यास प्रश्न 5 –(ग) 50 से 80 प्रतिशत तक।

## 7.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

रोनाल्ड, जे. कोमर (2014) फन्डामेंटल्स ऑफ एबनॉरमल साइकोलॉजी, न्यूयॉर्क – वर्थ पब्लिशर।
कारसन, बुचर एवं मिनेका (1998 अपडेटेड थर्ड एडीसन) एबरॉरमल साइकोलॉजी एण्ड मॉर्डन लाइफ, लंदन – एडिसन, विसली, एजुकेशनल पब्लिशर इन्क।
बारलो एण्ड डूरण्ड (2012) एबनॉरमल साइकोलॉजी – एन इन्टीग्रेटेड एप्रोच, बेलमाउन्ट–वर्ड्सवर्थ सिनेज लर्निंग।
रॉबर्ट ए. बैरोन (2006) साइकोलॉजी, दिल्ली – पियर्सन प्रेंटिस हाल।
सैमुअल वुड एवं एलेन वुड (2000) द इसेंशियल वर्ल्ड ऑफ साइकोलाजी, यू एस ए–एलिन एण्ड बेकन।
डॉ अरूण कुमार सिंह (2010) आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, दिल्ली – मोतीलाल बनारसीदास।

## 7.11 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 – मनोग्रस्तता से आप क्या समझते हैं? मनोग्रस्तता के विभिन्न लक्षणों का वर्णन कीजिए।
प्रश्न 2 – बाध्यता से आप क्या समझते हैं? बाध्यता को उदाहरण सहित समझाइये।
प्रश्न 3 – मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति के विकसित होने के विभिन्न कारणों का विभिन्न दृष्टिकोणों के आधार पर विस्तारपूर्वक समझाइये।
प्रश्न 4 – मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति को परिभाषित कीजिए एवं इसकी उत्पत्ति के मनोविश्लेषणात्मक तथा व्यवहारात्मक तथा संज्ञानात्मक व्याख्या पर प्रकाश डालें।
प्रश्न 5 – मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति के उपचार प्रविधियों का सविस्तार वर्णन कीजिए।

# इकाई – 8 विषाद या अवसाद : अर्थ, लक्षण, प्रकार, कारण एवं उपचार

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 विषाद या अवसाद : अर्थ
8.4 विषाद के लक्षण
8.5 विषाद के प्रकार
8.6 विषाद के कारण
8.7 विषाद का उपचार
8.8 सारांश
8.9 शब्दावली
8.10 अभ्यास प्रश्न के उत्तर
8.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.12 सहायक उपयोगी पाठ्य–सामग्री
8.13 निबंधात्मक प्रश्न

## 8.1 प्रस्तावना –

प्रिय पाठकों, इससे पूर्व की इकाईयों में आपने तनाव एवं चिन्ता विकृतियों का विस्तृत अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में हम मनोदशा विकृतियों में अवसाद का अध्ययन करेंगे। मनोदशा विकृति से तात्पर्य एक ऐसे विकृत मनोदशा से है, जिसमें व्यक्ति की भावनाओं, विचारों में इतना अधिक उतार – चढ़ाव होता है कि वह अपने दैनिक जीवन में समायोजन का सामान्य स्तर बनाये रखने में स्वयं को असक्षम महसूस करने लगता है और इससे उसका व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन बुरी तरह प्रभावित होने लगता है कि व्यक्ति को चिकित्सा देना अनिवार्य हो जाता है। मनश्चिकित्सकों ने तीन प्रकार की मनोदशा विकृतियाँ बतलायी है।

1. विषादी विकृति या एक ध्रुवीय विकृति।
2. द्विध्रुवी विकृति एवं
3. मनोदशा विकृति।

प्रस्तुत ईकाई में हमारे अध्ययन का विषय विषादी विकृति या एकध्रुवीय विकृति है। तो आइये, अब हम अवसाद के कारण, उपचर आदि का विस्तार से अध्ययन करते हैं।

## 8.2 उद्देश्य –

प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के बाद आप –

- अवसाद के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे।
- अवसाद के लक्षणों का वर्णन कर सकेंगे।
- अवसाद के विभिन्न प्रकारों का विवेचन कर सकेंगे।
- अवसाद के कारणों का विश्लेषण कर सकेंगे।

- अवसाद के उपचार की विभिन्न प्रविधियों का वर्णन कर सकेंगे।

## 8.3 विषाद या अवसाद : अर्थ

प्रिय पाठकों, मनोदशा विकृतियों में विषाद एक प्रमुख रोग है। विषाद या अवसाद से आशय मनोदशा में उत्पन्न उदासी से होता है अथवा यह भी कहा जा सकता है कि अवसाद से तात्पर्य एक नैदानिक संलक्षण से है, जिसमें सांवेगिक अभिप्रेरणात्मक, व्यवहारात्मक, संज्ञानात्मक एवं दैहिक या शारीरिक लक्षणों का मिश्रित स्वरूप होता हे। इसे **" नैदानिक विषाद" (clinical Depression)** की संज्ञा भी दी जाती है। अतः स्पष्ट है कि यहाँ अवसाद का अर्थ मनोदशा में उत्पन्न सामान्य उदासी से न होकर नैदानिक अवसाद से है।

## 8.4 विषाद के लक्षण –

मनश्चिकित्सकों एवं मनोवैज्ञानिकों ने अवसाद के स्वरूप को स्पष्ट करने हेतु इसके कुछ लक्षणों की चर्चा की है, जिनका विवेचन निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है।

1. **सांवेगिक लक्षण (Emotional Symtoms)**
2. **संज्ञानात्मक लक्षण (Cognitive Symtoms)**
3. **अभिप्रेरणात्मक लक्षण (Motivational Symtoms)**
4. **व्यवहारपरक लक्षण (Behavioural Symtoms)**
5. **दैहिक अथवा शारीरिक लक्षण (Somatic or physical Symtoms)**

इन सभी का विस्तृत विवेचन निम्नानुसार है।

**1- सांवेगिक लक्षण (Emotional Symtoms)** –अवसाद ग्रस्त लोग सांवेगिक दृष्टि से अत्यन्त नकारात्मक हो जाते हैं। अवसाद के सांवेगिक लक्षणों में उदासी, निराशा, दुःखी रहना, लज्जालूपन, बेकारी का भाव, दोषभाव इत्यादि प्रमुख है। इन सभी लक्षणों में उदासी सर्वाधिक सामान्य सांवेगिक लक्षण है। मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया है कि अवसाद की स्थिति में कुछ लोग तो इतने ज्यादा उदास एवं दुःखी हो जाते है कि बिना रोये किसी से बात ही नहीं कर पाते है। अवसाद ग्रस्त रोगी में उदासी के साथ – साथ चिन्ता का भाव भी अत्यन्त प्रधान होता है। ऐसे व्यक्ति की जिन्दगी के प्रति अभिरूचि समाप्त होने लगती है। इन्हें अपना जीवन अपने शौक, परिवार सभी अर्थहीन नजर आते है। जीने की अभिप्रेरणा खत्म होने लगती है। यहाँ तक की दैनिक क्रियाकलाप जैसे भूख, प्यास, नींद, यौन आदि में भी इन्हें कोई रूचि नहीं रह जाती है और इनमें निष्क्रियता का भाव प्रबल होने लगता है। प्रमुख मनोवैज्ञानिकों **क्लार्क, बेक एवं बेक (1994) के अनुसार –** विषाद रोगियों में 92 प्रतिशत ऐसे रोगी देखने को मिलते हैं, जिनकी अपने जीवन में कोई मुख्य अभिरूचि नहीं रह जती है एवं 64 प्रतिशत रोगी ऐसे होते हैं, जिनमें दूसरों के प्रति भावशून्यता उत्पन्न हो जाती है।

**1. संज्ञानात्मक लक्षण (Cognitive Symtoms) –**

मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययन के आधार पर यह भी बताया है कि अवसाद में रोगी का विचार तंत्र या संज्ञानात्मक क्रियायें नकारात्मक ढंग से बहुत बुरी तरह प्रभावित होती है। विषादी व्यक्ति का अपने प्रति एवं अपने जीवन के प्रति दृष्टिकोण पूरी तरह नकारात्मक हो जाता है। वह स्वयं को हीन, बेकार एवं अयोग्य समझता है और प्रत्येक कार्य एवं स्थिति में स्वयं में कमियाँ देखता है। उसमें आत्मदोष का भाव प्रबलता से विद्यमान रहता है। ऐसे

लोग असफल होने पर उसकी पूरी जिम्मेदारी स्वयं पर लेते हैं। इसके साथ ही अपने भविष्य को लेकर भी इनका दृष्टिकोण उदासी एवं निराशा से भरा होता है और अपनी बातों को सही सिद्ध करने के लिये ये लोगों को विभिन्न तर्क भी देते हैं। विषादी लोगों की मानसिकता इस प्रकार की हो जाती है कि इन्हें लगता है, इनकी मानसिक क्षमतायें धीरे – धीरे कम होती जा रही हैं।

तब इन्हें कुछ भी ठीक तरह से याद नहीं रहता। ये किसी भी समस्या का समाधान नहीं कर सकते, ठीक प्रकार से निर्णय लेने में भी अक्षम है इत्यादि। इस प्रकार स्पष्ट है कि विषादी व्यक्ति का चिन्तन हर दृष्टि से नकारात्मक होने लगता है।

**2. अभिप्रेरणात्मक लक्षण (Motivational Symtoms) –**

विषादी रोगियों की अपनी दिनचर्या के कार्यो और जिन्दगी के प्रति अभिरूचि समाप्त होने लगती है और इसलिये ये जीवन को ही समाप्त करने का प्रयास करने लगते है। कहने का आशय यह है कि अवसादग्रस्त रोगियों में आत्महत्या की प्रवृत्ति अत्यन्त प्रधान रूप से देखने को मिलती है। **कोरियेल एवं विनोकुर (1992)** के मतानुसार '' **आत्महत्या करने वालों में से आधे ऐसे होते हैं, जो विषादी होते हैं। ''**

अवसादग्रस्त व्यक्तियों में स्वेच्छा, पहल करने की प्रवृत्ति, प्रणोद आदि की कमी हो जाती है। ऐसे लोगों का कार्य करने के लिये प्रेरित करने हेतु अत्यन्त दबाव डालना पड़ता है। ये स्वेच्छा से किसी भी काय्र को करने के लिये तैयार नहीं होते है। **ऐरोन बेक** ने ऐसी स्थिति को ''**इच्छाओं का पक्षाघात (Paralysis of will)** नाम दिया है।''

**3. व्यवहारपरक लक्षण (Behavioural Symtoms) –**

मनश्चिकित्सकों ने विषादी लोगों के कुछ व्यवहारपरक लक्षण भी बताये हैं। जैसे – ऐसे लोग बहुत धीरे – धीरे चलते हैं, मानो उनमें चलने के लिये भी न तो रूचि है और न ही ऊर्जा। इसके अतिरिक्त ये बोलते भी बहुत धीरे – धीरे हैं और किसी से भी सीधे आँखें मिलाकर बात नहीं कर पाते। ये या तो आँखें झुकाकर अथवा मुँह फेरकर बात करते है।

**वैवसर (1974) के अनुसार –** '' विषादी लोग अविषादी व्यक्तियों की अपेक्षा साक्षात्कारकर्ता के साथ सीधे आँख सम्पर्क स्थापित करके बातचीत नहीं करते हैं तथा प्रायः मुँह फरकर किसी प्रश्न का जवाब देते देखे जाते हैं।''

इस प्रकार स्पष्ट है कि अवसादी व्यक्तियों में निष्क्रियता की प्रधानता होने से उनकी उत्पादकता का स्तर अत्यन्त कम हो जाता है।

**4. दैहिक अथवा शारीरिक लक्षण (Somatic or physical Symtoms) –**

विषाद की स्थिति में रोगी का शरीर भी बहुत बुरी तरह प्रभावित होता है। अवसाद की स्थिति में पाये जाने वाले प्रमुख शारीरिक लक्षण निम्न हैं –

- भूख तथा नींद में कमी अथवा क्षुब्धता
- सिरदर्द
- अपच
- शक्तिहीनता
- कब्ज
- थकान
- छाती में दुःखद संवेदन

- पूरे शरीर में दर्द इत्यादि

कभी–कभी शरीर में इन लक्षणों का उत्पन्न होना मेडिकल समस्या मान ली जाती है। अतः अवसाद के शारीरिक लक्षणों को गंभीरता से देखना और समझना आवश्यक है। अवसादी व्यक्तियों में पायी जाने वाली थकान का स्वरूप ऐसा होता है कि बहुत समय तक सोने तथा आराम करने के बावजूद वह दूर नहीं होती।

**काजेस एवं उनके सहयोगियों के अनुसार –**''विषादी व्यक्तियों में अन्य दैहिक लक्षणों की तुलना में भूख एवं नींद में कमी या क्षुब्धता प्रमुख होती है।''

अतः ये स्पष्ट है कि अवसाद ग्रस्त रोगियों को प्रायः अनिद्रा की शिकायत रहती है, किन्तु अवसाद के कुछ ऐसे केस भी देखने में आये हैं, जिनमें रोगियों का बहुत ज्यादा नींद आती है, किन्तु ऐसे उदाहरण प्रायः कम देखने को मिलते हैं।

**वालेनगर के मतानुसार (1998) –** '' करीब 9 प्रतिशत विषादी व्यक्ति ऐसे भी होते हैं, जिन्हें नींद काफी आती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अवसाद ग्रस्त व्यक्तियों में अनेक प्रकार के लक्षण देखने को मिलते हैं, जिनका स्वरूप सांवेगिक, अभिप्रेरणात्मक, संज्ञानात्मक, व्यवहारपरक एवं दैहिक है। अवसाद की स्थिति में व्यक्ति की मानसिक स्थिति में इतना ज्यादा नकारात्मक परिवर्तन होता है कि इससे उसकी मानसिक क्रियाओं के साथ–साथ समूचा शारीरिक तंत्र एवं व्यवहार भी प्रभावित होने लगता है।

## 8.5 विषाद के प्रकार –

प्रिय पाठकों, विषाद या विषादी विकृति को एक ध्रुवीय विषाद भी कहा जाता है। मनश्चिकित्सकों एवं मनोरोग विशेषज्ञों ने एकध्रुवीय विषाद विकृति के निम्न दो प्रकार बताये हैं –

1. **डायस्थाइमिक विकृति (Dysthymic Disorder)**
2. **बड़ा विषादी विकृति (Major Depressive disorder)**

विषाद के इन दोनों प्रकारों का वर्णन निम्नानुसार है –

### 1. डायस्थाइमिक विकृति (Dysthymic Disorder) –

डायस्थाइमिक शब्द ग्रीक शब्द ''**डायस्थामिया'' (Dysthmia)** से बना है, जिसका अर्थ है – अग्ण अथवा दोषपूर्ण मनोदशा'' (Diseased mood)

डायस्थाइमिक एक ऐसी विषदी विकृति है, जिसमें विषादी मनोदशा का स्वरूप चिरकालिक होता है अर्थात् रोगी गत कई वर्षो से अवसाद से ग्रस्त रहता है। इसलिये किसी भी विषादी मनोदशा को डायस्थाइमिक विकृति तभी माना जा सकता है, जब अवसाद के लक्षण व्यक्ति में पिछले कई सालों से मौजूद हों। इस विकृति में ऐसा भी संभव है कि कुछ दिनों के लिये बीच – बीच में व्यक्ति की मनोदशा थोड़ी सामान्य लगे, किन्तु मूलरूप में उनमें विषादी मनोवृत्ति प्रबल रूप से तब भी बनी रहती है। डायस्थाइमिक रोग में रोगी पूरे दिन अवसादी मनोवृत्ति से ग्रस्त रहते हैं। इन रोग के कुछ प्रमुख लक्षण निम्नानुसार हैं

- अत्यधिक नींद आना या बहुत कम नींद आना।
- भोजन से संबधित कठिनाईयाँ।
- थकान का लगातार बने रहना।
- निर्णय लेने में कठिनाई।

- एकाग्र न हो पाना।
- उदासी
- निराशा का भाव
- आत्मदोष एवं आत्महीनता का भाव आदि ।

इस रोग की अवधि 2 – 20 वर्ष तक की मानी गई है। **केलर (1990) के अनुसार .** इसकी माध्यिका अवधि (Median Duration) करीब 5 वर्षो की होती है।'' डायस्थाइमिक रोग प्रायः 18 – 64 वर्ष की आयु वाले व्यक्तियों में देखने को मिलता है। इसके बाद इसका प्रभाव प्रायः कम होते जाता है। यह रोग दूसरी किसी भी मनोदशा विकृति के साथ उत्पन्न हो सकता है। परन्तु प्रायः यह बड़ा विषादी विकृति **(Major Depressive disorder) के** साथ अधिक उत्पन्न होते पाया जाता है। यदि कोई रोगी डायस्थाइमिक रोग के साथ–साथ मुख्य या बड़ा विषादी विकृति से भी ग्रस्त है तो इसे ''**द्वैविषाद'' (Double Depression)** कहा जाता है, क्योंकि रोगी में दोनों विकृतियों के लक्षण देखने को मिलते हैं। प्रसिद्ध मनोरोग विशेषज्ञ **केलर** के अनुसार द्वैविषाद विकृति अनेक लोगों में देखने को मिलती है। डायस्थाइमिक विकृति का प्रारम्भ बाल्यावस्था **(Early Adulthood)** में कभी भी हो सकता है।

प्रिय पाठकों, डायस्थाइमिक विकृति के लक्षणों को और अधिक स्पष्ट करने के लिये नीचे एक केस **(Cash)** दिया जा रहा है, जिसका अध्ययन करके आप इस रोग के स्वरूप को और अधिक अच्छे से समझ सकेंगे –

'' एक 28 साल की विवाहित महिला जो एम0बी0ए0 **(MBA)** की डिग्री प्राप्त करने के बाद यह सोचकर कैलिफोर्निया गई की वहाँ उसे अधिक ऊँची कार्यपालक **(Executive)** की नौकरी मिल जायेगी, किन्तु किन्हीं कारणों से ऐसा नहीं हो पाया। इसलिये वह अपनी नौकरी, पति एवं अपने भविष्य को सोचकर अवसादग्रस्त हो गई, जिसके बारे में उसने अपने चिकित्सक को भी बताया। उसकी समस्या यह थी कि उसमें निरन्तर विषादी मनोदशा, निराशा एवं तुच्छता का भाव बना रहता है, जो उसमें 16 या 17 साल की उम्र से ही लगातार बना हुआ है। यद्यपि कॉलेज के दिनों में वह सामान्य थी और उसकी मित्रता भी बुद्धिमान एवं प्रतिभाशाली छात्रों से ही थी। किन्तु फिर भी वह अपने आपको उन लोगों की तुलना में हीन या तुच्छ ही समझती थी। स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद उसने अपने मनपसंद लड़के से विवाह किया था, किन्तु विवाह के कुछ दिनों बाद ही उसे यह लगने लगा कि इस व्यक्ति से शादी करके उसने बहुत बड़ी भूल की है। इसलिये वह हमेशा अपने पति के रहन–सहन तथा उसके माता–पिता का कोसती रहती थी और इस वजह से उसके पति भी उसे अस्वीकृत करते हुये एक सनकी औरत मानते थे। हाल में, उसे अपने कार्यो को करने में भी कठिनाई होने लगी। जहाँ वह नौकरी करती थी, वहाँ उसे कोई महत्त्वपूर्ण, उत्तदायित्वपूर्ण कार्य न देकर अत्यन्त साधारण कार्य करने के लिये कहा जाता था, जिसमें उसकी कोई रूचि नहीं होती थी और न वह उस कार्य को करने में पहल दिखाती थी। अपने मालिक के बारे में उसकी यह धारणा थी कि वह **आत्मकेन्द्रित, अनुचित** तथा दूसरों की परवाह नहीं करने वाला व्यक्ति है।''

इस प्रकार उपरोक्त केस में रोगी महिला में डायस्थाइमिक विकृति के सभी लक्षण देखने को मिलते हैं। महिला की विषादी मनोदशा का स्वरूप चिरकालिक है, जो गत करीब 12

वर्षो से उसके अन्दर सतत् बना हुआ है। साथ ही वह अपने कार्यो एवं जीवन के प्रति अभिरूचि खो चुकी है तथा अपने भविष्य को लेकर अत्यन्त चिंतित है और उसमें निराशा एवं उदासी का भाव निरन्तर बना रहता है।

डायस्थाइमिक विकृति के संबध में मनोरोग विशेषज्ञों द्वारा किये गे विभिन्न अध्ययनों से यह तथ्य सामाने आया है कि इस प्रकार की विकृति का मुख्य कारण जैविक होता है।

**हालैंड एवं थासे (1991) के अनुसार –** ''डायस्थाइमिक विकृति के रोगियों में तीव्र आँख गति नींद **(Rapid eye movement sleep)** की लम्बी अवधि पायी जाती है।

**2. बड़ा विषादी विकृति (Major Depressive disorder) –**

प्रिय पाठकों, जैसा कि इस रोग के नाम से ही स्पष्ट हो रहा है कि इस विकृति में रोगी एक अथवा एक से अधिक बड़ी विषादी घटनाओं का अनुभव किया होता है। बड़ी विषादी घटनाओं से तात्पर्य ऐसी घटनाओं से है, जिनके कारण व्यक्ति इतना अधिक अवसाद ग्रस्त हो जाता है कि वह सभी तरह के कार्यो में अपनी रूचि ओर सुख या खुशाी खो चुका होता है। **DSM – IV (TR)** के अनुसार कोई विषादी मनोदशा बड़ी विषादी विकृति है या नहीं इसको जानने के लिये रोगी में निम्न लक्षणों में से कम से कम कोई पाँच लक्षण प्रतिदिन दो सप्ताह तक अवश्य दिखाई देने चाहिये –

1. उदास तथा विषादी मनोदशा
2. सामान्य और साधारण कार्यो में अभिरूचि तथा आनंद की कमी
3. नींद आने में कठिनाई अनुभव करना, बिस्तर पर लेटने पर बहुत देर तक नींद न आना, रात में बीच में नींद खुल जाने पर फिर नींद न आना, सुबह जल्दी नींद खुल जाना अथवा कुछ रोगियों में इनके विपरीत बहुत ज्यादा नींद आना।
4. क्रिया स्तर में बदलाव। जैसे उत्तेजन अथवा सुस्ती का अनुभव करना।
5. भूख कम लगना एवं शारीरिक भार में कमी अथवा इसके विपरीत अधिक भूख लगना या शारीरिक वनज का बढ़ना।
6. शक्ति या उर्जा की कमी एवं थकान अनुभव करना।
7. नकारात्मक आत्म – संप्रत्यय, (Negative Self- Concept) अपने पर दोषारोपण करने की प्रवृत्ति, दोष – भाव (Guilt feeling) तथा अयोग्यता का भाव।
8. एकाग्रता में कठिनाई , मंदचिन्तन एवं निर्णय न ले पाना।
9. आत्महत्या की प्रवृत्ति

यह रोग प्रायः 40–50 साल की उम्र वाले व्यक्तियों में देखने को मिलता है तथा पुरूषों की तुलना में स्त्रियों को अधिक होता है। **हिंस्कफेल्ड तथा क्रॉस (1982)** के मतानुसार–''निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के लोगों में यह रोग तुलनात्मक रूप से अधिक होता है।

अवसाद के संबध में हुये विभिन्न अध्ययनों से यह तथ्य भी सामने आया है कि जो लोग बड़ा विषादी विकृति से ग्रस्त होते हैं, उनमें से करीब 15 प्रतिशत रोगियों में मनोविक्षिप्ति (psychosis) के भी विकसित होने लगता हैं। ऐसे रोगियों में स्थिर व्यामोह (Delusion) एवं विभ्रम (Hallucination) अधिक प्रमुख होता है। मनोविक्षिप्ति के लक्षण से ग्रस्त विषादी व्यक्ति में अनेक तरह के स्थिर व्यामोह उत्पन्न हो जाते हैं। उदाहरण के तौर पर, जैसे , **''मेरी गल्ती से वह बीमार पड़ी है या पड़ा है''** अथवा रोगी को यह विश्वास हो सकता है कि वह अपनी मृत पत्नी को देख रहा है, इत्यादि। कुछ रोगी ऐसे होते है जिनमें बड़ी विषादी घटनाओं के अनुभव का एक इतिहास भी देखने को मिलता है। इसे ''आवृत्त बड़ा

विषादी विकृति''(Decurrent major depressive disorder) का नाम दिया गया है। बड़ा या प्रमुख विषादी विकृति का स्वरूप कभी –कभी मौसमी भी होता है। जिसमें मौसम या ऋतु में बदलाव आने पर जैसे –सर्दी से गर्मी की ऋतु आना या गर्मी से सर्दी की ऋतु आना । व्यक्ति में अवसाद को उत्पन्न कर सकता है। इस रोग का स्वरूप कभी – कभी **कैटेटोनिक (Catatonic) भी** हो सकता है, जिसमें विषादी अनुभूति उत्पन्न होने पर रोगी कभी तो अत्यधित पेशीय गतिहीनता दिखलाता है। इसका स्वरूप पोस्टपार्टम **(Postpartum)** भी हो सकता है। जिसमें बच्चे में पैदा होने के चार सप्ताह के अन्दर ही विषादी अनुभूति होने लगती है। इस रोग का स्वरूप **विषादप्रषण (Malancholic)** भी हो सकता है। इसमें रोगी किसी भी सुखकारी घटना से प्रभावित नहीं होता है, सुबह के समय विषादी मनोदशा अधिक रहती है। उसमें महत्वपूर्ण पेशीय क्षुब्धता देखने को मिलती है। सुबह नींद भी जल्दी खुल जाती है। भूख कम लगती है एवं दोषभाव **(Guiltfelling)** अत्यधिक उत्पन्न हो जाता है।

नीचे एक केस दिया जा रहा है जिससे **बड़ा विषादी विकृति** का स्वरूप और अधिक स्पष्ट हो जाता है –

''भूवि नामक एक 31 वर्षीय विवाहित महिला थी । इसे अभी हाल ही में पदोन्नत किया गया था तथा इसे अपने फर्म की एक तेज–तर्रार कमसिन सदस्या समझा जाता था, किन्तु भूवी अपनी पदोन्नति से खुश नहीं थी, क्योंकि वह स्वयं को इस पद के योग्य नहीं समझती थी। पिछले कुछ महीनों से वह अत्यन्त निराश एवं चिड़चिड़ी रहती थी एवं स्वयं को थका – थका अनुभव करती थी । उसकी यह निराशाजनक मनोदशा उस समय और अधिक गंभीर हो गयी, जब उसके फर्म का एक क्लायंट उस फर्म को छोड़कर दूसरी फर्म में चला गया। इस क्लायंट के कार्यो की निगरानी करने का उत्तरदायित्व सीधे भूवी पर था। इस घटना के लिये भूवी स्वयं को दोषी मानने लगी और इस घटना को वह अपनी व्यावसायिक अयोग्यता का एक प्रतिबिम्ब मानने लगी, जबक उस क्लायंट के फर्म छोड़ने के कारण कुछ ऐसे थे जो भूवी के नियंत्रण में नहीं थे। क्लायंट के फर्म बदल देने के बाद भूवी की ऑफिस जाने के प्रति रूचि बहुत कम हो गयी और ऑफिस के कार्य उसे भारस्वरूप लगने लगे। उसकी एकाग्रता भी कम होने लगी तथा वह अपनी अयोग्यता के लिये स्वयं को कोसा करती थी। भूवी ने अपने आपको बीमार घोषित कर दिया तथा पूरा समय घर में टेलीविजन के सामने बैठकर बिताती थी, यद्यपि यह टीवी पर किसी भी कार्यक्रम को ध्यान से नहीं देखती थी। भूवी कभी ठीक तरह से सो नहीं पाती थी और हमेशा सुस्त दिखायी देती थी । उसे भूख भी नहीं लगती थी। लोग उससे मिलने का प्रयास भी करते थे, किन्तु वह किसी प्रकार का सामाजिक सम्पर्क नहीं रखना चाहती थी। इसलिये वह कोई ना कोई बहाना बनाकर वह लोगों से मिलने से मना कर देती थी। भूवी पिछले पाँच सालों से अपने पति से अलग रह रही थी तथा उसके जो अच्छे पुरूष मित्र थे, वे भी अब उसके सम्पर्क में नहीं थे, कभी – कभी वह सोचती कि वह मर जाती तो ज्यादा अच्छा होता। इसलिये वह आत्महत्या करने के बारे में भी बार–बार सोचती थी किन्तु इसके साथ ही उसके मन में यह विचार भी आता था कि आत्महत्या करने से कहीं परिस्थितियाँ पहले की तुलना में और अधिक गंभीर रूप न धारण कर लें।

उपरोक्त केस उदाहरण में **बड़ा विषादी विकृति** के सभी लक्षणों पर प्रकाश डाला गया है।

## 8.6 विषाद के कारण –

प्रिय पाठको, विषाद के कारण के संबध में मनश्चिकित्सकों, मनोवैज्ञानिकों द्वारा जो भी अध्ययन किये गये हैं, उनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि विषाद का चाहे कोई भी स्वरूप हो अर्थात् चाहे डायस्थाइमिक विकृति हो या बड़ा विषादी विकृति हो, उसके कारणों की दृष्टि से निम्नांकित विचारधाराओं का अध्ययन महत्त्वपूर्ण है –

1. **जैविक विचारधारा (Biological viewpoints)**
2. **मनोगतिकी विचारधारा (Psychodynamic viewpoints)**
3. **व्यवहारात्मक विचारधारा (Behavioural viewpoints)**
4. **संज्ञानात्मक विचारधारा (Cognitive viewpoints)**

इन सभी विचारधाराओं का विस्तृत वर्णन नीचे दिया गया है –

**1. जैविक विचारधारा (Biological viewpoints) –**

इस विचारधारा के अनुसार अवसाद का प्रमुख कारण शारीरिक या जैविक कारक है। जन्म से या जन्म के बाद शारीरिक विकृति, आनुवांशिकता, हार्मोन्स में असंतुलन, न्यूरोट्रांसमीटर्स संबधी कारक इत्यादि ऐसे अनेक कारण हैं जो अवसाद के लिये उत्तरदायी हैं। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक **स्कूइलर** का मत है कि निम्न चार ऐसे कारक है जो इस बात का संकेत करते हैं कि अवसाद जैविक कारणों से होता है –

(क) स्त्रियों में स्वाभाविक रूप से होने वाले शारीरिक परिवर्तन की अवधि जैसे कि बच्चा होने के बाद अथवा मासिक स्राव प्रारम्भ होने के पहले स्वतः ही अवसाद की शुरूआत होती है।

(ख) भिन्न – भिन्न संस्कृतियों, उम्र, यौन तथा प्रजातियों के व्यक्तियों में विषाद में लगभग समान लक्षण देखने को मिलते हैं। जो इसके जैविक आधार को पुष्ट करते हैं।

(ग) अवसाद के उपचार हेतु जैविक चिकित्सा का प्रयोग भी किया जाता है। जैसे–ट्रीसाइक्लिक एन्टीडीप्रेसैन्ट, सिरोटोनिन रिऊप्टेक इन्हीबिटर्स, विद्युतआक्षेपी आघात आदि।

(घ) कुछ दवाईयाँ ऐसी हैं, जिनका उपयोग करने से व्यक्ति में अवसाद उत्पन्न हो जाता है। जैसे **रिसरपाइन (Reserpine)** एक ऐसी दवा है, जिसका उपयोग उच्च रक्तचाप को कम करने के लिये किया जाता है, किन्तु इसके पार्श्वप्रभाव **(Side effect)** के रूप में व्यक्ति में अवसाद के लक्षण भी दिखाई देने लगते हैं।

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि अवसाद जैविक कारकों द्वारा प्रभावित होता है। जैविक विचारधार के अनुसार अवसाद की उत्पत्ति में निम्न कारकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

- **आनुवांशिक कारक (Genetic Factors)**
- **न्यूरोरसायन कारक (Neurochemical Factors)**
- **न्यूरोएनॉटमिकल कारक (Neuroanatomical Factors)**

इन सभी की विस्तृत व्याख्या निम्नानुसार है –

- **टानुवांशिक कारक (Genetic Factors) –**

मनौचिकित्सकों के मतानुसार एकध्रुवीय विकृति की उत्पत्ति में आनुवांशिकी कारकों की महत्वपूर्ण भूमिका है। निम्नांकित इस तथ्य की पुष्टि करते हैं –

**अ) पारिवारिक वंशवृक्ष अध्ययन (family pedigree studies)**

**ब) जुड़ुवाँ अध्ययन (Twin studies)**

**स) दप्तक – ग्रहण अध्ययन (Adoption studies)**

इसकी विस्तृत व्याख्या निम्नानुसार है –

**अ) पारिवारिक वंशवृक्ष अध्ययन (family pedigree studies) –**

इस प्रकार के अध्ययन में अनुसंधानकर्ता कुछ ऐसे लोगों का चुनाव करते हैं, जिनमें एकध्रुवीय विषाद के लक्षण होते हैं। ऐसे लोगों को प्रोबैण्ड **(Proband)** कहते हैं। उसके बाद इन व्यक्तियों के निकट संबधियों का गहनता से अध्ययन करके इस बात का पता लगाया जाता है कि इनमें भी अवसाद के लक्षण है या नहीं यदि उनके संबधियों में अवसाद के लक्षण सामान्य लोगों की तुलना में अधिक देखने को मिलते हैं तो यह इस बात का स्पष्ट संकेत है कि आनुवांशिकता संबध में **हैरिंगटन एवं उनके सहयोगियों ने (1993) तथा नर्नबर्गर और गेरशन (1992)** ने अनेक अध्ययन किये और यह निष्कर्ष दिया कि अवसादग्रस्त व्यक्तियों के निकट संबधियों में 20 प्रतिशत लोगों में विषादी प्रवृत्ति पायी गई जबकि सामान्य में अर्थात् जो उनके निकट के संबधी नहीं थे, उनमें केवल 5 प्रतिशत से 10 प्रतिशत लोगों में ही विषादी प्रवृत्ति देखने को मिली।

**ब) जुड़ुवाँ अध्ययन (Twin studies) –**

अवसाद के आनुवांशिक कारक को पुष्ट करने के कलये जुड़वाँ बच्चों पर भी मनोवैज्ञानिकों ने अनेक अध्ययन किये। इस प्रकार के शोध्य अध्ययनों में पूर्णतः जुड़वा बच्चों **(Identical twins) तथा भ्रात्रीय** जुड़वा बच्चों **(fraternal twins)** का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। इन अध्ययनों में पाया गया कि पूर्णतः समरूप बच्चों में से यदि किसी एक बच्चे में एकध्रुवीय अवसाद उत्पन्न होता है तो दूसरे बच्चे में भी इस रोग के होने की अत्यधिक संभावना होती है, जबकि ऐसी संभावना भ्रात्रीय जुड़वाँ बच्चों में ऐसी संभावना बहुत कम अथवा नहीं होती है। अतः इससे भी स्पष्ट होता है कि अवसाद आनुवांशिकता से बहुत ज्यादा प्रभावित होता है क्योंकि पूर्णतः समरूप बच्चों की आनुवांशिकता 100 प्रतिशत समान होती है जबकि भ्रात्रीय जुड़वाँ बच्चों में यह समानता केवल 50 प्रतिशत ही होती है।

**स) दप्तक – ग्रहण अध्ययन (Adoption studies) –**

मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये दप्तक–ग्रहण अध्ययन भी अवसाद के आनुवांशिक आधार को पुष्ट करते हैं। इस संबध में **वेण्डर एवं उनके सहयोगियों (1986) एवं स्नीडर (2000)** द्वारा किये गये शोध उल्लेखनीय है। इन अध्ययनों के अनुसार ऐसे दप्तक व्यक्ति जो एकध्रुवीय अवसाद से ग्रस्त थे तथा जिनको अस्पताल में भर्ती करके उपचार किया जा रहा था, उनके गहन अध्ययन से इस तथ्य का खुलासा हुआ कि अवसादग्रस्त दप्तकों के जैविक माता–पिता भी गंभीर अवसाद से ग्रस्त थे। इसके विपरीत अविषादी दप्तकों के जैविक माता–पिता में ऐसे लक्षण मौजूद नहीं थे। अतः इससे भी यह पुष्ट होता है कि एकध्रुवीय विषाद का एक प्रमुख कारण आनुवांशिकता है।

- **न्यूरोरसायन कारक (Neurochemical Factors) –**

मनौचिकित्सकों ने अवसाद संबधी अपने अध्ययनों के आधार पर यह स्पष्ट किया है कि अवसाद भी उत्पत्ति में न्यूरोट्रांसमीटर्स की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है और इनमें भी दो न्यूरोट्रांसमीटर्स नॉरएपिनएफ्रीन (Norepinephrine) एवं सिरोटोनिन (Serotonin) को सर्वाधिक प्रमुख माना गया है। सन् 1950 में अमेरिकन मेडिकल वैज्ञानिकों द्वारा किये शोध के अनुसार मस्तिष्क में नॉरएपिनएफ्रीन की मात्रा कम होने से व्यक्ति के अभिप्रेरणात्मक स्तर में गिरावट आ जाती है। जिससे उसमें अवसाद उत्पन्न हो जाता है। इसी संबध में एक शोध ब्रिटिश शोधकर्ताओं द्वारा किया गया, जिसके अनुसार मस्तिष्क में सिरोटोनिन के कम स्राव से व्यक्ति अवसादग्रस्त हो जाता है। इस संबध में एमस्टरडैम, प्रनस्वीक एवं मेनडेल्स (1980) द्वारा किये गये शोध महत्वपूर्ण है।

इससे स्पष्ट होता है कि अवसाद की उत्पत्ति में न्यूरोट्रांसमीटर्स की भी अहम भूमिका होती है।

- **न्यूरोएनॉटमिकल कारक (Neuroanatomical Factors) –**

अवसाद के कारणों को लेकर अनेक ऐसे शोध भी हुये हैं, जिनसे यह तथ्य पता चलता है कि अवसाद की उत्पत्ति के न्यूरोएनॉटमिकल आधार भी हैं। इस प्रकार के शोध अध्ययनों को हम निम्न दो वर्गो में वर्गीकृत कर सकते है।

**(क) स्कैनिंग प्रविधियों पर आधारित अध्ययन (Studies Based on Scannig Techniques)**

**(ख) हॉरमोनल अध्ययन (Harmonal Studies)**

**(क) स्कैनिंग प्रविधियों पर आधारित अध्ययन (Studies Based on Scannig Techniques) –** विभिन्न प्रकार की स्कैनिंग तकनीकें जैसे – कम्प्यूटर टोमोग्राफी (CT) , मैग्नेटिक रिसोर्स इमेजिंग **(MRI)**, ट्रान्सक्रेनियल मैग्नेटिक स्टीमुलेशन (TMS), द्वारा किये गये अध्ययनों से इस तथ्य का खुलासा हुआ है कि अवसाद का एक प्रमुख कारण मस्तिष्क के कुछ भागों जैसे – लघु मस्तिष्क (Cerebrum) और/ अथवा अग्रपालि (Frontal lobe) के कुछ हिस्सों में खून के प्रवाह में परिवर्तन अथवा चयापचय की दर की परिवर्तन होना है। इसी **सैकिम एवं ग्रीनबर्ग (1982) के अनुसार** प्रवाह (Strokes) के कारण बाँये गोलार्द्ध में होने वाली क्षति दाँये गोलार्द्ध में होने वाली क्षति की तुलना में अधिक मात्रा में अवसाद उत्पन्न करती है। **बैंच एवं उनके सहयोगियों (1993, 1995)** द्वारा किये गये अध्ययनों के अनुसार बड़ी विषादी विकृति वाले लोगों में बाँये अग्रपालि (Left frontal lobe) में रक्तप्रवाह के स्तर में कमी हो जाती है। कुछ अन्य शोध अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकला है कि अवसाद में बांये अग्रपालि (Left frontal lobe) के कुछ भागों की क्रियायें मंद हो जाती हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अवसाद की उत्पत्ति में तंत्रिकातंत्र के कुछ भागों की संरचना तथा कार्यप्रणाली की भूमिका भी महत्वपूर्ण है।

**(ख) हॉरमोनल अध्ययन (Harmonal Studies) –** अवसाद के कारणों के संबध में हुये विभिन्न शोध अध्ययनों के अनुसार अवसाद की उत्पत्ति में अन्तःस्रावी संस्थान की भी सक्रिय भूमिका है। अन्तःस्रावी ग्रन्थियों से अनेक प्रकार के हार्मोन्स निकलते हैं जिनमें असंतुलन होने से अवसाद उत्पन्न होने लगता है। अन्तःस्रावी तंत्र को **हाइपोथैलेमस** संचालित एवं नियंत्रित करता है। इसे **"मस्तिष्क का मस्तिष्क " (Brain of the brain) कहते हैं।** लाम एवं उनके सहयोगियों (1985) ने अपने अध्ययन के आधार पर स्पष्ट किया

कि अवसाद की उत्पत्ति में **मेलाटोनिन (Melatonin) हार्मोन** की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसे **ड्रैकुला हार्मोन (Dracula Harmone)** भी कहा जाता है। मेलाटोनिन का स्राव पीनियल गन्थि से उस समय होने लगता है। जब हमारे आसपास के वातावरण में पर्याप्त प्रकाश होने पर इस हॉर्मोन का स्राव नहीं होता है। यद्यपि मनुष्यों में इस हार्मोन की क्या भूमिका है, यह बात पूरी तरह स्पष्ट नहीं है, किन्तु पशुओं पर किये गये अध्ययन से यह तथ्य सामने आया कि जब मेलाटोनिन का स्राव अधिक होता है तो पशुओं के सक्रियता स्तर में कमी हो जाती है। **गुप्ता (1998) डिलसावर (1990)** ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया कि मनुष्यों में सर्दियों के दिनों में मेलाटोनिन का स्राव अधिक होता है। क्योंकि सर्दियों में दिन रात की तुलना में अपेक्षाकृत छोटे होते हैं अर्थात् अंधकारपूर्ण रात्रि का समय प्रकाशयुक्त दिन की तुलना में अधिक होता है। इससे लोगों के सक्रियता स्तर में कमी आती है और उनमें अवसाद के लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं। इस प्रकार के पैटर्न को **''मौसमी भावनात्मक विकृति'' (Seasonal Affective Disorder or SAD) कहते** है। इस संबध में हुये अन्य अध्ययनों के अनुसार मस्तिष्क के कॉर्टेक्स (Cortexe) में कार्टिसोल हार्मोन की अधिकता के कारण अवसाद उत्पन्न होने लगता है।

पाठकों, उपरोक्त वर्णन से आप समझ गये होंगे कि अवसाद के उत्पन्न होने में विभिन्न जैविक कारकों की सक्रिय भूमिका है।

2. **मनोगतिकी विचारधारा (Psychodynamic viewpoints)** – अवसाद के कारकों से सम्बद्ध मनोगतिकी विचारधारा का प्रारम्भ फ्रायड एवं उनके शिष्य **कार्ल अब्राहम** से माना जाता है।

   इनके अनुसार विषाद किसी प्रकार की हॉनि के प्रति एक प्रतिक्रिया है। जब व्यक्ति से उसकी कोई प्रिय वस्तु, व्यक्ति, स्थान आदि दूर हो जाता है अर्थात् उसकी हॉनि हो जाती है। तो इससे उसमें अवसाद के लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं। फ्रायड के मतानुसार इसका प्रारम्भ बीजरूप में बाल्यावस्था से ही हो जाता है। फ्रायड का कहना है कि व्यक्तित्व विकास की मुखावस्था **(Oral period)** में किसी बच्चे की आवश्यकताओं की पूर्ति बहुत ज्यादा भी हो सकती है और बहुत कम भी। इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति इस अवस्था पर **अवस्थ अवस्थित (fixed)** हो जाता है तथा इससे सम्बद्ध आवश्यकतओं की पूर्ति हेतु अधिकांश समय अपने आप पर निर्भर किये रहता है। जिसके कारण मनोलैंगिक परिपक्वता **(Psychosexuel maturation)** का विकास अवरूद्ध हो जाता है तथा वह अपने आत्म सम्मान को बनाये रखने के लिये दूसरों पर निर्भर रहने लगता है। पाठकों, आपके मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी कि बचपन की इस घटना से वयस्कावस्था में अवसाद किस तरह उत्पन्न होता है। इस जिज्ञासा का समाधान यह है कि जब ऐसे लोगों को वयस्कावस्था में अपने किसी प्रियजन या प्रियवस्तु स्थान हॉनि की क्षति होती है तो ऐसे लोग पुनः अपनी बचपन की मुखावस्था में प्रतिगमित **(Regress)** हो जाते हैं और इस अवस्था में प्रतिगमित होने के उपरान्त ऐसे व्यक्ति की पहचान उस व्यक्ति के साथ एकीकृत हो जाती है, जिससे वह दूर हो जाता है अथवा खो चुका होता है। कहने का आशय यह है कि ऐसा व्यक्ति अपने प्रियजन को स्वयं के आत्मन **(Self)** के साथ आत्मसात **( Infroject)** कर लेता है और ऐसी स्थिति में उसके मन में जैसी भावनायें एवं विचार अपने प्रियजन के प्रति थे, वैसे भाव एवं विचार अपने प्रति हो जाते है। ऐसा भी देखने में आया है कि कुछ लोगों

में अचेतन की सम्पूर्ण प्रक्रिया थोड़े समय के लिये बनी रहती है और फिर बाद में व्यक्ति अपनी एक अलग–स्वतंत्र पहचान बना कर अपने सामाजिक संबधों को फिर स्थापित कर लेता है, किन्तु कुछ लोग ऐसा करने में सक्षम नहीं हो पाते है, जिसके कारण अचेतन की यह प्रक्रिया उनमें बहुत अधिक जटिलतायें उत्पन्न कर देती है और वे धीरे–धीरे विषादी प्रकृति से ग्रस्त होने लगते है। फ्रायड एवं अब्राहम के अनुसार प्रियजन या प्रियवस्तु अथवा स्थान की क्षति होने पर मुख्य रूप से दो प्रकार के लोग आत्मसात एवं विषाद से सबसे ज्यादा प्रभावित होते हैं, प्रथम वे लोग जिनके माता–पिता मुखावस्था के दौरान उनकी परिपोषण आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाते हैं तथा द्वितीय ऐसे बच्चे जिनकी आवश्यकताओं की पूर्ति जरूरत से ज्यादा की गई हो। इसका परिणाम यह होता है कि जिन बच्चों की आवश्यकताओं की पूर्ति समुचित रूप से नहीं होती है, वे जिन्दगी भर दूसरों पर निर्भर रहते हैं, इनमें आत्म–सम्मान का अभाव होता है, जिसकी वजह से ये स्वयं को दूसरों का प्यार, स्नेह पाने योग्य नहीं समझते हैं। दूसरी तरफ जिन बच्चों ककी आवश्यताओं की पूर्ति की जरूरत से ज्यादा हुयी होती है, वे मुखावस्था को इतना अधिक सुखकारी समझते है कि अपने जीवन में अन्य अवस्थाओं की ओरे आगे बढ़ने की इच्छा ही नहीं करते। **वैममारैड (1992)** का मत है कि ये दोनों तरह के लोग पूरे जीवन दूसरों का प्यार तथा अनुमोदन **(Approval)** प्राप्त करने के लिये कड़ी मेहनत करते रहते हैं। किसी प्रियजन के दूर होने पर ऐसे व्यक्तियों में हॉनि का अत्यन्त तीव्र भाव उत्पन्न होता है। और इनसे अलग हो जाने के लिये अथवा इन्हें छोड़कर चले जाने के लिये इन प्रियजनों के प्रति अत्यधिक क्रोधभाव भी उत्पन्न होने लगता है।

इस संबध में एक प्रश्न यह उठता है कि जिन लोंगों को प्रियजन या प्रियवस्तु की हॉनि नहीं हुयी होती है, उनमें विषाद क्यों और कैसे उत्पन्न होता है। इसका समाधान करने के लिये **फ्रायड ने सांकेतिक (Symbolic)** अथवा **काल्पनिक (Imagined)** क्षति के सम्प्रत्यय का प्रतिपादन किया। उदाहरण के तौर पर जिन व्यक्तियों की नौकरी छूट जाती है, उनको अचेतन रूप से ऐसा अनुभव हो सकता है कि अपनी पत्नी से अच्छे संबध के टूटने क समान है क्योंकि नौकरी छूट जाने से पत्नी उन्हें बेकार का आदमी समझने लगेगी।

कुछ समय बाद नये मनोगतिकी सिद्धान्त वादियों ने फ्रायड एवं अब्राहम द्वारा दिये गये सिद्धान्त में कुछ संशोधन किया। जैसे – **कोहेन एवं उनके सहयोगियों (1954)** ने अवसाद में व्यक्ति द्वारा स्वयं के प्रति ईर्ष्या अथवा क्रोध भाव का अनावश्यक करार दिया। इसी प्रकार **विबरिंग (1953) एवं जैकोबसन (1971) ने** विषाद में फ्रायड द्वारा मुखावस्था स्थायीकरण पर दिये गये का उपयुक्त नहीं माना तथा इन्होंने विषाद की व्याख्या मुखावस्था एवं लिंगप्रधानावस्था दोनों की समस्याओं के साथ जोड़कर की। **जैकोबसन** के मानुसार व्यक्ति में आत्म – सम्मान की कमी एकध्रुवीय विषाद उत्पन्न होने का प्रमुख कारण है।

इस प्रकार मनोगतिकी विचारधारा के अनुसार अवसाद की उत्पत्ति में अचेतन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

**3. व्यवहारात्मक विचारधारा (Behavioural viewpoints) –**

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिकक **लेविनसोन** ने अवसाद की उत्पत्ति के संबध में व्यवहारवादी विचारधारा की व्याख्या की है। इनके अनुसार कुछ लोगों में पुरस्कार या पुनर्बलन मूल्य शनैः शनैः कम होने लगता है एवं तब ऐसे लोग धनात्मक व्यवहार करने के लिये कम से

कम प्रेरित होते है। परिणामस्वरूप उनकी कार्य करने की शैली विषादी होने लगती है। कहने का अर्थ यह है कि जब ऐसे व्यक्तियों की सक्रियता के स्तर में कमी होने लगती है तो इससे पुरस्कार या पुनर्बलन की संख्या भी धीरे – धीरे कम होने लगती है। इसके कारण उनमें विषाद की प्रवृत्ति और प्रबल हो जाती है। इस विचारधारा का एक उपसिद्धान्त यह भी माना गया है कि दंडात्मक अनुभूतियाँ अधिक होने के कारण भी व्यक्ति अवसादग्रस्त होने लगता है। इसके पीछे कारण यह है कि इनु दुःखदायी अनुभूतियों के कारण व्यक्ति पुरस्कार मिलने वाली क्रियाओं की सुखम अनुभूति नहीं कर पाता है।

इस प्रकार व्यवहारवादी विचारधारा के अनुसार अवसाद को अनुक्रिया–आधृत–धनात्मक पुनर्बलन **( Response contingent positive reinforcement)** का परिणाम माना जाता है।

लेविनसोन तथा अन्य व्यवहारवादियों का यह भी मानना है कि समाजिक पुनर्बलन अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण होता है तथा विषादग्रस्त लोग अविषादी लोगों की तुलना में कम धनात्मक सामाजिक पुनर्बलन अनुभव करते हैं। जैसे–जैसे व्यक्ति की मनोदशा में सुधार होते जाता है, वैसे–वैसे धनात्मक सामाजिक पुनर्बलन की संख्या में भी अभिवृद्धि होने लगती है। व्यवहारवादियों ने अपने अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाले हैं कि विषादी लोग दूसरों को जल्दी क्रोधित कर देते हैं, इनके मित्र कम होते हैं, दूसरे व्यक्ति इन्हें तिरस्कृत करते हैं, इनको अन्तर्वैयक्तिक समर्थन कम मिलता है तथा दुःखद सामाजिक अन्तःक्रियाओं की अनुभूति तुलनात्मक रूप से अधिक होती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि व्यवहारवादी विचारधारा एक वैज्ञानिक विचारधारा है। जिसकी उपयोगिता आज भी बनी हुयी है।

4. **संज्ञानात्मक विचारधारा (Cognitive viewpoints)** – वर्तमान समय में अवसद के कारणों को लेकर जितनी भी विचारधारायें प्रचलित हैं, इन सभी में संज्ञानात्मक विचारधारा सर्वाधिक लोकप्रिय है। इस विचारधारा के अनुसार अवसाद का प्रमुख कारण व्यक्ति के विचारतंत्र का विकृत होना है अर्थात् स्वयं के प्रति, अपने भविष्य के प्रति तथा अपने आस – पास के वातावरण, परिस्थितियों के प्रति जब व्यक्ति का दृष्टिकोण नकारात्मक होने लगता है तो वह धीरे – धीरे विषादी मनोवृत्ति से ग्रसित होने लगता है।

**पाठको,** संज्ञानात्मक विचाराधारा में हम दो सिद्धान्तों का अध्ययन करेंगे –

1. **बेक का सिद्धान्त (Beck's Theory)**
2. **निस्सहायता/निराषा सिद्धान्त (Helplessness / Hopelessness Theory)**

1. **बेक का सिद्धान्त (Beck's Theory)** – संज्ञानात्मक विचारधारा के प्रमुख समथ्रक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक बेक के मतानुसार नकारात्मक चिन्तन ही अवसाद की मूल जड़ है, न कि धनात्मक पुनर्बलन का अभाव अथवा मानसिक संघर्ष। अवसादग्रस्त व्यक्तियों की स्वयं के प्रति, अपने वातावरण एवं भविष्य के प्रति इतनी अधिक नकानात्मक प्रवृत्ति विकसित हो जाती है कि इससे उनका व्यवहार स्वतः ही प्रभावित होने लगता है। बेक के मतानुसार निम्न चार कारक ऐसे हैं, जिसके कारण व्यक्ति का चिन्तन विकृत या नकारात्मक होने लगता है –

**अ) अपअनुकूली मनोवृत्ति बेक ( Maladaptive Attitude)**

**ब) संज्ञानात्मक (Cognitive Triad)**

**स) चिन्तन में त्रुटि (Errors in thinking)**

**द) स्वतः चिन्तन (Automatic Thoughts)**

इन चारों की विस्तृत व्याख्या निम्नानुसार है –

**अ) अपअनुकूली मनोवृत्ति बेक ( Maladaptive Attitude) –** बेक के मतानुसार एक व्यक्ति का स्वयं के प्रति अपने जीवन और वातावरण के प्रति दृष्टिकोण उसके अपने अनुभवों, पारिवारिक संबधों एवं अपने आस –पास के व्यक्तियों द्वारा उनके बारे में किये गये निर्णय पर आधारित होता है। इनमें से कुछ लोगों में नकारात्मक मनोवृत्ति विकसित हो जाती है, जो **''स्कीमास'' (schemas) का** कार्य करती हैं और इनको कसौटी मानकार व्यक्ति अपने अनुभवों का मूल्यांकन करता है। स्कीमाज से आशय व्यवहार को कूट संकेतिक करने एवं उसकी व्याख्या करने से होता है। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि स्कीमास की उत्पत्ति जीवन की प्रारंभिक अवस्थओं में होती है, किन्तु फिर भी वयस्कावस्था की अनुभूतियों पर अपना प्रभाव डालते है।

**ब) संज्ञानात्मक त्रिक् (Cognitive Triad) -** अवसाद के कारणों को ठीक ढंग से स्पष्ट करने के लिये बेक ने संज्ञानात्क त्रिक् के संप्रत्यय का प्रतिपादन किया। संज्ञानात्मक त्रिक् से बेक का आशय है, व्यक्ति की तीन चीजों के प्रति नकारात्मक मनोवृत्ति। प्रथम अपने प्रति, द्विती अपनी परिस्थियों के प्रति एवं तृतीय, अपने भविष्य के प्रति। एक अवसादग्रस्त व्यक्ति स्वयं का एवं वातावरण का नकारात्मक प्रत्यक्षण करता है, तथ्यों को नकारात्मक ढंग से स्पष्ट करता है। वातावरण के नकारात्मक पहलुओं पर ध्यान देता है एवं भविष्य को लेकर भी काफी निराश रहता है। साथ ही ऐसे व्यक्तियों में आत्मसम्मान की अत्यधिक कमी हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप ये अपने आपको बेकार, नकारा, अयोग्य एवं अवांछित मानते हैं ओर अपने अनुभवों का बाधा, आघात या भारस्वरूप मानने लगते हैं।

**स) चिन्तन में त्रुटि (Errors in thinking) –** बेक का कहना है कि अवसादग्रस्त लोगों द्वारा आदतन त्रुटिपूर्ण तर्क अपनाने से उनका संज्ञानात्क त्रिक् और भी प्रबल हो जाता है। बेक ने ऐसे त्रुटिपूर्ण तर्क के निम्न पाँच प्रकार बतलाये हैं –

1. **मनचाहा अनुमान (Arbitrary Inference)**
2. **चयनात्मक प्रथक्करण (Selective Abstraction)**
3. **अतिसामान्यीकरण (Over- generalization)**
4. **विस्तारण एवं न्यूनीकरण (Magnification and minimization)**
5. **वैयक्तिकरण (Personalization)**

1. **मनचाहा अनुमान (Arbitrary Inference) –** इसमें व्यक्ति थोड़ा अथवा विरोधी सबूत होने के बावजूद भी नकारात्मक निष्कर्ष पर यकीन करता है।
2. **चयनात्मक प्रथक्करण (Selective Abstraction) -** इसके अन्तर्गत व्यक्ति किसी एक नकारात्मक पक्ष पर विस्तृत रूप से ध्यान केन्द्रित करता है एवं दूसरे बड़े संदर्भ की उपेक्षा करता है।
3. **अतिसामान्यीकरण (Over- generalization) -** इसमें व्यक्ति एक सामान्य तथा तुच्छ घटना को आधार मानकर बहुत बड़े निष्कर्ष पर पहुँचने की गलती करता है।
4. **विस्तारण एवं न्यूनीकरण (Magnification and minimization) –** विस्तारण के अन्तर्गत व्यक्ति एक साधारण सी घटना को अपनी विषादी मनोवृत्ति का एक प्रमुख कारक बना लेता है। न्यूनीकरण में अवसादग्रसत व्यक्ति अपनी सकारात्मक या धनात्मक अनुभूतियों

की महत्ता का न्यूनाकलन **(Underestionate)** करता है तथा अपने नकारात्मक अनुभवों को अधिक महत्वपूर्ण मानता है।

5. **वैयक्तिकरण (Personalization)** – इसमें अवसादग्रस्त व्यक्ति भूलवश नकारात्मक घटनाओं का कारण स्वयं को मान लेता है।

**द) स्वतः चिन्तन (Automatic Thoughts) -** बेक के मतानुसार अवसादग्रस्त व्यक्ति संज्ञानात्मक त्रिक् क अनुभव स्वतः चिन्तन के रूप में करता है। यह दुःखद विचारों का एक ऐसा धाराप्रवाह है जो व्यक्ति को सतत् उसकी कल्पित अपर्याप्तता **(Assumed inadeaquacy)** एवं वातावरण के नकारात्मक पहलुओं को स्मरण कराता रहता है। ऐसे चिन्तनों का स्वतः कहने का कारण यह है कि ऐसा प्रतीत होता है कि ये चिन्तन अपने आप एक प्रतिवर्त **(Reflex)** के समान घटित हो रहे हों।

बेक का कहना है कि अवसाद के सांवेगिक अभिप्रेरणात्मक, दैहिक एवं व्यवहारपरक लक्षण मूल रूप से संज्ञानात्म प्रक्रियाओं से ही उत्पन्न होते है। अगर किसी व्यक्ति की अपने बारे में यह सोच है कि उसे कोई भी पसंद नहीं करता है अथवा नहीं चाहता है तो उसे सामाजिक विलगाव **(Social Outcast)** होने की दुःखद अनुभूति होती हैं इसी प्रकार यदि वह अपने भविष्य को लेकर निराशावादी सोच रखता है तो वह कोई भी नया कार्य करने का प्रयास नहीं करता । बेक के मतानुसार जैसे ही संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के कारण अवसाद के अतिरिक्त नये लक्षण विकसित होते हैं तो ये नये लक्षण मौलिक नकारात्मक संज्ञान को पुष्ट करते हैं। इस प्रकार हम पुनर्निवेशन तंत्र **(Feedback System)** का निर्माण होता है। जो नकारात्मक या विकृत संज्ञान को पुनर्बलित करने का कारण बनता है। कहने का अभिप्राय यह है कि जो लोग उदास तथा दुःखी रहते हैं। वे इन परेशानियों को इस बात का प्रमाण मानते हैं कि उनका जीवन दुःखमय है।

इसी प्रकार जो लोग किसी प्रकार का कार्य करने के लिये प्रेरित नहीं होते है। वे अपनी निष्क्रियता को इस बाता का प्रमाण मानने लगते हैं कि उनका भविष्य निराशाजनक होगा। इस प्रकार स्पष्ट है कि अपने नकारात्मक चिन्तन के कारण विषादी व्यक्ति का जीवन अनेक जटिलताओं से ग्रस्त हो जाता है।

**2. निस्सहायता/निराशा सिद्धान्त (Helplessness / Hopelessness Theory) -**

प्रिय पाठकों, यहाँ पर निराशा सिद्धान्त का अध्ययन हम निम्न तीन अन्तरसंबधित सिद्धान्तों के अन्तर्गतन करेंगे।

**क) मौलिक निस्सहायता सिद्धान्त (Original Helplessness Theory)**

**ख) आरोपण सिद्धान्त (Attributional Theory)**

**ग) निराशा सिद्धान्त (Hopelessness Theory)**

इनकी विस्तृत व्याख्या निम्नानुसार है –

**क) मौलिक निस्सहायता सिद्धान्त (Original Helplessness Theory) -**

निस्सहायता सिद्धान्त को मौलिक रूप से सेलिगमैन (1979) द्वारा प्रतिपादित किया गया। इस संबध में सेलिगमैन ने कुटते पर एक प्रयोग करके देखा। अपने प्रयोगात्मक अध्ययन में उन्होंने पाया कि जब पशुओं को अनियंत्रण योग्य विरूचिपूर्ण उत्तेजन **(Uncomfortable aversive Stimulation)** का सामना करना पड़ता है तो इससे उनमें निस्सहायता का भाव उत्पन्न होने लगता है और यह निस्सहायता बाद में नियंत्रण योग्य

तनावपूर्ण परिस्थिति में उसके निष्पादन पर अत्यधितक प्रभाव डालती है। उनमें दुःखद उद्दीपकों के प्रति प्रभावी प्रतिक्रिया करना सीखने की क्षमता तथा अभिप्रेरणा का अभाव हो जाता है। **सैलिगमैन** ने इसे **"अर्जित निस्सहायता" (Learned Helplessness)** कहा है। **सैलिगमैन** के अनुसार पशुओं पर किये गये इस प्रयोग के निष्कर्ष मनुष्यों में एकध्रुवीय विषाद के कुछ पहलुओं की व्याख्या करने में काफी हद तक सक्षम हैं । उन्होंने देखा कि पशुओं के निस्सहायता व्यवहार एवं मानव अवसाद के लक्षणों में पर्याप्त समानता है। वास्तव में देखा जाये तो **सेलिमैन** द्वारा मानव विषाद के कारणों की व्याख्या करने के लिये संज्ञानात्मक तथा व्यवहारात्मक दोनों तरह के प्रतिमानों **(Models)** से लिये गये सम्प्रत्ययों को संयोजित किया गया है।

अतः इस प्रकार सेलिगमैन के मतानुसार व्यक्ति में अवसाद उस अवस्था में उत्पन्न होता है, जब वह सोचता है कि –

1. अपने जीवन में मिलन वाले पुनर्बलन (Reinforcement) पर उसका कोई नियंत्रण नहीं है।
2. अपनी इस निस्सहाय स्थिति के लिये वे स्वयं जिम्मेदार हैं।

अतः स्पष्ट है कि सेलिगमैन के विचार में एकध्रुवीय अवसाद के सभी लक्षण इस अर्जित निस्सहायता एवं आत्म निन्दा के कारण ही उत्पन्न होते हैं।

**ख) आरोपण सिद्धान्त (Attributional Theory) –**

कुछ समय बाद सन् 1978 में अनेक प्रकार की कमियाँ होने के कारण **एब्राहमसन, सेलिगमैन एवं टीसडेल** ने मौलिक निस्सहायता सिद्धान्त का परिमार्जित प्रारूप तैयार किया, जिसे विषाद का **"आरोपण सिद्धान्त"** नाम दिया गया। मौलिक निस्सहायता सिद्धान्त की आलोचना मूल रूप से इस आधार पर की गई कि अवसादग्रस्त व्यक्ति अपने जीवन की घटनाओं को नियंत्रित कर पाने में स्वयं को असमर्थ अनुभव करते है तो फिर वे प्रत्येक चीज या घटना अथवा परिस्थिति के लिये अपने आपको जिम्मेदार मानते हैं।

इस आलोचना का समाधान आरोपण सिद्धान्त में किया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार जब व्यक्ति को अपने जीवन में किसी कार्य परिस्थिति में असफलता मिलती है तो वह इस असफलता को किसी न किसी कारण में आरोपित करता है। इस प्रकार के आरोपण की निम्न तीन विमायें बतायी गयी हैं –

1. **आन्तरिक – बाह्य (Internal – External)**
2. **सम्पूर्ण विषिष्ट (Global – Specific)**
3. **स्थिर – अस्थिर (Stable – Unstable)**

1. **आन्तरिक – बाह्य (Internal – External) -** यह बिमा इस बात को निर्धारित करती है कि असफलता का कारण स्वयं व्यक्ति अथवा कोई दूसरा व्यक्ति या घटना।
2. **सम्पूर्ण विशिष्ट (Global – Specific) –** इस विमा द्वारा इस बात का निर्धारण होता है कि क्या असफलता का कारण कोई ऐसा है जो अनेक परिस्थितियों से बँधा हुआ है अथवा किसी विशिष्ट परिस्थिति से।
3. **स्थिर – अस्थिर (Stable – Unstable) -** यह विमा इस बात का निर्धारण करती है कि असफलता का कारण कोई स्थायी कारक है या अस्थायी कारक।

अतः आरोपण सिद्धान्त के अनुसार जब व्यक्ति असफलता का कारण स्वयं के नियंत्रण से परे देखता है तो वह अपने मन में यह प्रश्न पूछता है कि ऐसा क्यों ? यदि वह असफलता

का कारण स्वयं को मानता है जो सम्पूर्ण होने के साथ – साथ स्थायी भी है तो वह भविष्य में नकारात्मक परिणामों को नियंत्रित करने में स्वयं को निःसहाय अनुभव करेगा और उसे भविष्य में कुछ भी अच्छा होने की आशा नहीं रह जायेगी और इससे व्यक्ति में अवसाद के लक्षण उत्पन्न होने लगेंगे। यदि वह दूसरे कारक के रूप में नियंत्रण में कमी का आरोपित करता है तो वह विषादी मनोवृत्ति से ग्रसित नहीं होगा। आरोपण का यह कारण इस तथ्य की स्पष्ट व्याख्या करता है कि किसी घटना को नियंत्रित करने की सामर्थ्य खो देने के प्रति क्यों कुछ व्यक्ति निस्सहाय ढंग से अनुक्रिया करते हैं तथा क्यों दूसरे लोग ऐसी प्रतिक्रया व्यक्त नहीं करते हैं।

**शमिरेज एवं उनके सहयोगियों (1992)** ने अपने शोध के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि यदि व्यक्ति परिस्थिति पर नियंत्रण खोने के कारण का आरोपण बाह्य कारकों अथवा कुछ ऐसे आंतरिक कारकों के रूप में करता है जो विशिष्ट अथव अस्थिर होता है तो व्यक्ति में निस्सहायता को कम किया जा सकता है अथवा रोका जा सकता है।

**ग) निराशा सिद्धान्त (Hopelessness Theory) –**

सन् 1989 में आरोपण सिद्धान्त का भी संशोधन किया गया, जिसमें **एब्रामसन, मेटास्काई एवं एलाय** की भूमिका उल्लेखनीय हैं इस संशोधि सिद्धान्त को विषाद का **निराषा सिद्धान्त (Hopelessness Theory) क**हा गया। इस सिद्धान्त के अनुसार निराशाजनक स्थिति ही व्यक्ति में अवसाद का प्रमुख कारण है। निराशाजनक स्थिति से तात्पर्य एक ऐसी अवस्था से है, जिसमें व्यक्ति यह सोचता है कि वांछनीय परिणाम **(Desirable Outcomes)** नहीं होंगे ओर अवांछनीय परिणाम **(Undesirable Outcomes)** निश्चित रूप से होंगे तथा व्यक्ति के पास इस अवस्था को परिवर्तित करने का कोई उपाय नहीं है।

आरोपण सिद्धान्त के समान निराशा सिद्धान्त के अनुसार भी जिन्दगी की नकारात्मक घटनायें व्यक्ति में विद्यमान मानसिक अवस्था जिसे **'डायथिसिस'** नाम दिया गया है, के साथ अन्तःक्रिया करके एक निराशाजनक स्थिति को जन्म देती हैं। इस सिद्धान्त में भी आरोपण शैली पैटर्न को एक महत्वपूर्ण डायथिसिस माना गया है, किन्तु उसके साथ ही निराशा सिद्धान्त में एक अन्य डायथिसिस पर सर्वाधिक जोर दिा गया है और यह डायथिसिर व्यक्ति की वह प्रवृत्ति होती है, जिसके आधार पर वह यह अनुमान लगाता है कि जिन्दगी की नकारात्मक घटनाओं के गंभीर नकारात्मक परिणाम उत्पन्न होते हैं तथा स्वयं के बारे में भी व्यक्ति द्वारा एक नकारात्मक अनुमान लगाया जाता है। इस संबध में सन् 1993 में **मेटालस्काई ने** अपने साथियों के साथ मिलकर एक प्रयोगात्मक शोध किया और परिणाम में यह पाया कि जिन छात्रों ने परीक्षण में प्राप्त खराब ग्रेड का आरोपण सम्पूर्ण तथा स्थायी कारकों के रूप में किया था, उनमें विषादी मनोदशा अधिक पायी गयी। साथ ही इन छात्रों में आत्म – सम्मान का भाव अत्यधिक कम था। इस कारण इनमें निराशाजनक स्थिति की बढ़ोत्तरी होती गई।

इस प्रकार निराशा सिद्धान्त विषाद के कारणों की स्पष्ट रूप से व्याख्या करता है।

प्रिय पाठकों, उपरोक्त विवरण से आप जान गये होंगें कि भिन्न – भिन्न विचारधाराओं द्वारा एकध्रुवी विषाद के कारणों की व्याख्या करने का प्रयास विद्वानों द्वारा किया गया हे। ऐसे तो सभी विचारधाराओं की अपनी – अपनी उपयोगिता और किसी भी एक विचारधारा को सम्पूर्ण नहीं माना जा सकता फिर भी तुलनात्मक रूप से देखा जो तो जैविक, व्यवहारात्मक एवं संज्ञानात्मक विचारधारायें ज्यादा महत्वपूर्ण है।

## 8.7 विषाद का उपचार –

प्रिय पाठकों, अवसादग्रस्त रोगियों के उपचार हेतु अनेक प्रविधियाँ प्रचलित है। जिनका विवेचन निम्नानुसार है

1. **मनोगतिकी चिकित्सा (Psychodynamic Therapy)**
2. **व्यवहारात्मक चिकित्सा (Behavioural therapy)**
3. **अन्तर्वैयक्तिक चिकित्सा (Interpersonal Therapy)**
4. **संज्ञानात्मक चिकित्सा (Cognitive Therapy)**
5. **जैविक चिकित्सा (Biological Therapy)**
6. **योग चिकित्सा (Yog Therapy)**

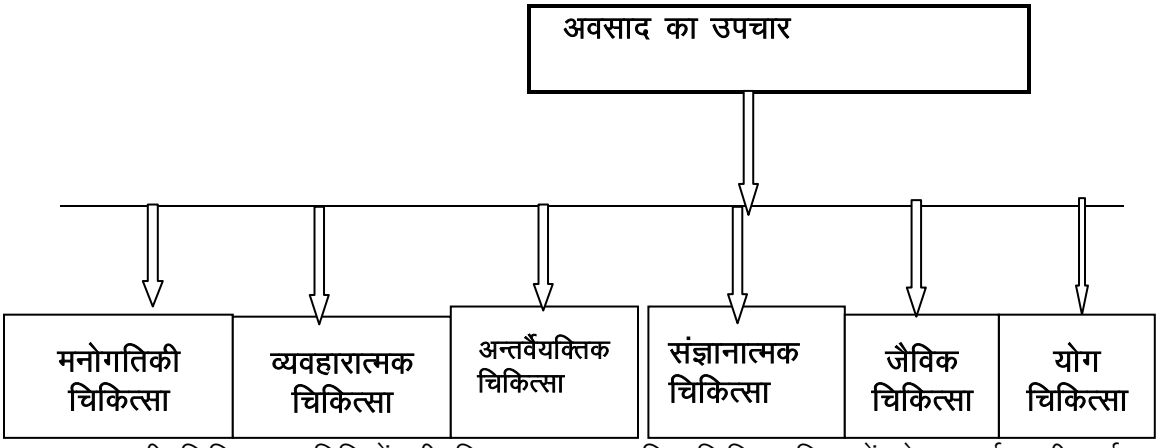


इन सभी चिकित्सा प्रविधियों की विस्तृत व्याख्या निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत की गई है

1. **मनोगतिकी चिकित्सा (Psychodynamic Therapy) –**

प्रिय पाठकों, जैसे कि आप पहले अध्ययन कर चुके है कि मनोगतिकी विचारधारा के अनुसार अवसाद का प्रमुख कारण वास्तविक तथा काल्पनिक हानियों के अचेतन के दुःख हैं, जो दूसरे लोगों पर अत्यधिक निर्भरता दिखलाने से मिश्रित होता है। मनोगतिकी चिकित्सा में उपचारक रोगी के अचेतन के इन दुःखों को चेतन स्तर पर लाने का प्रयास करते हैं, जिससे कि वे अपनी समस्या के मूलस्रोत को समझ सके और उनसे दूर रहना सीखें। इस हेतु चिकित्साक द्वारा अनेक प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है। जैसे – **मुक्त साहचर्य विधि (Free association method)** जिसमें रोगी को चिकित्सा के दौरान स्वतंत्र रूप से अपने मन में आने वाले चिचारों को अभिव्यक्त करने का निर्देश दिया जाता है तथा स्वप्न विश्लेषण **(Dream analysis)** आदि।

मनोगतिकी चिकित्सा में चिकित्सक का मूल उद्देश्य यह रहता है कि रोगी धीरे–धीरे चिकित्सक एवं दूसरे लोगों पर अपनी निर्भरता कम करता जाये, जिससे उसकी मनोदशा में सुधार हो सके।

यद्यपि मनोगतिकी चिकित्सा अवसाद के उपचार की एक महत्वपूर्ण प्रविधि है, किन्तु फिर भी कुछ आलोचकों, जिसमें शापिरों तथा उनके सहयोगियों के नाम उल्लेखनीय है, के

अनुसार एकध्रुवीय विकृति के उपचार में कभी–कभी ही इस तकनीक का प्रयोग सफल होता है। इस चिकित्सा विधि की सीमित प्रभावशीलता के निम्न कारण बतलाये गये हैं –

क) अवसादग्रस्त रोगी इतने अधिक थके हुये और निष्क्रिय होते हैं कि वे उपचार के दौरान विचार – विमर्श में ठीक ढंग से भाग नहीं लेते हैं। जिसके कारण वे उतननी सूक्ष्म स्तर की सूझ का उपयोग भी नहीं कर पाते हैं, जिसकी आवश्यकता इस चिकित्सा प्रकृति में होती है।

2. **व्यवहारात्मक चिकित्सा (Behavioural therapy) –**

अवसाद के उपचार की यह एक प्रभावी तकनीक हैं, जिसमें प्रमुख व्यवहारवादी विचारक **लेविनसोन** द्वारा प्रतिपादित चिकित्सा पद्धति अत्यधिक लोकप्रिय है। इस पद्धति में निम्न तीन तरह की क्रियायें करके रोगी का उपचार किया जाता है।

**अ) सुखद घटनाओं से पुनर्परिचित करवाना**

**ब) अविषादी व्यवहारों को पुनर्बलित करना**

**स) सामाजिक कौशल विकसित करने का शिक्षण देना।**

**अ) सुखद घटनाओं से पुनर्परिचित करवाना –** इसके अन्तर्गत चिकित्सक रोगी के दिन–प्रतिदिन के कार्यो का निरीक्षण करता है और तब 10 ऐसे कार्यो का चुनाव करता है, जो रोगी के लिये पर्याप्त सुखत होती हैं। इसके बाद चिकित्सक रोगी के लिये इन सुखद कार्यो को करने का एक साप्ताहिक कार्यक्रम तैयार करता है। **टेरी तथा लेविनसोन (1986)** के अनुसार इस प्रकार के प्रोग्राम में रोगी अधिक से अधिक सहभागिता दिखलाता है। जिससे उसकी मनोदशा उन्नत होने लगती है।

**ब) अविषादी व्यवहारों को पुनर्बलित करना –** इसके अन्तर्गत चिकित्साक क्यायंट के विषादी व्यवहार की उपेक्षा करके उसकी जगह उसके रचनात्मक व्यवहार पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है तथा इसके लिये वह रोगी को पुरस्कृत भी करता है। चिकित्सक इस उपागम के एक हिस्से के रूप में रोगी के परिवार के सदस्य तथा मित्र का भी उपयोग करता है। इसमें वह इन लोगों को इस बात का निर्देश देता है कि वह रोगी के विषादी कथनों तथा व्यवहार को नजरअंदाज करें एवं उसके समायोजी या अनुकूल व्यवहार पर ध्यान दें तथा इस हेतु उसे पुरस्कृत भी करें। ऐसा करने पर रोगी रचनात्मक व्यवहार को पुनः करने के लिये अभिप्रेरित होता है और धीरे – धीरे उसका विषाद कम होने लगता है।

**स) सामाजिक कौशल विकसित करने का शिक्षण देना –** विषादी लोग दूसरों के साथ संतोषजनक संबध स्थापित नहीं कर पाते है, क्योंकि उनमें सामाजिक कौशल की कमी होती है। अतः ऐसे रोगियों को प्रशिक्षण देकर उनके सामाजिक कौशल को उन्नत करने का प्रयास किया जाता है। **हरसेन एवं उनके सहायोगियों (1984)** के अनुसार जिन विषादी रोगियों को विभिन्न प्रकार की सामाजिक भूमिकायेंक वल इसलिये करवायी गई कि उनके सामाजिक कौशल में वृद्धि हो जाये तो परिणाम में देखा गया कि उनकी मनोदशा में काफी सुधार हो गया था।

व्यवहारात्मक चिकित्सा के संबध में हुये विभिन्न अध्ययनों से यह बात सामने आयी ळै कि **लेविनसोन** द्वारा प्रतिपादित व्यवहारात्मक प्रविधियाँ केवल तभी प्रभावी हुयी हैं, जब विषाद साधारण हो तथा इन तीनों प्रविधियों का उपयोग साथ किया जाये। अभी कुछ वर्षो पूर्व लेविनसोन तथा उनके सहयोगियों ने एकध्रुवी विषाद के उपचार हेतु एक विस्तृत सामूहिक उपचार कार्यक्रम तैयार किया है। इसके अन्तर्गत भाषण वर्गक्रियायें (Classroom activities) एवं घर पर कुछ कार्य करने के लिये दिया जाता है। **लेविनसन** एवं उनके सहयोगियों के

दवे के अनुसार इस प्रकार के प्रोग्राम में भाग लेने वाले रोगियों में से लगभग 80 प्रतिशत रोगियों के विषाद के लक्षणों में भारी गिरावट आयी।

3. **अन्तर्वैयक्तिक चिकित्सा (Interpersonal Therapy) -** इस चिकित्सा को विकसित करने का श्रेय **क्लेरमैन तथा विसमैन** को जाता है। इस चिकित्सा लगभग 12 – 16 हफ्तों के सत्रों में रोगी में अन्तर्वैयक्तिक संघर्ष में सूझ उत्पन्न करने का प्रयास किया जाता है। साथ ही उसके सामाजिक वातावरण को भी बदलने का प्रयास किया जाता है और रोगी में सामाजिक कौशल विकसित करने के लिये उसे प्रशिक्षित भी किया जाता है। इस चिकित्सा में चिकित्सक रोगी की मनोदशा में सुधार करने के लिये निम्नलिखित चार अन्तर्वैयक्तिक समस्या क्षेत्रों में से कम से कम एक पर अवश ही जोर देता है –

**अ) दुःखभरी प्रतिक्रियायें**
**ब) अन्तर्वैयक्तिक भूमिका वाद – विवाद**
**स) अन्तर्वैयक्तिक भूमिका अंतरण**
**द) अन्तर्वैयक्तिक कमी**

**अ) दुःखभरी प्रतिक्रियायें –** मनोगतिकी विचारधारा के समान अन्तर्वैयक्तिक चिकित्सा भी यह मानती है कि जब व्यक्ति अपने किसी प्रिय व्यक्ति, वस्तु या स्थान को खो देता है तो इससे उसमें दुःखभरी प्रतिक्रियायें होती हैं। अतः अन्तर्वैयक्तिक चिकित्सवा में उपचारक रोगी को उस हॉनि के बारे में याद दिलाने में खोये हुये व्यक्ति के साथ अपने संबधों की खोजबीन करने में और उन प्रियजनों के प्रति क्रोधभाव व्यक्त करने में सहायता करते हैं। जब रोगी अलग हुये या खोये हुये अपने प्रियजनों को याद करने की नयी तकनीक विकसित कर लेते हैं तो इससे वे उन प्रियजनों के साथ अपने संबध भी नये तरीके से स्थापित करना सीख जाते हैं, जो धीरे – धीरे उनकी विषादी मनोदशा को कम करते जाता है।

**ब) अन्तर्वैयक्तिक भूमिका वाद – विवाद –** जब दो व्यक्ति अपने पारस्परिक संबधों और भूमिकाओं के बारे में अलग – अलग अपेक्षायें विकसित कर लेते हैं तो इससे उसमें अन्तर्वैयक्तिक भूमिका वाद –विवाद उत्पन्न हो जाता है, जो मानसिक संघर्ष को जन्म देकर धीरे–धीरे व्यक्ति को अवसाद ग्रस्त कर देता है। अन्तर्वैयक्तिक चिकित्सा में चिकित्सक विषादी व्यक्ति को ऐसे भूमिका वाद–विवाद की पहचान करके न केवल उसकी खोजबीन में सहायता करते हैं बल्कि इस वाद–विवाद के समाधान के तरीके विकसित करने पर भी बल देते हैं।

**स) अन्तर्वैयक्तिक भूमिका अंतरण –** अवसाद के संबध में हुये विभिन्न अध्ययनों से यह बात भी सामने आयी है कि विवादग्रसत व्यक्ति अन्तर्वैयक्तिक भूमिका अंतरण का भी अनुभव करता है। प्रायः यह देखने में आता है कि अधिकतर लोगों को जिन्दगी के महत्वपूर्ण परिवर्तनों जैसे बच्चे का जन्म या मृत्यु, विवाव–विच्छेद के साथ समायोजन करने में काफी परेशानी होती है। इसका कारण यह है कि रोगी हुयी क्षति के साथ–साथ परिवर्तित भूमिका के साथ स्वयं को समायोजित करने में असमर्थ अनुभव करता है। वह यह समझने लगता है कि परिस्थिति उसकी पहचान तथा आत्म–सम्मान को धमकी और चुनौती दे रही है। इन परिस्थितियों में चिकित्सक रोगी को अपनी पुरानी भूमिकाओं की समीक्षा करने में एवं नवीन भूमिकाओं द्वारा उत्पन्न अवसरों की खोजन करने में एवं सामाजिक समर्थन तंत्र को विकसित करने में सहायता करता है।

ऐसा माना जाता है कि जब रोगी इन नयी भूमिकाओं पर नियंत्रण पा लेता है तो इससे उसमें आशावादी भाव उत्पन्न होने लगता है, जो धीरे – धीरे उसकी विषादी मनोवृत्ति को कम करता है।

**द) अन्तर्वैयक्तिक कमी –** विषादी व्यक्ति में अनेक प्रकार की अन्तर्वैयक्तिक कमियाँ भी पायी जाती है। जैसे–दूसरों की आवश्यकताओं के प्रति असंवेदनशीलता, अत्यधिक शर्माना, सामाजिक अनुपयुक्तता आदि। ऐसी स्थिति में चिकित्सक अनेक प्रकार की मनोगतिकी विधियों और व्यवहारात्मक प्रविधियों जैसे–सामाजिक कौशल प्रशिक्षण आदि के माध्यम से रोगी की सामाजिक प्रभावशीलता को उन्नत बनाने का प्रयास करता है, जिससे उनमें अन्तर्वैयक्तिक कमियाँ दूर हो ओर उनकी विषादी मनोदशा में सुधार हो।

अन्तर्वैयक्तिक चिकित्सा अवसाद के उपचार में कितनी सफल है, इस संबध में जो निष्कर्ष प्राप्त हुये हैं, उनके अनुसार यह चिकित्सा प्रणाली ऐसे अवसादग्रस्त रोगियों के लिये उत्तम है जो प्रायः मनोसामाजिक संघर्ष से जूझते हैं। इसके साथ ही **एलकिन (1994), क्लेरमैन एवं विषमैन (1992)** ने अपने अध्ययन के परिणाम में पाया कि अन्तर्वैयक्तिक चिकितसा ऐसे विषादी रोगियों के लिये एक प्रभावी चिकित्सा प्रणाली है जो एकध्रुवीय विकृति के या तो साधारण केस होते है या गंभीर केस होते है। इन अध्ययनों में पाया गया कि 50 – 60 प्रतिशत रोगियों में अवसाद के लक्षण पूरी तरह समाप्त हो गये।

4. **संज्ञानात्मक चिकित्सा (Cognitive Therapy) -** प्रिय पाठकों, जैसा कि आप जानते हैं संज्ञानात्मक विचारधारा में व्यक्ति के नकारात्मक चिन्तन को ही अवसाद का प्रधान कारण माना जाता है। अतः रोगी की इस विकृत चिन्तन प्रणाली को सुधारने के उद्देश्य से **बेक** ने एक संज्ञानात्मक उपचार प्रविधि का विकास किया, जो रोगी को उसकी विकृत संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं को पहचानकर उसे सुधारने में उसकी मदद करती है। इस उपचार विधि में 12 – 20 सत्र दिये जाते है।

**बेक की** संज्ञानात्मक उपचार विधि की निम्न चार अवस्थायें है –

1. **पहली अवस्था : क्रियाओं में वृद्धि एवं मनोदषा को उन्नत बनाना (Phase I : Increasing activities and devating mood)**
2. **दूसरी अवस्था : स्वतः चिन्तनों की जाँच करना और उसे गलत साबित करना (Phase II : Examining and invalidating automatic thoughts)**
3. **तीसरी अवस्था : विकृत चिन्तनों एवं नकारात्मक पूर्वाग्रहों की पहचान करना (Phase III : Identifying distorted thinking and negative biases)**
4. **चौथी अवस्था : मौलिक मनोवृत्तियों को परिवर्तित करना ( Phase IV : Altering primary attitudes)**

इन सभी का विस्तार से विवेचन निम्नानुसार है।

1. **पहली अवस्था : क्रियाओं में वृद्धि एवं मनोदशा को उन्नत बनाना (Phase I : Increasing activities and devating mood) –**

संज्ञाानात्मक चिकित्सा की प्रथम अवस्था में रोगी को सक्रिय बनाने के लिये उसे विभिन्न प्रकार की गतिविधियों में भाग लेने के लिये प्रोत्साहित किया जाता है, जिससे उसकी विषादी मनोवृत्ति कम हो सके। इस हेतु चिकित्सक रोगी के साथ मिलकर प्रत्येक सत्र में प्रतिघंटा किये जाने वाले कार्यो की एक सूची तैयार करता है और किस प्रकार से इन कार्यो को किया जायेगा, इस बाता का भी

निर्धारण किया जाता है। सूची तैयार करने के बाद चिकित्सक रोगी को तय प्रोग्राम के अनुसार कार्य करने के लिये प्रेरित करता है। इसके परिणाम में पाया गया कि जैसे – जैसे रोगी की सक्रियता में वृद्धि होती है, वैसे – वैसे उसकी मनोदशा में भी सुधार होता जाता है।

2. **दूसरी अवस्था : स्वतः चिन्तनों की जाँच करना और उसे गलत साबित करना (Phase II : Examining and invalidating automatic thoughts) –**

जैसे – जैसे रोगी सक्रिय होता जाता है और अपनी विषादी मनोवृत्ति से कुछ राहत अनुभव करता है तो वह अपने बारे में बेहतर ढंग से सोच पाते हैं तथा साथ ही अपना निरीक्षण करने में भी सक्षम होते हैं। अब संज्ञानात्मक चिकित्सा की दूसरी अवस्था प्रारम्भ होती है। इसमें चिकित्सक क्यायंट को अपने विचारों की जाँच करने के लिये प्रेरित करते हैं और इसके साथ ही उन्हें कुछ ग्रह कार्य करने के लिये देते हैं। इसमें रोगी अपने चिन्तन को ठीक तरह से अभिलेखित करता है। रोगी के इन स्वतः चिन्तनों का चिकित्सा सत्र में मूल्यांकन किया जाता है। जहाँ रोगी अपने चिन्तन को वास्तविक ठहराता है। वहाँ चिकित्सक द्वारा उसकी वैधता को चुनौती दी जाती है। इस प्रकार कई सत्रों में चिकित्सक और क्लायंट मिलकर संयुक्त प्रयास द्वारा ऐसे चिन्तनों की वास्तविकता की समीक्षा कर उसे अवैध या निरर्थक घोषित कर देते हैं।

3. **तीसरी अवस्था : विकृत चिन्तनों एवं नकारात्मक पूर्वाग्रहों की पहचान करना (Phase III : Identifying distorted thinking and negative biases) -**

जब रोगी अपने स्वतः चिन्तन के दोषों को पहचानना सीख लेता है, तब चिकित्सक उसे यह बताने का प्रयास करते हैं कि किस प्रकार अतार्किक चिन्तन प्रक्रियायें इस प्रकार के स्वतः चिन्तन के विकास में सहायक होती हैं। जब रोगी स्वतः चिन्तनों का अतार्किक चिन्तन में उत्पन्न त्रुटियों का मूल्यांकन करता है तो उपचारक उन्हें यह भी बताने का प्रयास करते हैं कि उसके द्वारा घटनाओं की जो व्याख्या की गई है। वह एक नकारात्मक पूर्वाग्रह से ग्रस्त है। ऐसी स्थिति में चिकित्सक विभिन्न तकनीकों के माध्यम से रोगी की इस पूर्वाग्रहित शैली को परिवर्तित करने का प्रयत्न करते हैं। उदाहरण के तौर पर जिन रोगियों में अवसाद का कारण अत्यधिक आत्मनिन्दा या स्वयं पर दोषारोपण होता है, तो उनकी इस मनोवृत्ति को दूर करने के लिये चिकित्सक द्वारा प्रायः पुनर्आरोपण प्रविधि का प्रयोग किया जाता है, जिसमें रोगी को इस बात के लिये प्रशिक्षित किया जाता है कि वे अपनी समस्या की उन कारणों की खोजबीन करे जो उसके स्वयं के अतिरिक्त हो सकते हैं। ऐसा करने से धीरे–धीरे रोगी में आत्म–निन्दा की मनोवृत्ति कम होने लगती है तथा उसका आत्म–सम्मान बढ़ने लगता है, जिससे उसकी मानसिक स्थिति में सुधार होता है।

4. **चौथी अवस्था : मौलिक मनोवृत्तियों को परिवर्तित करना ( Phase IV : Altering primary attitudes) –**

चिकित्सा के इस अंतिम चरण में रोगी की मौलिक मनावृत्तियों को परिवर्तित करने का प्रयास किया जाता है, क्योंकि मौलिक मनोवृत्ति के कारण ही व्यक्ति में विषाद का प्रारम्भ होता है। ऐसा देखा गया है कि चिकित्सा के प्रथम तीन चरणों में अधिकतर रोगी अपनी मनोवृत्ति के कुसमायोजी स्वरूप को जानने समझने लगते हैं तथा वे स्वयं ही उसको

परिवर्तित करने का प्रयास प्रारम्भ कर देते हैं। चिकित्सक रोगी को अपनी मनोवृत्ति की समीक्षा करने के लिये प्रेरित करता है। परिणामस्वरूप क्लायंट अपनी इस मनोवृत्ति में और अधिक तीव्रगति से परिवर्तन लाने के लिये प्रेरित होता है। परिणामस्वरूप उसके विषादी लक्षणों में कमी आने लगती हे।

अनेक अध्ययनों से यह स्पष्ट हो चुका है कि **बेक** द्वारा विकसित संज्ञानात्मक चिकित्सा अत्यन्त प्रभावी हैं। **होलोन तथा बेक (1994)** द्वारा किये गये अध्ययनों में पाया गया है कि जिन विषादी लोगों को संज्ञानात्मक चिकित्सा दी गयी थी, उनके विषादी लक्षणां में उन रोगियों की तुलना में अपेक्षाकृत कमी पायी गयी, जिनको संज्ञानात्मक चिकित्सा नहीं दी गई थी। इनमें लगभग 50–60 प्रतिशत रोगी ऐसे थे, जिनमें संज्ञानात्मक चिकित्सा देने के बाद अवसाद के लक्षण पूर्णतः समाप्त हो गये। **पेस एवं डिक्सन (1993)** के अध्ययन के अनुसार संज्ञानात्मक चिकित्सा दिये जाने वाले रोगियों के संज्ञानात्मक कार्यो में धीरे – धीरे सुधार होते पाया गया। उनके नकारात्मक चिन्तन में गिरावट आयी एवं आत्म–सम्प्रत्यय में धनात्मक परिवर्तन हुये।

अतः स्पष्ट है कि अवसाद के उपचार हेतु संज्ञानात्मक चिकित्सा अत्यन्त उपयोगी है।

5. **जैविक चिकित्सा (Biological Therapy)** – अवसाद के उपचार के लिये जैविक चिकित्सा, जिसे मेडिकल चिकित्सा भी कहा जाता है, का भी सफलतापूर्वक उपयोग किया गया है। विषादग्रस्त रोगी को निम्न दो तरह से जैविक चिकित्सा दी जाती है –

   **अ) वैद्युत आक्षेपीय चिकित्सा (Electroconvulsive Therapy or ECT)**

   **ब) विषाद विरोधी औषध का उपयोग (Use of Antidepressant Drugs)**

   **इन** दोनों प्रविधियों का विवेचन निम्नानुसार है –

   **अ) वैद्युत आक्षेपीय चिकित्सा (Electroconvulsive Therapy or ECT) –**

   ECT अवसाद के उपचार की एक विवादित प्रणाली है। कहने का आशय यह है कि कुछ लोगों के मतानुसार इस प्रविधि के कोई दुष्प्रभाव नहीं है, जबकि अन्य लोगों का कहना है कि इस तकनीक से उपचार करने पर रोगी के तंत्रिका तंत्र पर बुरा प्रभाव पड़ता है, जो दुसरी कई समस्याओं को जन्म देता है। इस चिकित्सा पद्धति में रोगी के सिर पर इलेक्ट्रोड लगाकर लगभग 65 – 140 वोल्ट का वैद्युत प्रवाह आधे सेकेण्ड या उससे भी कम सम के लिये प्रवाहित किया जाता है। **ECT** की विधि को निम्न दो श्रेणियों में विभाजित किया गया है –

   1. **द्विपार्श्विक वैद्युत आक्षेपीय चिकित्सा (Bilateral ECT)**
   2. **एक पार्श्विक वैद्युत आक्षेपीय चिकित्सा (Unilateral ECT)**

   1. **द्विपार्श्विक वैद्युत आक्षेपीय चिकित्सा (Bilateral ECT)** – इसमें अग्रमस्तिष्क के दोनों ओर एक–एक इलेक्ट्रोड लगाया जाता है तथा विद्युत प्रवाह अग्रपालि से होकर प्रवाहित होता है।
   2. **एक पार्श्विक वैद्युत आक्षेपीय चिकित्सा (Unilateral ECT)** – इसमें केवल एक ही इलेक्ट्रोड रोगी के मस्तिष्क पर लगाया जाता है और विद्युत प्रवाह मस्तिष्क के एक ही ओर से होकर प्रवाहित होता हे।

इस चिकित्सा प्रविधि का आधार यह है कि जब रोगी के मस्तिष्क से वैद्युत धारा प्रवाहित होती है तो इससे उसके अन्दर आक्षेप **(Convulsion)** उत्पन्न होता है और यह आक्षेप 25

सैकण्ड से लेकर कुछ मिनट तक बना रहता है। इस मस्तिष्कीय आक्षेप में ही क्लायंट में अवसाद के लक्षण समाप्त हो जाते हैं। एक विषादग्रस्त व्यक्ति को 2 – 3 सप्ताह तक 6 – 9 बाद **ECT** दी जाती है। **वुचन एवं उसके सहयोगियों (1992)** का कहना है कि लगभग 60 – 70 रोगियों की मनोदशा में **ECT** देने से काफी सुधार हुआ।

**ECT** से विषाद के लक्षण कैसे दूर होते हैं, इस प्रश्न के उत्तर में मनश्चिकित्सकों का कहना है कि **ECT** से मस्तिष्क में न्यूरोट्रांसमीटर्स की क्रियाशीलता में वृद्धि हो जाती है, जिसके कारण मस्तिष्क में नॉरएपिनएफ्रीन और सिरोटोनिन का स्राव अधिक होने लगता है और विषाद के लक्षणों में कमी आने लगती है।

यद्यपि **ECT** विषाद के उपचार की एक प्रमुख तकनीक है, किन्तु फिर भी इस प्रविधि की निम्न कमियाँ हैं –

- **ECT** पूरे मस्तिष्क के न्यूरोन को उत्तेजित कर देती है, जिसके कारण ऐसे न्यूरॉन की क्रियाशीलता में भी वृद्धि हो जाती है जो सिरोटोनिन और नॉरएपिनएफ्रीन का स्राव न करके दूसरे न्यूरोट्रांसमीटर्स का स्राव करते हैं।
- कुछ मनौचिकित्सकों का मानना है कि **ECT** से स्मृति विलोप और दूसरी अन्य प्रकार की तंत्रीकीय क्षति होती है।

वर्तमान समय में अवसाद के उपचार के लिये **ECT** का काफी कम प्रयोग किया जाता है। इसका एक कारण तो यह है कि इस प्रविधि के अनेक दुष्प्रभाव हैं। दूसरा कारण यह है कि आज बहुत सारी ऐसी दवाईयाँ उपलब्ध हैं, जिनका उपयोग करने से विषाद के लक्षण कम होने लगते हैं।

अब हम इन विषाद विरोधी औषध के उपयोग के बारे मे अध्ययन करेंगे।

**ब) विषाद विरोधी औषध का उपयोग (Use of Antidepressant Drugs) –**

वर्तमान समय मे अवसाद के उपचार हेतु मुख्यतः निम्न तीन प्रकार के औषधों का उपयोग किया जाता है –

**अ) मोनोएमाइन ऑक्सीडेस प्रतिरोधक**

**ब) ट्रीसाइविलक्स**

**स) द्वितीय पीढ़ी के विषाद विरोधी औषध**

इन सभी का विवेचन निम्नानुसार है –

**अ) मोनोएमाइन ऑक्सीडेस प्रतिरोधक –** अवसाद को दूर करने के लिये औषध के रूप में रोगियों को **मोनोएमाइन ऑक्सीडेस प्रतिरोधक** दिये जाते हैं, जिससे शरीर में **मोनोएमाइन ऑक्सीडेस एन्जाइम** का उत्पादन कम हो जाता है। इस एन्जाइम का कम उत्पादन होने से नॉरएपिनएफ्रीन की बर्बादी रूक जाती है और अवसाद के लक्षण दूर होने लगते है।

प्रारम्भ में विषाद ग्रस्त रोगियों को **मोनोएमाइन ऑक्सीडेस प्रतिरोधक के** रूप में **इप्रोनियजिड औषध** दी जाती थी। परन्तु इससे रोगी का लीवर खराब हो जाता था एवं उसकी मृत्यु भी हो जाती थी। इसलिये शोधकर्ताओं द्वारा नये **मोनोएमाइन ऑक्सीडेस प्रतिरोधक** की खोज की गई जिनमें **मॉरप्लान, नारडिल एवं पारनेट** प्रमुख है।

**ब) ट्रीसाइविलक्स –** एकध्रुवीय विषाद को दूर करने के लिये औषध के रूप में **ट्रीसाइविलक्स का** सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है। **इमीप्रामाइन, एमीट्रीपटाइलीन,**

**नॉरट्रीपटाइलिन एवं डावसेवीन** कुछ प्रमुख **ट्रीसाइविलक्स** हैं। इनका नाम **ट्रीसाइविलक्स** विषाद विरोधी औषध इसलिये है क्योंकि इनमें तीन वृत्तीय आण्विक संरचना पायी जाती है। वर्तमान समय में विषाद को दूर करने में **मोनोएमाइन ऑक्सीडेस प्रतिरोधक** की तुलना में **ट्रीसाइविलक्स** का अधिक उपयोग किया जा रहा है। जिसके निम्न कारण है।

- **मोनोएमाइन ऑक्सीडेस प्रतिरोधक की** तुलना में ट्रसाइविलक्स को कम खतरनाक माना जाा है। इसके अतिरिक्त इनका उपयोग करने से खान–पान संबधी भी कोई प्रतिबंध नहीं होता है।
- विभिन्न प्रयोगात्मक अध्ययनों के परिणाम में यह पाया गया हे कि विषाद को दूर करने में ट्रीसाइविलक्स, **मोनोएमाइन ऑक्सीडेस प्रतिरोधक** की तुलना में ज्यादा प्रभावकारी है।

**स) द्वितीय पीढ़ी के विषाद विरोधी औषध** –अवसाद के लक्षणों को दूर करने के लिये अब कुछ ऐसे औषध भी विकसित कर लिये गये हैं, जो सीधे **सिरोटोनिन और नॉरएपिनएफ्रीन** ग्राहकों की संवेदनशीलता में परिवर्तन कर देते हैं। ऐसे औषधों में **एमॉक्सामाइन, ट्रेजोडोन, मैप्रोटीलाइन, सरेट्रालाइन, पैरेक्सेटाइन, फ्लूमौक्सीटाईन** आदि प्रमुख हैं।

वर्तमान समय में **ट्रीसाइविलक्स** की तुलना में द्वितीय पीढ़ी विषाद विरोधी औषधों की प्रभावशीलता एवं उपयोगिता बढ़ती जा रही है क्योंकि इनकी अतिमात्रा (Overdoes) का भी रोगी के शरीर पर कोई खास दुष्प्रभाव नहीं पड़ता है। इसके अतिरिक्त इन औषधों के प्रयोग से मुँह सूखना, कब्ज, शरीर के वजन में वृद्धि, अस्पष्टदृष्टि इत्यादि अवांछित लक्षण भी उत्पन्न नहीं होते हैं।

**6. योग चिकित्सा (Yog Therapy) –**

वर्तमान सम में अवसाद के उपचार हेतु योग चिकित्सा की लोकप्रियता भी अत्यधिक बढ़ती जा रही है। वस्तुतः योग चिकित्सा प्राणऊर्जा को संतुलित करके जीवनशैली में सकारात्मक परिवर्तन लाने पर बल देती है। **योग चिकित्सा** द्वारा अवसादग्रस्त व्यक्तियों का उपचार करने में यह सावधानी बरतनी चाहिये कि उन्हें अभ्यास ना करायें जो उन्हें अन्तर्मुखी बनाते हो। जैसा कि पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि विषादी व्यक्ति अत्यधिक निष्क्रिय हो जाता है और किसी भी प्रकार का सामाजिक सम्पक्र रखना पसन्द नहीं करता है।

अतः ऐसे व्यक्तियों को शारीरिक एवं मानसिक रूप से गतिशील बनाने वाले योगाभ्यास करवाने चाहिये।

अवसाद के उपचार हेतु उपयोगी योगाभ्यासों का विवेचन निम्नानुसार है –

- **षट्कर्म** : जलनेति (सप्ताह में 2 – 3 बार)
  : वमन (सप्ताह में 3 बार)
  : वातकर्म कपालभांति ( 25 – 50 चक्र प्रतिदिन)
- **आसन** : ताड़ासन ( 5 चक्र)
  : त्रिर्यक ताड़ासन ( 5 चक्र)
  : कटिचक्रासन ( 5 चक्र)
  : सूर्य नमस्कार (क्षमतानुसार)
  : मार्जारि आसन ( 5 – 10 चक्र)
  : शशांक – भुजंगासन ( 5 – 10 चक्र)

: गोमुखासन ( 5 –10 चक्र)
: सिंहासन ( 5 –10 चक्र)

- **प्राणायाम** : नाड़ीशोधन ( 5 – 10 चक्र)
: भस्त्रिका प्राणायाम ( 5 – 10 चक्र या क्षमतानुसार)
- **विषेष** : शवासन में श्वसन क्रिया के प्रति सजगता ।
: नियमित दिनचर्या
: आहार में सात्त्विक एवं राजसिक खाद्य पदार्थो का उपयोग करना।
: नियमित **ऊँकार** उच्चारण, **सोऽहं साधना, महामृत्युंजय मंत्र** का जप।
: अवसादी व्यक्तियों को ध्यान एवं योगनिद्रा का अभ्यास नहीं करवाना चाहिये, क्योंकि ये अभ्यास व्यक्ति को अन्तर्मुखी बनाते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अवसाद को दूर करने में योग चिकित्सा अत्यन्त प्रभावी है। सावधानीपूर्वक अभ्यास करने से इस चिकित्सा के कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ते। यह एक सहज– सुलभ एवं अत्यन्त उपयोगी चिकित्सा पद्धति है।

प्रिय पाठकों, उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि मनोवैज्ञानिकों एवं मनश्चिकित्सकों द्वारा एकध्रुवीय विषाद के उपचार हेतु अनेक उपचार प्रविधियाँ बतलायी गयी है। किसी भी चिकित्सा पद्धति का प्रयोग रोग एवं रोगी दोनों की अवस्थाओं को ध्यान में रखकर ही करना चाहिये।

## 8.8 सारांश

उपर्युक्त विवेचन से आप भली – भाँति समझ गये होंगे कि अवसाद अत्यन्त घातक मनोदशा विकृति है, जिसकी गंभीर अवस्था में व्यक्ति अपना जीवन तक समाप्त कर लेता है। वैसे तो मनश्चिकित्सकों ने अवसाद के अनेक कारण बतलाये हैं, किन्तु मूल रूप से देखा जाये तो न केवल अवसाद वरन् प्रायः सभी मनोरोगों की जड़ व्यक्ति का नकारात्मक दृष्टिकोण ही है। इस नकारात्मकता के कारण व्यक्ति प्रतिपल तनावग्रस्त रहता है, और धीरे – धीरे तनाव की यह गंभीर स्थिति अवसाद में परिणत होने लगती है। उदासी का भाव विषाद का प्रमुख लक्षण है, किन्तु इसके साथ – साथ रोगी के शरीर, व्यवहार चिन्तनप्रणाली आदि में अन्य लक्षण भी देखने को मिलते हैं। अवसाद के विभिन्न कारणों और लक्षणों के समान इसके उपचार की भी अनेक विधियाँ है। प्रत्येक चिकित्सा पद्धति की अपनी उपयोगिता और सीमायें हैं। अतः रोग एवं रोगी की अवस्था को ध्यान में रखकर उपयुक्त चिकित्सा पद्धति का चयन करना चाहिये।

**अभ्यासार्थ प्रश्न –**

**प्रश्न 1 : एकध्रुवी विषाद विकृति का प्रकार है –**

(क) बड़ा विषादी विकृति
(ख) साइक्लोथाइमिक विकृति
(ग) क एवं ख दोनों
(घ) इनमें से कोई नहीं

प्रश्न **2 : अवसाद का लक्षण है –**

(क) उदास रहना
(ख) अत्यधिक थकान
(ग) आत्महत्या की प्रवृत्ति
(घ) उपर्युक्त सभी

प्रश्न **3 : किस विषाद विकृति का स्वरूप चिरकालिक होता है –**
(क) डायस्थाइमिक विकृति
(ख) बड़ी विषादी विकृति
(ग) द्विध्रुवी एक विकृति
(घ) उपर्युक्त सभी

प्रश्न **4 : अवसाद के उपचार की कौन सी प्रविधि में औषधों का उपयोग किया जाता है –**
(क) संज्ञानात्मक चिकित्सा
(ख) अन्तर्वैयक्तिक चिकित्सा
(ग) व्यवहारात्मक चिकित्सा
(घ) जैविक चिकित्सा

प्रश्न **5: अवसाद में मस्तिष्क में कौन से न्यूरोट्रांसमीटर्स की कमी हो जाती है –**
(क) नॉरएपिनएफ्रीन
(ख) सिरोटोनिन
(ग) क एवं ख दोनों
(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

## 8.9 शब्दावली –

- **संज्ञानात्मक** : मानसिक प्रक्रियाओं से संबधित।
- **न्यूरोट्रांसमीटर्स** : मस्तिष्कीय रसायन जो एक न्यूरोन से दूसरे न्यूरोन के बीच संधिस्थल पर सूचनाओं के संचरण में मदद करता है।
  - **न्यूरोएनॉटमिकल** : तंत्रिका तंत्र या मस्तिष्क की संरचना से संबधित।
  - **षट्कर्म** : हठयोग में वर्णित शारीरिक शुद्धि की छः क्रियायें।
    1. **धौति**
    2. **वस्ति**
    3. **नेति**
    4. **नौलि या लौलिकी**
    5. **त्राटक**
    6. **कपालभॉति**

## 8.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

प्रश्न **1** : (ग)
प्रश्न **2** : (घ)
प्रश्न **3** : (क)
प्रश्न **4** : (घ)
प्रश्न **5** : (ग)

## 8.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. सिंह, अरूण कुमार। (2001), आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, दिल्ली।

## 8.12 सहायक उपयोगी पाठ्य–सामग्री –

1. असामान्य मनोविज्ञान – डॉ0 आर0 के0 ओझा (1991), भार्गव बुक हाउस आगरा।
2. असामान्य मनोविज्ञान – डॉ0 राजराजेश्वरी प्रसाद सिन्हा एवं डॉ0 बी0 के0 मिश्र (1998), भारती भवन, कदम कुआँ, पटना।

## 8.13 निबंधात्मक प्रश्न –

**प्रश्न 1** : अवसाद के स्वरूप को स्पष्ट करते हुये इसके प्रकार एवं लक्षणों पर प्रकाश डालिये।

**प्रश्न 2** : अवसाद के कारणों की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

**प्रश्न 3** : अवसाद के उपचार हेतु विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों का विस्तार से विवेचन

# इकाई –9 द्विध्रुवीय विकृति या उन्माद विषाद विकृति : लक्षण, प्रकार, कारण एवं उपचार

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 द्विध्रुवीय या उन्माद विषाद विकृति : अर्थ
9.4 द्विध्रुवीय विकृति : प्रकार एवं लक्षण
9.5 द्विध्रुवीय विकृति : कारण
9.6 द्विध्रुवीय विकृति : उपचार
9.7 सारांश
9.8 शब्दावली
9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.11 सहायक उपयोगी पाठ्य–सामग्री
9.12 निबंधात्मक प्रश्न

## 9.1 प्रस्तावना –

प्रिय पाठकों, इससे पूर्व की इकाईयों में आपने अवसाद या विषाद विकृति का विस्तार से अध्ययन अध्ययन किया है। जैसा कि आप जानते हैं विषाद को एकध्रुवीय विकृति कहा जाता है। प्रस्तुत ईकाई में हम **द्विध्रुवीय विकृति** जिसे **उन्माद – विषाद विकृति** के नाम से भी जाना जता है। के स्वरूप, प्रकार, कारण एवं उपचार के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि इस मनोदशा विकृति में रोगी में उन्माद और अवसाद दोनों के लक्षण दिखायी देते हैं अर्थात् कभी वह उन्मादी अवस्था का अनुभव करता है तो कभी अवसादग्रस्त हो जाता है। इसमें मनोदशा के दोनों ध्रुव देखने को मिलते हैं। इसलिये इसे " **द्विध्रुवीय विकृति**" या **उन्माद – विषाद विकृति** कहते हैं।

तो आइये, अब हम **उन्माद – विषाद विकृति** का विस्तार से अध्ययन करते हैं।

## 9.2 उद्देश्य –

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के बाद उपरान्त आप –

- द्विध्रुवीय विकृति के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे।
- द्विध्रुवीय विकृति के प्रकार एवं लक्षणों का विवेचन कर सकेंगे।
- द्विध्रुवीय विकृति के कारणों की व्याख्या कर सकेंगे।
- द्विध्रुवीय विकृति के उपचार का वर्णन कर सकेंगे।

## 9.3 द्विध्रुवीय या उन्माद विषाद विकृति : अर्थ –

प्रिय पाठकों, मनोदशा विकृति के लगभग 80 – 95 प्रतिशत केसेज ऐसे होते है, जिनमें रोगी केवल अवसादग्रस्त होते हैं और जिसे एकध्रुवीय विकृति या विषाद रोग के नाम से जाना जाता है, किन्तु मनोदशा विकार की 5 – 20 प्रतिशत स्थितियाँ ऐसे भी होती है जिसमें रोगी में बारी – बारी से अवसाद तथा उन्माद दोनों अवस्थायें देखी जाती है अर्थात् रोगी में कभी उन्माद के लक्षण दिखते हैं तो कभी विषाद के, मनोचिकित्सकों ने इसे ही **" द्विध्रुवीय विकृति"** या **उन्माद – विषाद विकृति** कहा है।

अवसाद की स्थिति में तो व्यक्ति अत्यधिक उदास एवं निराश रहता है तथा किसी भी व्यक्ति, वस्तु या कार्य में रूचि नहीं लेता है तथा निष्क्रिय सा हो जाता है, किन्तु उन्माद की स्थिति इसके ठीक विपरीत होती है। इसमें रोगी अत्यधिक सक्रिय हो जाता है। इस अवस्था में रोगी में मनोपेशीय क्रियायें अधिक होती है, उसका आत्म–सम्मान बढ़ा हुआ होता है, वह बातें अधिक करता है। विचारों की उड़ान की ऊँचाई अधिक होती है। रोगी चिड़चिड़ा हो जाता है तथा उसमें सुखाभास का भाव भी होता है।

**द्विध्रुवीय विकृति** के संबध में हुये अनेक अध्ययनों से यह तथ्य सामने आया है कि इस रोग का प्रारम्भ 15 – 44 साल की उम्र में होता है एवं पहली घटना उन्मादी भी हो सकती है और विषादी भी हो सकती है। यदि किसी रोगी को एक वर्ष में चार या इससे भी अधिक बार अपनी मनोदशा में क्षुब्धता (Disturbance) अनुभव होती है, तो इस विकार को चाहे वह द्विध्रुवीय एक विकृति हो अथवा द्विध्रुवीय दो विकृति हो, इसे एक नया नाम **''द्रुतचक्र''** (Rapid Cycling) दिया जाता है। अगर रोगी की मनोदशा क्षुब्धता में मौसम में परिवर्तन होने के साथ – साथ जैसे अत्यधिक गर्मी या सर्दी के कारण परिवर्तन होता है तो इसे **''सामाजिक या मौसमी भावनात्मक विकृति''** (Seasonal affective disorder or SAD) कहा जाता है।

**केसलर (1994) के अनुसार –** '' द्विध्रुवीय एक विकृति, द्विध्रुवीय दो विकृति की तुलना में अधिक सामान्य है।''

वैसे तो उन्माद–विषाद विकृति पुरूष एवं महिला दोनों में ही पायी जाती है, किन्तु विभिन्न अध्ययनों के निष्कर्षो के अनुसार महिलाओं में यह रोग पुरूषों की तुलना में ज्यादा पाया जाता है। अध्ययनों से यह तथ्य भी प्रकाश में आया है कि यह रोग सभी प्रजाति समूहों एवं सभी प्रकार के सामाजिक, आर्थिक स्तर वाले लोगों में पाया जाता है।

## 9.4 द्विध्रुवीय विकृति : प्रकार एवं लक्षण –

प्रिय पाठकों, द्विध्रुवीय विकृति के निम्न तीन प्रकार बताये गये हैं –

1. **साइक्लोथइमिक विकृति (Cyclothymic disorder)**
2. **द्विध्रुवीय एक विकृति (Bipolar I disorder)**
3. **द्विध्रवीय दो विकृति (Bipolar II disorder)**

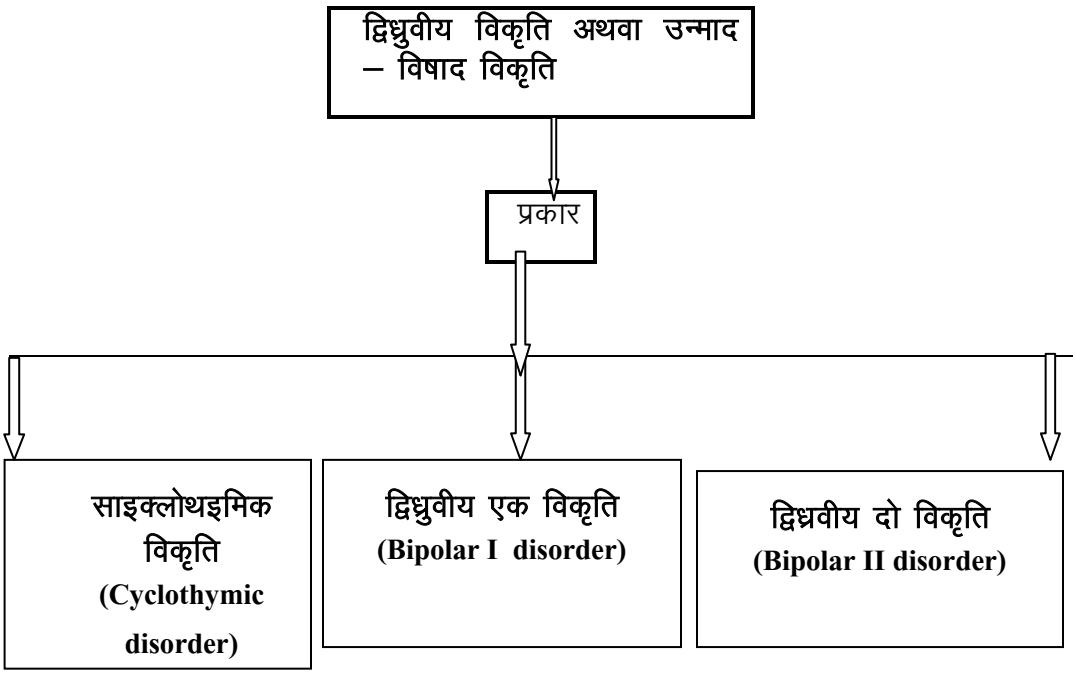


इन तीनों विकृतियों के स्वरूप का विस्तृत विवेचन निम्नांकित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया गया है –

1. **साइक्लोथइमिक विकृति (Cyclothymic disorder)** – पाठकों, साइक्लोथइमिक विकृति में भी डायस्थाइमिक विकृति के समान रोगी में पायी जाने वाली मानसिक क्षुब्धता का स्वरूप चिरकालिक होता है। इस रोग में विषाद एवं अल्पोन्माद दोनों के ही लक्षण देखने को मिलते हैं, किन्तु ये लक्षण इतने गंभीर नहीं होते हैं कि ये DSM में निर्धारित उन्माद तथा अवसाद की कसौटी तक पहुँच सके। किसी भी विषाद तथा अल्पोन्माद की अवस्था को साइक्लोथइमिक विकृति तभी कहा जा सकता है, जब रोगी में कम से कम पिछले दो वर्षो से ऐसे लक्षण दिखायी दे रहे हों। DSM- IV (TR) में इस रोग की निम्न चार कसौटियाँ निर्धारित की गई हैं –

**अ)** कम से कम विगत दो वर्षो से रोगी द्वारा अनेकों बार अल्पोन्मादी लक्षण (Hypomanic Symptoms) और अनेकों बार विषादी लक्षण दिखलाये गये हों।

**ब)** दो साल की अवधि के दौरान 2 महीने से अधिक ऐसी कोई अवधि न हो, जिसमें रोगी द्वारा ऐसे लक्षण न दिखायें गये हों।

**स)** रोगी द्वारा किसी बड़ी विषादी घटना (Major depressive episode) का अनुभप किया गया हो।

**द)** प्रारंभिक दो सालों में किसी उन्मादी घटना का अनुभव नहीं हुआ हो।

अनेक अध्ययनों द्वारा यह तथ्य सामने आया है कि साइक्लाथायमिक विकृति का प्रारम्भ किशोरावस्था अथवा प्रारम्भिक व्यस्कावस्था में होता है।

2. **द्विध्रुवीय एक विकृति (Bipolar I disorder) -** यह एक ऐसी विकृति है, जिसमें रोगी को एक या एक से अधिक विषादी स्थिति का एवं एक अथवा एक से अधिक उन्मादी अवस्था का अनुभव हुआ हो।

**गुडविन एवं जैमिसन (1987) के अनुसार –** '' बहुत कम लोग ऐसे हो सकते हैं जो एक या एक से अधिक उन्मादी घटना का अनुभव अवश्य किये हो परन्तु उन्हें कोई भी विषादी घटना का अनुभव नहीं हुआ हो।''

किन्तु इसके बावजूद भी ऐसे लोगों की गणना द्विध्रुवीय विकृति के रोगियों में की जाती है, क्योंकि ऐसा माना जाता है कि इन लोगों ने कभी ना कभी अवसाद की स्थिति का अनुभव जरूर किया होगा। द्विध्रुवीय एक विकृति में अधिकतर रोगी बारी – बारी से विषादी एवं उन्मादी घटनाओं का अनुभव करते हैं, लेकिन कुछ केसेज ऐसे भी होते हैं, जिनमें रोगी को मिश्रित अनुभव होते हैं अर्थात एक ही दिन में विषादी और उन्मादी दोनों प्रकार के लक्षण दिखलायी देते हैं।

3. **द्विध्रवीय दो विकृति (Bipolar II disorder) -** इस विकृति में रोगी कम से कम एक अल्पोन्मादी (Hypomanic) घटना एवं एक या एक से अधिक अवसादी घटनाओं का अनुभव कर चुका होता है। इस विकृति में रोग को कभी उन्मादी मनःस्थिति का अनुभव नहीं होता है। मनश्चिकित्सकों के अनुसार अल्पोन्मादी अवस्था में रोगी कि मनोदशा थोड़े वक्त के लिये बढ़ी – चढ़ी होती है और उसमें चिड़चिड़ापन जैसी स्थिति उत्पन्न होने लगती है, किन्तु इन सबका उसके सामाजिक तथा व्यवहारिक कार्यो पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता है। अतः ऐसे रोगियों को मानसिक अस्पताल में भर्ती कराके इलाज करवाने की भी आवश्यकता नहीं होती है।

DSM – IV (TR) के अनुसार द्विध्रुवी दो विकृति की निम्न तीन कासौटियाँ बतायी गयी हैं –

**अ)** रोगी को एक या एक से अधिक बड़ा विषादी घटना का अनुभव हुआ हो।

**ब)** रोगी को कम से कम एक अल्पोन्मादी घटना का अनुभव हुआ हो।

**स)** ऐसे रोगियों को किसी उन्मादी घटना का अनुभव नहीं होता है।

इस प्रकार द्विध्रुवीय दो विकृति में बड़ा विषादी घटना और अल्पोन्मादी घटना का अनुभव रोगी बारी–बारी से करता है। द्विध्रुवीय दो विकृति एवं द्विध्रुवीय एक विकृति में प्रमुख अन्तर यह है कि द्विध्रुवीय दो विकृति में व्यक्ति कम गंभीर उन्मादी व्यवहार दिखलाता है, जबकि द्विध्रुवीय एक विकृति में उन्मादी व्यवहार की गंभीरता अधिक होती है।

DSM – IV (TR) में उन्माद के निम्न प्रमुख लक्षण बताये गये हैं '–

अ) एक सप्ताह तक रोगी की मानसिक अवस्था असामान्य ढंग से अत्यधिक बढ़ी–चढ़ी तथा चिड़चिड़ी सी बनी रहती है।

**ब)** क्षुब्ध मनोदशा की अवधि में व्यक्ति में निम्नलिखित में से कम से कम तीन अथव उससे अधिक लक्षण महत्वपूर्ण ढंग से विद्यमान हैं। (यदि मानसिक स्थिति में केवल चिड़चिड़ापन हो तो चार लक्षण अनिवार्य रूप से होने चाहिये)

1. बढ़ा हुआ आत्म – सम्मान (Self – esteem)
2. नींद की कमी
3. पहले की तुलना में अधिक बातूनी होना
4. विचारों की उड़ान भरना अथवा ऐसा अनुभव होना कि उसके विचार हवा से बातें कर रहे हैं।
5. ध्यानभंगता (Distractivility) अर्थात् तुच्छ और महत्वहीन वस्तुओं के प्रति जल्दी ध्यान जाना।
6. विभिन्न मनोपेशीय क्रियाओं जैसे – लैंगिक क्रिया, लाभहीन व्यवसाय में लगना इत्यादि में वृद्धि होना।
7. ऐसे कार्यो में अत्यधिक सम्मिलित होना, जो सुख तो प्रदान करते हों, कि उसमें दुःखद परिणाम की उच्च अंतःशक्ति विद्यमान हो।

स) उपर्युक्त लक्षण ऐसे हों जिनके कारण व्यक्ति को सामाजिक तथा व्यावसायिक समायोजन में बाधा का अनुभव हो।

द) उक्त लक्षणों का कारण किसी द्रव्य (Substance) का शारीरिक प्रभाव अथवा सामान्य चिकित्सीय अवस्था ना हो।

**द्विध्रुवीय विकृति का केस उदाहरण :**

पाठकों, नीचे द्विध्रुवीय विकृति का एक केस उदाहरण दिया जा रहा है, जो **ओटटामानस तथा इमरी (1995)** द्वारा उद्धृत किया गया है –

''डेब्सी एक 21 साल की अविवाहित स्त्री थी। इसे मानसिक अस्पताल में उस समय भर्ती करवाया गया था, जब वह तीव्र ढंग से उन्मादी घटना का अनुभव कर रही थी। जब डेब्बी उच्चविद्यालय की विद्यार्थी थी, तब उसे अवसाद के इलाज हेतु मनश्चिकित्सा दी गई थी। कॉलेज में दो सेमेस्टर पूरा करने के उपरान्त उसे एक स्थानीय समाचारपत्र में दो वर्षो के लिये एक अच्छी नौकरी मिल गई। अभी मानसिक अस्पताल में भर्ती होने के कई सप्ताह पूर्व उसे उन्मादी दौरा (Manic attack) पड़ा था। डेब्बी ने अचानक अपनी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और वह अपने किसी पुरूष मित्र के पास चली गई, जो दूसरे शहर में रहता था। बिना किसी वैकल्पिक रोजगारी के अपनी नौकरी से त्यागपत्र देना डेब्बी के घटिया निर्णय का प्रथम सूचक था। अब वह अपने खाली समय को कुछ खास–खास कार्यो को करके व्यतीत करती थी। उसे नींद की दिक्कत होने लगी और उसकी मनोदशा अत्यधिक चिड़चिड़ी हो गयी। एक दिन उसकी अपने पुरूष मित्र से बहुत कहासुनी हो गयी तथा वह अपना सारा सामान लेकर वापस अपने घर लौट आयी। घर आने पर वह अपने माता–पिता के साथ बहुत बक–बक करती रहती थी। एक दिन वह अपनी माँ से झगड़ा करके टेनिस क्लब की ओर चली गई। रास्ते मे उसकी मुलाकात दो अनजान पुरूषों से हुयी ओर उनके कहने से वह उनके साथ एक पार्टी में भाग लेने चली गई। वह रात भर पार्टी में रही तथा उसने तीन ऐसे व्यक्तियों के साथ लैगिक संबध बनाये जिनसे वह पहले कभी भी नहीं मिली थी। अगले दिन घर आकर उसने फिर अपने पिता से झगड़ा किया उसके पिता उसके व्यवहार के कारण इतना अधिक परेशान हो गये कि उनको सहायता के लिये पुलिस को बुलाना पड़ा। पुलिस डेब्बी को एक मनोचिकित्सक के पास ले गई। मनोचिकित्सक ने उसका एक गहन साक्षात्कार लिया और परिणाम में पाया कि उसकी मनोदशा असंगत और

अत्यन्त उग्र थी। उन्होंने उसे मानसिक अस्पताल में भर्ती कराकर उपचार करवाने की सिफारिश की। मानसिक अस्पताल में यद्यपि वह ठीक ढंग से बात तो कर लेती थी किन्तु उसके विचारों में बड़प्पन (Grandiose) का भाव था। वह कभी तो पुरूष रोगियों की गोद में बैठकर और कभी उन्हें चूमकर अपनी बढ़ी हुयी मनोपेशीय क्रियाओं की अभिव्यक्ति करती थी।

पाठकों, उपर्युक्त केस के अध्ययन से यह बिल्कुल स्पष्ट होता है कि डेब्बी **द्विध्रुवीय विकृति** से ग्रस्त थी। इसके जीवन में एक विषादी घटना उस समय घटी जब वह स्कूल में पढ़ती थी और दूसरी उन्मादी घटना कॉलेज की अवधि में तब घटी ज बवह नौकरी भी कर रही थी। इस प्रकार इस केस में रोगी अवसाद एवं उन्माद दोनों अवस्थाओं का अनुभव किया है। अतः यह द्विध्रुवीय विकृति या उन्माद–विषाद – विकृति का उदाहरण है।

## 9.5 द्विध्रुवीय विकृति : कारण –

प्रिय विद्यार्थियों, मनोवैज्ञानिकों एवं मनोचिकित्सकों द्वारा द्विध्रुवीय विकृति के कारणों को लेकर अनेक शोध अध्ययन किये गये हैं, जिनके अनुसार इस विकृति के निम्न प्रमुख कारण हैं –

1. **न्यूरोट्रांसमीटर (Neurotransmitter)**
2. **सोडियम आयन क्रिया (Sodium ion activity)**
3. **जननिक कारक (Genentic Factors)**
4. **तनाव (Stress)**

इन सभी कारणों की विस्तृत व्याख्या निम्नानुसार है –

1. **न्यूरोट्रांसमीटर (Neurotransmitter)** –

उन्माद – विषाद विकृति के कारणों को लेकर हुये विभिन्न अध्ययनों से यह तथ्य सामने आया है कि इस रोग का एक प्रमुख कारण **न्यूरोट्रांसमीटर** भी है।

**द्विध्रुवीय विकृति या उन्माद – विषाद विकृति**

| | | | |
|---|---|---|---|
| **न्यूरोट्रांसमीटर (Neurotransmitter)** | **सोडियम आयन क्रिया (Sodium ion activity)** | **जननिक कारक (Genentic Factors)** | **तनाव (Stress)** |

**पोस्ट तथा उनके सहयोगियों (1980) के अनुसार – "नारएपिनएफ्रीन** की मात्रा अधिक होने से व्यक्ति में उन्माद अनुभूतियाँ अधिक होती है एवं निम्न स्तर होने से विषाद की उत्पत्ति होती है।"

इस बात का समर्थन **टेलनर एवं उनके सहयोगियों** द्वारा भी किया गया है। जब उन्माद – विषाद विकृति से ग्रस्त रोगियों को रेसरवाइन (Reserpine) दिया गया, जिससे रक्तचाप कम हो जाता है, तो इससे रोगियों के मस्तिष्क में नॉरएपिनएफ्रीन की आपूर्ति कम हो गयी और उनके उन्मादी लक्षणों में कमी आयी। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि मस्तिष्क में नारॅएपिनएफ्रीन न्यूरोट्रांसमीटर की अधिकता होने से उन्मादी लक्षण प्रकट होने लगते हैं।

कुछ विद्वानों का ऐसा मानना है कि नॉरएपिनएफ्रीन के समान ही सिरोटोनिन की अधिक मात्रा भी उन्मादी लक्षणों को उत्पन्न करती है, किन्तु **प्राइस (1990) द्वारा** इस संबध में किये गये शोध के अनुसार सिरोटोनिन का निम्न स्तर होने के बावजूद रोगी में उन्माद के लक्षण विद्यमान थे। अतः इन परस्पर विरोधी परिणामों से सार्थक परिणाम निकालने हेतु **प्रेंज एवं उनके सहयोगियों (1974)** द्वारा एक नया सिद्धान्त दिया गया। इस सिद्धान्त को **अनुज्ञात्मक सिद्धान्त (Permissive Theory)** कहा गया। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि सिरोटानिन के निम्न स्तर के बाद नॉरएपिनएफ्रीन का भी मस्तिष्क में निम्न स्तर बना रहता है तो इससे रोगी में विषादी लक्षण उत्पन्न होंगे और यदि सिरोटोनिन का निम्न स्तर होने पर नॉरएपिनएफ्रीन का स्तर उच्च रहता है तो इससे रोगी में उन्माद के लक्षण उत्पनन होते हैं, किन्तु सभी मनोचिकित्सक इस सिद्धान्त से सहमत नहीं है। अतः अभी तक यह स्पष्ट रूप से नहीं पता लगाया जा सका है कि सिरोटोनिन की मात्रा किस तरह से द्विध्रुवीय विकृति से सम्बद्ध है, किन्तु इतना सत्य है कि उन्माद– विषाद विकृति में रोगी के मस्तिष्क में सिरोटोनिन और नॉरएपिनएफ्रीन की मात्रा असंतुलित हो जाती है।

2. **सोडियम आयन क्रिया (Sodium ion activity) – मेलजर (1991)** का कहना है कि पूरे मस्तिष्क में न्यूरोन्स झिल्लियों में सोडियत आयन्स के दोषपूर्ण संचार के कारण भी द्विध्रुवीय विकृति उत्पन्न होती है। मस्तिष्कीय सूचनाओं के ठीक ढंग से संचार के लिये सोडियम आयन का न्यूरॉन के झिल्ली के अन्दर एवं बाहर, आगे और पीछे ठीक प्रकार से संचारित होना अनिवार्य है। इन आयनों के ठीक प्रकार से संचरित होने पर एक न्यूरॉन न तो आवश्यकता से अधिक किसी उद्दीपक से उत्तेजित होगा एवं न ही उसके प्रति प्रतिरोध व्यक्त करेगा। यदि आयन का संचार अनुचित ढंग से हुआ तो या तो न्यूरोन बहुत सहजता से उत्तेजित हो जायेगा या बहुत कठिनाई से उत्तेजित होगा। प्रथम अवस्था की असामान्यता उन्माद को तथा द्वितीय अवस्था की असामान्यता विषाद को जन्म देती है। शोधकर्ताओं का मानना है कि सोडियम आयन के संचार में इस प्रकार का दोष उत्पन्न होने के कारण न्यूरोन की झिल्लियों में होने वाले सामान्य परिवर्तनों में भी विकृति उत्पन्न हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति की मनोदशा में एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक का परिवर्तन होने लगता है।
3. **जननिक कारक (Genentic Factors)** – शोधकर्ताओं ने अपने प्रयोगात्मक अध्ययनों से अस तथ्य की पुष्टि की है कि द्विध्रुवीय विकृति आनुवांशिकता के कारण भी उत्पन्न होती है। जननिक कारकों का अध्ययन हम निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत कर सकते हैं –

   **अ) पारिवारिक वंशवृक्ष अध्ययन (Family pedigree studies)**

**ब) जुडवाँ अध्ययन (Twin Studies)**

इनकी व्याख्या निम्नानुसार है –

**अ) पारिवारिक वंषवृक्ष अध्ययन (Family pedigree studies) -** अनेक प्रयोगात्मक अध्ययनों से इस बात के प्रमाण मिले हैं कि जिन व्यक्तियों के माता – पिता अथवा उनके निकट संबधियों में यदि कोई व्यक्ति पहले से द्विध्रुवीय विकृति से ग्रसत हो चुका होता है तो उनमें इस रोग के होने की प्रबल संभावना होती है। **नर्नबर्गर एवं गेरशोन (1992) और अमेरिकन मनोरोगविज्ञानी संघ (1994)** द्वारा किये गये शोध के अनुसार उन्माद – विषाद विकृति वाले लोगों के निकट संबधियों में इस विकृति से ग्रसित होने की संभावना 4 – 25 प्रतिशत तक होती है, जबकि सामान्य व्यक्तियों के निकट संबधियों में केवल एक प्रतिशत ही संभावना इस रोग के होने की होती है।

**ब) जुडवाँ अध्ययन (Twin Studies) –** द्विध्रुवीय विकृति को लेकर जुड़वाँ बच्चों पर भी अनेक शोध किये गये। इस प्रकार का एक अध्ययन **थ्शkdj ¼1980½ ,oa oVsZylu vkSj muds सहयोगियों (1977)** द्वारा किया गया। इस अध्ययन के परिणाम में पाया गया कि पूर्णतः समरूप दो बच्चों में से यदि एक बच्चा उन्माद – विषाद विकृति से ग्रस्त है तो इस बात की 70 प्रतिशत संभावना रहती है कि इस युग्म का दूसरा बच्चा भी इस रोग से ग्रस्त हो जाये। इसके विपरीत भ्रत्रीय जुड़वाँ बच्चों में से एक बच्चे के इस रोग के होने पर दूसरे बच्चे में इस रोग के होने की संभावना केवल 25 प्रतिशत होती है। इन सभी अध्ययनों के परिणाम उन्माद – विषाद विकृति के आनुवांशिक आधार को पुष्ट करते हैं।

4. **तनाव (Stress) -** उन्माद – विषाद विकृति का एक प्रमुख कारण जिन्दगी की तनावपूर्ण घटनायें भी है। वास्तव में देखा जाये तो सारे मनोरोगों की मूल जड़ यह तनाव ही है।

   **एमवेलास (1987) के अनुसार –** '' उन्मादी घटनाओं में करीब दो – तिहाई घटनाओं का कारण जिन्दगी में कुछ न कुछ तनाव ही का होना होता है।''

   अध्ययनों में ऐसा भी पाया गया है कि तनावपूर्ण घटनायें ऐसे लोगों में उन्मादी लक्षण उत्पन्न कर देती हैं, जिनमें उन्माद विषाद विकृति का गत इतिहास होता है।

   **एनोनसन एवं शुक्ला (1987) के मतानुसार –** ''द्विध्रुवी विकृति के उन रोगियों में, जिन्हें लिथियम देकर उपचार किया जा रहा था। उस समय उन्मादी अवस्था काफी बढ़ गयी । जब इन रोगियों को एक बड़े आँधी – तूफान से हुयी तबाही के परिणामस्वरूप तनावपूर्ण स्थिति का सामना करना पड़ा।''

   कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि उन्माद – विषादग्रस्त लोगों के साथ रहना अपने आप में अत्यधिक तनावपूर्ण होता है। अतः इससे भी सामान्यजनों में इस रोग के होने की तीव्र संभावना हो जाती है।

   **मोल्ज (1993) के अनुसार –** '' विषादी अवस्था में होने पर उनके साथ रह रहे व्यक्तियों में से करीब 40 प्रतिशत व्यक्तियों में विषाद रोक विकसित हा गया।''

   उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि द्विध्रुवीय विकृति के उत्पन्न होने के अनेक कारण है, जिनमें से मनोचिकित्सकों द्वारा जैविक कारकों की भूमिका ज्यादा महत्वपूर्ण मानी गयी है।

## 9.6 द्विध्रुवीय विकृति : उपचार –

कुछ वर्षो पूर्व तक उन्माद विषाद विकृति के उपचार की कोई ठोस प्रविधि नहीं थी, किन्तु इस दिशा में मनोचिकित्सकों द्वारा किये गये प्रयासों के परिणामस्वरूप अब महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त हुयी है। प्रायः उन्माद – विषाद विकृति के उपचार हेतु निम्न प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है।

1. **लिथियम चिकित्सा (Lithium Therapy)**
2. **योजन मनष्चिकित्सा (Adjunctive Psychotherapy)**
3. **योग चिकित्सा (Yog Therapy)**

इन सभी की विस्तृत व्याख्या निम्नानुसार है –

1. **लिथियम चिकित्सा (Lithium Therapy) -** इस चिकित्सा पद्धति में चिकित्सक रोगी को उचित मात्रा में लिथियम नामक औषध देते हैं। लिथियम उन मस्तिष्क न्यूरोन्स के संधिस्थलीय क्रियाओं में परिवर्तन कर देता है जो सिरोटोनिन और नॉरएपिनएफ्रीन न्यूरोट्रांसमीटर का स्राव करते हैं। प्रयोगात्मक अध्ययनों द्वारा यह पाया गया है कि लिथियम के प्रयोग से उन्मादी तथा विषादी दोनों अवस्थाओं में ही सुधार होता है।

इस संबध में **क्लोरमैन (1992), प्रिन (1992) एवं बन्नी तथा मारलैंड (1984)** ने स्वतंत्र रूप अनेक प्रयोगात्मक शोध कार्य किये। इन विद्वानों ने अपने शोध में ऐसे रोगियों के एक समूह को कुछ दिनों तक लिथियम औषध का सेवन करने के लिये कहा, जिन्होंने उन्मादी घटनाओं का अनुभव किया था और ऐसे ही रोगियों के दूसरे समूह को **प्लेसबो (Placebo) औषध** लेने का निर्देश दिया । कुछ समय बाद इन दोनों समूहों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया और परिणाम में पाया गया कि जिस समूह को लिथियम औषध दी गई थी, उसके रोगियों के उन्मादी लक्षणों में काफी कमी आई। **सापस तथा उनके सहयोगियों (1991) और प्रिन (1992)** द्वारा किये गये अध्ययनों से यह तथ्य सामने आया है कि जिन रोगियों को बार – बार उन्मादी घटनाओं की अनुभूति होती है उनको लिथियम औषध देने से उन्मादी व्यवहार की बारम्बारता में अत्यधिक कमी आती है। **डेविस (1976)** द्वारा किये गये एक शोध के अनुसार उन्माद – विषाद विकृति के 212 रोगियों द्वारा लिथियम औषध का उपयोग करने के बाद केवल 36 प्रतिशत रोगियों में ही लक्षणों की पुनर्वापसी हुयी, जबकि द्विध्रुवीय विकृति के 68 रोगियों द्वारा जब प्लेसबो औषध का उपयोग किया गया तो 79 प्रतिशत रोगियों में पुनः रोग के लक्षण पाये गये। इस अध्ययन से यह तथ्य भी स्पष्ट होता है कि लिथियम एक प्रोफिलैक्टिक औषध के रूप में भी कार्य करता है जिसके कारण रोग के लक्षण आगे विकसित नहीं हो पाते है। इसी वजह से आजकल मनोचिकित्सक उन्माद रोगियों के लक्षण समाप्त हो जाने के बाद भी उन्हें कुछ समय तक लिथियम का सेवन करते रहने का निर्देश देते हैं।

लिथियम औषध के उपयोग से रोगी के केवल उन्मादी लक्षणों में ही कमी नही आती बल्कि विषादी अनुभूतियों में भी गिरावट आती है। अनेक प्रयोगात्मक अध्ययनों द्वारा यह बात प्रमाणित हो चुकी है। **वलेरमैन और उनके सहयोगियों (1994)** द्वारा किये गये अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकला है कि लिथियम औषध का संपोषक मात्रा (Maintenance dose) में उपयोग करने से रोगी में भविष्य में होने वाली विषादी घटनायें नहीं होती हैं अथवा कम हो जाती है। इस प्रकार के परिणामों से प्रोत्साहित होकर चिकित्सकों द्वारा लिथियम औषध का

प्रयोग एकध्रुवीय विकृति के उपचार में भी किया गया। **कोप्पेन (1994)** द्वारा किये गये शोध कार्य से यह तथ्य सामने आया है कि लिथियम के सेवन से एकध्रुवीय विकृति के उत्पन्न होने की संभावना बहुत कम हो जाती है। कुछ अध्ययनों से यह तथ्य भी सामने आया है कि लिथियम ट्रीसाविलविस चिकित्सा को प्रभावी बनाने में भी सक्रिय भूमिका निभाता है, क्योंकि यह एक ध्रुवीय विकृति के उन रागियों को जो ट्रीसाविलविस औषध के प्रति असंवेदशील थे, उनको संवेदनशील बना देता है।

2. **योजन मनोचिकित्सा (Adjunctive Psychotherapy) -** कुछ मनोचिकित्सकों का कहना है कि उन्माद – विषाद विकृति में केवल लिथियम चिकित्सा देना ही पर्याप्त नहीं होता है।

**पिन एवं उनके सहयोगियों के अनुसार –** ''द्विध्रुवीय विकृति के करीवब 30 – 40 प्रतिशत रोगी लिथियम के प्रति अनुक्रियाशील नहीं होते हैं या उसके सेवन की स्थिति में भी रोग के लक्षणों की पुर्नवापसी हो जाती हे।

कुछ उपलब्ध तथ्यों के अनुसार लिथियम का सवेन करने वाले रोगियों में लगभग 50 प्रतिशत रोगी ऐसे भी होते हैं, जो लिथियम का उचित मात्रा में सेवन ही नहीं करते हैं। अतः ऐसी स्थिति में कुछ मनोचिकित्सकों की राय है कि मनश्चिकित्सा को लिथियम उपचार के एक योजक के रूप में उपयोग करना चाहिये अर्थात् उन्माद–विषाद विकृति के रोगियों को लिथियम चिकित्सा के साथ– साथ मनश्चिकित्सा भी दी जानी चाहिये। इस प्रकार की चिकित्सा पद्धति को मनोवैज्ञानिकों ने **''योजन मनोचिकित्सा''** का नाम दिया है। योजन मनोचिकित्सा में दूसरी बातों के अलावा रोगी के पारिवारिक तथा सामाजिक संबधों, शिक्षा और समस्या समाधान के उपायों आदि पर जोर देकर उनमें इस प्रकार का विश्वास उत्पन्न करने का प्रयास किया जाता है कि वे जल्दी से जल्दी रोगमुक्त हो जायें। **गोल्डस्टीन (1990) एवं ग्रेब्स** द्वारा किये गये अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि उन्माद–विषाद विकृति वाले रोगियों को विभिन्न प्रकार की वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामूहिक चिकित्सा प्रदान की जाती है, जिससे वे उन परेशानियो से आसानी से निपट सकें, जो उनके उपचार में बाँधा पहुँचती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि योजन मनोचिकित्सा द्विध्रुवीय विकृति के उपचार की एक प्रभावी तकनीक है।

3. **योग चिकित्सा (Yog Therapy) -** वर्तमान समय में उन्माद–विषाद विकृति के उपचार हेतु योग चिकित्सा भी अत्यन्त लोकप्रिय हो रही है। इस चिकित्सा पद्धति में षट्कर्म (धौति–वस्ति–नेति–नौलि–त्राटक–कपालभांति) आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बंध इत्यादि योगाभ्यासों द्वारा चिकित्सा प्रदान की जाती है। उन्माद और विषाद दोनों अवस्थाओं में अलग–अलग प्रकार के योगाभ्यास करवाये जाते हैं। यह चिकित्सा किसी अनुभवी एवं कुशल योग चिकित्सक के निर्देशन में ही ली जानी चाहिये।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि द्विध्रुवीय विकृति के उपचार में सभी चिकित्सा पद्धतियों की संयुक्त भूमिका है।

## 9.7 सारांश –

प्रिय विद्यार्थियों, उपर्युक्त विवेचन से आप समझ गये होंगे कि उन्माद–विषाद विकृति एक प्रमुख मनोदशा विकार है। जिसमें रोगी में दोनों तरह के लक्षण दिखायी देते हैं। कभी वह

अत्यधिक उन्मादी हो जाता है तो कभी अत्यन्त विषादी/ कभी वह शारीरिक–मानसिक रूप से बहुत सक्रियता दिखलाता है तो कभी बिल्कुल निष्क्रिय सा भी हो जाता है। इस विकृति के कारणों में प्रमुख रूप से जैविक कारकों, जैसे –आनुवांशिकता, न्यूरोट्रांसमीटर आदि की भूमिका को महत्वपूर्ण माना गया है। उपचार की दृष्टि से देखा जाये तो मनोचिकित्सकों ने इस रोग के उपचार में लिथियम औषध के सेवन को तुलनात्मक रूप से अधिक प्रभावी पाया है, किन्तु इसके साथ ही मनोवैज्ञानिकों का यह भी मानना है कि लिथियम चिकित्सा के साथ–साथ रोगी को यदि विभिन्न मनोचिकित्सायें, जैस–वैयक्तिक चिकित्सा, पारिवारिक एवं सामूहिक चिकित्सा भी दी जाये, तो परिणाम ज्यादा अच्छे प्राप्त होते हैं ओर रोग को जल्दी दूर करने में सहायता मिलती है। इसके साथ–साथ योग एवं अन्य वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों का सहारा भी लिया जा सकता है।

## 9.8 शब्दावली –

- **उन्माद** –एक ऐसी मनोदशा की अवस्था, जिसमें व्यक्ति का आत्म – सम्मान बढ़ा – चढ़ा होता है, विचारों की उड़ान की ऊँचाई ऊँची होती है, बातूनीयता अधिक होती है। मनोपेशाीय क्रियायें अधिक होती हैं तथा इसमें सुखाभास का भाव होता है।
- **द्विध्रुवीय विकृति** – ऐसी विकृति जिसमें उन्माद और अवसाद दोनों मनोदशाओं के लक्षण पाये जाते हैं।
- **मनोचिकित्सा** – मनोरोगों का उपचार करने की मनोवैज्ञानिक विधि।

**अभ्यासार्थ प्रश्न –**

**प्रश्न 1 :** द्विध्रुवीय विकृति में रोगी में केवल उन्माद के लक्षण पाये जाते हैं। (सत्य/असत्य)

**प्रश्न 2 :** साइक्लोथाइमिक विकृति में क्षुब्ध मनोदशा का स्वरूप चिरकालिका होता है। (सत्य/ असत्य)

**प्रश्न 3 :** द्विध्रुवीय दो विकृति में उन्मादी व्यवहार की गंभीरता द्विध्रुवीय एक विकृति के उन्मादी व्यवहार से कम होती है। (सत्य/ असत्य)

**प्रश्न 4 :** साइक्लोथाइमिक विकृति की शुरूआत किशोरावस्था अथवा प्रारंभिक व्यस्कावस्था में होती है। (सत्य/ असत्य)

**प्रश्न 5 :** नॉरएपिनएफ्रीन न्यूरोट्रांसमीटर की कमी होने से व्यक्ति में उन्मादी लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं। (सत्य/ असत्य)

**प्रश्न 6 :** द्विध्रुवीय विकृति उन व्यक्तियों में अधिक पायी जाती है, जिनके माता – पिता अथवा निकटसंबधियों में पहले हो चुका होता है। (सत्य/ असत्य)

**प्रश्न 7 :** द्विध्रुवीय विकृति का एक कारण तनाव भी है। (सत्य/ असत्य)

**प्रश्न 8 :** उन्माद – विषाद विकृति की शुरूआत प्रायः 15 – 44 साल की उम्र में होती है। (सत्य/असत्य)

## 9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

1. असत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. सत्य

5. असत्य
6. सत्य
7. सत्य
8. सत्य

## 9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

2. सिंह, अरूण कुमार। (2001), आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, दिल्ली।

## 9.11 सहायक उपयोगी पाठ्य–सामग्री –

1 असामान्य मनोविज्ञान – डॉ0 आर0 के0 ओझा (1991), भार्गव बुक हाउस आगरा।

2 असामान्य मनोविज्ञान – डॉ0 राजराजेश्वरी प्रसाद सिन्हा एवं डॉ0 बी0 के0 मिश्र (1998), भारती भवन, कदम कुआँ, पटना।

## 9.12 निबंधात्मक प्रश्न –

**प्रश्न 1 :** उन्माद – विषाद विकृति से आप क्या समझते है ? इसके प्रमुख प्रकार, कारण एवं उपचार का विस्तार से वर्णन कीजिए।

# इकाई–10 व्यक्तित्व विकृति : अर्थ, लक्षण, प्रकार, कारण, व्यक्तित्व परिस्कार की विधियाँ

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 व्यक्तित्व विकृति का अर्थ एवं परिभाषायें
10.4 व्यक्तित्व विकृति के लक्षण
10.5 व्यक्तित्व विकृति के कारण
10.6 व्यक्तित्व विकृति के प्रकार
10.7 व्यक्तित्व परिष्कार की विधियाँ
10.8 सारांश
10.9 शब्दावली
10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10.12 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.13 निबंधात्मक प्रश्न

## 10.1 प्रस्तावना–

प्रिय विद्यार्थियों, इससे पूर्व की इकाईयों में आपने मनोदशा विकृति अवसाद के बारे में विस्तृत अध्ययन किया है। प्रस्तुत ईकाई में हमारे अध्ययन का विषय है–''व्यक्तित्व विकृति''। प्रिय पाठकों, हम अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी में प्रायः व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग करते हैं और किसी का व्यक्तित्व हमें अत्यन्त आकर्षक एवं प्रभावशाली लगता है तो किसी के व्यक्तित्व में वो बात नहीं होती है अर्थात् उनका व्यक्तित्व उतना प्रभावशाली नहीं होता है। क्या आपने कभी सोचा हैं कि ऐसे कौन से कारक हैं, जो हमारे व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाते हैं और कौन से ऐसे कारक है, जिनसे हमारे व्यक्तित्व में अनेक प्रकार की विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती है। प्रिय पाठकों, इस ईकाई के अन्तर्गत आपको इन्हीं व्यक्तित्व विकृतियों एवं इनको दूर करने के उपायों की व्यापक जानकारी दी जा रही है।

## 10.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप–

- ❖ व्यक्तित्व विकृति के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे।
- ❖ व्यक्तित्व विकार के लक्षण से परिचित हो सकेंगे।
- ❖ व्यक्तित्व विकृति के विभिन्न प्रकारों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- ❖ व्यक्तित्व विकृति के कारणों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- ❖ व्यक्तित्व परिष्कार की विभिन्न विधियों का विवेचन कर सकेंगे।

## 10.3 व्यक्तित्व विकृति का अर्थ एवं परिभाषायें

**अर्थ**– प्रिय विद्यार्थियों, व्यक्तित्व विकृति एक प्रकार से अपरिपक्व व्यक्तित्व विकास का परिणाम होता है। इसमें ऐसे लोगों को सम्मिलित किया जाता है, जिनके व्यक्तित्व के

शीलगुण तथा उनका विकास इतने अपरिपक्व एवं विकृत ढंग से होता है कि ये अपने वातावरण की प्रायः प्रत्येक वस्तु, घटना, परिस्थिति, व्यक्ति के बारे में एक दोषपूर्ण प्रत्यक्षण एवं चिन्तन करते हैं। परिणामस्वरूप इनमें कुसमायोजनशीलता इतनी अधिक बढ़ जाती है कि दूसरे लोगों के लिये इनका व्यवहार असह्य हो जाता है। वे इनके व्यवहार को स्वीकार नहीं कर पाते हैं। इस प्रकार व्यक्तित्व विकृति न तो तनावपूर्ण परिस्थिति के प्रति एक प्रकार की प्रतिक्रिया है और न ही यह चिंता के प्रति एक तरह के बचाव का प्रतिफल है, बल्कि यह तो मूल रूप से शीलगुणों की विकृति है जो वातावरण को दोषपूर्ण या कुसमायोजित ढंग से प्रत्यक्षण करने, चिन्तन करने और उसके प्रति प्रतिक्रिया करने की प्रवृत्ति की ओर संकेत करता है।

**परिभाषयें–** प्रिय पाठकों, व्यक्तित्व विकृति को भिन्न–भिन्न विद्वानों ने निम्नानुसार परिभाषित किया है–

**कारसन एवं बुचर के अनुसार–** ''सामान्यतः व्यक्तित्व विकृतियाँ व्यक्तिगत शीलगुणों का एक उग्र या अतिरंजित प्रारूप है जो व्यक्ति को उत्पाती व्यवहार विशेषकर अंतवैयिक्तिक प्रकृति के उत्पाती व्यवहार को करने के लिये एक झुकाव उत्पन्न करता है;''

(Abnormal psychology and modern life, 1992 P.292)

**DSM-IV के अनुसार–**''व्यक्तित्व विकृति व्यवहार एवं आन्तरिक अनुभूतियों का एक ऐसा स्थायी पैटर्न होता है जो व्यक्ति की संस्कृति की प्रत्याशाओं से लम्बे रूप से विचलित होता है, अनम्य एवं व्यापक होता है, जिसकी शुरूआत किशोरावस्था या आरंभिक बाल्यावस्था में होता है जो विशेष समय तक स्थिर रहता है तथा जिससे तकलीफ एवं हानि होती है।'' (1994, P. 629)

**डेविसन तथा नील के शब्दों में–** ''व्यक्तित्व विकृति विकृतियों का विषम समूह है, जो वैसे व्यवहारों एवं अनुभूतियों का स्थायी एवं अनम्य पैटर्न होता है, जो सांस्कृतिक प्रत्याशाओं से विचलित होता है और तकलीफ या हानि पहुँचाता है।''

प्रिय पाठकों, व्यक्तित्व विकृति के विभिन्न परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व विकृति से ग्रस्त होने पर व्यक्ति का व्यवहार इतना अधिक विचलित हो जाता है कि उसके बारे में किसी प्रकार का पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता है और न ही दूसरे लोग उनके व्यवहार का कोई ठीक–ठीक अर्थ निकाल पाते हैं। परिणामस्वरूप ऐसा व्यवहार लोगों को मान्य नहीं होता है। पाठकों, आपकी जानकारी के लिये बता दें कि व्यक्तित्व विकृति में व्यक्ति सामान्यतः किसी प्रकार की चिन्ता या अवसाद से ग्रस्त नहीं रहता है। किसी विकृति को व्यक्तित्व विकृति की श्रेणी में रखने के लिये यह आवश्यक है कि विकृत शीलगुण का स्वरूप चिरकालिक हो। व्यक्तित्व विकार के सभी लक्षण प्रायः किशोरावस्था तक स्पष्ट रूप से दिखायी देने लगते हैं और वयस्कावस्था में भी बने रहते हैं, किन्तु मध्यावस्था अथवा प्रौढ़ावस्था के आते–आते लगभग समाप्त हो जाते है। **कारसन एवं बुचर** ने व्यक्तित्व विकृति को **चारित्रिक विकृति** का नाम दिया है।

## 10.4 व्यक्तित्व विकृति के लक्षण या व्यक्तित्व विकृति का नैदानिक स्वरूप–

प्रिय पाठकों, जैसा कि आप जानते है मनोवैज्ञानिकों एवं मनश्चिकित्सकों द्वारा व्यक्तित्व विकृति के अनेक प्रकार बताये गये है और प्रत्येक प्रकार की अपनी कुछ अलग विशेषतायें

हैं, किन्तु फिर भी कुछ विशेषतायें ऐसी है, जो सभी प्रकार की व्यक्तित्व विकृतियों में पायी जाती है। ऐसी कुछ विशेषताओं का वर्णन निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किया गया है–

1) विघटित व्यक्तिगत संबंध
2) चिरकालिक दुःखदायी व्यवहार
3) नकारात्मक नतीजा
4) एक ही कुसमायोजी व्यवहार को दोहराना
5) व्यवहार परिवर्तन के विरोधी

इनका विस्तृत विवेचन निम्नानुसार है–

**1. विघटित व्यक्तिगत संबंध**–प्रिय पाठकों, व्यक्तित्व विकृति की पहली सामान्य विशेषता है–विघटित व्यक्तिगत संबंध। व्यक्तित्व विकृति वाले लोगों के व्यक्तिगत संबंध संतोषजनक नहीं होते हैं। इनके व्यक्तिगत संबंध इतने खराब रहते हैं कि दूसरे लोग प्रायः इनसे नाराज रहते हैं और साथ ही साथ इनसे घबराये भी रहते है।

**2. चिरकालिक दुःखदायी व्यवहार–** व्यक्तित्व विकृति वाले लोगों का व्यवहार दूसरों के लिये अत्यन्त कष्टदायी होता है। इस प्रकार के व्यवहार का स्वरूप चिरकालिक होता है।

**3. नकारात्मक नतीजा**– पाठकों, व्यक्तित्व विकृति वाले लोगों को अपनी जिन्दगी की घटनाओं के प्रायः नकारात्मक परिणामों का ही सामना करना पड़ता है। जैसे– व्यसन संबंधी विकृतियाँ, विवाह–विच्छेद, विभिन्न प्रकार की आपराधिक गतिविधियाँ इत्यादि। प्रसिद्ध विद्वान् **खानृजिनय तथा ट्रोस** ने अपने अध्ययन के दौरान पाया कि व्यक्तित्व विकृति के सभी प्रकारों में व्यक्ति में नारकोटिक के प्रति एक प्रकार की मजबूत निर्भरता पायी जाती है।

**4. एक ही कुसमायोजी व्यवहार को दोहराना**– एक ही कुसमायोजी व्यवहार को दोहराना व्यक्तित्व विकृति की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विशेषता है। इसके अन्तर्गत व्यक्तित्व विकार से ग्रस्त व्यक्ति अपने कुसमायोजी या दोषपूर्ण व्यवहार से कुछ सीखे बिना लगातार उसे दोहराता रहता है। इस प्रकार व्यक्तित्व विकृति में जो भी विशेष शीलगुण पैटर्न विकसित होता है, जैसे–द्वेष करना, शक करना आदि, वह प्रत्येक परिस्थिति में व्यक्ति के द्वारा दिखलाया जाता है।

**5. व्यवहार परिवर्तन के विरोधी–** व्यक्तित्व विकृति वाले लोग व्यवहार परिवर्तन के नितान्त विरोधी होते हैं। ये समय परिस्थिति के अनुसार अपने व्यवहार में किसी भी प्रकार का विवेकपूर्ण परिवर्तन करना नहीं चाहते। इसके साथ ही दूसरे लोगों को भी इस बात का अवसर नहीं देते हैं कि वे उसके व्यवहार में किसी भी प्रकार के परिवर्तन की माँग कर सके।

प्रिय विद्यार्थियों, उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि व्यक्तित्व विकृति की कुछ ऐसी सामान्य विशेषतायें हैं, जिनसे इनके स्वरूप को समझने में सहायता मिलती हैं।

नीचे व्यक्तित्व विकृति का एक उदाहरण दिया जा रहा है जिससे इन विशेषताओं को और ज्यादा ढंग से समझा जा सकता है।

'' मार्क नाम के एक 22 साल के युवक को मनोवैज्ञानिक उपचारगृह में लाया गया, जिस पर चोरी एवं डकैती का मुकदमा चलने वाला था। उस युवक की केस स्टडी से पता लगा कि वह 9 वर्ष की आयु से ही अनेक बार सामाजिक रूप से घिनौने कार्य करने के कारण जेल जा चुका था। इसके साथ–साथ वह कर्त्तव्यत्यागिता और अपने विध्वंसात्मक व्यवहार के कारण विद्यालय से भी निकाल दिया गया था। अनेक बार वह कई दिनों एवं सप्ताहों के

लिये घर से भाग गया था। आज तक वह लम्बे समय तक टिककर कोई भी नौकरी नहीं कर पाया। उसके मित्र भी न के बराबर थें। इसलिये उसे अकेला ही कहा जा सकता है। शुरूआत में तो वह किसी भी व्यक्ति से अत्यन्त आकर्षक ढंग से मिलता था किन्तु तत्काल ही वह अपने आक्रामक एवं आत्म–उन्मुखी व्यवहार के कारण उनसे झगड़ लेता था।''

पाठकों, उपर्युक्त केस उदाहरण में व्यक्तित्व विकार के प्रायः सभी लक्षण स्पष्ट रूप से दिखायी दे रहे हैं।

## 10.5 व्यक्तित्व विकृति के कारण–

प्रिय पाठकों, व्यक्तित्व विकृति के मूल रूप से क्या–क्या कारण है, इस पर मनोवैज्ञानिकों एवं मनश्चिकित्सकों द्वारा ज्यादा प्रकाश नहीं डाला गया है। व्यक्तित्व विकृति के कारणों के संबंध में पर्याप्त अध्ययन एवं जानकारी न होने के निम्न प्रमुख कारण हैं–

**a.** इसका प्रथम कारण तो यह है कि व्यक्तित्व विकार की औपचारिक रूप से स्वतंत्र पहचान 1952 के पहले नहीं हो पायी थी। अतः इस क्षेत्र में आवश्यक शोध अध्ययन की कमी है।

**b.** दूसरा प्रमुख कारण यह है कि व्यक्तित्व विकृतियों का स्पष्ट रूप से निदान करने में लोगों को अभी भी अनेक प्रकार की दिक्कतों का सामना करना पड़ता है और इस विकृति से ग्रसित लोग अभी भी उपचार हेतु मनोवैज्ञानिक उपचारगृह में नहीं जाते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि व्यक्तित्व विकृति के कारणों को लेकर अनेक कठिनाइयाँ मौजूद है, किन्तु इसके बावजूद अन्य मनोविकारों के समान ही व्यक्तित्व विकृति के भी निम्न तीन प्रमुख कारण बताये गये हैं।

**अ.** जैविक कारक
**ब**. मनोवैज्ञानिक कारक
**स**. सामाजिक–सांस्कृतिक कारक

इन सभी का विस्तृत वर्णन निम्नानुसार है–

**अ. जैविक कारक–** मनोवैज्ञानिकों एवं मनश्चिकित्सकों ने व्यक्तित्व विकृति के कारणों में जैविक कारकों की भूमिका को प्रधान रूप से स्वीकार किया है। विभिन्न प्रयोगात्मक अध्ययनों के अनुसार बच्चों में विशेष तरह की शरीर संगठनात्मक प्रतिक्रिया प्रवृत्ति जैसे–अति संवेदनशीलता उच्च अथवा निम्न जीवन शक्ति आदि कारणों से एक विशेष प्रकार की व्यक्तित्व विकृति के उत्पन्न होने की संभावना रहती है। **केन्टलर एवं ग्रुयनवर्ग** के अनुसार स्थिर व्यामोही व्यक्तित्व विकृति को उत्पन्न करने में जैविक या शारीरिक कारकों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। लोरैन्गर एवं उनके सहयोगियों ने अपने अध्ययन के आधार पर ज्ञात किया कि सीमान्त रेखीय व्यक्तित्व विकृति को उत्पन्न करने में शारीरिक कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते है। इसके साथ ही समाजविरोधी व्यक्तित्व विकृति की उत्पत्ति में भी जैविक कारकों को महत्त्वपूर्ण माना गया है।

**ब. मनोवैज्ञानिक कारक–** व्यक्तित्व विकृति में जैविक कारकों के साथ–साथ मनोवैज्ञानिक कारकों की भूमिका को भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है। इन मनोवैज्ञानिक कारकों में प्रारंभिक सीखना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस मत के अनुसार बच्चे बचपन में ही अपने आसपास के वातावरण से कुछ–कुछ अनुक्रियाओं को कुछ खास ढंग से करना सीख जाते हैं, जो आगे चलकर व्यक्तित्व विकृति को उत्पन्न करती है। वैसे तो सभी प्रकार की व्यक्तित्व विकृति को उत्पन्न करने में मनोवैज्ञानिक कारक महत्त्वपूर्ण है, किन्तु इनमें भी

समाज–विरोधी व्यक्तित्व विकार के कारणों में इनकी विशिष्ट भूमिका को स्वीकार किया गया है।

**स. सामाजिक –सांस्कृतिक कारक**–जैविक एवं मनोवैज्ञानिक कारकों की तरह सामाजिक–सांस्कृतिक कारक किस प्रकार व्यक्तित्व विकृतियों को उत्पन्न करते हैं यह बात अभी अधिक स्पष्ट नहीं हो पायी है। इस संबंध में और अधिक शोध अध्ययन की आवश्यकता है। मनोवैज्ञानिकों का ऐसा मत है कि आधुनिक आरामतलब जिन्दगी, तुरंत संतुष्टि, समस्याओं का तुरंत समाधान होना आदि के कारण व्यक्ति में उत्तरदायित्वहीनता एवं आत्मकेन्द्रितता जैसे लक्षण विकसित होने लगते है, जो धीरे–धीरे व्यक्तित्व विकृति को उत्पन्न करती हैं। फिर भी इस संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहने के लिये पर्याप्त शोध की आवश्यकता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि व्यक्तित्व विकृति के कारणों में जैविक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों की भूमिका महत्वपूर्ण है, किन्तु इस क्षेत्र में पर्याप्त शोध अध्ययन की आवश्यकता आज भी निरन्तर अनुभव की जा रही है।

**व्यक्तित्व विकृति के निदान में सम्मिलित समस्यायें–**

प्रिय विद्यार्थियों, व्यक्तित्व विकृतियों का ठीक–ठीक निदान करने में अनेक तरह की समस्यायें है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार ये समस्यायें निम्नानुसार हैं–

1. पाठकों, व्यक्तित्व विकृतियों के निदान में पहली समस्या तो पर्याप्त शोध अध्ययनों का अभाव है, जिसके कारण नैदानिक मनोवैज्ञानिक एवं मनश्चिकित्सक इनके निदान हेतु वस्तुनिष्ठ कसौटी नहीं बना पाये हैं। इसके अतिरिक्त विद्वानों ने व्यक्तित्व विकृति को स्पष्ट रूप से परिभाषित भी नहीं किया है, जिसके कारण इनके निदान में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।
2. **विडगर तथा फ्रान्सेस** का मत है कि व्यक्तित्व विकारों की ठीक–ठीक पहचान करना इसलिये भी कठिन हो जाता है, क्योंकि व्यक्तित्व विकृति के विभिन्न प्रकार परस्पर अनन्य नहीं है। कहने का आशय यह है कि एक ही व्यक्ति में व्यक्तित्व विकार के एक से अधिक लक्षण देखने को मिलते है। इस कारण यह निश्चित करना कठिन हो जाता है कि व्यक्तित्व विकारों में से कौन सा प्रकार है।
3. **फ्रान्सेस** के शब्दों में '' व्यक्तित्व विकृतियों में पाये जाने वाले व्यक्तित्व शीलगुण का स्वरूप विमीय होने के कारण वे सामान्य अभिव्यक्ति से लेकर रोगात्मक अभिव्यक्ति दोनों में पाये जाते हैं।''

   कहने का अभिप्राय यह है कि ऐसे शीलगुण कुछ मात्रा में सामान्य व्यक्तियों में भी देखने को मिलते हैं, जिसके कारण वास्तविक व्यक्तित्व विकृति का निदान करना अत्यन्त कठिन हो जाता है।
4. व्यक्तित्व विकृतियों के निदान में एक और कठिनाई यह है कि इन विकृतियों को वस्तुनिष्ठ व्यवहारों के आधार पर परिभाषित नहीं किया जाता है बल्कि अनुमानित शीलगुणों के आधार पर परिभाषित किया जाता है। इस कारण भी इनके निदान में कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

प्रिय पाठकों, इस प्रकार आप समझ गये होंगे कि व्यक्तित्व विकृति के निदान या पहचान में नैदानिक मनोवैज्ञानिकों एवं मनश्चिकित्सकों को अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जिससे निदान की विश्वसनीयता बुरी तरह प्रभावित होती है। इन

समस्याओं को दूर करने के लिये यह आवश्यक है कि व्यक्तित्व विकृति के निदान हेतु वस्तुनिष्ठ कसौटी तैयार की जाये।

## 10.6 व्यक्तित्व विकृति के प्रकार–

प्रिय पाठकों, असामान्य व्यवहारों के नैदानिक वर्गीकरण तंत्र–DSM-IV TR (2000) में व्यक्तित्व विकृति को 10 श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है, जिनका विस्तृत विवेचन निम्नानुसार है–

1. स्थिर व्यामोही व्यक्तित्व विकृति (Pararoid personality disorder)
2. स्किजोआयड व्यक्तित्व विकृति (Schizaid personality disorder)
3. स्किजोटाइपल व्यक्तित्व विकृति (Schizotypal personality disorder)
4. हिस्ट्रओनिक व्यक्तित्व विकृति (Histrionic Personality disorder)
5. आत्ममोही व्यक्तित्व विकृति (Narcissistic personality disorder)
6. समाजविरोधी व्यक्तित्व विकृति (Antisocial personality disorder)
7. सीमान्तरेखीय व्यक्तित्व विकृति (Boarderline personality disorder)
8. परिवर्जित व्यक्तित्व विकृति (Avoidant personality disorder)
9. अवलम्बित व्यक्तित्व विकृति (Dependent personality disorder)
10. मनोग्रस्ति–बाध्यता व्यक्तित्व विकृति (Obsessive-compulsive personality disorder)

प्रिय विद्यार्थियों, इन 10 तरह की व्यक्तित्व विकृतियों को समूह अ, समूह ब एवं समूह स में बाँटा गया है, जो निम्नानुसार है–

1. **समूह अ** –समूह अ में निम्न तीन व्यक्तित्व विकृतियों को रखा गया है–
   **अ. स्थिर व्यामोही व्यक्तित्व विकृति**
   **ब. स्किजोआयड व्यक्तित्व विकृति**
   **स. स्किजोटाइपल व्यक्तित्व विकृति**

   इन तीनों प्रकार के व्यक्तित्व विकृतियों के व्यवहार में प्रायः समानता देखने को मिलती है। इस प्रकार की व्यक्तित्व विकृतियों में व्यक्ति का व्यवहार विचित्र, असामाजिक एवं अनियमित होता है।
2. **समूह ब** – इस समूह में निम्न चार व्यक्तित्व विकृतियों को रखा गया है–
   **1. हिस्ट्रीओनिक व्यक्तित्व विकृति**
   **2. आत्ममोही व्यक्तित्व विकृति**
   **3. समाजविरोधी व्यक्तित्व विकृति**
   **4. एवं सीमान्तरेखीय व्यक्तित्व विकृति**

   इन चारों विकृतियों को एक ही समूह में इसलिये रखा गया है, क्योंकि इन चारों ही व्यक्तित्व विकारों में रोगी का व्यवहार सांवेगिक, नाटकीय एवं सनकी जैसा होता है।
3. **समूह स** – समूह स में निम्न तीन व्यक्तित्व विकृतियों को रखा गया है–
   **1. परिवर्जित व्यक्तित्व विकृति**
   **2. अवलम्बित व्यक्तित्व विकृति**
   **3. मनोग्रस्ति बाध्यता व्यक्तित्व विकृति**

पाठकों, चिन्ता या डर लक्षण के आधार पर इन तीनों विकारों को एक श्रेणी में रखा गया है। यद्यपि मनोग्रस्तिबाध्यता विकृति में रोगी ज्यादा चिन्तित या भयग्रस्त नहीं रहता है।

प्रिय विद्यार्थियों, इन सभी व्यक्तित्व विकृतियों का विस्तृत विवरण निम्नांकित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया गया है।

1. **स्थिर व्यामोही व्यक्तित्व विकृति–**
   इस प्रकार के व्यक्तित्व विकृति वाले लोगों में शक, अतिसंवेदनशीलता, ईर्ष्या, जिद जैसे शीलगुणों की प्रधानता होती है। ऐसे लोग तर्क के आधार पर अपने प्रत्येक कार्य को और अपने को निर्दोष साबित करने का प्रयास करते है, जबकि इनके कार्य एवं व्यवहार प्रायः हर तरह से दोषपूर्ण होते हैं। ऐसे व्यक्तियों में अपने पद एवं प्रतिष्ठा के प्रति अत्यधिक सजगता देखने को मिलती है। जो लोग पद–प्रतिष्ठा में इनसे निम्नस्तर के होते हैं उनके प्रति ये घृणा का भाव रखते हैं और जो इनसे ऊँचे पद वाले होते हैं, उनके प्रति इनके मन में ईर्ष्या का भाव होता है।
2. **स्किजोआयड व्यक्तित्व विकृति–** इस प्रकार की व्यक्तित्व विकृति वाले लोग सामाजिक संबंध बनाने में अक्षम होते हैं और उनकी इसमें अभिरूचि भी नहीं होती है। इनमें सामाजिक कुशलता की कमी पायी जाती है। इस प्रकार के व्यक्तित्व विकार वाले व्यक्ति अपनी भावनाओं को भी ठीक प्रकार से अभिव्यक्त नहीं कर पाते हैं। इसलिये इन्हें एकान्तप्रिय एवं असामाजिक माना जाता है।
3. **स्किजोटाइपल व्यक्तित्व विकृति–** इस प्रकार के व्यक्तित्व विकृति वाले व्यक्तियों का प्रधान लक्षण यह है कि इनके प्रत्यक्षण, चिन्तन एवं बातचीत करने में सनकपना या, झक्कीपना बहुत अधिक होता है। ऐसे व्यक्ति भी एकान्तप्रिय एवं अत्यन्त संवेदनशील होते हैं। वास्तविकता का ज्ञान होते हुये भी ऐसे लोगों में व्यक्तिगत तथा अन्धविश्वासयुक्त चिन्तन की प्रधानता होती है। निरन्तर इस प्रकार के चिन्तन के कारण उनका वास्तविकता से सम्पर्क कम होने लगता है।
4. **हिस्ट्रीओनिक व्यक्तित्व विकृति–** इस प्रकार की व्यक्तित्व विकृति वाले लोगों में मूल रूप से कुछ ऐसे व्यवहारात्मक पैटर्न दिखायी देते हैं जिसमें उत्तेजना, अपरिपक्वता, सांवेगिक अस्थिरता, उत्तेजना के लिये उतावलापन आदि प्रमुख होते हैं। ऐसे व्यक्तियों के लैंगिक एवं अन्तवैयक्तिक संबंध संतोषजनक नहीं होते है। ऐसे लोग आत्मकेन्द्रित होते हैं तथा इनमें दूसरों का अनुमोदन प्राप्त करने की तीव्र लालसा पायी जाती है।
5. **आत्ममोही व्यक्तित्व विकृति–** इस प्रकार की व्यक्तित्व विकृति वाले लोगों में आत्म महत्व की भावना अत्यन्त तीव्र एवं मजबूत पायी जाती है। इस प्रकार के लोग स्वयं को अत्यन्त महत्वपूर्ण व्यक्ति समझते हैं और दूसरे लोगों से विशेष सेवा की अपेक्षा रखते हैं। साथ ही ऐसे लोग अपनी इच्छा को ही सर्वोपरि मानते हैं और अपनी इच्छा के समझ दूसरों की इच्छा का तृच्छ मानकर उसे कोई महत्व नहीं देते हैं। ये लोग अत्यन्त महत्वाकांक्षी होते हैं। इसके अतिरिक्त ऐसे लोग दूसरों को अपने निकट नहीं आने देते हैं और उनको अपने ऊपर निर्भर भी नहीं बनाते हैं। ऐसे लोगों में परानुभूति का सर्वथा अभाव पाया जाता है और ये स्वयं में किसी प्रकार के दोष या कमी को स्वीकार नहीं करते हैं। अतः ये कभी भी मनोवैज्ञानिक उपचारगृह में जाकर उपचार करवाने की आवश्यकता अनुभव नहीं करते हैं।

6. **समाजविरोधी व्यक्तित्व विकृति–** इस प्रकार की व्यक्तित्व विकृति वाले लोग समाजविरोधी या आक्रामक व्यवहार दिखलाकर दूसरों के अधिकारों की अवहेलना करते हैं। साथ ही किसी भी प्रकार के असामाजिक तथा अनैतिक कार्यों को करने में कोई संकोच या हिचकिचाहट नहीं होती है तथा इस प्रकार के कार्यों को करना वे अपना अधिकार समझते हैं। इस प्रकार के लोग दूसरों को धोखा देने और ठगने में भी बहुत होशियार होते हैं।
7. **सीमान्त रेखीय व्यक्तित्व विकृति–** इस प्रकार की व्यक्तित्व विकृति वाले व्यक्तियों में व्यक्तित्व विकार के लक्षण के अतिरिक्त कुछ ऐसे लक्षण भी देखने को मिलते हैं जो गंभीर मनोरोग यानि भावनात्मक रोग में होते है इसी आधार पर इस व्यक्तित्व विकृति का नाम सीमान्त रेखीय व्यक्तित्व विकृति रखा गया है। इस प्रकार के विकार में व्यक्ति में व्यवहारात्मक समस्या के साथ–साथ मनोदशा में भी परिवर्तन होता रहता है। थोड़ा सा भी उत्तेजन मिलने से ऐसे लोग बहुत क्रोधित हो जाते हैं। ऐसे लोग स्वभाव से आवेगशील होते हैं और इनका व्यवहार अस्थिर, आक्रामक एवं अपूर्वानूमेय होता है। विडिगर तथा उनके सहयोगियों का मत है कि ऐसे लोगों की पहचान आवेगशीलता एवं आत्म–विकृति के आधार पर आसानी से की जा सकती है। गुण्डरसन एवं सिंगर के शब्दों में ऐसे व्यक्तियों का अन्तवैयक्तिक संबंध असंतोषजनक होता है। इसके साथ ही इनमें आत्महत्या की प्रवृत्ति अधिक मजबूत होती है।
8. **परिवर्जित व्यक्तित्व विकृति–** इस प्रकार की व्यक्तित्व विकृति वाले लोगों का लक्षण यह है कि ऐसे लोग दूसरे व्यक्तियों द्वारा अपने प्रति दिखलाये गये तिरस्कार एवं उपेक्षा के प्रति बहुत ज्यादा संवेदनशील होते हैं। ऐसे लोगों के सामाजिक संबंध भी व्यापक नहीं होते। अपने सामाजिक संबंधों को मजबूत और व्यापक बनाने की चिन्ता इनमें बिल्कुल भी नहीं होती है। इस प्रकार के व्यक्तित्व विकार से ग्रसित लोग अपनी आलोचना से भी अत्यधिक भयभीत रहते हैं।
9. **अवलम्बित व्यक्तित्व विकृति–** जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इस प्रकार के व्यक्तित्व विकार वाले लोगों में दूसरों पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति प्रबल होती है। अकेले रहने पर वे अत्यधिक बेचैन हो उठते हैं। साथ ही साथ इनमें आत्म–विश्वास का अभाव पाया जाता है। जिसके कारण पर्याप्त योग्यता तथा कौशल होने के बावजूद ये अपने आपको असहाय महसूस करते है। ऐसे व्यक्तियों को जब दूसरों के साथ मिलकर काम करना होता है तब तो इसका निष्पादन संतोषप्रद होता है किन्तु अकेले ये ठीक प्रकार से कोई कार्य करने में सक्षम नहीं होते हैं।
10. **मनोग्रस्ति बाध्यता व्यक्तित्व विकृति–** इस प्रकार के व्यक्तित्व विकार वाले लोग नियम, कानून आदि के प्रति अत्यधिक सतर्क होते है तथा साथ ही वे इस मत को मानने वाले होते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने–अपने तरीके से कार्य करने की स्वतंत्रता होनी चाहिये। ऐसे लोग अपनी भावनाओं को ठीक प्रकार से व्यक्त नहीं कर पाते है। और न ही इनमें हास्य करने की प्रवृत्ति होती है। ऐसे व्यक्ति स्वभाव से अत्यन्त कर्तव्यनिष्ठ, अविरोधी, दृढ़ एवं जिद्दी होते है। ऐसे लोगों का जीवन बाध्यतापूर्ण आदेशों से भरा होता है।

प्रिय पाठकों, उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि मनोवैज्ञानिकों एवं मनश्चिकित्सकों ने भिन्न–भिन्न लक्षणों के आधार पर व्यक्तित्व विकृति के अनेक प्रकारों का वर्णन किया है।

## 10.7 व्यक्तित्व परिष्कार की विधियाँ–

प्रिय विद्यार्थियों, अब तक आपने व्यक्तित्व विकृति के स्वरूप, लक्षण, प्रकार, कारण इत्यादि के बारे में विस्तृत अध्ययन किया है। अब आपको व्यक्तित्व विकृति के उपचार के बारे में व्यापक जानकारी दी जा रही है। व्यक्तित्व विकृति को दूर करने के विभिन्न उपायों का यहाँ दो दृष्टिकोण से अध्ययन किया जा रहा है–

i- पाश्चात्य दृष्टिकोण एवं

ii- भारतीय या यौगिक दृष्टिकोण

**i- पाश्चात्य दृष्टिकोण–** प्रिय पाठको, व्यक्तित्व की अवधारणा के समान ही पाश्चात्य दृष्टिकोण में व्यक्तित्व विकृति को दूर करने के संबंध में भी व्यापक दृष्टिकोण को नहीं अपनाया गया है। पश्चिमी मनोवैज्ञानिकों एवं मनश्चिकित्सकों के मतानुसार व्यक्तित्व विकृति का स्वरूप ही कुछ इस प्रकार का होता है कि यह अपने आप में किसी भी तरह की चिकित्सा पद्धति का पक्षधर नहीं होता है अर्थात् विरोधी होता है। कहने का अभिप्राय यह है कि व्यक्तित्व विकार से ग्रस्त लोग किसी भी प्रकार से यह स्वीकार ही नहीं करते कि उनके व्यवहार में कुछ असामान्यतायें हैं, जिनका उपचार द्वारा दूर करना आवश्यक है। यदि किसी प्रकार की जबर्दस्ती करके इन्हें चिकित्सा के लिये लाया भी जाता है तो ये चिकित्सक के साथ सहयोग नहीं करते वरन् उनके साथ विचित्र प्रकार का व्यवहार करते हैं। ऐसी स्थिति में व्यक्तित्व विकृति वाले लोगों का उपचार करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इसी कारण प्रसिद्ध विद्वान **वाइलैन्ट** (1975) का मत है कि ऐसे व्यक्तियों का उपचार बाहरी रोगी के रूप में न करके कारागार आदि में रखकर करना चाहिये, जिससे कि उनके व्यवहार में उदण्डता कम हो जाती है तथा वे उपचार के साथ काफी सहयोग भी करते हैं। **लीमैन एवं मुलभे** (1973 के अनुसार)– ''परावलम्बी व्यक्तित्व विकृति के उपचार के लिये एक विशेष उपाय है, जिसमें दो तरह की बातें ऐसे रोगी के उपचार के लिये महत्त्वपूर्ण हैं। पहली बात तो यह कि ऐसे रोगियों को प्रारंभ में ही यब बता देना चाहिये कि चिकित्सा की अवधि थोड़ी होगी तथा दूसरी बात यह कि वे उनकी जिन्दगी चलाने का उत्तरदायित्व नहीं लेने जा रहे हैं; इन बातों को बताकर यदि उन्हें चिकित्सीय सत्र दिया जाता है, तो यह काफी लाभकर सिद्ध होता है।''

**ii- भारतीय या यौगिक दृष्टिकोण**– प्रिय पाठकों, व्यक्तित्व के संबंध भारतीय दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक है। भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार किसी भी व्यक्ति की मानसिक संरचना उसका व्यक्तित्व है, जिसके तीन आधारभूत तत्व है–

**i-** व्यवहार

**ii-** विचार और

**iii-** भावनायें

हमारा व्यवहार, विचार और भावनायें शरीर के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। अतः एक आकर्षक एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व में कुछ हद तक शरीर की भी भूमिका होती है, किन्तु यह तथ्य हमेशा ध्यान रखना चाहिये कि शरीर ही सब कुछ नहीं है। मूलतः हमारा व्यक्तित्व हमारी मानसिक संरचना है। अतः व्यक्तित्व को परिष्कृत करने के लिये हमें अपने व्यवहार, विचार एवं भावनाओं को पवित्र बनाये रखने का हर संभव प्रयास करना चाहिये क्योंकि हमारे व्यक्तित्व के ये तीनों तत्व निरन्तर एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। व्यवहार का

प्रभाव विचार एवं भावनाओं पर पड़ता है तो विचार भी व्यवहार एवं भावनाओं को प्रभावित किये बिना नहीं रहते। इसी प्रकार भावनाओं से हमारे विचार एवं व्यवहार अत्यधिक प्रभावित होते हैं। इन तीनों में से किसी भी एक तत्व की विकृति व्यक्तित्व में अनेक विकार उत्पन्न कर सकती है। अतः योग मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व परिष्कार की अनेक व्यावहारिक विधियाँ बतायी हैं, जिनको अपनाकर हम अपने व्यक्तित्व को अत्यन्त प्रखर बना सकते हैं। पाठकों, वैसे तो यौगिक दृष्टिकोण के अनुसार व्यक्तित्व परिष्कार की अनेकों विधियाँ है, किन्तु इन सभी में यदि हम एक समग्र पद्धति या विधि की बात करें तो वह है महर्षि पतंजलि द्वारा प्रतिपादित **अष्टांग योग** की पद्धति। अष्टांग योग के माध्यम से महर्षि पतंजलि ने व्यक्तित्व के समग्र परिष्कार एवं विकास का एक अत्यन्त सुव्यवस्थित मार्ग निर्दिष्ट किया है, जिस पर चलकर हम एक प्रभावशाली व्यक्तित्व का निर्माण कर सकते हैं। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है अष्टांग योग के आठ अंग हैं, जो निम्नानुसार हैं–

1. यम
2. नियम
3. आसन
4. प्राणायाम
5. प्रत्याहार
6. धारणा
7. ध्यान
8. समाधि

पाठकों, इनमें से प्रथम पाँच अंग बहिरंग योग तथा अन्तिम तीन अंग अन्तरंग योग के नाम से जाने जाते हैं। इस अष्टांग योग रूपी राजमार्ग को अपनाकर कोई भी व्यक्ति मानव से महामानव बन सकता है अर्थात् अपने व्यक्तित्व के उत्कृष्टतम शिखर को प्राप्त कर सकता है। इन अंगों का विवेचन निम्नानुसार है–

1. **यम–** अष्टांग योग में प्रथम अंग है–यम। अपने सार रूप में यह व्यवहार में रूपान्तरण के माध्यम से उर्जा संरक्षण की विधि है। यम से तात्पर्य सदाचार से युक्त ऐसे जीवन से है, जिससे व्यक्ति समाज में एक सभ्य–सुसंस्कारित व्यक्ति के रूप में तनावमुक्त जीवन व्यतीत कर सके।

   **डॉ. सचदेव के अनुसार**– ''यम–नियम नैतिक अनुशासन से संबंधित है। इन प्राथमिक नियमों का अभ्यास न केवल शरीर एवं मन के रोगों को ठीक करता है बल्कि स्नायु तंत्र को भी मजबूत बनाता है।'' (Yoga and Depth psychology, P.118) यम एक प्रकार से अनुशासित जीवनशैली का पर्याय है। इसी तथ्य को उजागर करते हुये पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य ने कहा है–''दुर्गुण, दुर्व्यसन और कुविचारों के कारण शरीर और मन बीमार रहता है। कुविचारों और कुसंस्कारों की रस्सियों से बंधा हुआ मन और इन्द्रिय लिप्साओं में जकड़ा हुआ शरीर उस स्वस्थता से सर्वथा वंचित ही रह जाता है, जिसकी की योग साधक के लिये अनिवार्य आवश्यकता है। हिंसा, झूठ, चोरी, व्याभिचार और लोभ इन पाँच दुष्कर्मों के निवारण करने की व्यवस्था यमों के अन्तर्गत है और मलिनता, बेचैनी, आलस्य, अज्ञान, नास्तिकता को दूर करने के लिये नियमों का विधान है। ये दस रोग ऐसे हैं, जो शारीरिक और आत्मिक स्वास्थ्य को खा डालते हैं, भीतर ही भीतर मनुष्य को जर्जर कर देते हैं।'' (यम–नियम, पृ.–41)

हमें अपने व्यवहार, विचार एवं भावनाओं को पवित्र बनाये रखने का हर संभव प्रयास करना चाहिये क्योंकि हमारे व्यक्तित्व के ये तीनों तत्व निरन्तर एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। व्यवहार का प्रभाव विचार एवं भावनाओं पर पड़ता है तो विचार भी व्यवहार एवं भावनाओं को प्रभावित किये बिना नहीं रहते। इसी प्रकार भावनाओं से हमारे विचार एवं व्यवहार अत्यधिक प्रभावित होते हैं। इन तीनों में से किसी भी एक तत्व की विकृति व्यक्तित्व में अनेक विकार उत्पन्न कर सकती है। अतः योग मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व परिष्कार की अनेक व्यवहारिक विधियाँ बतायी हैं, जिनको अपनाकर हम अपने व्यक्तित्व को अत्यन्त प्रखर बना सकते हैं।

प्रिय पाठकों, व्यक्तित्व परिष्कार की दृष्टि से देखा जाये तो यम मूलतः व्यवहार को परिष्कृत करने की प्रभावी विद्या है। समाज में रहते हुये व्यक्ति को किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये? व्यक्तित्व को प्रभावी बनाने के लिये हम किस प्रकार व्यवहार कुशल बन सकते है–इन सभी की सीख पाँच यम के माध्यम से दी गई है, जो निम्न हैं–

1. अहिंसा
2. सत्य
3. अस्तेय
4. ब्रह्मचर्य
5. अपरिग्रह

**डॉ. प्रणव पण्ड्या के शब्दों में–** ''इन आठ अंगों में पहला क्रम यम का है। यह इसलिये है ताकि उर्जाओं का क्षरण रूके। अपने सार रूप में यह ऊर्जा संरक्षण की विधि है। इसके द्वारा व्यवहार का ऐसा सुगढ़ ढंग से रूपान्तरण करते हैं कि जीवन की सीमित ऊर्जा न केवल संरक्षित हो, बल्कि अपने आश्चर्यकारी परिणाम प्रस्तुत करने लगे।''

(अन्तर्जगत् की यात्रा का ज्ञान–विज्ञान, भाग–2, पृ.–110)

**पं. श्रीराम शर्मा आचार्य के अनुसार–** '' इस तरह यम–नियम व्यक्तित्व के विखण्डन एवं बिखराव की कारक वृत्तियों को अनुशासित कर व्यक्तित्व के समाकलन की पृष्ठभूमि तैयार करते हैं। व्यक्तित्व संगठन के महान उद्देश्य की ये प्रारंभिक सीढ़ियाँ हैं, जिन पर पैर रखे बिना ऊँची सीढ़ियों पर चढ़ना असंभव है।'' (यम–नियम, पृ.–40)

2. **नियम–** पाठकों, अष्टांग योग में दूसरा क्रम नियम का है जो प्रवृत्तियों के परिशोधन से संबंधित हैं। प्रवृत्तियों के परिशोधन होने पर ही जीवन में स्थिरता एवं शांति आती है। पाठकों, यम अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध तथा सामाजिक नीति–मर्यादा से जुड़े हैं, नियम विशुद्ध रूप से वैयक्तिक अनुशासन तथा आचरण से संबंधित है।

**डॉ. प्रणव पण्ड्या के अनुसार–** ''नियम में उन तत्वों का समावेश है जो व्यवहार के आधार, विचार एवं संस्कार को परिष्कृत करते है।''

(अन्तर्जगत् की यात्रा का ज्ञान–विज्ञान, भाग–2, पृ.–120)

प्रिय विद्यार्थियों, यम जहाँ व्यवहार शोधन के लिये है तो नियम अन्तस् शोधन के लिये है। यम की भाँति नियम भी पाँच हैं, जो निम्न हैं–

1. शौच
2. संतोष
3. तप
4. स्वाध्याय
5. ईश्वर प्रणिधान

इस प्रकार स्पष्ट है कि व्यक्तित्व को रूपान्तरिक करने में यम की भाँति ही नियमों की भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

3. **आसन–** निमय के बाद अगला चरण आसन का है, जो शरीर को शुद्ध एवं स्थिर बनाने के लिये है। जैसा कि आपको पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि हमारा व्यक्तित्व अर्थात् हमारा व्यवहार, विचार और भावनायें हमारे शरीर के माध्यम से अभिव्यक्त होते हैं। अतः प्रभावी व्यक्तित्व के निर्माण हेतु शरीर का भी स्वस्थ एवं दृढ़ होना अति आवश्यक है और आसन इसमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। परिणामस्वरूप शरीर के स्वस्थ होने पर इसका प्रभाव मानसिक स्वास्थ्य पर भी पड़ता है।
4. **प्राणायाम–** आसन के बाद अगला क्रम प्राणायाम का है, जो प्राणतत्व की साधना है। यह प्राण ही हमारे शरीर एवं मन को परस्पर जोड़े हुये है। प्राणतत्व के कमजोर पड़ने पर शरीर और मन भी कमजोर पड़ने लगते हैं।

**डॉ. प्रणव पण्ड्या के शब्दों में–''** इस प्राण की डोर से ही हमारे व्यक्तित्व एवं अस्तित्व के सभी अंग गुंथे है। प्राणायाम से प्राण तत्त्व शुद्ध होता है। इस प्राण तत्त्व की शुद्धि से मन की धारणा शक्ति विकसित होती है। प्राणायाम न केवल देह को स्पच्छ एवं स्वस्थ करता है, बल्कि मन को भी स्वच्छ एवं प्रखर बनाता है।''

(अन्तर्जगत् की यात्रा का ज्ञान–विज्ञान, भाग–2, पृ.–110)

प्राणायाम का हमारे मानसिक स्वास्थ्य से गहरा संबंध है। यौगिक ग्रन्थों में कहा गया है प्राण के चंचल होने पर मन चंचल होता है और प्राण के नियंत्रित होने पर मन भी नियंत्रित होने लगता है। अतः कहने का अभिप्राय यह है कि प्राणायाम द्वारा हम अपने मन को सहजापूर्वक नियंत्रित कर सकते हैं तथा नकारात्मक विचारों के प्रवाह पर अंकुश लगाकर अपने व्यक्तित्व को प्रखर बना सकते हैं।

**डॉ. शांतिप्रकाश अत्रेय के अनुसार**– ''मन और प्राण का अत्यधिक घनिष्ठ संबंध है। प्राण से मन जुड़ा हुआ है। अतः प्राण पर काबू पाने पर मन पर काबू पाना स्वतः सरल हो जाता है।'' (योग मनोविज्ञान, पृ.–206)

**प्रत्याहार–** पाठकों, अष्टांग योग के इन चार चरणों के बाद अगला चरण प्रत्याहार का है। प्रत्याहार की साधना में समर्थ साधक ही योग की आन्तरिक साधना हेतु सुपात्र सिद्ध होते हैं।

**डॉ. प्रणव पण्ड्या के शब्दों में–** '' यह जीवन की सूक्ष्म उर्जाओं के संरक्षण एवं रूपान्तरण की विधि है। इसके माध्यम से बाहर बिखरने वाली शक्तियों को संरक्षित कर उनका आन्तरिक साधना में सदुपयोग किया जाता है।''

(अन्तर्जगत् की यात्रा का ज्ञान–विज्ञान, भाग–2, पृ.–110)

**डॉ. शांतिप्रकाश आत्रेय** ने प्रत्याहार की महत्ता को वर्णित करते हुये लिखा है–''इसमें इन्द्रियों के माध्यम से बाहरी जगत् एवं इसके विषय भोगों में बिखरी मानसिक उर्जा को अन्तर्मुखी किया जाता है और इसे आन्तरिक सत्य की ओर मोड़ा जाता है। साधक इन्द्रियों को समस्त विषयों से हटाकर चित्त को जब ध्येय में लगाता है, तब इन्द्रिया चित्त ही में लीन सी हो जाती है। ऐसा होना ही प्रत्याहार है।' (योग मनोविज्ञान, पृ.–209)

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रत्याहार द्वारा हम अपनी उर्जा को संरक्षित करके अपने निश्चित ध्येय में नियोजित करते हैं, जिससे हमारा व्यवहार, विचार और भावनायें तीनों सकारात्मक दिशा में लयबद्ध हो जाते हैं और धीरे–धीरे हमारे व्यक्तित्व में एक चुम्बकत्व या आकर्षण उत्पन्न होने लगता है।

**धारणा–** पाठकों, यम से प्रत्याहार तक पाँच अंग बहिरंग कहलाते है। प्रत्याहार के बाद अगला क्रम धारणा का है, जहाँ से अन्तरंग साधना का प्रारंभ होता है। जो व्यक्ति अपने व्यवहार, प्रवृत्ति एवं प्राण को परिष्कृत कर लेता है, वही धारणा हेतु सत्पात्र होता है। स्थिर एवं पवित्र मन से ही धारणा का अभ्यास किया जा सकता है। शरीर के बाहर अथवा भीतर किसी एक स्थान अर्थात् निश्चित ध्येय में चित्त को लगाना ही धारणा है। धारणा से हमारी समस्त मानसिक शक्ति एक बिन्दु पर एकाग्र हो जाती है और ध्येय के अनुकूल हमारा व्यवहार, विचार एवं भावनायें रूपान्तरित होने लगती है। परिणामस्वरूप हमारा व्यक्तित्व परिष्कृत होने लगता है। **स्वामी अखिलानंद के अनुसार**– ''धर्म एवं दर्शन क्षेत्र की उपलब्धियों के अतिरिक्त हम मानव मन एवं व्यक्तित्व के समाकलन में एकाग्रता (धारणा) की व्यावहारिक उपयोगिता को समझ सकते हैं।'' (Hindu psychology, P.103)

**ध्यान–** पाठकों, धारणा के ही विकसित रूप का नाम ध्यान है। **डॉ. प्रणव पण्ड्य के शब्दों में**– '' धारणा में स्थिरता, निरन्तरता ही योग साधक को योग के सातवें अंग ध्यान के अनुकूल बनाती है और यह ध्यान ही योग साधक के व्यक्तित्व में विराट के द्वारा खोलता है। जहाँ अर्थात जिस ध्येय में चित्त को लगाया जाता है उसी में चित्तवृत्ति का एकतार चलना ध्यान कहलाता है। **डॉ. शांतिप्रकाश आत्रेय के शब्दों में**–'' इस तरह जब मन की उर्जा को किसी बाह्य या आन्तरिक, स्थूल या सूक्ष्म विषय पर केन्द्रित किया जाता है और यह प्रवाह दीप शिखावत् निरन्तर प्रवाहित रहता है, तो यह ध्यान है। धारणा के अभ्यास के दृढ़ होने के बाद ही जब ध्येय वस्तु से चित्त का बहकाना बिल्कुल बन्द हो जाता है, तब ध्यान की अवस्था आती है।'' (योग मनोविज्ञान, पृ.–218)

**डॉ. सचदेव ने ध्यान** की महत्ता का वर्णन करते हुये लिखा है–'' सही–सही रूप में सम्मपन्न ध्यान का अभ्यास, व्यक्तित्व को अद्भुत ढंग से संकलित करता है। अन्दर आत्मा, परमात्मा, सद्गुरू या किसी भगवद् प्ररूप या ध्येय को केन्द्रित कर किया गया ध्यान क्रमशः पूर्व संस्कारों के प्रवाह को क्षीण करता हुआ आध्यात्मिक स्वतंत्रता या मुक्ति की ओर ले जाता है।'' (Yoga and Depth psychology, P.125)

वस्तुतः ध्यान मानवीय चेतना के सभी स्तरों को प्रकाशित करता है। सुपर चेतन की ओर अग्रसर चेतन मन इसकी शक्तियों द्वारा अचेतन की चुनौतियों का सामना करता है और अचेतन के अंध क्षेत्रों को सचेतन करते हुये सुपरचेतन की ओर बढ़ता है। इस तरह ध्यान द्वारा समूचा मन स्वस्थ, सशक्त एवं संगठित होता है। **स्वामी अखिलानंद** के मतानुसा–''अपने धार्मिक मूल्य के अतिरिक्त ध्यान का अभ्यास मनुष्य के समग्र व्यक्तित्व के गठन को अद्भुत ढंग से प्रभावित करता है।'' (Hindu psychology, P.130)

**डॉ. शांतिप्रकाश अत्रेय–** के शब्दों में–'' इस तरह अंतरंग योग के अंतर्गत धारणा के अभ्यास से सतत् मन पर नियंत्रण बढ़ता जाता है तथा ध्यानावस्था आने पर मन समाधि अभ्यास में पहुँचने की तैयारी करने योग्य होता है। धारणा समाधि का प्रवेश द्वार तथा ध्यान समाधि में पहुँचने का दूसरा द्वार है।'' (योग मनोविज्ञान, पृ.–219)

**समाधि–** अष्टांग योग का अंतिम चरण समाधि है, जो साधना की तथा परिष्कृत व्यक्तित्व की पराकाष्ठा है। **डॉ. प्रणव पण्ड्या के शब्दों में**– ''ध्यान की प्रगाढ़ता, परिपक्वता एवं प्रखरता ही योगी को समाधि में प्रवेश दिलाती है। इस समाधि के भी विभिन्न स्तर हैं, जो साधक के जीवन में अपने अनुरूप सुपरिणाम प्रस्तुत करते हैं। योग के अन्य सभी सात अंगों से जहाँ केवल परिशोधन–परिमार्जन की क्रियायें समान्न होती है। भले ही इनके स्तर

कितने ही पृथक–पृथक क्यों न हो, परन्तु समाधि के निरन्तर अभ्यास से परिशोधन–परिमार्जन की सूक्ष्म क्रियाओं के साथ रूपान्तरण की क्रियायेंभीसम्मान होती है।''

(अन्तर्जगत् की यात्रा का ज्ञान–विज्ञान, भाग–2, पृ.–111)

ध्यान करते–करते जब चित्त ध्येयाकार में परिणत हो जाता है और उसके अपने स्वरूप का अभाव हो जाता है, तो उस अवस्था को समाधि कहते हैं। **स्वामी प्रभवानंद** के अनुसार–''ध्यान में जब ध्यान करने वाले के मन से बिना प्रभावित हुये वस्तु का यथार्थ स्वरूप प्रकाशित हो उठे, तो यह समाधि अवस्था है।'' (How to know God, P.111)

इस प्रकार समाधि चेतना एवं व्यक्तित्व के विकास की सर्वोच्च अवस्था है। यहाँ किसी प्रकार का तनाव, द्वन्द्व या ग्रन्थि नहीं होती है। यह निर्द्वन्द्व और निर्मलतम स्थिति है। इस स्थिति में परब्रह्म परमात्मा की दिव्यता और असीम संभावनाओं को समेटे हुये जीवात्मा अपने सम्पूर्ण ऐश्वग्र के साथ अभिव्यक्त होती है। इस स्थिति में विकसित व्यक्तित्व का स्वरूप तथा वैभव अत्यन्त अद्‌भुत एवं अलौकिक होता है, जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

**अभ्यासार्थ प्रश्न– ( वस्तुनिष्ठ प्रश्न)**

(1) व्यक्तित्व विकृति को ''चारित्रिक विकृति'' नाम दिया है–

(A) फ्रायड (B) एडलर

(C) कारसन एवं बुचर (D) डेविसन एवं नील

(2) व्यक्तित्व विकृति के प्रमुख कारण हैं–

(A) जैविक कारक

(B) मनोवैज्ञानिक कारक

(C) सामाजिक–सांस्कृतिक कारक

(D) उपर्युक्त सभी

(3) व्यक्तित्व विकृति के प्रमुख लक्षण हैं–

(A) विघटित व्यक्तिगत संबंध

(B) चिरकालिक दुखदायी व्यवहार

(C) व्यवहार परिवर्तन के विरोधी

(D) उपर्युक्त सभी

(4) व्यक्तित्व विकृति के सभी लक्षण प्रायः कौन सी अवस्था में स्पष्ट हो जाते हैं–

(A) किशोरावस्था

(B) वयस्कावस्था

(C) प्रौढ़ावस्था

(D) वृद्धावस्था

(5) किस प्रकार की व्यक्तित्व विकृति में व्यक्तित्व विकृति के लक्षण के अतिरिक्त कुछ ऐसे लक्षण भी पाये जाते हैं जो गंभीर मनोरोग अर्थात् भावात्मक रोग में पाये जाते हैं–

(A) सीमान्त रेखीय व्यक्तित्व विकृति

(B) स्थिर व्यामोह व्यक्तित्व विकृति

(C) परिवर्जित व्यक्तित्व विकृति

(D) समाज विरोधी व्यक्तित्व विकृति

## 10.8 सारांश–

प्रिय विद्यार्थियों, उपरोक्त विवरण से आप व्यक्तित्व विकृति के स्वरूप, कारण, लक्षण, प्रकार एवं इन विकारों को दूर करने के उपायों के बारे में भलीभाँति जान गये होंगे। इन सभी के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्तित्व विकृति मूलतः शीलगुणों की विकृति एवं उनके अपरिपक्व विकास से संबंधित है, जिसके कारण व्यक्ति का प्रत्यक्षण एवं चिन्तन दोषपूर्ण एवं विकृत होने लगता है। परिणामस्वरूप उसके व्यवहार में असामान्यतायें इतनी अधिक बढ़ जाती है कि उसका व्यवहार दूसरे लोग स्वीकार नहीं कर पाते हैं। जहाँ तक व्यक्तित्व विकृति के कारणों का प्रश्न है तो इसमें जैविक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, सांस्कृतिक सभी कारकों की भूमिका है। विघटित व्यक्तिगत संबंध, चिरकालिक दुःखदायी व्यवहार, नकारात्मक नतीजे, व्यवहार परिवर्तन का विरोध करना आदि इनकी सामान्य विशेषतायें हैं। मनश्चिकित्सकों द्वारा व्यक्तित्व विकृति के प्रमुख 10 प्रकार बताये गये हैं, जिनका वर्णन DSM-IV (TR) के आयाम– II में किया गया है। व्यक्तित्व विकृति के उपचार की बात करें तो इस सम्बन्ध में पाश्चात्य की तुलना में भारतीय दृष्टिकोण बहुत अधिक व्यापक एवं कारगर है। अष्टांग योग के रूप में महर्षि पतंजलि ने व्यक्तित्व रूपान्तरण हेतु जिस पद्धति का, जिस साधना का प्रतिपादन किया है, उससे बढ़कर व्यक्तित्व परिष्कार की अन्य कोई विधि नहीं हो सकती। इस पद्धति को अपनाकर प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का समग्र विकास सहजता से कर सकता है।

## 10.9 शब्दावली

**शीलगुण**– किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत विशेषतायें।
**अवलम्बित** –निर्भर
**चिरकालिक** –लम्बे समय तक चलने वाला।
**DSM-IV (TR)** – असामान्य व्यवहारों के नैदानिक वर्गीकरण का अन्तर्राष्ट्रीय तंत्र। Diognostic and statistical manual of mental disorder-IV (Test Revision)

## 10-10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**(1)** C
**(2)** D
**(3)** D
**(4)** A
**(5)** A

## 10.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

**(1)** सिंह, अरूण कुमार, (2010), असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, बंग्लोरोड, जवाहरनगर, दिल्ली।
**(2)** वर्णवाल, सुरेश (2002), योग और मानसिक स्वास्थ्य, न्यू भारतीय बुक कॉपोरेशन, दिल्ली।

**(3)** पण्ड्या, प्रणव (2011), अन्तर्जगत् की यात्रा का ज्ञान–विज्ञान, भाग–2, श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट, शांतिकुंज, हरिद्वार, उत्तराखण्ड।

**(4)** Sachdeva, I.P. (1978), Yoga and Depth psychology, motilal banarsidas, bunglow Road, Jawahal Nagar, Delhi.

**(5)** Prabhavananda (2000), Spiritual Heritage of India, Shri Ramkrishna Matha, mylopore, channai.

**(6)** Akhilananda, Mental Health and Hindu psychology, Gearge Allen and Unwin Ltd. Russion house, museim-street, Londan.

**(7)** शर्मा, श्रीराम (1998), यम–निमय, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा।

**(8)** आत्रेय, शांतिप्रकाश (1965), योग मनोविज्ञान। दी इन्टरनेशनल स्टैण्डर्ड पब्लिकेशन्स, वाराणसी।

## 10.12 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. डॉ. आर. के. ओझा (1991), असामान्य मनोविज्ञान, भार्गव बुक हाउस, आगरा।

2. अरूण कुमार सिंह (2010), व्यक्तित्व मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, बंग्लोरोड जवाहर नगर, दिल्ली।

## 10.13 निबंधात्मक प्रश्न

**प्रश्न**–1 व्यक्तित्व विकृति से आप क्या समझते हैं? व्यक्तित्व विकृति के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।

**प्रश्न**–2 व्यक्तित्व विकृति के प्रमुख लक्षण एवं कारणों पर प्रकाश डालते हुये व्यक्तित्व परिष्कार की विभिन्न विधियों का विवेचन कीजिए।

# इकाई–11 समाज–विरोधी व्यक्तित्व : अर्थ, लक्षण, कारण, उपचार

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 समाज–विरोधी व्यक्तित्व के अर्थ
11.4 समाज–विरोधी व्यक्तित्व के लक्षण
11.5 समाज–विरोधी व्यक्तित्व के कारण
11.6 समाज–विरोधी व्यक्तित्व के उपचार
11.7 सारांश
11.8 शब्दावली
11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
11.11 सहायक उपयोगी पाठ्य–सामग्री
11.12 निबंधात्मक प्रश्न

## 11.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठकों, इससे पूर्व की इकाई में हमने व्यक्तित्व विकृति की अवधारणा का अध्ययन किया है, जिसके अन्तर्गत व्यक्तित्व विकृति के अर्थ, प्रकार, लक्षण, कारण, उपचार आदि की विस्तृत व्याख्या की गई है। प्रस्तुत ईकाई में इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुये व्यक्तित्व विकृति के एक प्रमुख प्रकार समाज–विरोधी व्यक्तित्व का विस्तृत विवेचन किया गया है। समाज–विरोधी व्यक्तित्व विकृति से क्या आशय है? इसके प्रमुख लक्षण एवं कारण क्या है? इस प्रकार की व्यक्तित्व विकृति का उपचार किस तरह किया जा सकता है? इत्यादि जिज्ञासाओं का समाधान प्रस्तुत ईकाई में करने का प्रयास किया गया है।

## 11.2 उद्देश्य–

प्रिय विद्यार्थियों प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप–

**i-** समाज–विरोधी व्यक्तित्व विकृति के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे।
**ii-** समाज–विरोधी व्यक्तित्व विकृति के लक्षणों का विवेचन कर सकेंगे।
**iii-** समाज–विरोधी व्यक्तित्व विकृति के कारणों का विश्लेषण कर सकेंगे।
**iv-** समाज–विरोधी व्यक्तित्व विकृति की उपचार विधियों को स्पष्ट कर सकेंगे।

**समाज–विरोधी–व्यक्तित्व का अर्थ–**

प्रिय पाठकों, जैसा कि आप जानते हैं व्यक्तित्व विकृतियों में एक प्रमुख विकृति ''समाज विरोधी व्यक्तित्व'' है, जिसे मनोविकारी व्यक्तित्व (pstchopathic personality), समाज विकारी व्यक्तित्व (Sociapathic personality) नैतिक मूढ़ता (Moral imbecility) तथा शारीरिक गठन संबंधी मनोविकारी व्यक्तित्व इत्यादि विभिन्न नामों से भी जाना जाता है।

इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति किसी प्रकार के अवरोध का अनुभव किये बिना ही समाज विरोधी व्यवहार करते हैं, दूसरों के अधिकारों की अवहेलना करते हैं और दूसरों को ठगते हैं। समाज विरोधी व्यक्तित्व वाले लोग किसी भी प्रकार के अनैतिक एवं असामाजिक

कार्य को करने में संकोच नहीं करते है तथा ऐसे कार्यों को करना अपना अधिकार समझते है। परिणामस्वरूप ऐसे लोगों का सामाजिक समायोजन असंतुलित हो जाता है।

मनोवैज्ञानिकों ने समाज–विरोधी व्यक्तित्व को अनेक प्रकार से परिभाषित किया है। **कारसन एवं बुचर** के अनुसार ''समाज विरोधी व्यक्तित्व एक ऐसी व्यक्तित्व विकृति है जिसकी प्रमुख विशेषता नीति–विषयक या नैतिक विकास की स्पष्ट कमी होती है तथा ऐसे व्यक्ति में व्यवहारों के एक अनुमोदित माडल को ग्रहण करने की स्पष्ट अक्षमता होती है। मूलतः ऐसे व्यक्ति असामाजीकृत होते हैं और वे अन्य व्यक्तियों, समूहों एवं सामाजिक मूल्यों के प्रति कोई सार्थक निष्ठता दिखलाने के अयोग्य होते हैं।''

**समाज–विरोधी–व्यक्तित्व के लक्षण–**

प्रिय विद्यार्थियों, नैदानिक मनोवैज्ञानिकों एवं मनश्चिकित्सकों द्वारा समाज–विरोधी व्यक्तित्व की अनेक विशेषतायें या लक्षण बताये गये हैं, जिससे इस व्यक्तित्व का स्वरूप स्पष्ट होता है।

DSM-IV (TR) के अनुसार केवल उन्हीं लोगों को समाज विरोधी व्यक्तित्व की श्रेणी में रखा जा सकता है, जिसमें निम्न विशेषतायें या लक्षण हो–

- **a.** किसी नियमानुकूल व्यवहार को करने में सामाजिक मानकों के प्रति अनुरूपता दिखलाने में सफल न रहना।
- **b.** अपने लाभ या खुशी के लिये धोखा देना तथा बार–बार झूठ बोलना।
- **c.** आवेगशील या आक्रामक (Impulsive) व्यवहार करना अथवा आगे के लिये नियोजित व्यवहार नहीं करना।
- **d.** आक्रमणशीलता (aggressiveness) एवं चिड़चिड़ापन दिखाना।
- **e.** स्वयं की एवं अन्य लोगों की सुरक्षा के प्रति लापरवाह तरीके से असम्मान प्रदर्शित करना।
- **f.** निरन्तर उत्तरदायित्वहीनता दिखाना
- **g.** स्वयं द्वारा किये गये गलत कार्यों के लिये पश्चाताप न करना
- **h.** व्यक्ति की निश्चित रूप से कम से कम 18 वर्ष जरूर है
- **i.** व्यक्ति की 15 वर्ष की आयु से पहले ही चारित्रिक विकृति के पक्के सबूत मिल गये हों।

मनश्चिकित्सकों द्वारा समाज–विरोधी–व्यक्तित्व के निम्न लक्षण बताये गये हैं–

- **i-** चिन्ता एवं दोष भाव की कमी
- **ii-** अन्तःकरण का पर्याप्त विकास न होना
- **iii-** अपने असामाजिक व्यवहार के लिये दूसरों पर दोषारोपण करना
- **iv-** उत्तरदायित्वहीन एवं आवेगशील व्यवहार
- **v-** अधिकारी व्यक्तियों का बहिष्कार
- **vi-** गत अनुभूतियों से लाभ उठाने में समर्थ न होना
- **vii-** संतोष जनक अन्तवैयक्तिक संबंध न होना
- **viii-** मद्यपान की आदत

पाठकों, इन सभी का विस्तृत विवेचन निम्नानुसार है–

i- **चिन्ता एवं दोष भाव की कमी–** समाज–विरोधी व्यक्तित्व वाले लोगों में अपने व्यवहार के लिये न तो किसी प्रकार का पछतावा होता है टौर न ही वे अपने इस प्रकार के आचरण हेतु चिन्तित होते है। इस प्रकार ऐसे लोगों में चिन्ता एवं आत्मदोष का भाव दोनों की ही कमी होती है।

ii- **अन्तःकरण का पर्याप्त विकास न होना–** ऐसे लोग बौद्धिक दृष्टि से तो काफी विकसित होते हैं, किन्तु उनका नैतिक रूप से पर्याप्त विकास नहीं होता है। परिणामस्वरूप उनका व्यवहार अनैतिक एवं असामाजिक हो जाता है। इसके साथ ही इनमें एक और विशेषता यह पायी जाती है कि ये स्वयं को ऐसे नैतिक मूल्यों से जुड़े होने का दावा करते हैं, जिनका वास्तविक जीवन से कोई सरोकार नहीं होता है।

iii- **अपने असामाजिक व्यवहार के लिये दूसरों पर दोषारोपण करना**– समाज विरोधी व्यक्तित्व वाले लोग स्वयं की कमियों पर ध्यान न देकर अपने गलत व्यवहार के लिये भी दूसरों को ही दोषी ठहराते है। इनमें दूसरे लोगों में कमियों और दोषों को देखने की प्रवृत्ति अधिक होती है, जिससे ये स्वयं की कमजोरियों को छिपाकर दूसरों को गलत सावित कर सकें।

iv- **उत्तरदायित्वहीन एवं आवेगशील व्यवहार**– समाज विरोधी व्यक्तित्व वाले लोगों का व्यवहार उत्तरदायित्वहीन एवं आवेगशील होता है किसी भी प्रकार के सामाजिक उत्तरदायित्व को स्वीकार करने की प्रवृत्ति इनमें नहीं होती है। इसलिये ये आवेग में आकर सामाजिक एवं नैतिक नियमों का उल्लंघन करते हैं।

v- **अधिकारी व्यक्तियों का बहिष्कार**– समाज विरोधी व्यक्तित्व की एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि ये सामाजिक एवं नैतिक नियमों को लागू करने वाले अधिकारियों के साथ हमेशा तनावपूर्ण एवं संघर्ष की स्थिति बनाये रखते हैं।

ऐसे लोगों के साथ इनके संतोषजनक संबंध नहीं होते हैं। उदाहरण के तौर पर परिवार में माता–पिता के साथ, स्कूल या कॉलेज में शिक्षक, प्रधानाचार्य आदि के साथ, व्यावसायिक संस्थान में पदाधिकारियों के साथ इनका व्यवहार एवं संबंध अच्छे नहीं होते हैं।

vi- **गत अनुभूतियों से लाभ उठाने में समर्थ न होना**– ऐसे लोगों में अपने गलत कार्यों के लिये किसी प्रकार का पश्चाताप नहीं होता है। अतः ये अपने बीते हुये अनुभवों से किसी प्रकार का लाभ नहीं उठा पाते हैं। समाज विरोधी कार्य करने के कारण ऐसे लोग अनेक बार समाज, कानून आदि के द्वारा दंडित किये जा चुके होते हैं। किन्तु इसके बावजूद इनके व्यक्तित्व में कोई सकारात्मक परिवर्तन नहीं आता है और ये पहले की भाँति ही समाज–विरोधी गतिविधियों में पुनः संलग्न हो जाते हैं।

vii- **संतोषजनक अंतर्वैयक्तिक संबंध न होना**– जैसा कि स्पष्ट है कि समाज–विरोधी व्यक्तित्व वाले लोग उत्तरदायित्वहीन, स्वार्थी, असामाजिक एवं अनैतिक होते है। इस कारण दूसरे लोगों के साथ इनके संबंध सौहार्द्रपूर्ण नहीं हो पाते है। ऐसे लोग शुरूआत में तो बहुत जोर–शोर से अन्य लोगों के साथ मित्रता का हाथ बढ़ाते हैं और इस बात का खूब दिखावा करते हैं कि वे कितने अच्छे मित्र हैं। किन्तु धीरे–धीरे उनकी सच्चाई सामने आने पर ये संबंध जल्दी ही टूट जाते हैं, स्थायी नहीं हो पाते हैं। ऐसे लोगों का यौन जीवन भी संतोषजनक नहीं होता है क्योंकि इनके यौन संबंध प्रायः छल–कपट एवं शोषण से प्रेरित होते है। अतः ऐसे लोग एक अच्छे यौन साथी भी साबित नहीं होते हैं।

viii- **मद्यपान की आदत**– समाज विरोधी व्यक्तित्व के संबंध में हुये नवीनतम अध्ययनों में यह बात भी सामने आयी है कि ऐसे लोगों में मद्यपान की भी आदत होती है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिकों, जिनमें लेविस, रॉबिन्स तथा राईस के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, इन्होंने अपने शोध अध्ययनों के द्वारा इस बात को पुष्ट किया है।

ix- **समाज विरोधी व्यक्तित्व के कारण**– प्रिय पाठकों, समाज–विरोधी व्यक्तित्व के कारणों को लेकर मनोवैज्ञानिकों द्वारा अनेक शोध किये गये हैं, जिनसे यह स्पष्ट हुआ है कि इस प्रकार के व्यक्तित्व के लिये कोई एक कारक उत्तरदायी नहीं है, वरन् शारीरिक, पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक इत्यादि सभी कारकों का प्रभाव व्यक्तित्व पर पड़ता है।

अतः समाज–विरोधी व्यक्तित्व के कारणों का विस्तृत विवेचन निम्नानुसार है–

1. जैविक कारक या शारीरिक कारक
2. पारिवारिक कारक
3. सामाजिक–सांस्कृतिक कारक

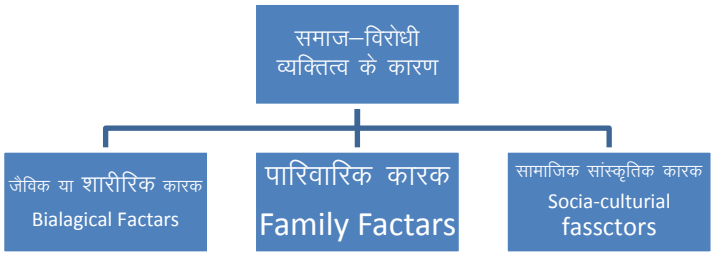


1. **जैविक या शारीरिक कारक**– पाठकों, मनोवैज्ञानिकों का मत है कि समाज–विरोधी व्यक्तित्व को विकसित करने में कुछ जैविक कारक जिम्मेदार है। किसी प्रकार की शारीरिक विकृति एवं आनुवांशिकता भी इस प्रकार के व्यक्तित्व को जन्म देती है। समाज–विरोधी व्यक्तित्व के प्रमुख जैविक कारक निम्नानुसार हैं–

**a.** आनुवांशिकता
**b.** अपर्याप्त सांवेगिक उत्तेजना
**c.** मस्तिष्कीय विकृति
**d.** उत्तेजन जिज्ञासा

इन सभी कारकों का विस्तृत विवरण नीचे दिया जा रहा है–

a. **आनुवांशिकता**– समाज–विरोधी व्यक्तित्व का एक प्रमुख कारण आनुवांशिकता है। अनेक प्रयोगात्मक अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि जिन लोगों के माता–पिता समाज–विरोधी व्यक्तित्व वाले होते हैं। अनेक बच्चों में भी इस प्रकार का व्यक्तित्व विकसित हो जाता है। इसी कारण कुछ लोगों में जन्म से ही समाज–विरोधी व्यक्तित्व विकृति पायी जाती है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार यह जन्मजात प्रवृत्ति जीन्स के द्वारा उन्हें मिलती है।

b. **अपर्याप्त सांवेगिक उत्तेजन**– समाज–विरोधी व्यक्तित्व का एक प्रमुख कारण अपर्याप्त सांवेगिक उत्तेजन भी माना गया है। इसके कारण तनावपूर्ण परिस्थितियों में रहने के

बावजूद भी इनमें न तो चिन्ता उत्पन्न होती है, न ही अपने समाज विरोधी कार्यों के प्रति कोई पछतावा होता है और न ऐसे कार्यों को करने में कोई हिचकिचाहत होती है। इन सबका मूल कारण यह है कि अपर्याप्त सांवेगिक उत्तेजन के कारण ऐसे लोगों में सामान्य विवेक की उत्पत्ति नहीं होती है।

**लाइकेन 1957 तथा आइजेन्क 1960** के अनुसार समाज–विरोधी व्यक्तित्व या मनोविकारी व्यक्तित्व में संवेगिक उत्तेजन की क्षमता पर्याप्त नहीं होती है।

c. **मस्तिष्कीय विकृति**– मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययन के आधार पर यह बताया है कि जन्मजात या जन्म के बाद होने वाली मस्तिष्कीय विकृति भी समाज विरोधी व्यक्तित्व का एक प्रमुख कारण है।

**गोरेन्स्टीन 1987** के अनुसार मनोविकारी व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों में किसी वस्तु पर विस्तृत रूप से ध्यान देने की अक्षमता पायी जाती है, जो स्पष्ट रूप से इस बात का संकेत करती है कि मस्तिष्क के अग्रजालि (Firontal loloe) के कार्यों में विकृति थी।

इसके अतिरिक्त समाज–विरोधी व्यक्तित्व वाले लोगों की मस्तिष्कीय तरंगों में भी सामान्य लोगों की तुलना में असामान्यता पायी जाती है। मनोवैज्ञानिकों के मतानुसार ऐसी असामान्यता दो तरह की होती है। पहला, ऐसे लोगों की मस्तिष्कीय तरंग सामान्य की अपेक्षा धीमी होती है, जो मस्तिष्क के उस भाग की अपरिपक्वता की ओर संकेत करता है। जो नैतिक समझ हेतु उत्तरदायी होता है। दूसरा इस प्रकार के व्यक्तियों की मस्तिष्कीय तरंग में **धनात्मक स्पाई किंग** होता है। इसी कारण इन लोगों का व्यवहार आवेगशील एवं आक्रामक होता है।

**कुरलैंड एवं उनके सहयोगियों 1979** का मत है कि समाज विरोधी व्यक्तित्व विकृति वाले लोगों की मस्तिष्कीय तरंग में धनात्मक स्पाईकिंग लगभग 40–45 प्रतिशत होता है, जबकि सामान्य व्यक्तियों में इसकी मात्रा केवल 1–2 प्रतिशत तक होती है।

d. **उत्तेजन जिज्ञासा**– मनोवैज्ञानिकों के अनुसार जिन लोगों में कुछ नये–नये कार्य करके नयी–नयी अनुभूतियाँ प्राप्त करने की जिज्ञासा अधिक होती है, ऐसे व्यक्तियों में समाज–विरोधी व्यक्तित्व विकृति की संभावना कुछ अधिक होती है। यह जिज्ञासा इन व्यक्तियों को नये–नये असामाजिक एवं अनैतिक कार्य करने हेतु प्रेरित करती है। जुकरमैन (1972) के अनुसार समाज–विरोधी व्यक्तित्व विकृति वाले लोगों का संवेदन–प्राप्ति मापनी (Sensation -Seekingscale) पर हमेशा उच्च प्राप्तांक प्राप्त होता है, जो उन लोगों में पायी जाने वाली अत्यधिक आवेगशीलता की ओर संकेत करता है।

**2. पारिवारिक कारक–** प्रिय पाठकों, जैविक के साथ–साथ परिवार से संबंधित भी ऐसे अनेक कारक हैं, जो व्यक्ति के व्यक्तित्व को विकृत करते हैं, क्योंकि व्यक्तित्व को विकसित करने में पारिवारिक वातावरण का बहुत बड़ा योगदान होता है। समाज–विरोधी व्यक्तित्व को विकसित करने वाले प्रमुख पारिवारिक कारक निम्नानुसार हैं–

a. माता–पिता द्वारा तिरस्कार एवं असंगति दिखाना
b. बचपन में माता–पिता को खो देना
c. दोषपूर्ण पारिवारिक अन्तः क्रियायें

**A. माता–पिता द्वारा तिरस्कार एवं असंगति दिखाना–** मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगात्मक अध्ययनों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि जिन बच्चों को माता–पिता द्वारा तिरस्कृत किया जाता है, जिन्हें पर्याप्त स्नेह नहीं मिलता, जिनकी उचित देखरेख नहीं हो

पाती उनमें समाज–विरोधी व्यक्तित्व विकृति के विकसित होने की संभावना अधिक होती है। **मैककॉर्ड तथा मैककॉर्ड** (1964) के अनुसार जब माता–पिता बात–बात में अपने बच्चों को तिरस्कृत करते हैं और उन्हें पर्याप्त अनुराग नहीं देते है तो इससे बच्चों में आगे चलकर मनोविकारी व्यक्तित्व विकसित हो जाता है। प्रमुख मनोवैज्ञानिक बस (1966) ने अपने अध्ययनों की समीक्षा के आधार पर यह बताया कि माता–पिता के दो विशेष तरह के व्यवहारों से मनोविकारी व्यक्तित्व की उत्पत्ति होने की संभावना अधिक होती है। जब माता–पिता अपने बच्चों के साथ दूरी तथा तटस्था बनाकर रखते हैं और उनके प्रति प्रेमभाव या स्नेह प्रदर्शित नहीं करते हैं तो बच्चों में भी इसी प्रकार का व्यवहार विकसित होने लगता है और वे भी दूसरे लोगों के साथ वैसा ही व्यवहार करने लगते हैं, जो उनमें धीरे–धीरे मनोविकारी व्यक्तित्व उत्पन्न करने लगता है। कभी–कभी बच्चों के प्रति माता–पिता का व्यवहार भी बहुत ही असंगता होता है। कभी–कभी तो वे बच्चों को कोई खास तरह का व्यवहार करने पर पुरस्कृत करते हैं और कभी–कभी उसी व्यवहार के लिये उन्हें दंडित किया जाता है परिणामस्वरूप बच्चे में आत्म–पहचान विकसित नहीं हो पाती है और वे समाज–विरोधी कार्यों को अच्छा मानकर बिना संकोच के उन्हें करने में संलग्न हो जाते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि बच्चों के साथ माता–पिता का व्यवहार ठीक न होने के कारण भी मनोविकारी व्यक्तित्व विकसित होने लगता है।

**B. बचपन में माता–पिता को खो देना–**

विभिन्न मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से यह बात भी सामने आती है कि जो बच्चे बचपन में ही माँ–बाप को किसी कारण से जैसे कि माता–पिता की मृत्यु या संबंध विच्छेद या तलाक के कारण खो देते हैं तो उनमें सामान्य की अपेक्षा अधिक तेजी से समाज–विरोधी व्यक्तित्व विकसित होने लगता है, क्योंकि माता–पिता का प्यार एवं देखरेख न मिलने से ऐसे बच्चे सांवेगिक रूप से ठीक तरह विकसित नहीं हो पाते हैं और असामाजिक एवं अनैतिक गतिविधियों में संलग्न हो जाते हैं।

**ग्रीर, (1964)** के अनुसार समाज विरोधी व्यक्तित्व के समूह में 60 प्रतिशत लोग ऐसे थे जो बचपन में ही अपने माता–पिता को खो चुके थे।

**C.दोषपूर्ण पारिवारिक अन्तः क्रियायें–** मनोवैज्ञानिकों के अनुसार दोषपूर्ण पारिवारिक परिस्थिति में पलने वाले बच्चे का व्यक्तित्व भी दोषपूण्र हो जाता है। **हीभर** (1943) एवं **ग्रीनएक्र** (1945) ने अपने अध्ययनों की समीक्षा करके बताया कि जब परिवार में ऐसी स्थिति हो कि माँ तो अपने बच्चों के प्रति अत्यधिक आसक्त हो या मोह रखती हो और पिता अपने क्षेत्र के एक सफल व्यक्ति होते हैं, किन्तु अपनी सफलता बनाये रखने के लिये समयाभाव के कारण बच्चों को पर्याप्त स्नेह नहीं दे पाते हैं, तो ऐसे बच्चे भी व्यक्तित्व विकृति का शिकार होकर समाज–विरोधी हो जाते है।

प्रिय पाठकों, उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि परिवार का वातावरण बच्चों को सकारात्मक या नकारात्मक रूप से अत्यधिक प्रभावित करता है।

**3. सामाजिक–सांस्कृतिक कारक–**

प्रिय विद्यार्थियों, परिवार के साथ–साथ सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों का प्रभाव भी व्यक्तित्व विकास पर अत्यधिक पड़ता है। व्यक्ति जिस समाज में रहता है, उस समाज में यदि सहयोग एवं सौहार्द्र का वातावरण न हो, हिंसा एवं भय का वातावरण हो तो ऐसे वातावरण में समाज विरोधी गतिविधियों के विकसित होने की अधिक संभावना होती है।

**स्मीथ, मेल्गस एवं बालवाई**(1996) के अनुसार जब व्यक्ति में निस्सहायता एवं निराशावाद की भावना इसलिये तीव्र हो जाती हैं, क्योंकि वह समाज जिसमें वह रहता है वहाँ की परिस्थितियाँ हमेशा ही उसके प्रतिकूल तथा विपरीत रही है, तो उसके मन में यह विचार दृढ़ होने लगता है कि जब हम अच्छे इन्सान नहीं बन सके तो दूसरे व्यक्ति कैसे बन जायेंगे। ऐसा विचार करके वह समाज–विरोधी कार्य करके लोगों में भय फैलाता है। **स्मीथ** (1988) के अनुसार हमारे पूंजीवादी समाज के प्रतियोगितापूर्वक भौतिकवादी तथा बिकाऊ मूल्यों के कारण समाज–विरोधी उन्मुखताओं तथा प्रवृत्तियों में अत्यधिक वृद्धि होती है। अध्ययनों के आधार पर यह बात भी सामने आयी है कि कुछ ऐसे सांस्कृतिक समूह हैं, जिनमें समाज–विरोधी गतिविधियाँ प्रायः कम पायी जाती है। इसका मुख्य कारण यह है कि जिन लोगों का व्यवहार उस संस्कृति के मानकों के अनुरूप नहीं होता है, उसे समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है। अतः ऐसे समूह के लोग प्रायः समाज–विरोधी गतिविधियाँ कम करते हैं।

प्रिय पाठकों, उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि समाज–विरोधी व्यक्तित्व विकृति हेतु कोई एक कारक उत्तरदायी नहीं है, वरन् जैविक, पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक सभी कारण व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करते हैं, तथापि इनमें पारिवारिक कारकों को मनोवैज्ञानिकों ने सर्बाधिक महत्वपूर्ण माना है।

## 11.6 समाज विरोधी व्यक्तित्व के उपचार–

प्रिय पाठकों, अब तक आप समाज–विरोधी व्यक्तित्व विकृति के लक्षणों और कारणों को भली–भाँति समझ गये होंगे। अब हम इस विकृति को दूर करने के उपायों का अध्ययन करेंगे।

समाज विरोधी व्यक्तित्व के उपचार हेतु निम्न विधियों को अपनाया जा सकता है–

1. व्यवहार चिकित्सा
2. स्वाध्याय
3. प्रार्थना
4. आहार
5. स्वस्थ वातावरण का निर्माण
6. आदर्श लक्ष्य का निर्धारण

इन सभी का विस्तृत विवेचन निम्नानुसार है–

1. **व्यवहार चिकित्सा**– समाज विरोधी व्यक्तित्व विकृति को नियंत्रित एवं दूर करने की दृष्टि से व्यवहार चिकित्सा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। व्यवहार में वांछनीय सकारात्मक परिवर्तन करके हम अपने व्यक्तित्व को सहजता से परिष्कृत कर सकते हैं, क्योंकि व्यवहार का प्रभाव हमारे विचारों एवं भावनाओं पर भी पड़ता है।

   पाठकों, यौगिक दृष्टि से हम विचार करें तो व्यवहार को परिष्कृत करने हेतु यम–नियम का पालन करने का निर्देश दिया जाता है। जैसा कि आप जानते हैं कि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह ये पाँच यम हैं तथा शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान ये पाँच नियम है। यम के द्वारा हमें सामाजिक समायोजन एवं नियम द्वारा हमें आत्मानुशासन में सहायता मिलती है और इनके द्वारा हमारा व्यवहार परिष्कृत होता है। यदि हम पाँच यम और पाँच नियमों में से किसी भी एक का भी यदि पूरी तत्परता के साथ दीर्घकाल तक निरन्तर पालन करते हैं तो स्वाभाविक रूप से

धीरे–धीरे हमारे भीतर सकारात्मकता का विकास होने लगता है और हमारा व्यवहार, विचार एवं भावनायें परिष्कृत होने लगती हैं।

समाज–विरोधी व्यक्तित्व विकृति को दूर करने में व्यवहार चिकित्सा कितनी प्रभावी है। इसको लेकर मनोवैज्ञानिकों द्वारा भी अनेक अध्ययन किये गये हैं और इनके परिणाम सकारात्मक रहे हैं। व्यवहार चिकित्सा की भी अनेक विधियाँ हैं, जिनका समाज विरोधी व्यक्तित्व के सन्दर्भ में सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है। इस क्षेत्र में जिन मनोवैज्ञानिकों द्वारा कार्य किया गया है, उनमें बैण्डरा का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने नियंत्रित परिस्थिति में व्यवहार चिकित्सा का प्रयोग करके समाज–विरोधी व्यक्तित्व का उपचार करने में महत्वपूर्ण सफलता अर्जित की है। इस सन्दर्भ में बैण्डरा का विचार है कि व्यवहार चिकित्सा का प्रयोग नियंत्रित परिस्थिति में ही करना चाहिये, क्योंकि बिना नियंत्रण के उन लोगों के सामने असामाजिक व्यवहार को अनुचित एवं अनैतिक मानने एवं समझने का आदर्श प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है। बैण्डरा के मत का ही समर्थन करते हुये **वाइलैन्ट** ने भी नियंत्रित परिस्थिति में ही व्यवहार चिकित्सा का प्रयोग करने की बात कही है। इसके साथ–साथ वाइलैन्ट ने अपने अध्ययनों की समीक्षा के आधार पर यह भी बताया कि समाज–विरोधी व्यक्तितव विकृति के उपचार में दण्ड अधिक प्रभावशाली नहीं है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि व्यवहार में यथेष्ट सकारात्मक परिवर्तन करके काफी हद तक समाज–विरोधी व्यक्तित्व विकृति को दूर किया जा सकता है।

2. **स्वाध्याय–** स्वाध्याय के द्वारा भी समाज–विरोधी व्यक्तित्व का उपचार किया जा सकता है। स्वाध्याय का अर्थ है–''स्वयं का अध्ययन'' अर्थात् यह विचार परिवर्तन के द्वारा व्यवहार परिवर्तन की अत्यन्त प्रभावी एवं महत्त्वपूर्ण विधि है। इस विधि में सद्विचारों के आलोक में आत्म–मूल्यांकन करके उन विचारों के अनुरूप अपने जीवन में यथेष्ट परिवर्तन लाने के प्रयास किये जाते है। स्वाध्याय द्वारा व्यक्ति के चारों ओर एक सकारात्मक मानसिक वातावरण विनिर्मित होता है, परिणामस्वरूप सद्चिन्तन विकसित होता है, जो उसे नैतिकता एवं सामाजिकता के अनुरूप सत्कर्म हेतु प्रेरित करता है। इस प्रकार नियमित दीर्घकाल तक स्वाध्याय द्वारा समाज–विरोधी व्यवहार को नियंत्रित किया जा सकता है।
3. **प्रार्थना**– पाठकों, जिस प्रकार स्वाध्याय का संबंध विचारतंत्र से है, उस प्रकार प्रार्थना का संबंध भाव संवेदनाओं से है। प्रार्थना द्वारा हमारी भाव संवेदनाओं में आश्चर्यजनक ढंग से सकारात्मक परिवर्तन आते है। जब व्यक्ति सच्चे मन से प्रार्थना करता है तो उसका सम्पर्क ब्रह्माण्डीय उर्जा से हो जाता है। वह अपने भीतर अपार उत्साह एवं शांति महसूस करता है। प्रार्थना के दौरान हमारी चेतना अपने उच्चतम स्तर पर होती है। इस प्रकार प्रार्थना द्वारा भावनाओं में सकारात्मक परिवर्तन करके विचारों और व्यवहारों में वांछित परिवर्तन किये जा सकते हैं।
4. **आहार**– आहार का किसी भी प्राणी के व्यक्तित्व विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। जैसा कि कहा भी गया है–

''जैसा खाये अन्न, वैसा बने मन।''

**अर्थात**– हम जिस प्रकार का आहार लेते है, उस आहार का सूक्ष्म प्रभाव हमारे मन पर भी पड़ता है। आहार केवल शरीर को ही प्रभावित नहीं करता वरन अप्रत्यक्ष रूप से मन पर भी उसका गहरा प्रभाव पड़ता है। समाज विरोधी व्यक्तितव के सन्दर्भ में यदि हम आहार की

बात करें तो ऐसे व्यक्तित्व वाले लोगों को सात्विक आहार, जो हल्का, सुपाच्य, मधुर गुणों से युक्त तथा स्वास्थ्यवर्द्धक होता है, उसे ग्रहण करना चाहिये तथा राजसिक और तामसिक पदार्थों को खाने से बचना चाहिये। राजसिक आहार ही व्यक्ति के भीतर आवेगशीलता, आक्रामकता, क्रोध, हिंसा इत्यादि मनोविकारों को जन्म देता है। अतः आहार नियंत्रण द्वारा भी समाज–विरोधी व्यक्तित्व विचार को नियंत्रित किया जा सकता है।

5. **स्वस्थ वातावरण का निर्माण**– प्रिय पाठकों, किसी भी प्राणी के व्यक्तित्व को विनिर्मित करने में वातावरण का महत्वपूर्ण योगदान होता है। वातावरण प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से हमें निरन्तर प्रभावित करता रहता है और जन्म के बाद हम अपने आसपास के वातावरण से बहुत कुछ सीखते है। अतः समाज–विरोधी व्यक्तित्व विकार को नियंत्रित एवं दूर करने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि व्यक्ति अपने 24 घंटे जहाँ–जहाँ व्यतीत करता है, वहाँ का वातावरण स्वस्थ अर्थात् सकारात्मक हों। इस हेतु सर्वप्रथम पारिवारिक वातावरण पर ध्यान देना चाहिये। परिवार का वातावरण शांत एवं सौहार्द्रपूर्ण होना चाहिये, जिससे उस व्यक्ति को यह अहसास हो कि वह भी अपने परिवार का एक महत्वपूर्ण सदस्य है और परिवार के लोग उसके हितैषी हैं, दुश्मन नहीं, परिवार के साथ–साथ समाज का वातावरण भी स्वस्थ होना अति आवश्यक है, जिसमें रहकर व्यक्ति समाज एवं लोक–कल्याणकारी कार्यों के लिये प्रेरित हो सकें न कि असामाजिक एवं अनैतिक कार्यों की ओर अतः स्पष्ट है कि स्वस्थ वातावरण विनिर्मित करके भी समाज–विरोधी व्यक्तित्व विकृति को नियंत्रित किया जा सकता है।
6. **आदर्श लक्ष्य का निर्धारण**– अपने जीवन के समुचित सार्थक उपयोग की दिशा निर्धारित करने के लिये प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का कोई न कोई आदर्श लक्ष्य अवश्य होना चाहिये, जिससे कि हमारी समस्त शक्तियाँ एक निश्चित दिशा में क्रियाशील होकर प्रभावी परिणाम प्रदान कर सकें। लक्ष्य विहीन जीवन का कोई मूल्य नहीं कोई महत्व नहीं। ऐसे जीवन को हम जीते तो है, किन्तु वह जीवन हमें कुछ उपलब्धियाँ नहीं देता। अतः समाज–विरोधी व्यक्तित्व वाले लोगों को इस हेतु प्रेरित करना चाहिये कि वह भी अपने लिये श्रेष्ठतम लक्ष्य का चयन करें और उस लक्ष्य के अनुरूप अपना जीवन व्यतीत करें।

इस प्रकार समाज–विरोधी व्यक्तित्व विकार के उपचार की अनेक विधियों का प्रयोग किया सकता है।

## 11.7 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों, उपरोक्त विवरण से आप समझ गये होंगे की समाज विरोधी व्यक्तित्व में व्यक्ति के क्रियाकलाप सामाजिक एवं नैतिक मानकों के अनुरूप नहीं होते है। उसका व्यवहार अत्यन्त आक्रामक एवं आवेगशील होता हैं तथा सबसे प्रमुख बात यह है कि इस प्रकार के व्यवहार के प्रति उसके मन में न तो ग्लानि का भाव उत्पन्न होता है और न ही वह दण्ड के भय से चिन्तित रहता है, अपितु वह बिना संकोच के इस प्रकार के कार्यों को अंजाम देता है। इस प्रकार के व्यक्तित्व को उत्पन्न करने में किसी एक कारक का योगदान नहीं है, वरन जैविक, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक इत्यादि सभी कारकों की भूमिका है। यदि हम इस विचार के उपचार पर दृष्टि डालें तो इसमें व्यवहार चिकित्सा, स्वाध्याय, प्रार्थना, आहार–नियंत्रण, स्वस्थ वातावरण का निर्माण इत्यादि विधियाँ प्रभावी सिद्ध हो सकती है।

**अभ्यासार्थ प्रश्न– (खण्ड– क)**

**(सत्य/असत्य)**

1. DSM-IV (TR) के अनुसार समाज–विरोधी व्यक्तित्व विकृति वाले व्यक्ति की आयु कम से कम 18 वर्ष अनिवार्य रूप से होनी चाहिये। (सत्य/असत्य)
2. समाज–विरोधी व्यक्तित्व विकृति वाले लोगों में आत्मदोष की भावना होती है (सत्य/असत्य)
3. आवेगशीलता एवं आक्रामकता समाज–विरोधी व्यक्तित्व की एक प्रमुख विशेषता है। (सत्य/असत्य)
4. समाज–विरोधी व्यक्तित्व का मस्तिष्कीय तरंग धीमा होता है। (सत्य/असत्य)
5. समाज–विरोधी व्यक्तित्व का एक प्रमुख कारण आनुवांशिकता है। (सत्य/असत्य)

**(खण्ड–ख)**

1. समाज विरोधी व्यक्तित्व के प्रमुख कारण हैं–
   (A) पारिवारिक (B) सामाजिक
   (C) जैविक (D) उपर्युक्त सभी
2. समाज–विरोधी व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषता है–
   (A) आवेगशीलता
   (B) गत अनुभूतियों से लाभ उठाना
   (C) चिंता का भाव
   (D) आत्मदोष का भाव
3. समाज–विरोधी व्यक्तित्व विकृति का दूसरा नाम है–
   (A) मनोविकारी व्यक्तित्व
   (B) समाजविकारी व्यक्तित्व
   (C) A एवं B दोनों
   (D) उपर्युक्त में से कोई नहीं

## 11.8 शब्दावली

**DSM-IV (TR) -** Diagnostic and statistical manual of mental disarder (test Revision) DSM-IV (TR) असामान्य व्यवहारों के नैदानिक वर्गीकरण का अन्तर्राष्ट्रीय तंत्र (International system) है।

**आत्म–मूल्यांकन–** स्वयं के गुण एवं दोषों, अच्छाइयों एवं बुराइयों दोनों का तटस्थ निरीक्षण करना।

**स्वाध्याय–** स्वयं का अध्ययन (Study of slf) अर्थात् सद्विचारों के परिप्रेक्ष्य में आत्म–मूल्यांकन की प्रक्रिया।

**सात्विक आहार–** सतोगुण को बढ़ाने वाला, सुख तथा आयु की वृद्धि करने वाला, प्रसन्नता प्रदान करने वाला, स्निग्ध, मधुर रस से युक्त, सुपाच्य आहार।

**राजसिक आहार**– रजोगुण की वृद्धि करने वाला, स्वाद के लिये खायो जाने वाला, अत्यधिक तीखा, खट्टा, जलन उत्पन्न करने वाला आहार।

**तामसिक आहार–** तमोगुण को बढ़ाने वाला, बासी, दुर्गन्ध युक्त, जूठा, अधपका, स्वाद के लिये खाया जाने वाला तथा मात्रा में भी अधिक ग्रहण किया जाने वाला आहार।

**व्यवहार चिकित्सा–** एक ऐसी प्रविधि जिसमें अपअनुकूलित व्यवहार (Maladaptive behaviour) के स्थान पर अनुकूलित व्यवहार (Adaptive behaviour) सिखाने का प्रयास किया जाता है।

## 11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

**खण्ड–क**

**(सत्य/असत्य)**

1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य
4. सत्य
5. सत्य

**खण्ड–क**

**(वस्तुनिष्ठ प्रश्न)**

1- D 2- A 3- C

## 11.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान–अरूण कुमार सिंह (2010), मोतीलाल बनारसीदास, बंग्लोरोड, जवाहर नगर दिल्ली।

## 11.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. असामान्य मनोविज्ञान– डॉ. आर. के. ओझा, (1991), भार्गव बुक हाउस, आगरा।

## 11.12 निबंधात्मक प्रश्न

**प्रश्न–1.** समाज–विरोधी व्यक्तित्व विकृति से आप क्या समझते है? इसके कारण, लक्षण एवं उपचार की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

# इकाई 12 :–मानसिक दुर्बलताः अर्थ, स्वरूप, प्रकार, कारण, एवं उपचार

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 मानसिक दुर्बलता का अर्थ एवं अवधारणा
12.4 मानसिक दुर्बलता का स्वरूप
12.5 मानसिक दुर्बलता के प्रकार
12.6 मानसिक दुर्बलता के कारण
12.7 मानसिक दुर्बलता का उपचार
12.8 सारांक्ष
12.9 शब्दावली
12.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
12.12 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.13 निबंधात्मक प्रश्न

## 12.1 प्रस्तावना

मानसिक दुर्बलता जिसे अंग्रेजी में मेंटल रिटार्डेशन कहा जाता है इसका वर्णन मनोरोगों के वर्गीकरण के लिए विकसित किए गए डी.एस.एम.–4–टी.आर के एक्सिस–2 में पर्सेनैलिटी डिस्आर्डर के अन्तर्गत वर्णित किया गया है। इस मानसिक दुर्बलता से हम सभी सामान्य रूप में परिचित हैं क्योंकि मानसिक दुर्बलता अथवा मंदन एक आम विकृति है जिसके रोगी हमें आसानी से देखने को मिल जाते हैं। बहुत से देशों में इस विकृति से पीड़ित बच्चों के लिए अलग से स्कूल एवं कॉलेज विकसित किए गए हैं, जहॉ इन्हें साधारण बच्चों की तुलना में विशेष प्रकार से शिक्षा एवं प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है।मानसिक दुर्बलता/मंदन से ग्रस्त लोगों को आज हम अपने आस–पास आसानी से पा और पहचान सकते हैं, आवश्यकता है बस इसके बारे में जानकारी प्राप्त करने की। मानसिक दुर्बलता के लक्षण कौन से हैं? इसके होने की वजह क्या है? इससे निपटने का उपाय क्या है?इन सभी जिज्ञासाओं का समाधान आप इस इकाई में पायेंगे यही इस इकाई की विशेषता है।

## 12.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

1. मानसिक दुर्बलता का अर्थ समझ सकेंगे।
2. मानसिक दुर्बलता की विभिन्न परिभाषाओं को जान सकेंगे।
3. मानसिक दुर्बलता के लक्षणों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे एवं उन्हें पहचानना सीख जायेंगे।
4. मानसिक दुर्बलता के विभिन्न कारणों से परिचित हो पायेंगे।
5. मानसिक दुर्बलता के प्रकारों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
6. मानसिक दुर्बलता के उपचार के तरीकों के बारें में जानेंगे।

## 12.3 मानसिक दुर्बलता(Mental Retardation) का अर्थ एवं अवधारणा

मानसिक मंदन को डायग्नोस्टिक एण्ड स्टेटिस्टिकल मैनुअल ऑफ मेंटल डिस्आर्डर चतुर्थ एडिसन टेक्स्ट रिवीजन (DSM-IV-TR) के एक्सिस–2 में व्यक्तित्व विकृतियों के साथ रखा गया था इसे अब डायग्नोस्टिक एण्ड स्टेटिस्टिकल मैनुअल ऑफ मेंटल डिस्आर्डर–5 में वर्णित बौद्धिक विकासात्मक विकृति के अन्तर्गत समाहित कर दिया गया है। मानसिक दुर्बलता या मंदन के शाब्दिक अर्थ से यही परिलक्षित होता है कि मानसिक कार्यों को सम्पादित करने में जो कमजोर हैं अथवा मानसिक कार्यों को पूरा करने में बहुत धीमे होते हैं वही मानसिक दुर्बलता या मंदन से ग्रस्त समझना चाहिए। बहुत से मनोवैज्ञानिकों एवं उनके समूह ने मानसिक दुर्बलता को परिभाषित किया है इन परिभाषाओं के अवलोकन से हम मानसिक दुर्बलता के संप्रत्यय को भली भॉति समझ सकते हैं। आइये इन परिभाषाओं के बारे में जाने।

मानसिक दुर्बलता/मंदन की परिभाषाएँ(Definitions of Mental Retardation)–

अमेरिकन एशोसियेसन ऑन मेंटल रिटार्डेशन के अनुसार 'मानसिक मंदता कासंबंध वर्तमान क्रियाव्यवहार में पर्याप्त कमी से होती हैं इसमें सार्थक रूप से निम्न औसत बौद्धिक क्रिया होती है तथा निम्नांकित उपयुक्त समायोजी कौशल क्षेत्रों में दो या दो से अधिक में संबंधित कमियॉ साथ–साथ होती हैं – संचार, स्वयं की देखभाल, घरेलू जीवन, सामाजिक कुशलता, सामुदायिक उपयोगिता, दिशा–बोध, स्वास्थ्य, सुरक्षा, कार्यात्मक शिक्षा, अवकाश एवं कार्य। मानसिक दुर्बलता 18 साल की आयु के पहले ही अभिलक्षित होती है। ( 'Mental retardation refers to substantial limitations in present functioning. It is characterised by significantly sub average intellectual functioning, existing concurrently with related limitations in two or more of the following applicable adaptive skill areas: communication, self-care, home living, social skills, community use, self-direction, health and safety, functional academics, leisure and work. Mental retardation manifests before age 18.' The American Association on Mental Retardation, 1992, p 01) एक अन्य मनोवैज्ञानिक डेविसन एवं उनके सहयोगी नील के अनुसार –'मानसिक मंदता एक ऐसी विकृति है जिसे ऐसी बौद्धिक कार्यक्षमता एंव अनुकूलित व्यवहार से चिह्नित किया जाता है जो कि औसत से काफी निचले दर्जे का होता है।' ( 'A disorder marked by intellectual functioning and adaptive behaviour that are well below average.'- Davison & Neale : Abnormal Psychology an Integrative Approach, 2010, p. 581)

मनोवैज्ञानिक कार्सन, बुचर एवं मिनेका अपनी पुस्तक 'एबनॉरमल साइकोलॉजी' में मानसिक मंदता को समझाने के लिए अमेरिकन साइकियेट्रिक एसोसियेसन (1994) द्वारा दी हुई परिभाषा को उद्धृत करते हुए कहते हैं कि– 'मानसिक मंदता सामान्य बौद्धिक कार्यात्मक क्षमता का सार्थक रूप में औसत से निम्न स्तर है जिसमें कतिपय कुशलता से जुड़े क्षेत्रों जैसे कि, स्वयं की देखभाल, कार्य, स्वास्थ्य और सुरक्षा से संबंधित अनुकूलन की

क्षमता में महत्वपूर्ण कमी पायी जाती है।' (The American Psychiatric Association in DSM-IV defines mental retardation as 'significantly sub average general intellectual functioning…..that is accompanied by significant limitations in adaptive functioning in certain skill areas such as self care, work, health and safety'. Abnormal Psychology and Modern Life, 1998, p. 506)।

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण द्वारा हम निम्न निष्कर्षों पर पहुॅचते हैं।–

1. मानसिक दुर्बलता/मंदता से ग्रस्त व्यक्ति की बुद्धिलब्धि अवश्य ही 70 से नीचे होती है।
2. मानसिक मदता से ग्रस्त व्यक्ति सामान्य व्यक्तियों की तुलना में बौद्धिक दृष्टि से काफी निचले स्तर पर होता है जिसके परिणामस्वरूप वह अपने दैनिक कार्यों जैसे कि खुद की देखभाल, सुरक्षा, स्वास्थ्य, रोजमर्रा के कार्यों का भी निष्पादन ठीक प्रकार से नहीं कर पाता है।
3. इस विकृति से ग्रस्त व्यक्ति अपने सामाजिक दायित्वों का पालन करने में अक्षम होते हैं एवं इनमें परिस्थितियों से तालमेल बैठाने में अपंग साबित होते हैं।
4. इस तरह की मानसिक मंदता की शुरूआत 18 साल की उम्र से पूर्व ही हो जाती है।

## 12.4 मानसिक दुर्बलता(Mental Retardation) का स्वरूप

मानसिक मंदता से ग्रस्त बच्चों को पहचानना अत्यंत ही आसान होता है क्योंकि इनमें कुछ खास विशेषतायें पायी जाती हैं। यदि हम इन विशेषताओं को जान लें तो इनके आधार पर मानसिक रूप से दुर्बल बच्चों को पहचाना जा सकता है। आइये इन विशेषताओं के बारे में जानें–

1. **औसत से निम्न बौद्धिक क्षमता** (Below average intellectual capacity)– ऐसे व्यक्तियों की बौद्धिक क्षमता सामान्य व्यक्तियों की तुलना में काफी निम्नस्तरीय होती है। इसमें व्यक्ति का बुद्धि स्तर उम्र के अनुसार भी सामान्य से नीचे होता हैं यही कारण है कि यह कहा जाता है कि मानसिक दुर्बलता में एक अधो–सामान्य मानसिक अवस्था की अवस्था होती है।
2. **निम्नस्तरीय समायोजन क्षमता** (Low level adaptive ability)– मानसिक दुर्बलता से ग्रस्त व्यक्तियों की समायोजन क्षमता सीमित होती है। ऐसे व्यक्तियों को दिन प्रतिदिन की परिस्थितियों में स्वयं को समायोजित करने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है क्योंकि निम्न बौद्धिक क्षमता होने के कारण ये परिस्थितियों को समझने में देर लगाते हैं। फलतः शिक्षण प्रशिक्षण द्वारा सीखने की इनकी गति भी काफी धीमी होती है।
3. **सामाजिक कौशलों की कमी** (Lack of social skills)– ऐसे व्यक्तियों में समाज में स्वयं को एक सम्मानित व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करने हेतु आवश्यक कौशलों का अभाव होता हैं। ये नैतिक मर्यादाओं मानदण्डों को भली प्रकार समझ नहीं पाते हैं फलतः नैतिक मर्यादाओं एवं सामाजिक नियमों का उल्लंघन इनसे स्वतः ही हो जाता है।

4. **सीमित संज्ञानात्मक क्षमता** (Limited cognitive capacity)– इन व्यक्तियों की संज्ञानात्मक क्षमता सीमित होती है। जिसके परिणामस्वरूप इनकी सीखने की गति धीमी होती है, समस्याओं को समझने एवं हल ढूँढ़ना इनके लिए अत्यंत कठिन होता है। इनकी स्मृति, अवधान, चिन्तन एवं प्रत्यक्षण साधारण लोगों की तुलना में अविकसित स्तर का होता है। फलतः इससे ग्रसित व्यक्ति की संज्ञानात्मक प्रक्रियायें मंद गति से संचालित होती हैं एवं पूर्णता तक पहुँच ही नहीं पाती हैं।
5. **सीमित सांवेगिक बुद्धि** (Limited emotional intelligence)– मानसिक मंदता से ग्रस्त व्यक्तियों की सांवेगिक बुद्धि भी सीमित होती है। ये स्वयं के साथ साथ दूसरों के संवेगों को पहचान पाने में देर लगाते हैं एवं प्रायः उपस्थित सामाजिक परिस्थिति के अनुरूप संवेग अभिव्यक्त कर पाने में असमर्थ रहते हैं।
6. **सामाजिक अभिप्रेरणा की कमी** (Lack of social motivation)– इन व्यक्तियों में सामाजिक अभिप्रेरणा की कमी पायी जाती है। ये संबंधों के बनाये रखने के प्रति उत्सक नहीं दिखलाई पड़ते हैं दूसरे शब्दों में ये संबधों को बनाये रखने के लिए जरूरी प्रेरणा को इनमें अभाव होती है। परिणामस्वरूप सामाजिक कार्यों में इनकी भागीदारी नहीं के बराबर होती है।
7. **शिक्षा एवं प्रशिक्षण प्रदान करने में कठिनाई** (Difficulty in providing education and training)– मानसिक दुर्बलता से ग्रस्त व्यक्तियों की बौद्धिक क्षमता न्यून होने तथा संज्ञानात्मक प्रक्रियायें धीमी होने के कारण उनकी उम्र के व्यक्तियों की तुलना में उन्हें शिक्षित करना या प्रशिक्षण प्रदान करना अत्यंत कठिन होता है फलतः ये इन चीजों में काफी पिछड़ जाते हैं एवं इन्हें रोजगार मिलने में भी कठिनाई होती है।

   डी.एस.एम.–4टी.आर में वर्णित नैदानिक कसौटी के अध्ययन से मानसिक मंदता/दुर्बलता का स्वरूप और भी स्पष्ट हो जाता है। इसका वर्णन निम्नांकित है।–

**डी.एस.एम 4 टी.आर.– मानसिक मंदता की नैदानिक कसौटी (DSM-IV- TR : The Diagnostic Criteria for Mental Retardation)**

मानसिक मंदता (Mental Retardation)

1 सार्थक रूप से निम्नऔसत बौद्धिक प्रकार्यात्मकताः व्यक्तिगत रूप से प्रशासित बुद्धि–लब्धि परीक्षण पर लगभग 70 के बराबर और कम बुद्धि लब्धि का पाया जाना ( शिशुओं के लिए यहॉ पर सार्थक रूप से निम्नऔसत बौद्धित प्रकार्यात्मकता पर नैदानिक निर्णय होना) (Significantly subaverage intellectual functioning: an IQ of approximately 70 or below on an individually administered IQ test (for infants, a clinical judgment of significantly subaverage intellectuall functioning).

2 निम्नांकित में से कम से कम किन्ही दो क्षेत्रों में वर्तमान अनुकूली प्रकार्यों में विघटन अथवा तत्कालीन न्यूवता ( जैसे कि, व्यक्ति जिस सांस्कृतिक समूह एवं आयु वर्ग का है उसके लिए अपेक्षित मानकों पर उसकी प्रभावशीलता): संचार, स्व–देखभाल, घर में रहना, सामाजिक/आन्तर्वैयक्तिक कुशलतायें, सामुदायिक संसाधनों का उपयोग, स्व–दिशाबोध, प्रकार्यात्मक शैक्षणिक कुशलतायें, कार्य, अवकाश, स्वास्थ्य, और सुरक्षा। (Concurrent deficits or impairments in present adaptive functioning (i.e., the person's

effectiveness in meeting the standards expected for his or her age by his or her cultural group) in at least two of the following areas: communication, self-care, home living, social/interpersonal skills, use of community resources, self-direction, functional academic skills, work, leisure, health, and safety.

**3** 18 वर्ष की आयु से पूर्व ही रोग हो जाना। (The onset is before age 18 years).

*Code* based on degree of severity reflecting level of intellectual impairment:

| | | |
|---|---|---|
| 317 | Mild Mental Retardation: | IQ level 50-55 to approx. 70 |
| 318.0 | Moderate Mental Retardation: | IQ level 35-40 to 50-55 |
| 318.1 | Severe Mental Retardation: | IQ level 20-25 to 35-40 |
| 318.2 | Profound Mental Retardation: | IQ level below 20 or 25 |

319 Mental Retardation, Severity Unspecified: when there is strong presumption of Mental Retardation but the person's intelligence is untestable by standard tests.

उपरोक्त कसौटी के अध्ययन से निम्नलिखित नैदानिक विशेषतायें स्पष्ट होती हैं।–

मानसिक मंदता या दुर्बलता की सर्वाधिक आवश्यक विशेषता व्यक्ति में सार्थक रूप से निम्नऔसत सामान्य बौद्धिक प्रकार्यात्मकता का होना है जिसका वर्णन कसौटी 'ए' (Criterion A) में किया गया है, जिसका अर्थ यह है कि किसी व्यक्ति अथवा बालक को मानसिक रूप से दुर्बल घोषित करने के लिए निम्नांकित क्षेत्रों में से कम से कम किन्ही दो में अनुकूलन कौशलों में सार्थक कमी पायी जानी चाहिए। ये क्षेत्र हैंः संचार, स्व–देखभाल, घर में रहना, सामाजिक/आन्तर्वैयक्तिक कुशलतायें, सामुदायिक संसाधनों का उपयोग, स्व–दिशाबोध, प्रकार्यात्मक शैक्षणिक कुशलतायें, कार्य, अवकाश, स्वास्थ्य, और सुरक्षा, इनका वर्णन कसौटी 'बी'(Criterion B)में किया गया है। इस रोग की शुरूआत हर हालत में 18 साल की आयु से पहले होनी चाहिए (Criterion C)। मानसिक मंदता के बहुत से विभिन्न कारण हैं और इसे केंद्रीय तंत्रिका तंत्र के कार्यों को प्रभावित करने वाले बहुत सी मनोरोगी प्रक्रियाओं के कॉमन रास्ते के रूप में देखा जा सकता है।

साधारण बौद्धिक क्षमता (General intellectual functioning) से यहा पर तात्पर्य किन्ही एक अथवा दो मानकीकृत परीक्षणों के व्यक्तिगत रूप से प्रशासित किये जाने के उपरान्त किये गये मूल्यॉकन के आधार पर प्राप्त बुद्धि–लब्धि से है। इन बुद्धि–लब्धि परीक्षणों में वेस्लर इन्टेलीजेन्स स्केल, स्टैनफोर्ड–बिने मापनी एवं कॉफमैन असेस्मेंट बैटरी फॉर चिल्ड्रन प्रमुख हैं। सार्थक रूप से निम्नऔसत प्रकार्यात्मकता को बुद्धि–लब्धि के 70 प्राप्तांक के बराबर अथवा 70 से कम प्राप्तांक के रूप में परिभाषित किया जाता है। इसे औसत बुद्धिलब्धि के मध्यमान से दो मानक विचलन नीचे के रूप में भी समझा जा सकता है।

अनुकूलन प्रकार्यात्मकता (Adaptive functioning) से यहॉ पर तात्पर्य इस बात से होता है कि कितने बेहतर तरीके से व्यक्ति जीवन की सामान्य मांगों या जरूरतों से निपटता है एवं कितनी अच्छी तरह वह जिस भी संस्कृति समुदाय अथवा समूह से संबंध रखता है जिस उम्र समूह का वह है उस उम्र के लोगों को उसके समुदाय, समूह अथवा

संस्कृति के द्वारा व्यक्तिगत स्वतंत्रता के जो मानक निर्धारित किए गए हैं उनका वह पालन करता है या समझता है।

उपरोक्त वर्णन से आप अवश्य ही मानसिक मंदता/दुर्बलता को स्वरूप को भली प्रकार समझने में सक्षम हुए होंगे। आइये अब अपनी जानकारी का परीक्षण करें।

**अभ्यास प्रश्न 1** –निम्नलिखित में से कौन सा कथन मानसिक मंदता के संबंध में असत्य है?

क–व्यक्ति में अनुकूली कुशलता की कमी होती है।
ख– निर्णय क्षमता की कमी पायी जाती है।
ग– औसत से अधिक बौद्धिक क्षमता होती है।
घ– अनुक्रिया काल अधिक होता है।

## 12.5 मानसिक मंदता/दुर्बलता के प्रकार (Types of Mental Retardation/deficiency)

नैदानिक मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मानसिक दुर्बलता के कई स्तर हैं जिन्हें कई कसौटियों के आधार पर भली प्रकार से समझा जा सकता है। आइये उन कसौटियों के आधार पर मानसिक दुर्बलता के प्रकारों के बारे में अपनी जानकारी बढ़ायें।

मानसिक दुर्बलता की कसौटियों में तीन प्रकार की कसौटियॉ प्रमुख हैं। जिनका वर्णन क्रमवार किया जायेगा। ये निम्न हैं–

**(क)** बुद्धि लब्धि की कसौटी के आधार पर
**(ख)** अनुकूलन क्षमता के आधार पर
**(ग)** नैदानिक कसौटी के आधार पर

(क) बुद्धि लब्धि की कसौटी के आधार पर (On the basis of the criterion of IQ)– अमेरिकन साइकियेट्रिक एसोशियेसन ने बुद्धि लब्धि के आधार पर मानसिक दुर्बलता के चार प्रकार निर्धारित किए हैं–

1. माइल्ड मानसिक दुर्बलता
2. मॉडरेट मानसिक दुर्बलता
3. सीवियर मानसिक दुर्बलता
4. प्रोफाउण्ड मानसिक दुर्बलता

इन प्रकारों का वर्णन निम्नांकित हैं।

1 **माइल्ड मानसिक दुर्बलता** (mild mental retardation)– इस प्रकार के अन्तर्गत आने वाले व्यक्तियों का बुद्धि लब्धि स्तर 52 से 67 के बीच होता है। तथा इस बुद्धि लब्धि में वयस्कावस्था में भी कोई बदलाव नहीं आता है। यदि इनकी सामान्य लोगों से तुलना करें तो इनकी बुद्धि लब्धि 9 से 11 वर्ष के बालकों की बुद्धि लब्धि के समान होती है। बुद्धि लब्धि में कमी के अलावा इनमें किसी प्रकार की मस्तिष्कीय विकृति नहीं पायी जाती है एवं न ही किसी प्रकार की दैहिक विसंगति ही इनमें होती है। इनकी समायोजन क्षमता किशोरों की समायोजन क्षमता के समतुल्य होती है जिसे कि माता–पिता अथवा शिक्षकों के सहयोग विशेष प्रशिक्षण प्रदान कर बढ़ाया जा सकता है। इन्हें जीविका चलाने हेतु कुछ व्यावसायिक कौशल भी सिखाये जा सकते हैं।

2 **मॉडरेट मानसिक दुर्बलता** (moderate mental retardation)–इस प्रकार के व्यक्तियों में बुद्धि लब्धि का स्तर 35 से 51 के बीच होता है। माइल्ड मानसिक दुर्बलता के

रोगियों से इनकी स्थिति कहीं ज्यादा चिंतनीय होती है। यदि इनकी सामान्य लोगों से तुलना करें तो इनकी बुद्धि लब्धि 4 से 7 वर्ष के बालकों के समान होती है। माइल्ड मानसिक दुर्बलता के व्यक्तियों के तुलना में इन्हें कुछ ही कौशल जैसे अक्षरज्ञान आदि ही बहुत विशेष प्रशिक्षण के आधार पर ही सिखाया जा सकता है। इनकी शारीरिक बनावट में भी बेडौलपन एवं कुरूपता पायी जाती है जिसकी वजह से उनके अंगों के बीच संचालन समन्वय सम्बंधी दोष पाये जाते हैं। इनमें आक्रामकता का स्तर भी बढ़ा चढ़ा होता है।

3 **सीवियर मानसिक दुर्बलता** (severe mental retardation)– इस प्रकार के व्यक्तियों में बुद्धि लब्धि का स्तर 20 से 35 के बीच होता है। मॉडरेट मानसिक दुर्बलता के रोगियों से इनकी स्थिति कहीं ज्यादा चिंतनीय एवं गंभीर होती है। इन्हें आश्रित दुर्बल भी कहा जाता है क्योंकि ये स्वयं की देखभाल ठीक से नहीं कर पाते एवं दूसरों पर निर्भर रहते हैं। इनके अंगों के बीच संचालन समन्वय संबंधी दोष पाये जाने की साथ ही भाषा विकास की समस्या भी पायी जाती है। ये ठीक से बातचीत भी नहीं कर पाते हैं। इनमें इन्द्रियों की संवेदनशीलता से संबंधित कमियॉ भी पायी जाती हैं। मॉडरेट मानसिक दुर्बलता के व्यक्तियों के तुलना में इनसे कुछ करवाने के लिए विशेष रूप से प्रशिक्षिति सुपरवाइजर की उपस्थिति की अनिवार्यता होती है।

4 **प्रोफाउण्ड मानसिक दुर्बलता** (profound mental retardation)–इस प्रकार के व्यक्तियों में बुद्धि लब्धि का स्तर 20 से नीचे होता है। सीवियर मानसिक दुर्बलता के रोगियों से इनकी स्थिति और भी ज्यादा चिंतनीय होती है। एक प्रकार से यह मानसिक दुर्बलता का सबसे गंभीर प्रकार है। इनकी शारीरिक बनावट में भी बेडौलपन एवं कुरूपता पायी जाती है जिसकी वजह से उनके अंगों के बीच संचालन समन्वय सम्बंधी दोष पाये जाते हैं। इन लोगों में केंद्रीय तंत्रिका तंत्र संबंधी दोष भी होते हैं। इन्हें कुछ भी सिखाया नहीं जा सकता है। ये न तो स्वयं भोजन कर पाते हैं एवं न ही वस्त्र पहन पाते हैं और न ही बाहरी खतरों से स्वयं को बचा ही सकते हैं। इन लोगों में गूंगापन एवं बहरापन भी बहुतायत में पाया जाता है। इनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता भी कम होती है।

**(ख) अनुकूलन क्षमता के आधार पर** (On the basis of adaptive behavior ability)–

अनुकूलन क्षमता से तात्पर्य प्रशिक्षण, शिक्षा, सीखने की योग्यता आदि की मात्रा के आधार पर मानसिक दुर्बलता निर्धारण है। जिसमें सीखने, शिक्षित होने अथवा प्रशिक्षित होने की जितनी योग्यता होती है विभिन्न परिस्थितियों के अनुरूप व्यवहार करने की योग्यता भी उन्हीं में आनुपातिक रूप में होती है। इस आधार पर मानसिक दुर्बलता के तीन प्रकार बतलाये गये हैं जो कि निम्न प्रकार हैं– 1. प्रशिक्षित होने के अयोग्य, 2. प्रशिक्षित होने योग्य 3. शिक्षा ग्रहण करने योग्य।

1 **प्रशिक्षित होने के अयोग्य** (Untrainable)– मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्तियों की कुल संख्या के 5 प्रतिशत व्यक्ति प्रशिक्षित होने के अयोग्य होते हैं। ये अपने रोजमर्रा के कार्य जैसे भोजन करना कपड़े पहनना आदि भी स्वयं नहीं कर पाते एवं इनके लिए भी दूसरों पर निर्भर होते हैं परिणामस्वरूप इन्हें प्रशिक्षण प्रदान करने पर भी कुछ सीख नहीं पाते अतएवं इन्हें किसी भी प्रकार के प्रशिक्षण से कोई भी फायदा नहीं होता है।

2 **प्रशिक्षित होने के योग्य** (Trainable)– इस प्रकार के व्यक्तियों विशेष रूप से तैयार प्रशिक्षण कोर्स करवाकर कुछ कौशल सिखलाये जा सकते हैं ये प्रशिक्षण के योग्य होते हैं।

मानसिक दुर्बल व्यक्तियों की कुल जनसंख्या का 18 से 20 प्रतिशत व्यक्ति इस श्रेणी में आते हैं।

**3 शिक्षा ग्रहण करने योग्य** (Educable)– मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्तियों की संख्या का लगभग 75 से 80 प्रतिशत हिस्सा शिक्षा ग्रहण करने योग्य व्यक्तियों का होता है। इन्हें व्यावसायिक कौशलों के अलावा कुछ शिक्षा आदि भी प्रदान की जा सकती है। इन लोगों की विशेषता यह है कि यदि इनकी शिक्षा हेतु विशेष प्रबंध किया जाये तो ऐसे लोग सार्थक रूप से प्रशंसनीय स्तर पर शैक्षिक उपलब्धि प्राप्त कर सकने में सफल हो सकते हैं। शिक्षा के माध्यम से इनके समायोजन स्तर को भी ऊँचा उठाया जा सकता है।

**(ग) नैदानिक कसौटी के आधार पर** (On the basis of clinical criterion)–

नैदानिक कसौटी से तात्पर्य होता है कि वे कसौटियॉ जिनसे मानसिक दुर्बलता का एक समस्या के रूप में विशेष रूप से निश्चित होना निर्धारित होता है। इस कसौटी पर आधारित प्रकारों में दैहिक अथवा आनुवांशिक विकृतियॉ प्रमुख रूप से बतलायी गयी हैं। इनमें से कुछ का वर्णन निम्नांकित है।

**1 डाउन्स संलक्षण** (Down's Syndrome) – इस संलक्षण का वर्णन सबसे पहले ब्रिटेन के मनोचिकित्सक लैंगडान डाउन ने उन्नीसवीं शताब्दी के नौवें दशक में किया था। इस संलक्षण से ग्रस्त व्यक्तियों की बुद्धि लब्धि 25 से 50 के मध्य होती है। इनकी मानसिक आयु 5 से 7 वर्ष के बालकों के बराबर होती है। ऐसे व्यक्तियों के चेहरे की बनावट मंगोलियन जाति के लोगों से मिलता जुलता है अतएवं इनकी विकृति को मंगोलिज्म भी कहा जाता है। इनका चेहरा गोल, छोटी एवं चपटी नाक, छोटी हथेलियॉ एवं धंसी हुइ ऑखें होती हैं। ये लोग सामाजिक समायोजन सीखने लायक होते हैं। परन्तु उच्चस्तरीय संज्ञानात्मक कौशलों को सीखना इनके लिए असंभव होता है। ये संप्रत्यों के निर्माण को समझ नहीं पाते हैं तथा समस्या समाधान की योग्यता भी इनमें कम होती है। भाषा की अभिव्यक्ति एवं इस्तेमाल में ये कमजोर होते हैं।

**2 बौनापन** (Cretinism)– बौनेपन को हाईपोथाइरोडिज्म भी कहा जाता है। यह दुर्बलता थायरायड हारमोन की अत्यधिक कमी अथवा अभाव से उत्पन्न होती है। ऐसे व्यक्ति की शारीरिक लम्बाई छोटी होती है एवं ये बौने समान दीखते हैं। इनका सिर बड़ा, गर्दन मोटी, पर कंधे से सटी हुई होती है। ऑखों की पलकें मोटी होती हैं। इनके लैंगिक विकास, संवेगात्मक विकास एवं क्रियात्मक विकास सीमित स्तर तक ही हो पाता है। इनका मांसपेशीय विकास भी धीरे–धीरे होता है। लगभग चार वर्ष की आयु से पहले ऐसे बच्चे उठने, बैठने एवं चलने में असमर्थ होते हैं। इनकी बुद्धि लब्धि 25 से 75 के बीच होती है। ये प्रायः शांत प्रकृति के होते है, दूसरों से कम बात करते हैं तथा अन्यों के संग खेल में जिद्दीपना दिखलाते हैं।

**3 टर्नर संलक्षण** (Turner's Syndrome)– ये संलक्षण केवल बालिकाओं में पाया जाता है। इन बालिकाओं की बुद्धि लब्धि 30 से 40 के मध्य होती है। ये दुर्बलता सेक्स क्रोमोजोम्स में गड़बड़ी की वजह से उत्पन्न होती है। ऐसी बालिकाओं में सिर्फ एक ही एक्स क्रोमोजोम पाया जाता है। क्रोमोजोन जनित गड़बड़ी की वजह से इन बालिकाओं का दैहिक आकृति भी प्रभावित होती है इनकी गर्दन छोटी एवं झुकी हुई होती है। इनका लैंगिक विकास भी अपरिपक्व ही होता है।

**4 फेनिलकेटोन्यूरिया** (Phenylketonuria or PKU)– यह विकृति प्रोटीन चयापचय में होने वाली गड़बड़ी से होती है। यह एक ऐसी मानसिक दुर्बलता है जिसमें जन्म के समय बालक सामान्य दिखाई पड़ता है। छः से बारह महीने के दौरान उसमें मानसिक दुर्बलता के लक्षण दिखलाई पड़ने लगते हैं। प्रोटीन चयापचय की गड़बड़ी से फिनाइलालानाइन (phenylalanine) अधिक मात्रा में देह में जमा होने लगता है जिससे मश्तिष्क की कोशिकायें जर्जर हो जाती हैं और बच्चों में मानसिक मंदता पनप जाती है।

**5 हाइड्रोसिफैलि** (Hydrocephaly)– इस प्रकार की मानसिक दुर्बलता मस्तिष्क में सेरिब्रोस्पाइनल द्रव के अत्यधिक मात्रा में जमा हो जाने की वजह से उत्पन्न होती है। इससे मस्तिष्क का आकार सामान्य से कहीं अधिक बड़े आकार का हो जाता है। गंभीरता बढ़ने पर बच्चे के शरीर में कम्पन एवं पैरालिसिस के लक्षण भी उत्पन्न हो जाते हैं। मस्तिष्क की कोशिकायें काफी पतली हो जाती हैं फलतः मानसिक दुर्बलता या मंदता विकसित हो जाती है। वैसे तो यह जन्मजात होता है परन्तु कभी कभी कुछ वर्ष सामान्य रूप में बीतने के बाद भी यह विकसित हो सकता है।

**अभ्यास प्रश्न 2**–निम्नलिखित में से कौन सी मानसिक मंदताक्रोमोसोम्स में गड़बड़ी की वजह से विकसित होती है?

**क**–हाइड्रोसिफैलि (Hydrocephaly)

**ख**– फेनिलकेटोन्यूरिया (Phenylketonuria or PKU)

**ग**–टर्नर संलक्षण (Turner's Syndrome)

**घ**–डाउन्स संलक्षण (Down's Syndrome)

## 12.6 मानसिक दुर्बलता के कारण (Etiology of Mental Deficiency)

उपरोक्त बिंदुओं में अब तक आपने मानसिक दुर्बलता के स्वरूप लक्षण एवं प्रकारों के बारे में जानकारी प्राप्त की है परन्तु अब प्रश्न उठता है कि इस विकृति के विकसित होने के पीछे कौन से कारण अथवा कारक जिम्मेदार हैं। वैसे तो कारण एवं कारक कई हो सकते हैं परन्तु जो प्रमुख हैं एवं जिनकी आपको जानकारी होनी चाहिए वे महत्वपूर्ण कारक निम्नांकित हैं। –

क)सामाजिक–सांस्कृतिक कारक(Sociocultural factor) –

ख)सांस्कृतिक पारिवारिक कारक (Cultural-familial factor) –

ग) मस्तिष्कीय क्षति (Damage to the brain)–

घ) चयापचय, पोषण एवं वर्धन में गड़बडी(Inadequacy in metabolism, nutrition & growth) –

च) संक्रमण होना (Infection) –

छ) क्रोमोजोम्स संयोजन में दोष(Defects in composition of chromosomes)–

ज) अन्य कारण (Other causes)–

उपरोक्त सभी कारकों अथवा दृष्टिकोण का वर्णन निम्नांकित है।

**क) सामाजिक–सांस्कृतिक कारक**(Sociocultural factor)–समाज–सांस्कृतिक सिद्धान्त निर्माताओं के अनुसार विभिन्न सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियॉ भी मानसिक दुर्बलता के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। कई बार सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के कारण बच्चे को मिलने वाले भावनात्मक संबल एवं पोषण में कमी आ जाती है जिससे बच्चा कुंठा ग्रस्त हो जाता है एवं इस भावनात्मक वंचन से उसमें मानसिक दुर्बलता विकसित हो जाती है। उदाहरण के लिए जब किसी शिशु को बार –बार लम्बे समय तक अपने माता–पिता के सानिध्य एवं स्नेह से वंचित रहना पड़ता है तो इससे उस शिशु में मानसिक दुर्बलता पनप जाती है। इसके कई कारण हो सकते हैं जैसे किए माता–पिता का विवाह विच्छेद, अकाल मृत्यु या विलगाव, निम्न सामाजिक एवं आर्थिक स्तर, एक ही कमरे में घर के सभी सदस्यों का रहना जिससे शिशु को आवश्यक स्वतंत्रता न मिल पाना आदि। ऐसे परिवारों से संबंधित बच्चे जब विद्यालय जाते हैं ता उन्हें उनकी चाल–ढाल, वेष–भूषा एवं बोलने–चालने के ढंग के आधार पर लोग एवं शिक्षक भी मानसिक रूप से दुर्बल समझकर उनके साथ दयापूर्ण व्यवहार करते हैं। परिणामस्वरूप उनकी मानसिक दुर्बलता प्रत्यक्ष हो जाती है एवं और भी तेजी से बढ़ती है।

**ख) सांस्कृतिक पारिवारिक कारक** (Cultural-familial factor) –मनोवैज्ञानिकों ने पाया है कि जब परिवार गरीब होता है तो कम–से–कम 57 प्रतिशत बच्चे मानसिक रूप से अवश्य ही दुर्बल हो जाते हैं। अब प्रश्न उठता है कि आखिर ऐसा क्यों होता है? इसका उत्तर यह है कि मानसिक दुर्बलता का सैद्धान्तिक रूप से गरीबी से कोई भी संबंध नहीं है, परन्तु यदि दुर्भाग्यवश किसी गरीबी से अभिशप्त परिवार में कोई बच्चा ऐसा आ जाता है जिसमे बौद्धिक उत्तेजना की कमी होती है, तब उसे आवश्यक देखभाल पर्याप्त स्तर पर प्राप्त नहीं हो पाती है। क्योंकि गरीबी के कारण बच्चे के माता–पिता भी प्रायः अशिक्षित होते हैं एवं पहले तो वे अपने बच्चे की इस बौद्धिक उत्तेजन की कमी को समझ ही नहीं पाते हैं तथा बच्चे की प्रत्येक गलती के लिए उसे डॉटते फटकारते हैं इससे बच्चे में भय की भावना पैदा हो जाती है और मानसिक दुर्बलता के विकसित होने की गति बढ़ जाती है। दूसरा यह कि यदि वे समझ भी जाते हैं कि उनके बच्चे में यह कमी है तो वे उसे पर्याप्त उपचार उपलब्ध नहीं करा पाते हैं। उन्हें अपने जीवन यापन की जरूरी आवश्यकताओं की पूर्ति में भी परेशानी होती है ऐसे में बच्चे की विशिष्ट उपचार संबंधी जरूरते वे पूरी नहीं कर पाते हैं। ऐसे बच्चों विशिष्ट प्रशिक्षण की आवश्यकता के साथ साथ सामाजिक एवं सांस्कृतिक समर्थन की भी जरूरत होती है। प्रायः गरीब परिवार ऐसी सामाजिक परिस्थिति में निवास करते हैं जहॉ सर्वत्र अशिक्षा एवं कुसमायोजन का ही बोलबाला होता है ऐसे में उनके बच्चे की इस मानसिक समस्या को समझने वाले लोगों का होना बहुत मुश्किल होता है एवं लोग भी उनके बच्चे की मानसिक दुर्बलता को समझ नहीं पाते हैं तथा कई बार बच्चे को अपने समुदाय अथवा मोहल्ले में रखने से इंकार भी कर देते हैं। मानसिक दुर्बलता में सांस्कृतिक कारकों का भी अपना महत्वपूर्ण योगदान होता है। विभिन्न संस्कृतियों के पालन पोषण के तरीके, रहन–सहन, खान–पान, अभिव्यक्ति की आजादी आदि का बच्चों के मानसिक दुर्बलता में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उदाहरण के लिए विचारों की खुली अभिव्यक्ति वाले समाज में बच्चे की बीमारी अथवा परेशानी पर विचार–विमर्श आसानी से होता है जिससे आवश्यक जानकारी समय पर मिल जाती है एवं मदद मिलने के भी आसार बढ़ जाते हैं वहीं बंद अभिव्यक्ति वाले समाज में इसका अभाव होने से मानसिक दुर्बलता के बढ़ने की संभावना तीव्र हो जाती है।

**ग) मस्तिष्कीय क्षति** (Damage to the brain)– मस्तिष्क के आन्तरिक अंगों में क्षति अथवा विकृति को भी वैज्ञानिकों द्वारा मानसिक दुर्बलता का एक प्रमुख कारण माना गया है। मस्तिष्कीय अंगों में यह क्षति प्रसूति पूर्व अथवा प्रसूति पश्चात दोनों ही अवस्थाओं में हो सकती है। प्रसूति से पूर्व गर्भवती महिला को जिन परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है, यदि उसमें ऐसी अवस्थायें सम्मिलित हों जिनमें बच्चे के मस्तिष्क पर आघात लग सकता है तो इससे भी मस्तिष्कीय अंगों में क्षति के कारण मानसिक दुर्बलता उत्पन्न हो सकती है। वैज्ञानिकों के अनुसार कभी–कभी महिलाओं को प्रसूति के पूर्व किसी रोग के कारण एक्सरे परीक्षण करवाना पड़ जाता है, इस एक्सरे परीक्षण में निकलने वाली एक्स किरणें अजन्मे बच्चे के मस्तिष्क के विकसित हो रहे अंगों में क्षति उत्पन्न करने में सक्षम होती है। इसके अलावा महिला के पेट पर बाह्य आघात लगने से भी बच्चे के मस्तिष्क को छति पहुँचने की काफी संभावना होती है। प्रसूति के पश्चात भी बच्चे के मस्तिष्क पर चोट लगने से उसके अंग प्रभावित हो सकते हैं फलतः बच्चे में मानसिक मंदता अथवा बच्चा मानसिक रूप से दुर्बल हो सकता है। इसके अलावा बच्चे के मस्तिष्क में ट्यूमर हो जाने अथवा जन्म के समय सिर को पकड़ कर खींचने से भी मस्तिष्कीय अंगों पर अनावश्यक दबाव पड़ने से भी मानसिक मंदता उत्पन्न हो सकती है।

**घ) चयापचय, पोषण एवं वर्धन में गड़बडी**(Inadequacy in metabolism, nutrition & growth) – वैज्ञानिक शरीर की चयापचय, पोषण एवं वर्धन की प्रक्रिया में गड़बड़ी को भी बच्चों में मानसिक दुर्बलता विकसित होने का प्रमुख कारण मानते हैं। जब बच्चों को उनके शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए जरूरी तत्व, जैसे प्रोटीन,, आदि उचित मात्रा में प्राप्त नहीं होते तथा उनका चयापचय ठीक प्रकार से नहीं होता है तो कई प्रकार की मानसिक दुर्बलतायें उत्पन्न हो जाती हैं। जैसे कि PKU जैसी मानसिक दुर्बलता का कारण प्रोटीन चयापचय में गड़बड़ी होती है, तथा टे–सैक (Tay-Sach's) जैसी मानसिक दुर्बलता का कारण वसा चयापचय (fat metabolism) ठीक से नहीं हो पाना होता है। इसके अलावा थाइराइड ग्रंथि के स्राव में कमी से हाइपोथाइरोइडिज्म जैसी मानसिक दुर्बलता उत्पन्न होती है। इन प्रमाणों के प्रकाश में कहा जा सकता है कि मानसिक मंदता का एक प्रमुख कारण चयापचय, वर्द्धन एवं आहार की अनुपयुक्तता भी है।

**च) संक्रमण होना** (Infection) – संक्रमण को भी मानसिक दुर्बलता के उत्पन्न होने के पीछे एक प्रमुख कारक माना गया है। जब बच्चा जन्म के तुरंत पश्चात किसी प्रकार के संक्रमण का शिकार हो जाता है तो उससे बालक के तीव्र गति से विकसित हो रहे मस्तिष्क का वर्धन प्रभावित होता है एवं उसका विकास अवरूद्ध हो जाता है। इसी प्रकार जन्म से पूर्व मॉ के गर्भ में ही यदि किसी प्रकार का गंभीर संक्रमण बच्चे को हो जाता है तो उससे भी गर्भ के अन्दर ही बच्चे के मस्तिष्क का विकास प्रभावित होता है। परिणामतः बच्चे के मस्तिष्क की विकास दर मंद पड़ जाती है। मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययन में पाया है कि जिन गर्भवती माताओं को गर्भ धारण करने से प्रथम तीन महीनों में रूबेला (rubella) या खसरा (measels) जैसा संक्रामक रोग हो जाता है, उनके शिशुओं में जन्म के बाद मानसिक दुर्बलता के लक्षण दिखलाई पड़ते हैं (अरूण कुमार सिंह, 2005)। इसके अलावा गर्भावस्था में कभी–कभी अन्य संक्रामक रोग जैसे साइटोमेगालिक रोग से माताएँ प्रभावित हो जाती हैं? जिससे रोग के वायरस भ्रूण को प्रभावित कर देते हैं और उससे ऐसे शिशुओं में बाद में मानसिक मंदता विकसित हो जाती है।

**छ) क्रोमोजोम्स संयोजन में दोष**(Defects in composition of chromosomes)– प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक अरूण कुमार सिंह अपनी पुस्तक आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान में लिखते हैं कि सामान्यतः एक सामान्य व्यक्ति में क्रोमोजोम्स की संख्या 46 अर्थात् 23 युग्म होते हैं। मानसिक दुर्बलता के कुछ नैदानिक प्रकारों से जो प्रमाण मिले हैं उनसे यह स्पष्ट हुआ है कि ऐसे प्रकारों में स कुछ में क्रोमोजोम्स की संख्या 46 से अधिक होती है तथा कुछ में इसकी संख्या 46 से कम होती है। जैसे – डाउन संलक्षण में क्रोमोजोम्स की संख्या 47 होती है। उसी तरह से क्लाइनेफिल्टर संलक्षण में क्रोमोजेम्स की संख्या 47 ही होती है परन्तु टर्नर संलक्षण में क्रोमोजोम्स की संख्या 45 ही होती हैं इन सब तथ्यों से स्पष्ट होता है कि मानसिक दुर्बलता का कारण क्रोमोजोम्स में रचना संबंधी दोष होते हैं।

**ज) अन्य कारण** (Other causes)– उपरोक्त कारणों के अलावा कुछ अन्य कारणों के संबंध में भी अनुसंधानकर्ताओं को प्रमाण मिले हैं। अनुसंधानकर्ताओं के अनुसार जब मातायें अपनी गर्भावस्था के दिनों में कुछ विशेष दवाइयों को सेवन करती हैं इससे गर्भ में पल रहे बच्चे की मानसिक दशा प्रभावित होती है और उसमें मानसिक मंदता उत्पन्न हो जाती है। इसके अलावा गर्भावस्था के दौरान जो मॉएं शराब, कोकेन, तम्बाकू, मारीजुआना, कुनैन, लेड, आर्सेनिक, कार्बन मोनोऑक्साइड के संपर्क में आती हैं या सेवन करती हैं उससे उत्पन्न नशे से प्रायः शिशुओं में मानसिक दुर्बलता उत्पन्न हो जाती है। वैसे द्रव्य जो प्लेसेन्टा को पार करके गर्भस्थ शिशु को क्षति पहुॅचाते हैं को टेराटोजेन्स कहा जाता है। फ्रासिया एवं उनके सहयोगियों के अनुसार कोकेन, तम्बाकू तथा मारिजुआना तीन महत्वपूर्ण टीरैटोजेन्स हैं जो मानसिक रूप से गर्भस्थ शिशु को कमजोर करते हैं। जन्म के बाद भी जब बच्चे किसी तरह से सालिसाइलेट, लेड तथा अन्य कीटनाशक पदार्थ को किसी न किसी रूप में ग्रहण कर लेता है तो इससे भी ऐसे बालकों में मानसिक मंदता के लक्षण दिखलाई पड़ने लगते हैं।

**अभ्यास प्रश्न 3–** निम्नलिखित में से कौन से कौन सी मानसिक मंदता से संबंधित बीमारी का कारण प्रोटीन के चयापचय में गड़बड़ी से होता है?

क– टे–सैक (Tay-Sach's)
ख– पी.के.यू. (PKU)
ग– हाइपोथाइरोइडिज्म (Hypothyrodism)
घ– ऑटिज्म (Autism)

## 12.7 मानसिक दुर्बलता का उपचार(Treatment of Mental Retardation/Deficiency)

उपरोक्त पंक्तियों में आपने अभी तक मानसिक दुर्बलता के कारणों के संबंध में ज्ञान प्राप्त किया है अपनी समझ को बढ़ाया है। आइये अब इस बिन्दु के अंतर्गत मानसिक दुर्बलता के उपचार की कतिपय प्रविधियों के बारे में ज्ञान प्राप्त करें। वर्तमान समय में मानसिक दुर्बलता के उपचार की जितनी भी विधियॉ एवं तरीके उपलब्ध हैं, मनोचिकित्सकों के अनुसार उनमें से कोई भी स्वयं में पूरी तरह मानसिक मंदता का उपचार करने में समर्थ नहीं पाया गया है। अतएव इसके उपचार हेतु प्रयुक्त की जाने वाली विधियों को दो भागों में वर्गीकृत कर समझा जा सकता है। इन उपायों में पहले वर्ग को रोगनिवारक तरीकों

(Curative techniques) में तथा दूसरे वर्ग को रोकथामपरक श्रेणी (Preventive techniques)में रखा जाता है। आइये पहले रोगनिवारक तरीकों के बारे में जानें।

रोगनिवारक चिकित्सा प्रविधियॉ (Curative therapeutic techniques)– इस वर्ग के अन्तर्गत उन प्रविधियों को रखा जाता है जो कम से कम मानसिक रूप से दुर्बल एवं मंद व्यक्तियों को अपने दैनिक जीवन के कार्यों को निपटाने तथा अपनी देखभाल करने व जीविका कमाने लायक बनाने में निश्चित रूप से सहायक होती हैं। मनोवैज्ञानिकों को मत है कि इन विधियों के उपयोग से बुद्धि स्तर में सीधे सीधे किसी प्रकार की उन्नति अथवा परिवर्तन के कोई प्रमाण अभी तक किये गये शोध अध्ययनों में नहीं प्राप्त हुए हैं।

ऐसे तरीकों में निम्नांकित प्रमुख हैं–

1. **माता–पिता को शिक्षित करना** (Educating the parents)– मानसिक रूप से दुर्बल बच्चे की त्वरित पहचान एवं उपचार में जो सर्वप्रथम बाधा उत्पन्न होती है वह है मानसिक मंदता से ग्रस्त बच्चे के माता–पिता में मनोरोगों के प्रति मनोवैज्ञानिक समझ का अभाव। अधिकांशतः मानसिक रूप से दुर्बल बच्चे गरीब परिवारों में पाये जाते हैं क्योंकि समय रहते मनोवैज्ञानिक समझ के अभाव में उनके माता–पिता यह समझ ही नहीं पाते कि उनके बच्चे को कोई मानसिक बीमारी भी है। अतएव मनोचिकित्सक अथवा नैदानिक मनोवैज्ञानिक का पहला कार्य तो मानसिक मंदता से ग्रस्त बच्चों के माता–पिता को यह स्वीकार कराना होता है कि उनके बच्चे मानसिक रूप से दुर्बल हैं जिनकी उचित देख–रेख की आवश्यकता है। प्रायः देखा गया है कि ऐसे बच्चों के माता–पिता यह मानने के लिए तैयार ही नहीं होते कि उनके बच्चे मानसिक रूप से कमजोर हैं और यदि मानते भी हैं तो काफी देर के बाद। ऐसे में जरूरत इस बात की है कि माता–पिता को इस ढंग से शिक्षित किया जाये कि वे अपने बच्चों की ऐसी कमजोरी को शैशवावस्था या शुरूआती बाल्यावस्था में ही पहचान लें जिससे ऐसे बच्चों को उचित व्यक्तित्व एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान कर स्वनिर्भर बनाया जा सके।

2. **स्पेशल स्कूल में प्रशिक्षण** (Training in special school)– मानसिक रूप से दुर्बल बच्चों को विशेष स्कूल में प्रशिक्षण प्रदान कर उन्हें समाज की मुख्य धारा में जीवन यापन करना सिखलाया जा सकता है। यहॉ पर विशेष स्कूल से तात्पर्य ऐसे स्कूल से होता है जो कि मानसिक रूप से दुर्बल बच्चों के बुद्धिलब्धि स्तर उनकी कार्य को सम्पादित करने की क्षमता आदि को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम एवं व्यावसायिक कौशल का निर्माण कर उनका प्रशिक्षण देते हैं। वास्तव में यदि मानसिक रूप से दुर्बल बच्चों को प्रारम्भ में ही ऐसे विशेष स्कूलों में अध्ययन एवं प्रशिक्षण के लिए भेज दिया जाता है तो उससे उनकी मानसिक दुर्बलता के स्तर में काफी सुधार आ जाता है एवं वे अपने दैनिक क्रिया कलाप आसानी से सम्पादित करने में समर्थ हो जाते हैं तथा कुछ ऐसे व्यावसायिक कौशल भी सीख जाते हैं जिनसे वे अपनी आजीविका कमा सकते हैं।

इस तरह के विशेष स्कूल में बच्चों को प्रशिक्षण दिलाने से कई प्रकार की सामाजिक समस्याओं का सामना करने से भी बच्चे बच जाते हैं जैसे कि साधारण स्कूल में दाखिला लेने पर ये बच्चे सीखने की गति में धीमे होने के कारण अन्य बच्चों से पिछड़ जाते हैं तथा उनकी शारीरिक क्रिया कलापों में भी अकुशलता होने की वजह से भी अन्य सामान्य बच्चों से प्रतिस्पर्धा नहीं कर पाते हैं फलतः उनमें हीन भावना विकसित हो जाती है, साथ ही अन्य बच्चे एवं समाज के लोग भी उन्हें अपने से अलग जानकर उसी अनुरूप दयापूर्ण या

अन्य प्रकार का व्यवहार करते हैं जिससे मानसिक रूप से मंद बच्चे समाज की मुख्यधारा में शामिल नहीं हो पाते हैं।

साधारण स्कूल में दाखिला लेने पर मानसिक रूप से दुर्बल बच्चे पर शिक्षक पर्याप्त ध्यान भी नहीं दे पाते हैं जिसकी उसे सबसे ज्यादा आवश्यकता होती है क्योंकि उसे सीखने में सामान्य बच्चों की तुलना में ज्यादा समय लगता है। इसके साथ ही मानसिक दुर्बल बच्चे के लिए विशेष पाठ्यक्रम की भी आवश्यकता होती है जो सामान्य स्कूल में पूरी तरह से लागू कर पाना संभव नहीं हो पाता है।

हालॉकि मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि केवल विशेष स्कूल में प्रशिक्षण प्रदान करने से इन बच्चों की सभी समस्यायें समाप्त नहीं हो जाती हैं, वरन केवल इसी स्कूल में पढ़ाने एवं सामान्य बच्चों से दूर रखने पर भी उनमें एक प्रकार का समाज से विलगाव होते पाया गया है। ऐसे में जरूरी है कि ऐसे बच्चों को दोनों प्रकार के स्कूलों में प्रशिक्षण प्रदान किया जाये। वर्तमान में इसके लिए ऐसे बच्चों को सामान्य स्कूल में ही विशेष प्रशिक्षण की सुविधा प्रदान करने की व्यवस्था होने लगी है।

**3. परिवार परामर्श** (Family Counselling)– मनोवैज्ञानिकों ने परिवार परामर्श जो कि काउन्सलिंग का एक प्रकार है उसे भी मानसिक दुर्बलता के उपचार में सहायक पाया है। मानसिक रूप से दुर्बल बच्चे की वास्तविक स्थिति को परिवार के सदस्य समझ सकें एवं उसी अनुरूप व्यवहार कर सकें यह समझाना एवं जानकारी प्रदान करना ही इस प्रकार की काउन्सलिंग का उद्देश्य होता है। परिवार के सदस्य जैसे कि माता–पिता, चाचा–चाची, दादा–दादी, भाई–बहन को मानसिक रूप से मंद बच्चे को किस प्रकार अपनायें एवं उसके विकास में किस प्रकार सहायक हों इसकी रूपरेखा एवं क्रियान्वयन इस काउन्सलिंग के द्वारा निश्चित की जाती है। इसे एक प्रकार का घरेलू प्रशिक्षण भी कहा जाता है। जिसमें विशेषकर माता–पिता का स्नेह, भाई–बहनों का ऐसे बच्चों के प्रति उचित एवं अनुकूल मनोवृत्ति तथा परिरवार के अन्य सदस्यों द्वारा ऐसे बच्चों को परिवार का एक महत्वपूर्ण सदस्य माना जाना अधिक महत्वपूर्ण है। इस तरह का घरेलू माहौल होने से ऐसे बच्चों में आत्मविश्वास उत्पन्न होने लगते है और धीरे–धीरे वे कुछ सीमा तक आत्मनिर्भर हो जाते हैं। **4. वातावरण में बदलाव** (Change in environment) – मनोवैज्ञानिकों का यह भी मानना है कि जिस प्रकार लोगों के व्यवहार में परिस्थिति एवं वातावरण में होने वाले परिवर्तनों की वजह से बदलाव होते रहते हैं उसी प्रकार यदि मानसिक रूप से दुर्बल बच्चों को इस प्रकार का घरेलू अथवा स्कूली वातावरण प्रदान किया जाये जिसमें उन्हें बौद्धिक रूप से उत्तेजित करने की क्षमता हो तो इससे उनकी मानसिक दुर्बलता कुछ हद तक कम की जा सकती है और समाज में वे अपना उचित स्थान सम्मान के साथ विनिर्मित कर सकते हैं।

**5. व्यवहारात्मक प्रशिक्षण** (Behavioural training)– इसे एप्लाइड विहेवियर एनालिसिस तकनीक भी कहा जाता है यह तकनीक व्यवहार सीखने के सिद्धान्तों पर आधारित है। व्यवहार सीखने के सिद्धान्तों में ऑपरेन्ट लर्निंग एवं क्लासिकल कंडीशनिंग के सिद्धान्त प्रमुख हैं, इसके अलावा ऑब्जरवेशनल लर्निंग भी एक प्रमुख सिद्धान्त है। इन सभी सिद्धान्तों में ऑपरेन्ट लर्निंग मानसिक मंदता से ग्रस्त बच्चों के लिए सबसे मुफीद है। इसके अन्तर्गत किसी जटिल कार्य को कई छोटी छोटी इकाइयों में बॉट दिया जाता है। जैसे यदि किसी बच्चे को अक्षर लिखना सिखलाना है तो उसे इस कार्य को कई छोटे–छोटे टुकड़ों में बॉट दिया जाता है जैसे कि पेंसिल पकड़ना, कागज उठाना, अक्षर

की पहली लाइन खींचना आदि। प्रत्येक कार्य को करने पर उन्हें पुनर्बलन हेतु पुरस्कार दिया जाता है। और धीरे धीरे इस पुनर्बलन को भी कम किया जाता है कार्य को पूरी तरह सीख लेने पर पुनर्बलन पूरी तरह हटा दिया जाता है।

**6. औषधि उपचार** (Drug treatment)– उपरोक्त चिकित्सकीय उपायों के अलावा मानसिक रूप से दुर्बल बच्चों की मानसिक मंदता का औषधि उपचार भी आजकल संभव है। इसमें हारमोन्स चिकित्सा सर्वाधिक प्रचलित है। जैसे हाइपोथाइरोडिज्म या क्रेटिनिज्म की चिकित्सा थाइराक्सीन हारमोन के इंजेक्शन द्वारा अथवा टेबलेट खिलाकर किया जाता है।

रोकथामपरक उपाय (Preventive measures)– मानसिक दुर्बलता का उपचार चूँकि अभी तक पूरी तरह करने में संपूर्ण रूप से सफल विधि उपलब्ध नहीं हो पायी है अतएव चिकित्सक इसके लिए रोकथामपरक उपायों के इस्तेमाल पर जोर देते हैं। इन उपायों में निम्नांकित प्रमुख हैं–

**1. बन्ध्याकरण** (Sterlization)– मनोवैज्ञानिकों के अनुसार चूँकि मानसिक दुर्बलता एक आनुवांशिक बीमारी है अतएव इसे फैलने से रोकने के लिए मानसिक रूप से दुर्बल महिला अथवा पुरूष का बंध्याकरण कर देना चाहिए इससे अगली पीढ़ी मानसिक दुर्बलता से ग्रस्त नहीं होगी।

**2. विवाह पर रोक** (Ban on marriage)– मनोवैज्ञानिकों के अनुसार यदि मानसिक रूप से ग्रस्त महिला अथवा पुरूष के विवाह पर ही सरकार द्वारा कानून बनाकर बैन लगा दिया जाये तो आगे मानसिक दुर्बल बच्चे पैदा ही नहीं होंगे एवं इस प्रकार मानसिक दुर्बलता को बढ़ने से रोका जा सकता है।

**3. गर्भपात** (Abortion)– मानसिक रूप से ग्रस्त महिला यदि गर्भवती हो जाये तो उसका गर्भपात करा देने से भी मानसिक दुर्बलता को फैलने से रोका जा सकता है। क्योंकि विशेषज्ञों के अनुसार ऐसी स्त्रियों के बच्चों को भी मानसिक रूप से दुर्बल होने की संभावना 95 प्रतिशत तक होती है (अरूण कुमार सिंहए 2005)।

**योग की विधियों का प्रयोग** – उपरोक्त चिकित्सकीय एवं रोकथामपरक उपायों के अलावा योग की प्रविधियों का उपयोग यदि मानसिक रूप से दुर्बल बच्चों अथवा व्यक्तियों के उपचार हेतु किया जाये तो इससे भी मानसिक दुर्बलता को बढ़ने से रोका जा सकता है। वर्तमान में योग को बहुत से शारीरिक एवं मानसिक दोनों ही प्रकार के रोगों के उपचार में अनुसंधानकर्ताओं द्वारा सफल पाया जा रहा है। यदि योगशास्त्रों में वर्णित योग अभ्यासों पर अनुसंधान किया जाये तो हर उम्र विशेष के मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्ति का इलाज संभव है। योग की विधियों में आसन, प्राणायाम का प्रशिक्षण भी मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्तियों को अनुभवी योगाचार्यों एवं चिकित्सकों द्वारा दिया जा सकता है।

**अभ्यास प्रश्न 4**– मानसिक रूप से दुर्बल बच्चों को विशेष स्कूल में प्रशिक्षण देने से –

क– उनका आत्मविश्वास डगमगा जाता है।

ख– वे अपनी पहचान खो देते हैं।

ग– उन्हें भावनात्मक वंचन का सामना करना पड़ता है।

घ– उनके आत्मसम्मान में बढ़ोत्तरी होती है।

## 12.8 सारांश

1 मानसिक दुर्बलता जिसे अंग्रेजी में मेंटल रिटार्डेशन कहा जाता है इसका वर्णन मनोरोगों के वर्गीकरण के लिए विकसित किए गए डी.एस.एम.–4–टी.आर के एक्सिस–2 में पर्सेनैलिटी डिस्आर्डर के अन्तर्गत वर्णित किया गया है। मानसिक दुर्बलता या मंदन के शाब्दिक अर्थ से यही परिलक्षित होता है कि मानसिक कार्यों को सम्पादित करने में जो कमजोर हैं अथवा मानसिक कार्यों को पूरा करने में बहुत धीमे होते हैं वही मानसिक दुर्बलता या मंदन से ग्रस्त समझना चाहिए। यह 18 वर्ष की आयु से पहले ही परिलक्षित होता है।

2 मानसिक दुर्बलता की प्रमुख विशेषताओं में न्यून बौद्धिक क्षमता, सीमित समायोजन, सामाजिकता की कमी, शारीरिक क्षमता में कमी, न्यून अभिप्रेरण एवं संवेग प्रमुख हैं। मानसिक मंदता सामान्य बौद्धिक कार्यात्मक क्षमता का सार्थक रूप में औसत से निम्न स्तर है जिसमें कतिपय कुशलता से जुड़े क्षेत्रों जैसे कि, स्वयं की देखभाल, कार्य, स्वास्थ्य और सुरक्षा से संबंधित अनुकूलन की क्षमता में महत्वपूर्ण कमी पायी जाती है।

3 अमेरिकन साइकियेट्रिक एसोशियेसन ने बुद्धि लब्धि के आधार पर मानसिक दुर्बलता के चार प्रकार निर्धारित किए हैं–

माइल्ड मानसिक दुर्बलता
मॉडरेट मानसिक दुर्बलता
सीवियर मानसिक दुर्बलता
प्रोफाउण्ड मानसिक दुर्बलता

मानसिक दुर्बलता के विकसित होने की व्याख्या छः प्रकार से की जाती है जिनमें सामाजिक–सांस्कृतिक कारक (Sociocultural factor), सांस्कृतिक पारिवारिक कारक (Cultural-familial factor), मस्तिष्कीय क्षति (Damage to the brain), चयापचय, पोषण एवं वर्धन में गड़बडी(Inadequacy in metabolism, nutrition & growth), संक्रमण होना (Infection), क्रोमोजोम्स संयोजन में दोष(Defects in composition of chromosomes) प्रमुख हैं।

4 सामान्यीकृत चिंता विकृति के उपचार हेतु सामाजिक–सांस्कृतिक वातावरण को उपयुक्त बनाने के अलावा अन्य उपचार प्रविधियों में माता–पिता को शिक्षित करना, विशेष स्कूल प्रशिक्षण देना, पारिवारिक परामर्श, वातावरण में बदलाव करना, औषधि उपचार तथा विहेवियरल चिकित्सा प्रमुख हैं।

5 सभी प्रकार की चिकित्सा प्रविधियों में व्यवहारात्मक चिकित्सा प्रविधियॉ मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्तियों को सामान्य जीवन जीने के आवश्यक कौशल सिखलाने में सर्वाधिक सफल सिद्ध हुई हैं।

## 12.9 शब्दावली

**चिंता विकृति** (Mental Retardation)–'चिंता विकृति से तात्पर्य वैसे विकृति से होता है जिसमें क्लायंट या रोगी में अवास्तविक चिंता एवं अतार्किक भय की मात्रा इतनी अधिक होती है कि उससे उसकी सामान्य जिन्दगी के व्यहार में असामंजस्य बढ़ जाता है इसमें चिंता की अभिव्यक्ति व्यक्ति द्वारा पूर्णतया स्पष्ट रूप में की जाती है।

**सामान्यीकृत चिंता विकृति** (Mild Mental Retardation)–'सामान्यीकृत चिंता विकृति तीव्र, अनियंत्रणीय, अकेंद्रित, स्थायी और सतत चिंता के रूप में चित्रित किया जाता है जो कि डिस्ट्रेसिंग एवं अनोत्पादिक होती है एवं जिसमें पेशीय तनाव, चिड़चिड़ापन और विचलन के दैहिक लक्षण समाहित होते हैं।

**तंत्रिकातापी चिंता** (Moderate Mental Retardation)–इड की वजह से उत्पन्न इच्छाओं एवं आवेगों को नियंत्रित कर उन्हें स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्त करने से रोका जाता है तो तंत्रिका–तापी चिंता उत्पन्न (न्यूरोटिक एन्जाइटी) हो जाती है।

**नैतिक चिंता** (Severe Mental Retardation)–नैतिक चिंता (मोरल एन्जाइटी) का अनुभव तब होता है जब व्यक्ति को इड के द्वारा उत्पन्न इच्छाओं एवं आवेगों की अभिव्यक्ति के लिए उसके सुपर ईगो द्वारा दण्डित किया जाता है।

**वास्तविक चिंता** (Profound Mental Retardation)–वास्तविक खतरा सामने होने पर अस्तित्व के प्रति उत्पन्न चिंता वास्तविक चिंता (रियल एन्जाइटी) कहलाती है।

## 12.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 –(ग) औसत से अधिक बौद्धिक क्षमता होती है।

अभ्यास प्रश्न 2 –(ग) टर्नर संलक्षण (Turner's Syndrome)

अभ्यास प्रश्न 3 –(ख) पी.के.यू. (PKU)

अभ्यास प्रश्न 4 –(घ) उनके आत्मसम्मान में बढ़ोत्तरी होती है।

## 12.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

रोनाल्ड, जे. कोमर (2014) फन्डामेंटल्स ऑफ एबनॉरमल साइकोलॉजी, न्यूयॉर्क–वर्थ पब्लिशर।

कारसन, बुचर एवं मिनेका (1998 अपडेटेड थर्ड एडीसन) एबरॉरमल साइकोलॉजी एण्ड मॉर्डन लाइफ, लंदन – एडिसन, विसली, एजुकेशनल पब्लिशर इन्क।

बारलो एण्ड डूरण्ड (2012) एबनॉरमल साइकोलॉजी – एन इन्टीग्रेटेड एप्रोच, बेलमाउन्ट – वर्ड्सवर्थ सिनेज लर्निंग।

रॉबर्ट ए. बैरोन (2006) साइकोलॉजी, दिल्ली – पियर्सन प्रेंटिस हाल।

सैमुअल वुड एवं एलेन वुड (2000) द इसेंशियल वर्ल्ड ऑफ साइकोलाजी, यू एस ए– एलिन एण्ड बेकन।

डॉ अरूण कुमार सिंह (2010) आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, दिल्ली – मोतीलाल बनारसीदास।

## 12.13 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 –मानसिक दुर्बलता से आप क्या समझते हैं? इसके के विभिन्न लक्षणों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 2 –मानसिक मंदता के विभिन्न कारणों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

प्रश्न 3 –मानसिक दुर्बलता के प्रकारों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 4 –मानसिक दुर्बलता को परिभाषित कीजिए एवं इसकी उत्पत्ति के सामाजिक सांस्कृतिक कारकों की व्याख्या पर प्रकाश डालें।

प्रश्न 5 –मानसिक दुर्बलता से निबटने के विभिन्न उपायों का वर्णन करें।

# इकाई 13 :–अधिगम असमर्थतताः अर्थ, स्वरूप, प्रकार, कारण, एवं उपचार

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 अधिगम असमर्थता का अर्थ एवं अवधारणा
13.4 अधिगम असमर्थता का स्वरूप
13.5 अधिगम असमर्थता के प्रकार
13.6 अधिगम असमर्थता के कारण
13.7 अधिगम असमर्थता का उपचार
13.8 सारांक्ष
13.9 शब्दावली
13.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.11 सन्दर्भ ग्रन्थ
13.12 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
13.13 निबंधात्मक प्रश्न

## 13.1 प्रस्तावना

इस इकाई से पूर्व की इकाई में आपने मानसिक दुर्बलता एवं मानसिक मंदन के बारे में जानकारी प्राप्त की है प्रस्तुत इकाई अधिगम असमर्थता के बारे में आपका ज्ञान बढ़ायेगी। अधिगम असमर्थता जिसे अंग्रेजी में लर्निंग डिसएबिलिटी कहा जाता है का वर्णन मनोरोगों के वर्गीकरण के लिए विकसित किए गए डी.एस.एम.–4–टी.आर एवं डी.एस.एम.–5 में डिसएबिलिटी शब्द के रूप में नहीं मिलता है बल्कि यह डी.एस.एम–4–टी.आर में लर्निंग डिस्आर्डर एवं डी.एस.एम.–5 में स्पेसिफिक लर्निंग डिस्आर्डर पद के रूप में वर्णित किया गया है। इस अधिगम असमर्थता से हम सभी सामान्य रूप में परिचित हैं क्योंकि अधिगम असमर्थता एक आम विकृति है जिसके रोगी हमें आसानी से देखने को मिल जाते हैं। बहुत से देशों में इस विकृति से पीड़ित बच्चों के लिए अलग से स्कूल एवं कॉलेज विकसित किए गए हैं, जहॉ इन्हें साधारण बच्चों की तुलना में विशेष प्रकार से शिक्षा एवं प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। अधिगम असमर्थता से ग्रस्त लोगों को आज हम अपने आस–पास आसानी से पा और पहचान सकते हैं, आवश्यकता है बस इसके बारे में जानकारी प्राप्त करने की। अधिगम असमर्थता के लक्षण कौन से हैं? इसके होने की वजह क्या है? इससे निपटने का उपाय क्या है?इन सभी जिज्ञासाओं का समाधान आप इस इकाई में पायेंगे यही इस इकाई की विशेषता है।

## 13.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

1 अधिगम असमर्थता का अर्थ समझ सकेंगे।
2 अधिगम असमर्थता की विभिन्न परिभाषाओं को जान सकेंगे।

3 अधिगम असमर्थता के लक्षणों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे एवं उन्हें पहचानना सीख जायेंगे।
4 अधिगम असमर्थता के विभिन्न कारणों से परिचित हो पायेंगे।
5 अधिगम असमर्थता के प्रकारों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
6 अधिगम असमर्थता के उपचार के तरीकों के बारें में जानेंगे।

## 13.3 अधिगम असमर्थता (Mental Retardation) का अर्थ एवं अवधारणा

अधिगम असमर्थता को डायग्नोस्टिक एण्ड स्टेटिस्टिकल मैनुअल ऑफ मेंटल डिस्आर्डर चतुर्थ एडिसन टेक्स्ट रिवीजन (DSM-IV-TR) के एक्सिस–1 में क्लीनिकल डिस्आर्डर के अन्तर्गत रखा गया था इसे अब डायग्नोस्टिक एण्ड स्टेटिस्टिकल मैनुअल ऑफ मेंटल डिस्आर्डर–5 में विशिष्ट अधिगम विकृति
( **स्पेसिफिक लर्निंग डिस्आर्डर** ) के अन्तर्गत समाहित कर दिया गया है। अधिगम असमर्थता के शाब्दिक अर्थ से यही परिलक्षित होता है कि सीखने से संबंधित जितने प्रकार के कार्य हैं उनको सम्पादित करने में जो कमजोर हैं अथवा कठिनाई महसूस करते हैं उन्हें ही अधिगम असमर्थता या अधिगम विकृति से ग्रस्त समझना चाहिए। बहुत से मनोवैज्ञानिकों एवं उनके समूह ने अधिगम असमर्थता को परिभाषित किया है इन परिभाषाओं के अवलोकन से हम अधिगम असमर्थता के संप्रत्यय को भली भॉति समझ सकते हैं। आइये इन परिभाषाओं के बारे में जाने।

**अधिगम असमर्थता/अधिगम विकृति की परिभाषाएँ** (Definitions of Learning Disability)–

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक नेविड, राथुस एवं ग्रीन (2014) ने अपनी पुस्तक 'एबनॉरमल साइकोलॉजी इन ए चैलेंजिंग वर्ल्ड' में अधिगम असमर्थता/विकृति को एक विशिष्ट कमी के रूप में परिभाषित किया है उनके अनुसार सामान्य बुद्धि एवं सीखने के अवसरों के एक्सपोजर के संदर्भ में किसी विशिष्ट अधिगम योग्यता में कमी को अधिगम विकृति कहा जाता है।' ( 'A deficiency in a specific learning ability in the context of normal intelligence and exposure to learning opportunities.' Nevid, Rathus & Greene, 2014, Abnormal Psychology in a Challenging World, p 473)

मनोवैज्ञानिक बारलो एण्ड डूरण्ड अपनी पुस्तक '**इसेन्शियल्स ऑफ एबनॉरमल साइकोलॉजी**' में अधिगम असमर्थता को लर्निंग डिस्आर्डर के रूप में निम्न प्रकार के शब्दों में समझाते हैं – 'व्यक्ति की उम्र, बुद्धिलब्धि प्राप्तांक एवं शिक्षा के अपेक्षित स्तर से पढ़ाई, गणित एवं लिखित अभिव्यक्ति निष्पादन से काफी निम्न स्तरीय होना अधिगम विकृति होने को प्रदर्शित करता है।' (Reading, mathematics, or written expression performance, substantially below the level expected relative to the person's age, intelligence quotient score, and education is depicted learning disorder'. Essentials of Abnormal Psychology, 2014, p. 493)।

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से लर्निंग डिस्आर्डर के संबंध में कई बातें स्पष्ट होती हैं जैसे कि अधिगम विकृति का संबंध सीखने में होने वाली अक्षमता से होता है यह

अक्षमता कई प्रकार के कौशलों एवं संज्ञानात्मक विकास से संबंधित हो सकती है। जब किसी बालक को अन्य हमउम्र बालकों की तुलना में पढ़ाई लिखाई अथवा गणित आदि विषयों में पिछड़ा हुआ पाया जाता है। और उसका यह पिछड़ना सामान्य नहीं होता बल्कि उसके इस पिछड़ने को सार्थक रूप से निम्नस्तरीय प्रदर्शन की श्रेणी में रखा जा सकता है तब यह कहा जाता है कि बालक में अधिगम विकृति (लर्निंग डिस्आर्डर ) की समस्या उत्पन्न हो गयी है। और यह समस्या, समस्या के विभिन्न प्रकारों में से एक मनोवैज्ञानिक प्रकार के अन्तर्गत आती है। लर्निंग डिस्आर्डर को निर्धारित करने से पूर्व इसे कई कसौटियों पर कसा जाता है जैसे कि बालक का बुद्धि परीक्षण पर प्राप्त बुद्धिलब्धि प्राप्तांक, उम्र, एवं शिक्षा की सुविधा एवं स्तर आदि। इसे एक विशिष्ट विकृति की संज्ञा दी जाती है।

## 13.4 अधिगम असमर्थता (Learning disability) का स्वरूप

अधिगम असमर्थता के अन्तर्गत अधिगम विकृति, संचार विकृति, तथा समन्वय से संबंद्ध पेशीय कौशल विकृति को एक साथ रखा जाता है क्योंकि इन तीनों में बालक अपने बौद्धिक स्तर के अनुरूप विशिष्ट शैक्षिक या भाषा अथवा पेशीय क्षेत्र में विकसित होने में असमर्थ रहता है।

अधिगम विकृति के स्वरूप को डी.एस.एम. 4 टी.आर. के विवरण में नैदानिक कसौटी के रूप में स्पष्ट किया गया है जो कि इस प्रकार है–

**डी.एस.एम 4 टी.आर.– अधिगम विकृति की विकृति कसौटी संक्षेपिका (DSM-IV- TR : The Disorder Criteria Summary for Learning Disorder)**

अधिगम विकृति (Learning Disorder)

1 व्यक्तिगत रूप से प्रशासित किये गये मानकीकृत परीक्षणों द्वारा मापने पर पढ़ाई उपलब्धि, गणितीय योग्यता, लेखन कुशलता का व्यक्ति की शारीरिक आयु, बुद्धि एवं उम्र उपयुक्त शिक्षा स्तर की अपेक्षा से काफी निम्न स्तर पर पाया जाना) (Reading achievement; Mathematical ability; Writing skill, as measured by individually administered standardized tests, is substantially below that expected given the person's chronological age, measured intelligence, and age appropriate education).

2 कसौटी A की वजह से उन सभी शैक्षिक उपलब्द्धि अथवा दिन प्रतिदिन की सभी गतिविधियों जिनमें पढ़ने का कौशल, गणितीय क्षमता, लिखित पुस्तकों को समझने की जरूरत पड़ती है का सार्थक रूप से प्रभावित होना (The disturbance in criterion A significantly interferes with academic achievement or activities of daily living that requier -reading skills; mathematical ability; composition of written texts)

3 यदि कोई इंद्रिय अथवा संवेदी कमी उपस्थित होती है तो सामान्य रूप से जुड़ी हुई अधिगम कठिनाइयॉ अतिमात्रा में पायी जाती हैं। (If sensory deficit is present, the learning difficulties are in excess of those usually associated with it).

तीन अलग अलग अधिगम विकृतियों को यहॉ एक साथ समायोजित किया गया है क्योंकि मूलभूत कसौटी विशिष्ट योग्यता को छोड़कर समान है।(The three separate learning disorders are combined here because the basic criteria are identical, with the exception of the specific ability that is affected)

इन सभी अधिगम विकृतियों का अलग से वर्णन आगे की पंक्तियों में किया जायेगा।

आइये अब अपनी जानकारी का परीक्षण करें।

**अभ्यास प्रश्न** 1 –निम्नलिखित में से कौन सा कथन अधिगम असमर्थता के संबंध में असत्य है?

क– निष्पादन शारीरिक आयु मानक से उच्च स्तर का होता है।

ख– निष्पादन निर्धारित बुद्धिलब्धि की अपेक्षाओं से निम्न स्तर का होता है।

ग– गणितीय क्षमताओं का निष्पादन अपेक्षा से निम्न स्तर का होता है।

घ– लिखित अभिव्यक्ति अपेक्षित मानकों पर खरी नहीं उतरती।

## 13.5 अधिगम असमर्थता के प्रकार (Types of Learning disabilities)

नैदानिक मनोवैज्ञानिकों के अनुसार अधिगम असमर्थता तीन प्रकार की होती है। जिनका वर्णन क्रमवार किया जायेगा। ये निम्न हैं–

(क) अधिगम विकृतियॉ (Learning disorders)

(ख) संचार विकृतियॉ (Communication disorders)

(ग) पेशीय कौशल विकृतियॉ (Motor skills disorders)

इनका क्रमवार वर्णन निम्नांकित है।–

**(क) अधिगम विकृतियॉ** (Learning disorders)–

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक नेविड, राथुस एवं ग्रीन (2014) अपनी पुस्तक 'एबनॉरमल साइकोलॉजी इन ए चैलेंजिंग वर्ल्ड' में अमेरिका के नेल्सन रॉकफेलर के बारे में लिखते हैं कि नेल्सन अमेरिका के उपराष्ट्रपति रहे हैं एवं उससे पूर्व वे अमेरिका के न्यूयार्क स्टेट के गवर्नर पद पर भी रहे हैं, उनके जीवन में वे बड़े ही दिलचस्प मोड़ से गुजर चुके हैं। वे बहुत ही प्रतिभाशाली थे तथा उन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। दुनिया के सबसे अच्छे शिक्षकों के उपलब्ध होने के बाद भी उन्हें पाठन में बड़ी ही परेशानी होती थी। वास्तव में रॉकफेलर डिस्लेक्सिया नामक बीमारी से ग्रस्त थे जो कि एक अधिगम विकृति कहलाती थी। इसे कई बार अधिगम असमर्थता भी सीधे सीधे कह दिया जाता है क्योंकि यह बहुत ही आम बीमारी है एवं अधिगम विकृति के 80 प्रतिशत व्यक्तियों में यह पायी जाती है। डिस्लेक्सिया के मरीजों में पढ़ने हेतु अपेक्षित बौद्धिक योग्यता होने के बावजूद उन्हें पाठ्य सामग्री का पाठन करने अथवा पाठ दोहराने में कठिनाई होती है। अधिगम विकृति एक ऐसी विकृति है जो कि दीर्घस्थायी होती है एवं व्यक्ति के विकास को उसकी वयस्कावस्था में भी अच्छे से प्रभावित करती है। अधिगम विकृति से ग्रस्त बच्चों का औसत बुद्धि एवं आयु होने के बावजूद स्कूल में निम्नस्तरीय प्रदर्शन रहता है। उनके माता पिता इस समस्या को समझ नहीं पाते एवं अधिकांशतः इसे बच्चों की असफलता माना जाता है। अतएव ऐसे बच्चों में आगे चलकर निम्न आत्मसम्मान जैसी अन्य मनोवैज्ञानिक समस्यायें जन्म ले लेती हैं। इनमें ADHD से ग्रस्त होने की संभावना भी काफी बढ़ी चढ़ी होती है।

डायग्नोस्टिक स्टेटिस्टिकल मैनुअल के आधार पर अधिगम विकृति के तीन प्रकार निर्धारित किए हैं–

1 पठन विकृति
2 गणित विकृति
3 लेखन अभिव्यक्ति की विकृति

इन प्रकारों का वर्णन निम्नांकित हैं।

**1 पठन विकृति** (reading disorder)– पठन–पाठन में होने वाली विकृति को पठन विकृति की संज्ञा दी जाती है। इसे डी.एस.एम–4 में डिस्लेक्सिया कहा गया है। हालांकि डी.एस.एम.–5 में डिस्लेक्सिया शब्द का प्रयोग पठन विकृति हेतु नहीं किया गया है परन्तु यह आज भी मनोवैज्ञानिकों, क्लीनिशियन तथा शिक्षकों के बीच में अत्यधिक प्रचलित है। इस तरह की विकृति में बच्चों को पाठ पढ़ने में बड़ी ही कठिनाई होती है। ऐसे बच्चें प्रायः पाठ को रूक रूक कर पढ़ते हैं इससे उनके पाठन गति धीमी होती है तथा इसके साथ ही उन्हें मूल शब्दों को पहचानने एवं पढ़े गये शब्दों के अर्थ को समझने में भी कठिनाई होती है। मनोवैज्ञानिक रटर एवं उनके सहयोगियों (2004) के अनुसार स्कूली उम्र के लगभग 4 प्रतिशत बच्चों में डिस्लेक्सिया की समस्या होती है एवं यह लड़कों में लड़कियों की अपेक्षा ज्यादा पायी जाती है।

डिस्लेक्सिया से ग्रस्त बच्चे पाठ को बहुत ही कठिनता से एवं धीरे–धीरे पढ़ते हैं तथा जब वे जल्दी जल्दी अथवा ऊँची आवाज में पढ़ने की कोशिश करते हैं तो शब्दों को तोड़–मरोड़कर पढ़ते हैं, इसमें कई बार वाक्य के बीच के शब्द उनसे छूट जाते हैं एवं कई बार वे उन्हें गलत भी पढ़ जाते हैं तथा कभी कभी तो उनकी जगह पर दूसरे शब्दों का उच्चारण कर बैठते हैं। उन्हें शब्दों में बीच अक्षर विभाजन में भी समस्या हो सकती है कई बार तो वे अक्षरों के संयोजन को समझने में भी दिक्कत महसूस करते हैं। परिणामस्वरूप वे शब्द का समुचित स्वर में पाठन नहीं कर पाते हैं। कभी कभी उनमें कुछ अक्षरों को उल्टा प्रत्यक्षित करने की समस्या भी होती है जैसे कि अंग्रेजी के अक्षर W को M के रूप में प्रत्यक्षित करना। इसके अलावा उन्में अक्षरों की दिशा पलटने की भी समस्या होती है जैसे कि b को d के रूप में पढ़ना। डिस्लेक्सिया अधिकांशतः 6–7 वर्ष की उम्र में पहचान में आता है। इसे बच्चों की ग्रेड 2 कक्षा से भी जोड़कर देखा जाता है। डिस्लेक्सिया से ग्रस्त बच्चों व किशोरों में डिप्रेशन, निम्नआत्ममूल्य एवं ADHD विकसित होने का खतरा काफी ज्यादा होता है।

ऑचलिक एवं देशीय भाषाओं के अनुसार डिस्लेक्या की दर विभिन्न देशों में क्षेत्रों में भिन्न पायी जाती है। अंग्रेजी एवं फ्रेंच बोलने वाले देशों में जहॉ कि भाषा में अलग अलग प्रकार की स्पेलिंग का उच्चारण एक समान प्रतीत होने वाले स्वरों से किया जाता है डिस्लेक्सिया के रोगियों की संख्या काफी अधिक है। वहीं इटली में इसका विपरीत होने की वजह से डिस्लेक्सिया की दर कम है।

**2 गणित विकृति** (mathematics disorder)– गणित विकृति की पहचान तब होती है जब बच्चों की बौद्धिक क्षमता की तुलना में बच्चों का अंकगणितीय प्रदर्शन काफी निम्नस्तरीय होता है। तथा उसकी शैक्षिक उपलबिधयॉ उससे प्रभावित होती हैं। ऐसे बच्चों में लिखित समस्याओं को गणितीय संकेतों में कूटबद्ध करने में भी परेशानी होती है जिससे उनमें भाषाई कौशल से संबंधित कठिनाई भी उत्पन्न हो जाती है। ऐसे बच्चों में संख्यात्मक संकेतों (numerical symbols) को समझने में भी समस्या हो सकती है। ऐसे बच्चों में मूल गणितीय संक्रियाओं को सम्पादित करने में भी कठिनाई हो सकती है जैसे कि जोड़–घटा एवं गुणा–भाग। यह समस्या वैसे तो छः वर्ष की आयु से ही प्रारम्भ हो सकती है परन्तु बच्चे के कक्षा दो या तीन में पहुॅचने पर ही इसकी समुचित पहचान हो पाती है। यह लड़के एवं लड़कियों में समान रूप से पायी जाती है।

**3 लेखन अभिव्यक्ति में विकृति** (written expression disorder)– इस विकृति की पहचान बच्चों द्वारा उनके द्वारा लिखे गये कार्य में होने वाली स्पेलिंग, व्याकरण, एवं पन्क्चुएशन में होने वाली त्रुटियों के माध्यम से की जाती है। जब बच्चा अपनी बौद्धिक क्षमता एवं आयु के स्तर से कहीं निम्नस्तर पर अत्यधिक त्रुटियॉ करता है तो इसे लेखन अभिव्यक्ति में विकृति की संज्ञा दी जाती है। ऐसे बच्चे वाक्यों को लिखने में काफी त्रुटियॉ करते हैं एवं वाक्यों को पैराग्राफ में ठीक से समायोजित भी नहीं कर पाते हैं। अधिकांशतः सात वर्ष की उम्र में अथवा कक्षा–2 में इस विकृति की पहचान हो जाती है। कुछ केसेज जो कि माइल्डर केसेज कहे जा सकते हैं में इनकी पहचान 10 वर्ष की उम्र अथवा पांचवी कक्षा में पहुॅचते पहुॅचते हो जाती है।

**(ख) संचार विकृतियॉ** (Communication disorder)– भाषा को, समझने एवं इस्तेमाल करने में तथा स्पष्ट रूप से तथा धाराप्रवाह बोलने में होने वाली विकृति को संचार विकृति कहा जाता है। दैनिक जीवन में भाषा एवं भाषण की अत्यधिक महत्ता होने की वजह से यह विकृति जीवन में व्यक्ति की सफलता को उसके स्कूल जीवन, कार्यस्थल एवं सामाजिक परिस्थितियों को काफी गंभीर रूप से प्रभावित करती है। यह विकृति कई प्रकार की होती है। आइये इनके बारे में जानें।

**1 भाषा विकृति** (Language disorder)– भाषा विकृति में बोलचाल की भाषा को उत्पन्न कर पाने की क्षमता में विकृति एवं बोलचाल की भाषा को समझ पाने की क्षमता में विकृति को सम्मिलिति किया गया है। इसके अन्तर्गत एक बालक में उसकी उम्र विशेष के परिप्रेक्ष्य में शब्दकोष के विकास का धीमा होना, वाक्य विन्यास में गड़बड़ी, शब्दों के प्रत्याह्वान में कठिनाई एवं उपयुक्त लम्बाई तथा जटिल वाक्यों को निर्मित कर पाने में परेशानी जैसी विशिष्ट विकृतियॉ शामिल हैं। इसके अलावा इस विकृति से ग्रस्त बच्चों में शब्दों के उपयुक्त उच्चारण में भी कमी पायी जाती है जिसे स्पीच साउंड डिस्आर्डर कहा जाता है।

भाषा विकृति से ग्रस्त बच्चों में वाक्यों अथवा शब्दों को अर्थ को न समझ पाने की समस्यायें भी पायी जाती हैं। कुछ केसेज में ऐसे बच्चे कुछ विशेष प्रकार के शब्दों को समझने में संघर्ष करते पाये जाते हैं उदाहरण के लिए ऐसे शब्द जो पदार्थ अथवा वस्तु की मात्रा में अन्तर को अभिव्यक्त करते हैं जैसे कि large, big or huge । या फिर ऐसे शब्द जो कि लम्बाई, चौड़ाई, ऊॅचाई, अथवा दूरी या निकटता को अभिव्यक्त करते हैं जैसे कि दूर (far) अथवा पास (near) । ये हमेशा वाक्यों को छोटा कर देते हैं। श्रव्य सूचनाओं को संसाधित करने में भी कठिनाई महसूस करते हैं।

**2 भाषण आवाज विकृति** (Speech sound disorder)– इस विकृति को ध्वनिक विकृति (phonological disorder) भी कहा जाता है। वैसे बच्चों को जो उपयुक्त उम्र तथा संभाषण प्रक्रम में किसी प्रकार का दोष न होने के बावजूद शब्दों अथवा वाक्यों को सही सही ढंग से बोल या उच्चारित नहीं कर पाते हैं उन्हें भाषण–आवाज विकृति या ध्वनिक विकृति का रोगी माना जाता है। ऐसे बच्चों की भाषा में बोले गये शब्दों में अस्पष्टता होती है, ये शब्दों का प्रतिस्थापन करते हैं अर्थात् बोले जाने वाले शब्द के स्थान पर कोई अन्य शब्द बोल देते हैं। कई बार ये वाक्यों में से कुछ शब्दों को छोड़कर वाक्य बोलते हैं जिससे उनकी बातचीत एक बहुत छोटे बच्चे की बातचीत के समान हो जाती है। कुछ विशेष प्रकार के शब्द जिनका बहुत बढ़िया उच्चारण साधारण बच्चे नर्सरी, अथवा

केजी की कक्षा में पहुॅचने से पूर्व ही भली भॉति कर पाते हैं इस विकृति से ग्रस्त बच्चे उन शब्दों जैसे कि ch, f, l, r, sh एवं th की ध्वनियों का स्पष्ट उच्चारण करने में त्रुटियॉ करते हैं। जिन बच्चों में यह विकृति ज्यादा गंभीर होती है वे तो b, d, t, m, n, एवं h का भी उच्चारण ठीक से नहीं कर पाते हैं। इस प्रकार के बच्चों को यदि स्पीच थेरेपी प्रदान की जाती है तो सामान्यतया 8 वर्ष की उम्र से पहले ही यह समस्या दूर हो जाती है।

**3 चाइल्डहुड–ऑनसेट–फ्लूयेन्सी विकृति** (Childhood-onset-fluency disorder)– इस विकृति को हकलाना विकृति (Stuttering) भी कहा जाता है। डी.एस.एम.–4 में इसे हकलाना विकृति के रूप में ही अभिव्यक्त किया जाता था। डी.एस.एम–5 के संस्करण में इसे चाइल्डहुड–ऑनसेट–फ्लूयेन्सी विकृति के नाम से वर्गीकृत किया गया है। इस विकृति से ग्रस्त बच्चे अपने बोलचाल के सामान्य प्रवाह तथा बोलने में लगने वाले समय के पैटर्निंग में परेशानी का अनुभव करते हैं। वे किसी अक्षर अथवा शब्द को कभी–कभी दोहरा देते हैं, या कभी उसे लम्बे समय तक खींचकर बोलते हैं, या कभी शब्द को बीच में ही बोल देते हैं, एक शब्द के भीतर एक अक्षर बोल कर रूक जाते हैं और फिर पुनः बोलते हैं, आवाज को अवरूद्ध कर देते हैं तथा अन्य कठिन शब्दों की जगह पर दूसरे शब्द बोलने लगते हैं, या फिर यदि मूल शब्दों को बोलते समय काफी तनाव का अनुभव करते हैं। एक ही पद में पूरा शब्द बोल देते हैं, आदि आदि। लगभग 1 प्रतिशत बच्चों में हकलाने की विकृति पायी जाती है इनमें 75 प्रतिशत लड़के होते हैं। हकलाने की समस्या प्रायः दो से सात वर्ष की उम्र में प्रारम्भ होती है और इनमें जसे तकरीबन 75 प्रतिशत बच्चे बिना उपचार के ही 15–16 वर्ष की उम्र तक आते आते अपने आप ही ठीक हो जाते हैं।

**4 सामाजिक संचार विकृति** (Social communication disorder)– सामाजिक संचार विकृति डी.एस.एम–5 में संचार विकृति के अन्तर्गत सम्मिलित की गयी एक नये प्रकार की विकृति है जो कि इससे पूर्व डी.एस.एम. के किसी अन्य पूर्व संस्करण में वर्गीकृत नहीं की गयी थी। इस विकृति की डायग्नोसिस किसी बालक के संबंध में तब की जाती है जब कि कोई बच्चा जीवन की स्वाभाविक परिस्थितियों जैसे कि, स्कूल, घर, खेल आदि में अन्य व्यक्तियों के साथ शाब्दिक अथवा अशाब्दिक रूप से दूसरे लोगों के साथ बातचीत नहीं कर पाता है एवं यह लम्बे समय से एवं स्पष्ट रूप में चल रहा होता है। इन बच्चों में बातचीत को लम्बे समय तक करने में कठिनाई होती है तथा वे कभी कभी बच्चों के समूह में होने पर अपनी इस कठिनाई के चलते चुप रह जाते हैं। उन्हें बोलचाल एवं लिखने वाली भाषा दोनों को ही सीखने में कठिनाई होती है। इस प्रकार की समस्या होने के बावजूद उनकी अन्य भाषाई एवं मानसिक योग्यता में औसत रूप से कोई भी कमी दृष्टिगोचर नहीं होती है जिससे कि कहा जा सके कि भाषा के ज्ञान के औसत से निम्नस्तर का होने एवं मानसिक योग्यता का औसत से निम्नस्तर होने की कमी के कारण वे बोलचाल में पिछड़े हुए हैं। हालॉकि बोलचाल की यह सामाजिक अक्षमता जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उनकी सफलता एवं उन्नति को गंभीर रूप से प्रभावित अवश्य करती है।

**(ग) पेशीय कौशल विकृतियॉ** (Motor skill disorders)– इसे विकासात्मक समन्वय विकृति (developmental coordination disordrer) भी कहा जाता है। इस प्रकार की डायग्नोसिस तब की जाती है जब कि बच्चों में पेशीय समन्वय (motor coordination) में कोई ऐसा दोष हो जिसकी व्याख्या मानसिक दुर्बलता या किसी ज्ञात फिजियोलॉजिकल डिस्आर्डर के रूप में नहीं की जा सकती है। इस प्रकार की विकृति होने

पर बच्चे को अपनी कमीज के बटन लगाने में परेशानी हो सकती है, क्रिकेट खेलने, कैरम खेलने, निशानेबाजी, हाथ से लिखने, जूते का फीता बॉधने आदि में कठिनाई हो सकती है। इस विकृति की डायग्नोसिस तभी की जाती है जब कि इस प्रकार की समस्याओं से बच्चे की शैक्षिक उपलब्धि या दैनिक क्रियायें गंभीर रूप से प्रभावित हो रही हों।

**अभ्यास प्रश्न 2**–निम्नलिखित में से कौन सी विकृति संचार विकृति का प्रकार नहीं है?

क– चाइल्ड–ऑनसेट–फ्लूयेन्सी विकृति (child-onset-fluency disorder)

ख– भाषा विकृति (language disorder)

ग– पठन विकृति (reading disorder)

घ– सामाजिक संचार विकृति (social communication disorder)

## 13.6 अधिगम असमर्थता के कारण (Etiology of Learning Disability)

उपरोक्त बिंदुओं में अब तक आपने अधिगम असमर्थता के स्वरूप लक्षण एवं प्रकारों के बारे में जानकारी प्राप्त की है परन्तु अब प्रश्न उठता है कि इस विकृति के विकसित होने के पीछे कौन से कारण अथवा कारक जिम्मेदार हैं। वैसे तो कारण एवं कारक कई हो सकते हैं परन्तु जो प्रमुख हैं एवं जिनकी आपको जानकारी होनी चाहिए उनका विस्तृत विवेचन निम्नांकित हैं। –

अधिगम असमर्थता के अंतर्गत अधिगम विकृति पर किये गये शोध अनुसंधानों एवं सिद्धान्तों के अनुसार इस विकृति के कारकों में जैविक (genetic), **न्यूरोबायलॉजिकल** (neurobiological), एवं **वातावरणीय** (environmental) कारक प्रमुख हैं। इनका समवेत विवेचन इस प्रकार है।

उपरोक्त तीनों प्रकार के कारकों में आनुवॉशिक कारकों का विश्लेषण सर्वाधिक जटिल है। यद्यपि वैज्ञानिक फ्लेचर एवं उनके सहयोगियों के अनुसार जुड़वॉ युग्मों तथा उन्नत परिवारों पर किये गये अध्ययन स्पष्ट करते हैं कि अधिगम विकृति परिवारों में वृक्ष की शाखाओं के समान फैलती है एवं पायी जाती है तथापि इस विकृति के लिए जिम्मेदार जीन्स का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि अलग अलग प्रकार के अधिगम विकृति के लिए अलग अलग प्रकार के कौन से जीन्स इसके विकसित होने के लिए उत्तरदायी हैं उनका विशिष्ट रूप से अभी तक प्रकाशन नहीं हो पाया है। उदाहरण के लिए **पठन विकृति** (reading disorder) या **गणित विकृति** (mathematics disorder) के लिए विशिष्ट रूप से जिम्मेदार जीन्स की पहचान वैज्ञानिक अभी तक नहीं कर पाये हैं। हालॉकि यह अधिगम विकृति के लिए जिम्मेदार जीन्स की पहचान अवश्य हो गयी है जो कि पठन विकृति आदि अन्य सभी प्रकार की अधिगम विकृति के लिए जिम्मेदार हो सकते हैं।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार अधिगम विकृति से जुड़ी हुई अलग–अलग प्रकार की समस्याओं के लिए अलग अलग कारण हो सकते हैं। उदाहरण के लिए बच्चों में पठन विकृति से संबंधित विभिन्न समस्याओं जैसे कि शब्द पहचान (word recognition), शब्द प्रवाह (fluency) एवं समझ (comprehension) के लिए अलग अलग कारक हो सकते हैं। टैनोक (2009) के अनुसार शब्द पहचान से संबंधित विकृति के लिए अभी तक हुए अनुसंधानों से दो प्रकार के प्रमाण मिलते हैं एक प्रकार के प्रमाण इस विकृति के लिए आनुवांशिक कारकों यानि कि जीन्स को इसके लिए प्रमुख कारक सिद्ध करते हैं वही दूसरे

तरह के प्रमाण इसमें वातावरणीय असर को प्रदर्शित करते हैं। टैनोक यह भी कहते हैं कि इस प्रकार की विकृति के लिए क्रोमोसोम्स में स्थित जीन संख्या 1, 2, 3, 6, 11, 12, 15 एवं 18 को विभिन्न अनुसंधानों में बार–बार संबंधित पाया गया है। वहीं पेट्रिल एवं उनके सहयोगी (2006) ने अपने शोध अनुसंधानों में वातावरणीय प्रभावों को इस विकृति से सहसंबंधित पाया है। उनके अनुसार परिवारों में पढ़ने का वातावरण बच्चों की पठन आदत को महत्वपूर्ण रूप में प्रभावित करता है उनके अनुसार जिन परिवारों में पठन विकृति होने के बावजूद रीडिंग आदत को कुशलतापूर्वक बच्चों में स्थापित किया गया है उन परिवारों में अन्य परिवारों के बच्चों की अपेक्षा पठन विकृति की समस्या सार्थक रूप से कम विद्यमान होती है। यहॉ तक कि यदि योजनाबद्ध रीति से यदि पठन विकृति से ग्रस्त बच्चों में घर के स्नेहिल वातावरण में पठन–पाठन का अभ्यास कराया जाये एवं उनमें इस आदत को विकसित किया जाये तो विशेष रूप से उनके शब्द पहचान की समस्या के खतरे को कम किया जा सकता है।

सूक्ष्म मस्तिष्कीय विघटन अथवा क्षति को भी अधिगम विकृति से जोड़ा जाता रहा है। एवं वैज्ञानिक हिन्सेलवुड (1996) जैसे पूर्ववर्ती विद्वान इसकी न्यूरोलॉजिकल व्याख्या भी करते रहे हैं। शेविट्ज एवं उनके सहयोगियों (2006) के अनुसार अधिगम असमर्थता से ग्रस्त रोगियों के मस्तिष्क में संरचनात्मक (structural) एवं प्रकार्यात्मक (functional) विभिन्नताओं के प्रमाण उपलब्ध हैं खासतौर पर शब्द पहचान समस्या यानि की डिस्लेक्सिया की व्याख्या हेतु बॉये हिमेस्फियर के तीन प्रमुख हिस्सों के माध्यम से की जाती है। इन तीन हिस्सों में पहला है ब्रोका एरिया (Broca's area) जो कि शाब्दिक अभिव्यंजना एवं शब्द विश्लेषण को प्रभावित करता है, तथा दूसरा एरिया बॉया पैराइटोटेम्पोरल (left-parietotemporal) एरिया है जो कि शब्द विश्लेषण को प्रभावित करता है तथा तीसरा एरिया बॉया ऑक्सीटिपोटेम्पोरल (left- occitipotemporal) एरिया है जो कि शब्द के स्वरूप की पहचान (recognition of word form) को प्रभावित करता है।

**फ्लेचर एवं उनके सहयोगियों (2007)** के अनुसार संख्या ज्ञान के विकसित होने में मस्तिष्क के बॉये हिमेस्फियर का इन्ट्रापैराइटल सलकस (intra-parietal sulcus) एक ऐसा एरिया है जो कि इसमें महत्वपूर्ण रूप से जुड़ा हुआ है तथा इसकी गणित विकृति में अहम् भूमिका होती है।

उपरोक्त सभी प्रकार की अधिगम विकृति की तुलना में लेखन अभिव्यक्ति विकृति के संबंध में अभी तक कोई भी विशिष्ट कारक संबंधी प्रमाण नहीं मिले हैं।

इसके अलावा संचार विकृति के प्रमुख प्रकार चाइल्ड–ऑनसेट–फ्लूयेन्सी विकृति (हकलाना विकृति) के संबंध में **फिबिगर एवं उनके सहयोगियों (2010)** का कहना है कि इसका प्रमुख कारण आनुवांशिक है। उनके अनुसार अनुमानतः कहा जा सकता है कि इस विकृति के लिए संभाषण करने के लिए जो मांसपेशियॉ सम्मिलित होती हैं उन्हें नियंत्रित करने वाले जीन्स ही इसके लिए जिम्मेदार होते हैं। वैज्ञानिक **कांग एवं उनके सहयोगियों** (2010) के अनुसार एक विशेष प्रकार के जीन के म्यूटेशन को हकलाने वाले बच्चों में विभिन्न वैज्ञानिकों के शोध अनुसंधानों में रिपोर्ट किया गया है संभवतया वह म्यूटेशन भी हकलाने की विकृति से संबंधित हो सकता है। हालॉकि इसकी वैधता के संबंध में अनुसंधान जारी है।

हकलाने की इस विकृति के कारण कई सांवेगिक प्रभाव एवं परिणाम भी इससे ग्रस्त बच्चों में अधिकांशतः देखने को मिलते हैं। करास एवं उनके सहयोगियों के अनुसार इस विकृति से ग्रस्त बच्चे जब तनाव अथवा चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में फंस जाते हैं या उनसे उनका सामना होता है तब वे सामान्य बच्चों के तुलना में कहीं अधिक उत्तेजित एवं क्षुब्ध हो जाते हैं। इसके अलावा इनमें नहीं हकलाने वाले बच्चों के अपेक्षा सांवेगिक प्रतिक्रिया वृत्ति भी काफी अधिक होती है। **काइमात एवं उनके सहयोगियों (2002)** के अनुसार हकलाने वाले बच्चों में इस विचार को लेकर कि उनके हकलाने को देखकर दूसरे लोग क्या कहेंगे अथवा उनकी हंसी उड़ायेंगे सोचकर, सामाजिक चिंता (social anxiety) की संमस्या भी काफी मात्रा में उत्पन्न हो जाती है। हकलाने वाले बच्चों में प्रायः उनकी इस समस्या के साथ बोलने के संबंध में चिंता की समस्या, वैसी परिस्थितियॉ जहॉ बोलने की आवश्यकता पड़ती है का परिहार करने की प्रवृत्ति भी पायी जाती है। यह प्रवृत्ति प्रायः व्याकुलता से उत्पन्न होती है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट होती है कि अधिगम असमर्थता अथवा अधिगम विकृति, संचार विकृति आदि के कई कारण होते हैं अभी इस क्षेत्र में पर्याप्त शोध अनुसंधान नहीं हो पायें है जिन्हें किये जाने की महती आवश्यकता है।

**अभ्यास प्रश्न 3–** निम्नलिखित में से मस्तिष्क का कौन सा एरिया अधिगम असमर्थता की गणित विकृति से संबंधित होता है?

क– ब्रोका एरिया (Broca's area)

ख– बॉया ऑक्सीटिपोटेम्पोरल (left- occitipotemporal)

ग– बॉया पैराइटोटेम्पोरल (left- parietotemporal)

घ– इन्ट्रापैराइटल सलकस (intra-parietal sulcus)

## 13.7 मानसिक दुर्बलता का उपचार (Treatment of Mental Retardation/Deficiency)

उपरोक्त पंक्तियों में आपने अभी तक अधिगम असमर्थता के कारणों के संबंध में ज्ञान प्राप्त किया है अपनी समझ को बढ़ाया है। आइये अब इस बिन्दु के अंतर्गत अधिगम असमर्थता के उपचार की कतिपय प्रविधियों के बारे में ज्ञान प्राप्त करें। वर्तमान समय में अधिगम असमर्थता के उपचार की जितनी भी विधियॉ एवं तरीके उपलब्ध हैं, मनोचिकित्सकों के अनुसार उनमें से कोई भी स्वयं में पूरी तरह अधिगम असमर्थता का उपचार करने में समर्थ नहीं पाया गया। आजकल जिन विधियों को प्रयोग अधिगम असमर्थता के उपचार हेतु किया जाता है वो निम्न प्रकार से हैं।

**1. माता–पिता को शिक्षित करना** (Educating the parents)– अधिगम असमर्थता से ग्रस्त बच्चे की त्वरित पहचान एवं उपचार में जो सर्वप्रथम बाधा उत्पन्न होती है वह है अधिगम असमर्थता से ग्रस्त बच्चे के माता–पिता में मनोरोगों के प्रति मनोवैज्ञानिक समझ का अभाव। अतएव मनोचिकित्सक अथवा नैदानिक मनोवैज्ञानिक का पहला कार्य तो अधिगम असमर्थता से ग्रस्त बच्चों के माता–पिता को यह स्वीकार कराना होता है कि उनके बच्चे को विशिष्ट प्रकार की उचित देख–रेख की आवश्यकता है। ऐसे में जरूरत इस बात की है कि माता–पिता को इस ढंग से शिक्षित किया जाये कि वे अपने बच्चों की

ऐसी कमजोरी को शैशवावस्था या शुरूआती बाल्यावस्था में ही पहचान लें जिससे ऐसे बच्चों को उचित प्रशिक्षण प्रदान कर स्वनिर्भर बनाया जा सके।

**2. स्कूल में अध्यापकों द्वारा प्रशिक्षण** (Training in school by teachers)– अधिगम असमर्थता से ग्रस्त बच्चों को यदि अध्यापकों द्वारा कुछ विशेष प्रकार के निर्देशों एवं प्रशिक्षण के माध्यम से शिक्षित किया जाये तो उनकी पठन विकृति, गणित विकृति, संचार विकृति, हकलाने की समस्या जैसी समस्याओं का बहुत ही कम समय में उपचार अपने आप ही हो जाता है उसके लिए प्राय किसी विशेष युक्ति उपाय करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।

**3. भाषाई उपागम** (Linguistic approach)– इस विधि के अन्तर्गत वे बच्चे जो कि पठन विकृति, लेखन विकृति जैसी अधिगम विकृति से ग्रस्त हैं तथा जिनमें भाषा से संबंधित समस्या होती है उनका उपचार भाषाई उपागम के माध्यम से किया जाता है। लियोन एवं मोट्स (1988) द्वारा किया गये अनुसन्धान के अनुसार इस उपागम में बच्चों को ध्यान से सुनने, ठीक से बोलने, पढ़ने एवं तार्किक क्रम में लिखने का प्रशिक्षण दिया जाता है। काफी छोटे बच्चों को पहले अक्षर विभेद (letter discrimination), ध्वनिक विश्लेषण (phonotic analysis) तथा अक्षर–आवाज–साहचर्य (letter-sound-association)करना सिखलाया जाता है तत्पश्चात उन्हें विभिन्न प्रकार के पठन निर्देश (reading direction) एवं पठन कौशल (reading skills) का प्रशिक्षण दिया जाता है। ब्रक (1987) के अनुसार डिस्लेक्सिया से ग्रस्त वयस्कों का भी उपचार इस उपागम के द्वारा किया जाता है। इसके लिये कॉलेज में कई तरह के निर्देशात्मक सपोर्ट जैसे कि टेप किया हुआ लेक्चर, विशिष्ट रूप से कुशल शिक्षकों से परामर्श दिया जाता है।

**4. व्यवहारात्मक प्रशिक्षण** (Behavioural training)– व्यवहारात्मक प्रशिक्षण को मनोवैज्ञानिकों ने वर्तमान समय में अधिगम विकृति के विभिन्न प्रकारों जैसे कि पठन विकृति, लेखन अभिव्यक्ति आदि के उपचार में काफी सफल पाया है। ब्रेन इमेजिंग टेक्नोलॉजी की मदद से व्यवहारात्मक प्रशिक्षणों के प्रभावों को जॉचने में तथा उनके स्वरूप का निर्धारण करने में काफी आसानी होती है। ऐसे ही एक दिलचस्प शोध अध्ययन में एफ.एम.आर.आई तकनीक (fMRI- functional magnetic resonance iamging) द्वारा पठन विकृति से ग्रस्त एवं साधारण बच्चों के बीच सामान्य कार्य को उनके मस्तिष्क द्वारा सम्पादित करने की प्रक्रिया की तुलना हेतु उपयोग किया गया। इसके लिए कम्प्यूटर की सहायता से पठन विकृति से ग्रस्त बच्चों के लिए एक 8 सप्ताह तक चलने वाले प्रोग्राम को डिजाइन किया गया यह प्रोग्राम विशेष रूप से उनकी श्रव्य एवं भाषा–संसाधन कुशलता (auditory and language processing skills) को बढ़ाने में मदद करता था। परिणाम में पाया गया कि इस व्यवहारात्मक प्रशिक्षण से न केवल पठन विकृति से ग्रस्त बच्चों की पठन योग्यता में बढ़ोत्तरी हुई बल्कि उनके मस्तिष्क बिल्कुल सामान्य बच्चों की भांति प्रकार्य करने में सक्षम हो गये।

**संचार विकृति का उपचार** (Treatment of communication disorder)– संचार विकृति के उपचार हेतु मुख्य रूप से तीन प्रकार की विधियॉ सर्वाधिक प्रचलन में हैं उनका वर्णन निम्नांकित है

**1. विशिष्टिगत संभाषण** (Specialized speech)– मनोवैज्ञानिकों के अनुसार संचार विकृति के उपचार में बच्चे उचित शब्दों को प्रयोग कर सकें इसके लिए उनके लिए

विशिष्ट रूप से संभाषण तैयार किये जाते हैं तथा बच्चों को उनका अभ्यास कराया जाता है प्रायः इसके लिए बच्चों के शिक्षकों को तथा माता–पिता को विशेष प्रशिक्षण भी प्रदान किया जाता है।

**2. भाषा चिकित्सा** (Language therapy)– संभाषण के अलावा भाषा चिकित्सा का प्रयोग भी संचार को दुरूस्त करने हेतु किया जाता है इसके अन्तर्गत संचार विकृति से ग्रस्त बच्चों की भाषाई योग्यता का गंभीर मूल्यॉकन किया जाता है तथा यह सुनिश्चित किया जाता है कि बच्चे की योग्यता औसत से कम न हो तदनुपरान्त बच्चो को वाक्य संरचना तथा शब्द संयोजन का प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है इसके लिए एक बड़े वाक्य को छोटे छोटे वाक्यों में बॉट लिया जाता है तथा बच्चों को उन वाक्यों को दोहराने तथा उनका अर्थ बताने के लिए कहा जाता है। त्रुटि होने पर भूल सुधार की प्रकिया अपनाई जाती है तथा अर्थ बताने के उपरान्त पुनः अभ्यास कराया जाता है।

**3. प्रवाह प्रशिक्षण** (fluency training)– संचार का दुरूस्त करने के लिए प्रवाह प्रशिक्षण का सहारा भी लिया जाता है जिसके अन्तर्गत बच्चे शब्द एवं वाक्य धारा प्रवाह बोल सकें यह सुनिश्चित किया जाता है इसके लिए बच्चों को सर्वप्रथम अलग–अलग अक्षरों को जोर जोर से बोलने को कहा जाता है तथा उसके उपरान्त कई अक्षर मिलाकर दो पदीय शब्द तथा तीन पदीय अथवा बहु पदीय शब्दों को बोलने का अभ्यास कराया जाता है। जब बच्चे शब्दों को बोलने में कुशल हो जाते हैं तत्पश्चात् उन्हें वाक्यों को बिना रूके बोलने का अभ्यास कराया जाता है।

**4.परामर्श विधि**(Counsellingmethod)–संचार विकृतियों में चाइल्ड–ऑनसेट–फ्लूयेन्सी डिस्आर्डर अथवा हकलाने की समस्या से जुड़ी हुई सामाजिक चिंता के उपचार हेतु परामर्श विधि का भी उपयोग किया जाता है इसके लिए बाल मनोवैज्ञानिक की अहम् भूमिका होती है।

**योग की विधियों का प्रयोग** – उपरोक्त चिकित्सकीय एवं रोकथामपरक उपायों के अलावा योग की प्रविधियों का उपयोग यदि अधिगम असमर्थता से ग्रस्त बच्चों अथवा व्यक्तियों के समस्या के उपचार हेतु किया जाये तो इससे भी अधिगम से संबंधित असमर्थता को बढ़ने से रोका जा सकता है। वर्तमान में योग को बहुत से शारीरिक एवं मानसिक दोनों ही प्रकार के रोगों के उपचार में अनुसंधानकर्ताओं द्वारा सफल पाया जा रहा है। यदि योगशास्त्रों में वर्णित योग अभ्यासों पर अनुसंधान किया जाये तो हर उम्र विशेष से संबंधित अधिगम असमर्थता से ग्रस्त व्यक्ति का इलाज संभव है। योग की विधियों में आसन, प्राणायाम का प्रशिक्षण भी व्यक्तियों को अनुभवी योगाचार्यों एवं चिकित्सकों द्वारा दिया जा सकता है।

**अभ्यास प्रश्न 4–** अधिगम विकृति के उपचार हेतु कौन सी एप्रोच पर सर्वाधिक बल दिया जाता है?

क– भाषाई उपागम (linguistic approach)
ख– प्रायोगिक उपागम (experimental approach)
ग– व्यवहार उपागम (behavioural approach)
घ– मानवतावादी उपागम (humanistic approach)

## 13.8 सारांश

1 अधिगम असमर्थता जिसे अंग्रेजी में लर्निंग डिसएबिलिटी कहा जाता है का वर्णन मनोरोगों के वर्गीकरण के लिए विकसित किए गए डी.एस.एम.–4–टी.आर एवं डी. एस.एम.–5 में डिसएबिलिटी शब्द के रूप में नहीं मिलता है बल्कि यह डी.एस. एम–4–टी.आर में लर्निंग डिस्आर्डर एवं डी.एस.एम.–5 में स्पेसिफिक लर्निंग डिस्आर्डर पद के रूप में वर्णित किया गया है। अधिगम विकृति का संबंध सीखने में होने वाली अक्षमता से होता है यह अक्षमता कई प्रकार के कौशलों एवं संज्ञानात्मक विकास से संबंधित हो सकती है।

2 लर्निंग डिस्आर्डर को निर्धारित करने से पूर्व इसे कई कसौटियों पर कसा जाता है जैसे कि बालक का बुद्धि परीक्षण पर प्राप्त बुद्धिलब्धि प्राप्तांक, उम्र, एवं शिक्षा की सुविधा एवं स्तर आदि। इसे एक विशिष्ट विकृति की संज्ञा दी जाती है।

3 अधिगम असमर्थता तीन प्रकार की होती है। ये निम्न हैं–

**(क) अधिगम विकृतियॉ (Learning disorders)**

**(ख) संचार विकृतियॉ (Communication disorders)**

**(ग) पेशीय कौशल विकृतियॉ (Motor skills disorders)**

4. अधिगम विकृति का संबंध बच्चों के अधिगम से संबंद्ध कठिनाइयों से होता है तथा इसमें तीन तरह की विकृतियॉ सम्मिलित होती हैं – पठन विकृति, गणित विकृति तथा लेखन अभिव्यक्ति की विकृति।

5. संचार विकृति का संबंध बच्चों द्वारा किया गया संचार एवं भाषा में उत्पन्न दोष से होता है। इसमें चार तरह की विकृतियॉ मनोवैज्ञानिकों द्वारा निर्धारित की गयी हैं। ये हैं भाषा विकृति, ध्वनिक विकृति, हकलाना तथा सामाजिक संचार विकृति।

6. अधिगम असमर्थता के विकसित होने की व्याख्या कई प्रकार से की जाती है जिनमें आनुवांशिक कारक (Genetic factor), वातावरणीय कारक (Environmental factor),प्रमुख हैं।

7. सामान्यीकृत चिंता विकृति के उपचार हेतु उपचार प्रविधियों में माता–पिता को शिक्षित करना, विशेष स्कूल प्रशिक्षण देना, पारिवारिक परामर्श, तथा विहेवियरल चिकित्सा प्रमुख हैं।

## 13.9 शब्दावली

**अधिगम विकृति** (Learning disorder)– सामान्य बुद्धि एवं सीखने के अवसरों के एक्सपोजर के संदर्भ में किसी विशिष्ट अधिगम योग्यता में कमी को अधिगम विकृति कहा जाता है।

**पठन विकृति** (Reading disorder)– पठन–पाठन में होने वाली विकृति को पठन विकृति की संज्ञा दी जाती है। इसे डी.एस.एम–4 में डिस्लेक्सिया कहा गया है।

**गणित विकृति** (Mathematics disorder)– गणित विकृति की पहचान तब होती है जब बच्चों की बौद्धिक क्षमता की तुलना में बच्चों का अंकगणितीय प्रदर्शन काफी निम्नस्तरीय होता है। तथा उसकी शैक्षिक उपलबिधयॉ उससे प्रभावित होती हैं।

**लेखन अभिव्यक्ति विकृति** (Written expression disorder)– इस विकृति की पहचान बच्चों द्वारा उनके द्वारा लिखे गये कार्य में होने वाली स्पेलिंग, व्याकरण, एवं पन्क्चुएशन में

होने वाली त्रुटियों के माध्यम से की जाती है। जब बच्चा अपनी बौद्धिक क्षमता एवं आयु के स्तर से कहीं निम्नस्तर पर अत्यधिक त्रुटियॉ करता है तो इसे लेखन अभिव्यक्ति में विकृति की संज्ञा दी जाती है।

**संचार विकृति** (Communication disorder)– भाषा को, समझने एवं इस्तेमाल करने में तथा स्पष्ट रूप से तथा धाराप्रवाह बोलने में होने वाली विकृति को संचार विकृति कहा जाता है।

**भाषा विकृति** (Language disorder)– भाषा विकृति में बोलचाल की भाषा को उत्पन्न कर पाने की क्षमता में विकृति एवं बोलचाल की भाषा को समझ पाने की क्षमता में विकृति को सम्मिलित किया गया है।

**संभाषण–आवाज–विकृति** (Speech sound disorder)– उपयुक्त बौद्धिक योग्यता होने के बावजूद शब्दों एवं वाक्यों को उचित रीति से उच्चारित न कर पाना तथा इसकी वजह से शैक्षिक उपलब्धि का गंभीर रूप से प्रभावित होने को संभाषण आवाज विकृति कहा जाता है।

सामाजिक संचार विकृति (Social communication disorder)– दूसरे लोगों के सम्मुख अपनी हकलाने की विकृति की वजह से बच्चों अथवा वयस्कों का दूसरों से ठीक से संवाद न कर पाना तथा इससे उत्पन्न व्याकुलता से बाद में सामाजिक चिंता आदि से ग्रस्त रहना एवं बातचीत की परिस्थितियों से बचने की प्रवृत्ति होना, एवं इन सबसे शैक्षिक उपलब्धि आदि का गंभीर रूप से प्रभावित होना सामाजिक संचार विकृति कहलाता है।

**डिस्लेक्सिया** (Dyslexia)–पठन विकृति को ही डिस्लेक्सिया कहा जाता है।

**पेशीय कौशल विकृति** (Motor skill disorder)– इसे विकासात्मक समन्वय विकृति (developmental coordination disordrer) भी कहा जाता है। इस प्रकार की डायग्नोसिस तब की जाती है जब कि बच्चों में पेशीय समन्वय (motor coordination) में कोई ऐसा दोष हो जिसकी व्याख्या मानसिक दुर्बलता या किसी ज्ञात फिजियोलॉजिकल डिस्आर्डर के रूप में नहीं की जा सकती है। इस प्रकार की विकृति होने पर बच्चे को अपनी कमीज के बटन लगाने में परेशानी हो सकती है, क्रिकेट खेलने, कैरम खेलने, निशानेबाजी, हाथ से लिखने, जूते का फीता बॉधने आदि में कठिनाई हो सकती है। एवं इससे शैक्षिक उपलब्धि गंभीर रूप से प्रभावित होती है।

## 13.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 –(क) निष्पादन शारीरिक आयु मानक से उच्च स्तर का होता है।

अभ्यास प्रश्न 2 –(ग) पठन विकृति (reading disorder)

अभ्यास प्रश्न 3 –(घ) इन्ट्रापैराइटल सलकस (intra-parietal sulcus)

अभ्यास प्रश्न 4 –(क) भाषाई उपागम (linguistic approach)

## 13.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

रोनाल्ड, जे. कोमर (2014) फन्डामेंटल्स ऑफ एबनॉरमल साइकोलॉजी, न्यूयॉर्क–वर्थ पब्लिशर।

कारसन, बुचर एवं मिनेका (1998 अपडेटेड थर्ड एडीसन) एबरॉरमल साइकोलॉजी एण्ड मॉर्डन लाइफ, लंदन – एडिसन, विसली, एजुकेशनल पब्लिशर इन्क।

नेविड, राथुस एवं ग्रीन (2014) 'एबनॉरमल साइकोलॉजी इन ए चैलेंजिंग वर्ल्ड',
बारलो एण्ड डूरण्ड (2012) एबनॉरमल साइकोलॉजी – एन इन्टीग्रेटेड एप्रोच, बेलमाउन्ट – वर्ड्सवर्थ सिनेज लर्निंग।
बारलो एण्ड डूरण्ड (2013) इसेन्शियल्स ऑफ एबनॉरमल साइकोलॉजी, बेलमाउन्ट – वर्ड्सवर्थ सिनेज लर्निंग।
रॉबर्ट ए. बैरोन (2006) साइकोलॉजी, दिल्ली – पियर्सन प्रेंटिस हाल।
सैमुअल वुड एवं एलेन वुड (2000) द इसेंशियल वर्ल्ड ऑफ साइकोलाजी, यू एस ए– एलिन एण्ड बेकन।
डॉ अरूण कुमार सिंह (2010) आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, दिल्ली – मोतीलाल बनारसीदास।

## 13.12 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 –अधिगम असमर्थता से आप क्या समझते हैं? इसके के विभिन्न लक्षणों का वर्णन कीजिए।
प्रश्न 2 –अधिगम असमर्थता के विभिन्न कारणों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
प्रश्न 3 –अधिगम असमर्थता के प्रकारों का वर्णन कीजिए।
प्रश्न 4 –अधिगम विकृति को परिभाषित कीजिए एवं इसकी उत्पत्ति के जैविक, वातावरणीय कारकों की व्याख्या पर प्रकाश डालें।
प्रश्न 5 –अधिगम असमर्थता से निबटने के विभिन्न उपायों का वर्णन करें।

# इकाई 14 :– मनोचिकित्साः अर्थ, उद्देश्य एवं प्रकार

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 मनोचिकित्सा का अर्थ एवं परिभाषाएँ
14.4 मनोचिकित्सा का उद्देश्य
14.5 मनोचिकित्सा के प्रकार
14.5.1 मनोविश्लेषण
14.5.2 विश्लेषणात्मक मनोचिकित्सा
14.6 सारांक्ष
14.7 शब्दावली
14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.9 सन्दर्भ ग्रन्थ
14.10 निबंधात्मक प्रश्न

## 14.1 प्रस्तावना

मनोचिकित्सा क्या है? इस प्रश्न का सही उत्तर आप भले ही न जानते हों परन्तु निश्चित ही यह शब्द आपने अवश्य ही सुना अथवा पढ़ा होगा। आधुनिक समय के सर्वाधिक प्रचलित शब्दों में से एक है यह। इसका कारण विश्व में निरन्तर तीव्र गति से बढ़ती मानसिक समस्यायें एवं मानसिक विकृतियॉ हैं। इन मानसिक समस्याओं एवं विकृतियों की वजह से आज विश्व की कुल जनसंख्या के एक बड़े वर्ग को स्वयं के सम्यक् विकास से वंचित रहना पड़ रहा है। चूँकि ये विकृतियॉ मन से जुड़ी हुई हैं अतएव इनका निवारण मन की चिकित्सा से ही संभव है। इसीलिए इसे मनोचिकित्सा कहा जाता है। ये मनोचिकित्सा वास्तव में क्या है? इसका स्वरूप एवं उद्देश्य क्या हैं? इसके प्रकार कौन से हैं? इन सभी जिज्ञासाओं का समाधान इस इकाई की विशेषता है।

## 14.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

1. मनोचिकित्सा का अर्थ समझ सकेंगे।
2. मनोचिकित्सा की विभिन्न परिभाषाओं को जान सकेंगे।
3. मनोचिकित्सा के उद्देश्यों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
4. मनोचिकित्सा के विभिन्न प्रकारों से परिचित हो पायेंगे।
5. मनोचिकित्सा की तकनीकों का उपयोग करना सीख सकेंगे।

## 14.3 मनोचिकित्सा का अर्थ एवं परिभाषाएँ

मनोचिकित्सा शब्दार्थ में मन की चिकित्सा है। मनोचिकित्सा के अर्थ को आद्योपान्त ग्रहण करने के लिए मन के स्वरूप को समझने की आवश्यकता होती है। हम सभी परिचित हैं कि मन का स्वभाव चंचल होता है अर्थात् मन वृत्तिशील होता है। योग मनोविज्ञान में सतही रूप से हम मन को चित्त में समाहित जान सकते हैं। जिस प्रकार चित्त की वृत्तियॉ होती हैं। एवं ये वृत्तियॉ क्लिष्ट एवं अक्लिष्ट रूप में दो प्रकार की होती हैं। जिसमें चित्त

की अक्लिष्ट वृत्ति को ही स्वस्थ वृत्ति माना जाता है उसी प्रकार मन की प्रवृत्ति को भी सकारात्मक एवं नकारात्मक दो प्रकार का माना जाता है। जब मन की प्रवृत्ति सकारात्मक होती है तब व्यक्ति का सृजनात्मक मानसिक विकास होता है। वहीं जब मन की प्रवृत्ति नकारात्मक हो जाती है तब यही मन रोगमय हो जाता है फलतः इसकी चिकित्सा की आवश्यकता पड़ती है जिसे मनोचिकित्सा कहा जाता है। मनोचिकित्सा के संप्रत्यय को मनोवैज्ञानिकों ने परिभाषित कर समझाने का प्रयास किया है इन परिभाषाओं के अवलोकन से हम मनोचिकित्सा को भली भॉति समझ सकते हैं। आइये इन परिभाषाओं के बारे में जाने।

**मनोचिकित्सा की परिभाषाएँ –**

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक नेविड, राथुस एवं ग्रीन (2014) ने अपनी पुस्तक 'एबनॉरमल साइकोलॉजी इन ए चैलेंजिंग वर्ल्ड' में मनोचिकित्सा को एक संरचित स्वरूप के रूप में परिभाषित किया है उनके अनुसार मनश्चिकित्सा उपचार का एक संरचित स्वरूप है जो कि ऐसे मनोवैज्ञानिक फ्रेमवर्क से विनिर्मित होता है जिसमें क्लायंट एवं चिकित्सक के बीच एक या एक से अधिक शाब्दिक अंतःक्रियायें एवं उपचार सत्र संचालित किये जाते हैं।' ( 'A structured form of treatment derived from a psychological framework that consists of one or more verbal interactions or treatment sessions between a client and a therapist.' Nevid, Rathus & Greene, 2014, Abnormal Psychology in a Challenging World, p 150) ।

**एक अन्य मनोवैज्ञानिक वोलबर्ग (1967) के अनुसार** – 'मनोचिकित्सा सांवेगिक स्वरूप की समस्याओं के उपचार का एक ऐसा प्रारूप है जिसमें एक प्रशिक्षित व्यक्ति निश्चय पूर्वक एक रोगी के साथ पेशेवर संबंध इस उद्देश्य के साथ कायम करता है कि उसके व्यक्तित्व में सकारात्मक उन्नति एवं विकास हो, व्यवहार के विक्षुब्ध पैटर्न के वर्तमान लक्षणों को दूर किया जा सके या उसमें परिमार्जन किया जा सके।' (Psychotherapy is a form of treatment for problems of an emotional nature in which trained person deliberately establishes a professional relationship with a patient with the object of removing, modifying a retarding existing symptoms of mediating disturbed patterns of behaviour and of promoting positive personality growth and development. '- Wolberg : Techniques of Psychotherapy, 1967, p. 03)

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक रौटर ने अपनी पुस्तक 'क्लीनिकल साइकोलॉजी' में मनोग्रस्तता को मनोवैज्ञानिकों की एक योजनाबद्ध गतिविधि के रूप में परिभाषित किया है– उनके अनुसार 'मनोचिकित्सा मनोवैज्ञानिकों की एक सुनियोजित गतिविधि होती है जिसका उद्देश्य व्यक्ति के जीवन में ऐसा बदलाव लाना होता है जो उसके जीवन समन्वय को खुशियों की संभावना से भर दे, और भी अधिक संरचनात्मक बना दे या दोनों ही बनाये।' ('Psychotherapy....is planned activity of the psychologists, the purpose of which is to accomplish changes in the individual that make his life adjustment potentially happier, more constructive or both' Rotter, 1971, Clinical Psychology, p 79)

**कुछ अन्य मनोवैज्ञानिकों नीटजेल, वर्नस्टीन एवं मिलिक के अनुसार** – 'मनोचिकित्सा में कम से कम दो प्रतिभागी होते हैं जिसमें एक को मनोवैज्ञानिक समस्याओं के सुलझाने का विशेष प्रशिक्षण तथा सुविज्ञता प्राप्त होती है और उसमें से एक समायोजन में कठिनाई का अनुभव करता है और ये दोनों ही समस्या को कम करने के लिए संबंध कायम करते हैं। मनोचिकित्सकीय संबंध एक पोषक किन्तु उद्देश्यपूर्ण संबंध होता है जिसमें मनोवैज्ञानिक स्वरूप की कई विधियों का उपयोग क्लायंट में वॉछित बदलाव लाने के लिए किया जाता है। (' Psychotherapy consists of a relationship between at least two participants, one of whom has special training and expertise in handling psychological problems and one of whom is experiencing a problem in adjustment and has entered the relationship in order to alleviate this problem. The psychotherapeutic relationship is a nurturant but purposeful alliance in which several methods, largely psychological in nature, are employed to bring about the changes desired by the client.'- Nietzel, Bernstein & Milich : Introduction to Clinical Psychology, 1991, p. 251)

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक रोनाल्ड जे कोमर ने अपनी पुस्तक 'फण्डामेंटल्स ऑफ एबनॉरमल साइकोलॉजी' में एक उपचार तंत्र के रूप में परिभाषित किया है उनके अनुसार 'मनोचिकित्सा एक ऐसा उपचार तंत्र है जिसमें क्लायंट की मनोवैज्ञानिक संमस्याओं को सुलझाने में मदद करने के लिए क्लायंट (रोगी) एवं चिकित्सक द्वारा शब्दों एवं अभिनय का उपयोग किया जाता है।' ( 'Psychotherapy is a treatment system in which words and acts are used by a client (patient) and therapist in order to help the client overcome psychological difficulties' Ronald J. Comer, 2014, Fundamentals of Abnormal Psychology, p G-13)।

उपरोक्त परिभाषाओं के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि मनोचिकित्सा एक उपचार तंत्र, गतिविधि या प्रक्रिया होती है जिसका उद्देश्य रोगी की मनोवैज्ञानिक समस्याओं को सुलझाना होता है तथा इसके लिए रोगी एवं चिकित्सक एक दूसरे के सहयोगी के रूप में कार्य करते हैं। इस हेतु वे एक पेशेवर संबंध विनिर्मित करते हैं तथा मनोचिकित्सक इस हेतु मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों एवं प्रविधियों का उपयोग करते हैं।

किस प्रकार की मानसिक विकृतियों के लिए मनोचिकित्सा की आवश्यकता होती है आइये एक उदाहरण द्वारा इसे और भी बेहतर तरीके से समझते हैं। आइये बाक्स में वर्णित केस को ध्यान से पढ़िए।

साइकोथेरेपी के लायक विकृति का उदाहरण

रिचर्ड एक 19 साल का नवयुवक था, जो कि कॉलेज का विद्यार्थी था एवं फिलॉसफी में रूचि रखता था। परन्तु अब उसे कॉलेज से अपना नाम दाखिला वापस लेना पड़ा क्योंकि वह कॉलेज में स्वयं के द्वारा किये जाने वाले कर्मकाण्डों से परेशान हो गया था। उसने अपनी स्वच्छता का ख्याल रखना सिर्फ इसलिए छोड़ देना पड़ा क्योंकि उसे धोने एवं सफाई करने के कार्यो के दौरान इतने बाध्यकारी व्यवहारों को करना पड़ता था कि उसके बाद उसके पास और कुछ करने के लिए समय ही नहीं बचता था। बाध्यकारी रूप से लगातार नहाते रहना न नहाने जैसा हो जाता था अतएव उसने इसके विरोध के रूप में अपने बाल संवारना, नाखून काटना, दाढ़ी बनाना, कपड़े बदलना, दॉत मॉजना आदि छोड़ ही दिया था। वह बारंबार अपने कमरे से बाहर निकल जाता था, तथा टायलेट जाने पर उसे जो बाध्यकारी व्यवहारो को करने से गुजरना पड़ता था उससे बचने के लिए उसने टॉयलेट में भी उल्टे कार्य करना शुरू कर दिया था जैसे कि वह कमोड में मूत्र त्याग करने की बजाय वहॉ पड़े मग में मूत्र विसर्जन कर देता था। वह खाना भी परिवार के सभी सदस्यों के सो जाने की उपरान्त ही देर रात्रि में खाता था क्योंकि खाना खाने की स्थिति में आने के लिए उसे अपने फेफड़ों को पूरी तरह वायु रहित करने की बाध्यकारी जरूरत पड़ती थी। पूरी तरह वायु को बाहर निकाल देने के बाद भी उसे खांसने आदि की क्रियायें करना पड़ती थीं, एवं फेफड़ों के वायुरहित हो जाने पर वह अपना मुॅह पूरी तरह उतने अधिक भोजन से एक ही बार में भर लेता था, जितना कि वह एक बार में ठूॅस सकता था। खाने में भी वह वही चीजें खाता था जिन्हें वह बैक्टीरिया रहित समझता था। वह भोजन में मक्खन मूॅगफली, अखरोट, बादाम, चीनी, दूध आदि ही लेता था। चलते या टहलते समय भी वह बहुत छोटे–छोटे कदमों से अपने अॅगूठों पर चलता था तथा चलते समय लगातार पीछे एवं बगल में सुरक्षा का जायजा लेते हुए चलता था। मित्रों इस मानसिक समस्या को मनोवैज्ञानिक मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति के नाम से पुकारते हैं जो कि चिंता विकृति का एक प्रकार है।

मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति से ग्रस्त किसी भी साधारण रोगी की भॉति ही रिचर्ड को सतत् रूप से नकारात्मक विचारों का आक्रमण सहन करना पड़ता था। उनसे उत्पन्न चिंता से बचने के लिए ह ीवह बाध्यकारी कार्यो को सतत् अंजाम देता रहता था। उसके केस में ये व्यवहार उसके कामुकता एवं आक्रामकता एवं धर्म से संबंधित थे। वह अपने कामुक एवं आक्रामक विचारों एवं कल्पनाओं को दमित करने के लिए ही बाध्यकारी व्यवहारों को अंजाम देता था क्योंकि उसे भय था कि यदि ये चीजें उसके नियंत्रण में नहीं रहीं तो उनके भयानक परिणाम हो सकते थे। प्रिय विद्यार्थियों इसी प्रकार के रोगों के लिए मनोचिकित्सा की विधियों का प्रयोग किया जाता है।

बारलो एवं डूरण्ड, इसेंशियल्स ऑफ एबनॉरमल साइकोलॉजी, 2013, पृष्ठ – 152

उपरोक्त बाक्स में रिचर्ड के केस अध्ययन के विश्लेषण से मनोग्रस्तता एवं बाध्यता नामक मनोवैज्ञानिक समस्या से संबंधित कई महत्वपूर्ण बिन्दु स्पष्ट होते हैं –

1 मनोग्रस्तता का संबंध विचारों, व कल्पनाओं से होता है।

2 ऐसे विचार एवं कल्पनाओं से संबंधित चिंतन अर्थहीन होते हैं।

3 ऐसे विचार या चिंतन का स्वरूप पुनरावर्ती होता है तथा रोगी के मन में जबरदस्ती प्रवेश कर उसकी चित्त की शांति को भंग कर देते हैं।

4 रोगी का इन विचारों, कल्पनाओं के उत्पन्न होने व अनाधिकृत प्रवेश पर कोई नियंत्रण नहीं रहता है। रोगी चाहकर भी इन्हें उत्पन्न होने से नहीं रोक पाता है।

5 बाध्यता में भी व्यक्ति न चाहते हुए एक ही क्रिया को बार–बार दोहराता है।

6 मनोग्रस्तता के समान ही बाध्यता में भी व्यक्ति द्वारा की गयी अनुक्रियायें अवांछित ही नहीं बल्कि अतार्किक एवं असंगत भी होती हैं।

सार रूप में मनोग्रस्तता–बाध्यता विकृति में रोगी के मन में बार–बार नकारात्मक विचारों की श्रृंखला चलने लगती है जिनसे रोगी छुटकारा पाना चाहता है क्योंकि ये विचार उसकी मानसिक शांति को नष्ट कर उसमें दुश्चिंता को जन्म देते हैं जिनसे बचने के लिए उसे कुछ अवांछनीय क्रियाओं को करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। रोगी जानता है कि ये क्रियायें अर्थहीन, असंगत एवं अतार्किक हैं परन्तु वह उन्हें करने से स्वयं को रोकने में स्वयं को मजबूर महसूस करता है।

इस प्रकार की समस्या को दूर करने के लिए इससे संबंधित कारणों की पहचान करना अथवा स्रोत का पता लगाना बहुत ही आवश्यक होता है तथा साथ ही त्वरित उपचार हेतु प्रभावशाली प्रविधियों का उपयोग करने हेतु निर्णय लेने की आवश्यकता होती है। अतएव मनोरोग के कारणों का पता लगाने, उचित डायग्नोसिस करने तथा उपयुक्त उपचार हेतु क्लायंट एवं चिकित्सक के बीच एक मनश्चिकित्सकीय पेशेवर संबंध मनोचिकित्सक द्वारा जान–बूझकर विकसित किया जाता है जिसमें क्लायंट एवं चिकित्सक दोनों परस्पर सहयोग एवं सहमति का रवैया अपनाते हुए मनोचिकित्सा के उद्देश्यों का निर्धारण करते हैं एवं तदनुरूप चिकित्सा प्रविधि या चिकित्सा योजना का प्राथमिकताओं के अनुसार निर्धारण करते हैं।

**अभ्यास प्रश्न 1** –निम्नलिखित में से कौन सा कथन मनोचिकित्सा के संबंध में असत्य है?

**क–** मनोचिकित्सा में मनोरोगों के उपचार हेतु रोगी के साथ एक चिकित्सक द्वारा एक मनश्चिकित्सकीय संबंध विनिर्मित किया जाता है।

**ख–** मनोचिकित्सा के उपचार हेतु मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों एवं प्रविधियों का उपयोग किया जाता है।

**ग–** मनोचिकित्सा में चिकित्सक की भूमिका केवल परामर्श प्रदान करना होता है।

**घ–** मनोचिकित्सा में क्लायंट एवं चिकित्सक बातचीत एवं अभिनय का प्रयोग करते हैं।

## 14.4 मनोचिकित्सा के उद्देश्य (Objectives of Psychotherapy)

मनोचिकित्सा के उद्देश्यों को दो प्रकार की दृष्टि से देखा जा सकता है। प्रथम दृष्टि में मनोचिकित्सा के सामान्य उद्देश्यों को रखा जा सकता है एवं द्वितीय दृष्टि में मनोचिकित्सा के विशिष्ट उद्देश्यों को स्थान दिया जा सकता है। इस प्रकार मनोचिकित्सा के दृष्टि भेद से दो उद्देश्य हुए।

1. सामान्य उद्देश्य एवं 2. विशिष्ट उद्देश्य।

**सामान्य उद्देश्य** – मनोचिकित्सा का सामान्य उद्देश्य मनोरोगी की भावनात्मक समस्याओं एवं मानसिक तनावों एवं उलझनों को दूर करके उसमें सामर्थ्य, आत्मबोध, पर्याप्त परिपक्वता आदि विकसित करना होता है।

विशिष्ट उद्देश्य – मनोचिकित्सा के विशिष्ट उद्देश्यों में रोगी के मनोरोग के निदान एवं उसके उपचार की प्रचलित विभिन्न पद्धतियों और उपागमों को ध्यान में रखते हुए निर्मित किये गये उद्देश्यों को रखा जाता है। जैसे कि एक संज्ञानात्मक उपागम के आधार पर किसी रोगी के मनोरोग का कारण उसके विचार, विश्वास एवं चिंतन प्रक्रिया में खोजे जाते हैं एवं उनका उपचार भी विचार प्रक्रिया एवं सोच में बदलाव लाने से किया जाता है। इस प्रकार संज्ञानात्मक उपागम के आधार पर मनोचिकित्सा का उद्देश्य विचारों में सकारात्मक बदलाव एवं नकारात्मक विचारों की रोकथाम हो सकता है

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक अरूण कुमार सिंह अपनी पुस्तक आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान में मनोचिकित्सा के कुछ प्रमुख उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हैं उन उद्देश्यों के प्रमुख बिन्दु निम्नप्रकार हैं।–

1. रोगी के अपअनुकूलित व्यवहारों में परिवर्तन लाना (To change the maladaptive behaviors of the patient)।

2. रोगी के अन्तर्वैयक्तिक संबंध एवं अन्य दूसरे तरह के सामर्थ्य को विकसित करना (To develop interpersonal relationship and other competencies of the patient)।

3. रोगी के आन्तरिक संघर्षों को एवं व्यक्तिगत तनाव को कम करना (To reduce inner conflicts and personal tensions of the patient)।

4. रोगी में अपने इर्द–गिर्द के वातावरण एवं स्वयं अपने बारे में बने अयथार्थ पूर्वकल्पनाओं में परिवर्तन लाना (To modifiy inaccurate assumptions of the patients about self and the immediate enviornment)।

5. रोगी में अपअनुकूलित व्यवहार को सम्पोषित करने वाले कारकों या अवस्थाओं को दूर करना (To remove those factors or conditions that maintain maladaptive behavior in the patient)।

6. रोगी को अपने वातावरण की वास्तविकताओं के साथ अच्छी तरह समायोजित करने में सहयोग प्रदान करना (To help the patients to make adjustment with the realities of the environment)।

7. आत्मबोध एवं आत्मसूझ को सुस्पष्ट करना (To foster a clear cut sense of self-identity and self-insight)।

इसी प्रकार प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक द्वय सुन्डबर्ग एवं टाइलर ने मनोचिकित्सा के विभिन्न पहलुओं एवं इस क्षेत्र में किये गये अनुसंधानों की समीक्षा के आधार पर मनोचिकित्सा के प्रमुख उद्देश्यों एवं लक्ष्यों का वर्णन किया है इनमें जो सर्वाधिक उत्कृष्ट हैं उनका वर्णन निम्नवत है।

1. उपयुक्त व्यवहार करने के लिए रोगी के अन्तःअभिप्रेरण को मजबूती प्रदान करना (strengthening the patients motivation to do the right things)।

2. भावनाओं को अभिव्यक्त करने के तरीकों द्वारा सांवेगिक दबाव को कम करना (reducing emotional pressure by facilitating the expression of feeling)।

3. सम्वर्धन के लिए सामर्थ्य की अभिव्यक्ति करना (releasing the potential for growth)।

4. अपनी आदतों को बदलने में सहायता करना (helping in changing the habits)।

5. रोगियों के संज्ञानात्मक संरचना को परिमार्जित करना (modifying the cognitive structure of patients)।

6. आत्म–ज्ञान प्राप्त करना (gaining the self knowledge)।

7. संचार एवं अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों को प्रोत्साहित करना (facilitating interpersonal relations and communication)।

8. ज्ञान प्राप्त करने एवं निर्णय करने में प्रोत्साहन (gaining knowledge and facilitating decision-making)।

9. शारीरिक दशाओं में बदलाव लाना (altering bodily states)।

10. रोगी के वर्तमान चेतन स्थिति में बदलाव लाना (altering the present state of consciousness)।

11. रोगी के सामाजिक वातावरण में बदलाव लाना (changing the social environment of the patient)।

उपरोक्त उल्लेखित बिन्दुओं का विस्तृत वर्णन क्रमानुसार निम्नवत है।

1. **उपयुक्त व्यवहार करने के लिए रोगी के अन्तःअभिप्रेरण को मजबूती प्रदान करना** (strengthening the patients motivation to do the right things)– मनोचिकित्सा में मनोचिकित्सक का एक उद्देश्य रोगी को सही कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करना होता है। इसके लिए मनोचिकित्सक द्वारा रोगी की अन्तःअभिप्रेरणा को मजबूती प्रदान करने का प्रयास किया जाता है। मनोरोग अथवा मनोवैज्ञानिक समस्या होने पर उसके समाधान में स्वयं सफल न हो पाने पर रोगी को सहायता की आवश्यकता पड़ती है इसे हेतु उसे प्रथम निर्णय तो यही लेना पड़ता है कि वह इसके लिए मनोचिकित्सक अथवा काउन्सलर के पास जाये अथवा नहीं एवं इसके कारण रोगी में मानसिक वैचारिक द्वन्द्व उत्पन्न हो जाता है। यदि एक बार रोगी अपने इन द्वन्द्वों से जूझते हुए सूझ–बूझ द्वारा मनोचिकित्सक के सम्मुख अपनी समस्या रखने का निर्णय लेता है तथा ऐसे ही अन्य सही निर्णय अपनी अन्तःअभिप्रेरणा से लेता है तो यहॉ पर उसके इस अन्तःअभिप्रेरण के स्तर को उच्च बनाये रखने अथवा मजबूती प्रदान करने की एक महती जिम्मेदारी मनोचिकित्सक की होती है।

2. **भावनाओं को अभिव्यक्त करने के तरीकों द्वारा सांवेगिक दबाव को कम करना** (reducing emotional pressure by facilitating the expression of feeling)– जब रोगी अपनी मनोवैज्ञानिक समस्या लेकर मनोचिकित्सक के पास आता है तथा मनोचिकित्सक द्वारा समस्या पर बात करने पर उनकी अभिव्यक्ति करने में उसे सांवेगिक समस्या अथवा दबाव से स्वयं से ही जूझना पड़ता है तो इससे रोगी समस्या सही प्रकार से बताने में असमर्थ हो जाता है एवं उसमें कई प्रकार की चिंतायें भी उत्पन्न हो

जाती हैं मनोचिकित्सा में इस प्रकार के सांवेगिक दबाव को मनोचिकित्सा के प्रभावी होने के लिए कम करने की महती आवश्यकता होती है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक सिगमण्ड फ्रायड इस हेतु विरेचन (catharsis) तकनीक का प्रयोग किया है। उनका कहना था कि सांवेगिक दबाव के दूर होने से मनोचिकित्सा बहुत ही आसान एवं प्रभावी सिद्ध होती है।

3. **रोगी की अन्तःशक्ति को सम्वर्धन एवं विकास के लिए अवमुक्त करना** (releasing the potentials of patient for growth and development)– मनोचिकित्सा का यह एक बहुत ही महतवपूर्ण उद्देश्य है। इस उद्देश्य के पीछे की अवधारणा पर मानवतावादियों द्वारा सर्वाधिक जोर दिया गया है उनके अनुसार प्रत्येक मनुष्य में स्वयं के सम्वर्धन एवं विकास की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति जन्मजात रूप से विद्यमान होती है तथा अनुकूल वातावरण मिलने एवं सम्यक् निर्णयों की छॉव में उसकी यह प्रक्रिया सहज ही जारी रहती है। जब कभी इसमें व्यक्ति द्वारा अपने जीवन के प्रति लिये गये निर्णयों के कारण एवं प्रतिकूल वातावरण की वजह से बाधा उत्पन्न होती है तब व्यक्ति में मानसिक उलझने उत्पन्न हो वह मनोरोगों का शिकार हो जाता है। मानवतावादियों का मत है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने अन्दर छिपी प्रतिभा एवं संभावनाओं अभिव्यक्त करने एवं साकार रूप देने की अकथित अभिलाषा रखता है इसे अभिव्यक्त करने की परिस्थितियॉ उत्पन्न करने अथवा इसकी ओर व्यक्ति का ध्यान आकर्षित करने से व्यक्ति आत्म–विकास के पथ पर सहज ही अग्रसर हो जाता है।

4. **अपनी अवॉछनीय आदतों को बदलने में सहायता करना** (helping in changing the undesirable habits)। – इस उद्देश्य के पीछे मनोवैज्ञानिकों की मान्यता है कि व्यक्ति की अवॉछनीय एवं अनुपयुक्त आदतें उसे मनोरोगी बनाती है तथा समुचित उपचार हेतु इन आदतों में सुधार की आवश्कता होती है। व्यवहारवादियों का मानना है कि हमारी आदतें सीखने के गलत नियमों का परिणाम होती हैं यदि हम सीखने के सही नियमों का इस्तेमाल करना व्यक्ति को सिखा दें तो उसके द्वारा कई अवांछनीय आदतों में सकारात्मक एवं सुधारात्मक बदलाव लाया जा सकता है।

5. **रोगियों के संज्ञानात्मक संरचना को परिमार्जित करना** (modifying the cognitive structure of patients)– संज्ञानात्मक विचार धारा के मनोवैज्ञानिकों के अनुसार संज्ञानात्मक संरचना को परिमार्जित करना मनोचिकित्सा का एक प्रमुख उद्देश्य है। उनके अनुसार मानसिक रोगों अथवा मानसिक समस्याओं का मूल कारण व्यक्ति के विचार, विश्वास एवं सोच का विकृत होना होता है। यदि व्यक्ति के नकारात्मक विचारों, गलत विश्वासों एवं विकृत सोच को उपयुक्त विचार एवं विश्वास से बदल दिया जाये अथवा इसमें संशोधन करन परिमार्जित कर दिया जाये तो इससे उसकी समस्या के समाधान का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

6. **आत्म–ज्ञान प्राप्त करना** (gaining the self knowledge)– मनोचिकित्सा का एक प्रधान उद्देश्य आत्म–ज्ञान प्राप्त करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना भी है। माना जाता है कि व्यक्ति की मानसिक समस्याओं का एक प्रमुख कारण उसका स्वयं के सम्बंध में सही एवं ठीक–ठीक ज्ञान का न होना है। यदि व्यक्ति को उसके व्यक्तित्व के सभी पहलुओं का सम्यक् ज्ञान हो जाये तो उससे उसका स्वयं के सम्बन्ध में सही निर्णय लेना आसान हो जाता है। सही निर्णय के लिए सही समझ जरूरी होती है एवं सही समझ विश्लेषणात्मक क्षमता में वृद्धि होने से बढ़ती है। विश्लेषणात्मक क्षमता के विकास के लिए अभ्यास की

प्रवृत्ति होना जरूरी है। एवं अभ्यास की प्रवृत्ति के लिए स्वयं के बारे में जानने की अभीप्सा होना आवश्यक है। अतएव मनोचिकित्सक रोगी को स्वयं को जानने के लिए प्रेरित प्रोत्साहित करने को मनोचिकित्सा का ही एक प्रमुख लक्ष्य मानते हैं।

7. **संचार एवं अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों को प्रोत्साहित करना** (facilitating interpersonal relations and communication)– संचार एवं अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों को प्रोत्साहित करना मनोचिकित्सा का एक और महत्वपूर्ण उद्देश्य है। इसके पीछे अवधारणा यह है कि रोगी का व्यवहार उसके चिंतन एवं विचारों से प्रभावित होता है तथा विचार उसके भावदशा के अनुरूप होते हैं यह भावदशा उसके सामाजिक प्राणी होने की वजह से अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों पर निर्भर करती है। एवं अन्तर्वैयक्तिक संबंधों का ठीक होना बहुत हद तक परस्पर संचार पर निर्भर करता है। अतएवं मनोचिकित्सा का एक प्रमुख उद्देश्य संचार एवं अन्तर्वैयक्तिक संबंधों को मजबूत करना भी है।

8. **आत्म ज्ञान एवं अन्तदृष्टि को बढ़ाना** (Increasing self knowledge and insight)– रोगी में अन्तर्दृष्टि उत्पन्न करना तथा स्वयं के बारे में जानकारी बढ़ाने को भी मनोचिकित्सा के एक विशेष उद्देश्य के रूप में स्थान दिया गया है। अन्तर्दृष्टि के अभाव में व्यक्ति की निर्णय क्षमता कुंद हो जाती है तथा किंकर्तव्यविमूढ़ता उत्पन्न हो जाती है। परिणामस्वरूप व्यक्ति अपने विचारों भावों एवं व्यवहारों के सम्बन्ध में ठीक से विचार नहीं कर पाता है तथा उसकी समस्या के कारण तथा संभावित परिणाम उसे कभी स्पष्ट रूप से समझ नहीं आते हैं जिसके कारण उसमें समय के साथ कई मनोवैज्ञानिक समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं एवं उसे जीवन में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

9. **शारीरिक दशाओं में बदलाव लाना** (altering bodily states: changing the bodily or somatic processes in order to reduce painful feelings and/or increase body awareness)– रोगी के शारीरिक प्रक्रियाओं बदलाव लाना ताकि उसकी पीड़ापरक अनुभूतियों को कम कर दैहिक चेतना में वृद्धि भी मनोचिकित्सा का एक प्रमुख उद्देश्य माना जाता है। इस उद्देश्य के पीछे मनोचिकित्सा की अवधारणा है कि मन तथा देह दोनों परस्पर अन्योन्याश्रित हैं अर्थातफ दोनों ही एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। स्वच्छ मन के लिए स्वच्छ शरीर आवश्यक है। मनोचिकित्सकों का मत है कि रोगी के दैहिक दुखों या दर्दनाक अनुभूतियों को कम करके तथा उनमें दैहिक चेतना में वृद्धि करके मनोचिकित्सा की परिस्थिति के लिए उन्हें अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है। इसके लिए व्यवहार चिकित्सा में रोगी को विश्राम प्रशिक्षण देकर उनकी चिंता एंव तनाव को दूर किया जाता है । रोगी की शारीरिक चेतना में सकारात्मक बदलाव लाने के लिए योग की प्रक्रियाओं का भी सहारा लिया जा सकता है।

10. **रोगी के वर्तमान चेतन स्थिति में बदलाव लाना** (altering the present state of consciousness)– मनोचिकित्सा का एक उद्देश्य यह भी होता है कि कि रोगी की चेतन अवस्था में इस ढंग का परिमार्जन या बदलाव किया जाये कि उससे उसमें अपने व्यवहारों पर अधिक नियंत्रण की क्षमता बढ़ जाये, उसमें सृजनात्मक क्षमता में बढ़ोत्तरी हो तथा आत्म–बोध में बढ़ोत्तरी हो जाये। इन सब क्षमताओं के विकास के लिए तरह–तरह की प्रवृद्धि जिसमें ध्यान, विलगाव, तथा चेतन विस्तार आदि प्रमुख है का उपयोग किया जाता है। इस सब विधियों के इस्तेमाल से आत्म–बोध तथा आत्मनिर्भरता आदि जैसे गुणों का विकास होता है।

11. **रोगी के सामाजिक वातावरण में बदलाव लाना** (changing the social environment of the patient)– मनोचिकित्सा का उद्देश्य कभी कभी मनोरोग की प्रकृति एवं स्थिति के कारण रोगी के उपयुक्त उपचार हेतु उसके सामाजिक वातावरण में बदलाव लाने का भी होता है। इसके पीछे मनोवैज्ञानिकों को तर्क है कि मनोरोगों के कई केसेज में रोगियों के रोग के कारण में एक कारण सामाजिक वातावरण भी होता है तथा यह या तो सीधे रूप में अथवा परोक्ष रूप में रोगी के मनोरोग की स्थिति को मजबूत करता रहता है ऐसी परिस्थिति में यह जरूरी हो जाता कि रोगी की सामाजिक परिस्थिति में कुछ बदलाव किये जायें इसके लिए कई बार रोगी को स्थानपरिवर्तन की भी सलाह दी जाती है।

उपरोक्त बिन्दुओं के विस्तृत वर्णन से स्पष्ट है कि मनोचिकित्सा के बहुत से उद्देश्य हैं जिन की जानकारी होना व्यक्ति के लिए आवश्यक है।

आइये अब मनोचिकित्सा के संबंध में अपनी जानकारी की परीक्षा करें। निम्नलिखित प्रश्न पर विचार करें।

**अभ्यास प्रश्न 2**–निम्नलिखित में से किसे मनोचिकित्सा के उद्देश्य में शामिल नहीं किया जाता है?

क– कुसमायोजित व्यवहार को परिवर्तित करना।
ख– अन्तर्वैयक्तिक तथा अन्य समान क्षमताओं को उन्नत बनाना।
ग– आत्म्बोध में बढ़ोत्तरी करना।
घ– कल्पना शक्ति में बढ़ोत्तरी करना।

## 14.5 मनोचिकित्सा के प्रकार (Types of Psychotherapy)

उपरोक्त पंक्तियों में हमने मनोचिकित्सा एवं एवं उसके उद्देश्यों के बारे में गहन जानकारी प्राप्त की है। आइये अब इस मनोचिकित्सा के प्रकारों के बारे में अपना ज्ञान बढ़ायें।

मनोरोगों की उत्पत्ति एवं कारण के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिक विभिन्न प्रकार की दृष्टियों से रोग विचार करते हैं एवं तदनुरूप उनके उपचार पर विचार किया जाता है। इन दृष्टियों के आधार पर मनोचिकित्सा की विधियों प्रविधियों को पॉच प्रमुख श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है। इन श्रेणीवर्गों में कई उपप्रविधियों को भी स्थान दिया गया है। इनका वर्णन निम्न है–

(क) मनोगत्यात्मक मनोचिकित्सा (Psychodynamic psychotherapy)
(ख) व्यवहार चिकित्सा (Behavior therapy)
(ग) संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा (Cognitive behavior therapy)
(घ) मानवतावादी चिकित्सा (Humanistic -experiential therapy)
(च) सामूहिक चिकित्सा (Groupherapy)

इन सभी का वर्णन निम्न प्रकार से है।

### (क) मनोगत्यात्मक मनोचिकित्सा (Psychodynamic psychotherapy)

मनोगत्यात्मक मनोचिकित्सा में व्यक्तित्व की गत्यात्मकता के विश्लेषण पर प्रमुख रूप से जोर दिया जाता है। इसके अन्तर्गत मानवी व्यक्तित्व के अन्तर्वैयक्तिक पहलुओं के बीच की अन्तःक्रिया को विश्लेषण के केन्द्र बिन्दु में रखा जाता है। मनोचिकित्सा के इस वर्ग में कई प्रमुख चिकित्सा विधियॉ आती हैं जो कि निम्न प्रकार से है–

(1) मनोविश्लेषणात्मक मनोचिकित्सा
(2) विश्लेषणात्मक मनोचिकित्सा
(3) वैयक्तिक चिकित्सा
(4) अहॅ विश्लेषण
(5) संक्षिप्त मनोचिकित्सा
(6) वस्तु संम्बंधित चिकित्सा
(7) अन्तर्वैयक्तिक मनोगत्यात्मक चिकित्सा
इनमें से कुछ का संक्षिप्त विवरण निम्नवत है–

**(1) मनोविश्लेषणात्मक मनोचिकित्सा** (Psychoanlytical psychotherapy)– मनोविश्लेषणात्मक मनोचिकित्सा का प्रतिपादन सिगमण्ड फ्रायड द्वारा किया गया है। मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा का मूल लक्ष्य रोगी को अपने आप को उत्तम ढंग से समझने में मदद करने से होता है ताकि वह रोगी पहले से अधिक समायोजी ढंग से सोच सके तथा व्यवहार कर सके। इसमें उपचार की प्रक्रिया के अन्तर्गत रोगी के अचेतन में चल रहे संघर्ष एवं इससे बचने के लिए प्रयोग किये जा रहे ईगो सुरक्षा प्रक्रम को चेतन मन के तल पर उजागर किया जाता है। इसके लिए फ्री–एसोशियेसन, इन्टरप्रिटेशन ऑफ ट्रांसफेरेन्स, रेजिस्टेंस एवं स्वप्न विश्लेषण तकनीक का सर्वाधिक उपयोग किया है। फ्री–एसोसियेशन तकनीक के अन्तर्गत व्यक्ति की चिंता से जुड़ें पहलुओं के संबंध में रोगी की समझ को बढ़ाने के लिए उदासीन उद्दीपकों के माध्यम से चिंता के कारणों का पता लगाया जाता है तथा कारण पता लगने पर उन्हें रोगी को समझाया जाता है। फ्रायड का विश्वास था कि मानसिक विकृतियॉ इड के आवेगों पर ईगो के नियंत्रण के कम होने से पनपती है। जब व्यक्ति को यह समझा दिया जाता है कि उसकी मानसिक समस्या अथवा मनोरोग किन कारणों से उत्पन्न हुई है और वह किस प्रकार अपने ईगो की शक्ति को बढ़ा सकता है तब उसकी चिंता कम होने लगती है। फ्री– एसोसियेशन के समान ही ट्रांस्फेरेशन का अध्ययन, रेजिस्टेंस का विश्लेषण एवं स्वप्नों के विश्लेषण द्वारा भी रोगी की विकृति के संदर्भ में अन्तदृष्टि को खोलने का कार्य किया जाता है। अन्तर्दृष्टि के विकास से व्यक्ति खुद–ब–खुद ही विकृति के रहस्यों को समझ जाता है फलत् मनोग्रस्ति विचारों की रोकथाम होती है एवं प्रभाव स्वरूप बाध्यकारी व्यवहार को अंजाम देने की जरूरत नहीं रह जाती है। सार रूप में मनोविकृति से व्यक्ति को छुटकारा मिल जाता है।

**(2) विश्लेषणात्मक मनोचिकित्सा** (Analytical psychotherapy)– इस मनोचिकित्सा का प्रतिपादन कार्ल युंग द्वारा किया गया है। इसके अन्तर्गत वैयक्तिकता पर अधिक बल डाला जाता है। वैयक्तिकता एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति अपने आत्मन् के भिन्न–भिन्न पहलुओं को एक साथ मिलाकर एक सम्पूर्ण स्वरूप विकसित करता है जो कि संगठनात्मक होता है। युंग के अनुसार चिकित्सा का उद्देश्य व्यक्ति को एक पूर्णतः संतुलित व्यक्ति बनाना होता है। और इसके लिए यह आवश्यक है कि आत्मन् के विवेकपूर्ण पहलुओं को उसके अंतर्दर्शी पहलुओं (intutive aspects) के साथ मिलाया जाये। रोगी का अन्तर्दर्शी पहलू अचेतन में दबा होता है जिसे चेतन स्तर पर लाना आवश्यक होता है क्योंकि जब तक अन्तर्दर्शी पहलू अचेतन में होता हैतब तक इसका संबंध रोगी के व्यवहारिक एवं विवेकपूर्ण हिस्सों से युक्त नहीं किया जा सकता है और व्यक्ति मानसिक रोग से छुटकारा नहीं पा सकता है। अन्तर्दर्शी पहलुओं को चेतन स्तर पर लाने के लिए युंग ने शब्द–साहचर्य (word association) तथा स्वप्न विश्लेषण (dream analysis)

प्रविधि का उपयोग किया है। इन प्रविधियों के उपयोग से व्यक्ति के अन्तर्दर्शी पहलू चेतन में आ जाते हैं तथा वह अपने आपको सम्पूर्णता में प्रत्यक्षित करने लगता है तथा उसमें मानसिक शांति एवं सामंजस्या विकसित हो जाता है और वह स्वयं व समाज से समायोजनशील व्यवहार करने लगता है। इससे मानसिक रोग दूर हो जाते हैं।

**(3) वैयक्तिक चिकित्सा** (Individual therapy)– वैयक्तिक चिकित्सा का प्रतिपादन एडलर द्वारा किया गया है। एडलर के अनुसार व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक समस्याओं एवं कुसमायोजी व्यवहार का कारण उपाहं (इड) एवं पराहं (सुपर ईगो) के आवेगों का अहं (ईगो) के साथ संघर्ष नहीं होता है बल्कि दोषपूर्ण जीवनशैली तथा मन में गलत धारणाओं का विकास होता है। चिकित्सा के दौरान मनोरोगी को यही समझाने का प्रयास किया जाता है कि उसके विकृत व्यवहार का कारण उसकी गलत धारणाएँ एवं दोषपूर्ण जीवनशैली है। रोगी को उपयुक्त मनोवृत्ति विकसित करने में सहायता की जाती है तथा उन्हें बताया जाता है कि सामाजिक अभिरूचि, साहस तथा सामान्य बोध के विकास से या उसके विकास की दिशा में अपने जीवनशैली में धनात्मक बदलाव लाने से उनका मनोरोग या विकृति दूर हो जायेगी। एक प्रकार से चिकित्सा के दौरान व्यक्ति को उसकी दोषपूर्ण जीवनशैली से अवगत कराया जाता है एवं फिर उसमें परिवर्तन लाने के लिए उसे प्रोत्साहित किया जाता है। एडलर का मत है कि जो व्यक्ति जितना ही अधिक सामाजिक होता है तथा सामाजिक कार्यों में रूचि लेता है वह उतना ही मानसिक रूप से स्वस्थ होता है।

**अभ्यास प्रश्न 3**– फ्री एसोसियेशन में रोगी –

क– अपने वर्तमान एवं भूत की उन घटनाओं के बारे में बतलाता है जो उसकी नजर में महत्वपूर्ण रहा है।

ख– उन सभी बातों को कहता है जिनसे उसको किसी प्रकार की दुख होता है।

ग– सिर्फ उन्हीं बातों को कहता है जो उसे उचित लगती हैं।

घ– असंगत बातों को बेझिझक कहता है।

## (ख) व्यवहार चिकित्सा (Behavior therapy)

व्यवहार चिकित्सा के अन्तर्गत व्यक्ति के व्यवहार में बदलाव लाकर मनोवैज्ञानिक समस्याओं का उपचार किया जाता है इसके लिये इसकी कई प्रविधियों का उपयोग किया जाता है इन प्रविधियों में निम्नांकित प्रमुख हैं–

(1) क्रमबद्ध असंवेदीकरण (Systematic desensitiazation)
(2) अन्तःविस्फोटक चिकित्सा एवं फ्लडिंग (Implosive therapy & Flooding)
(3) विरूचि चिकित्सा (Aversion therapy)
(4) निश्चयात्मक चिकित्सा (Assertive therapy)
(5) संभाव्यता प्रबंधन (Contingency management)
(6) मॉडलिंग (Modelling)

इन सभी का संक्षिप्त वर्णन निम्नांकित है–

**(1) क्रमबद्ध असंवेदीकरण** (Systematic desensitiazation)– क्रमबद्ध असंवेदीकरण विधि का प्रतिपादन जोसेफ वोल्पे नामक मनोवैज्ञानिक द्वारा किया गया है यह विधि अनुबंधन के नियमों पर आधारित होती है। इसमें रेसीप्रोकल इन्हिबिशन सिद्धान्त (reciprocal inhibition principle) का उपयोग किया जाता है। इस विधि का

उपयोग तब किया जाता है जब रोगी में चिंता उत्पन्न करने वाली परिस्थिति के प्रति उपयुक्त अनुक्रिया करने की क्षमता होने के बावजूद भय के कारण ऐसा नहीं कर पाता है तथा विपरीत अनुक्रिया करता है। क्रमबद्ध असंवेदीकरण मूलतः चिंता कम करने की एक प्रविधि है जो इस स्पष्ट नियम पर आधारित है कि एक ही समय में व्यक्ति चिंतित या रिलैक्स अवस्था में एक साथ नहीं रह सकता है। इसे ही रेसीप्रकल इन्हीबिशन प्रिंसिपल कहा जाता है। इसमें रोगी को पहले रिलैक्स अवस्था में होने का प्रशिक्षण दिया जाता है। और जब वह रिलैक्सेशन की अवस्था में होता हैतो उसमें चिंता उत्पन्न करने वाले उद्दीपकों को बढ़ते क्रम में दिया जाता है। परिणामस्वरूप रोगी चिंता उत्पन्न करने वाले उद्दीपक अथवा परिस्थिति के प्रति असंवेदित हो जाता है क्योंकि उन्हें रिलेक्सेशन की अवस्था में ग्रहण करने की अनुभूति प्राप्त कर चुका होता है।

**(2) अन्तःविस्फोटक चिकित्सा या फ्लडिंग** (Implosive therapy or Flooding)– ये दोनो मनोचिकित्सा प्रविधियॉ सीखने के विलोपन (extinction) सिद्धान्त पर आधारित हैं। इसकी अवधारणा यह है कि रोगी किसी उद्दीपक या परिस्थिति से इसलिये भयभीत या चिंतित होते हैं क्योंकि वे सचमुच में यही नहीं सीख पाये हैं कि एसे उद्दीपक अथवा परिस्थितियॉ वास्तविकता में उतनी खतरनाक नहीं हैं जितनी की वह समझ रहा है। जब उन्हें ऐसी परिस्थितियों या उद्दीपकों के बीच कुछ समय तक लगातार रखा जाता है तथा किसी प्रकार का नकारात्मक परिणाम उत्पन्न नहीं होता है तब वे यह सीख जाते हैं कि उनकी चिंता या भय निराधार है। इस प्रकार से उनकी चिंता या भय धीरे धीरे विलुप्त हो जाता है।

**(3) विरूचि चिकित्सा** (Aversion therapy)–इस चिकित्सा विधि का प्रयोग अवांछनीय व्यवहारों को अंजाम देने की आदत या प्रवृत्ति को रोकने के लिए रोगी पर किया जाता है। इसमें अवॉछनीय व्यवहार करने पर रोगी को पीड़ादायक दंड विभिन्न तरीकों से प्रदान किया जाता है। इस तरह की प्रविधि में चिंता उत्पन्न करने वाली परिस्थिति या उद्दीपक के प्रति रोगी में एक तरह की विरूचि पैदा कर दी जाती है जिससे उससे उत्पन्न होने वाला अवांछनीय व्यवहार अपने आप धीरे–धीरे बंद हो जाता है। रोगी में विरूचि उत्पन्न करने के लिए दंड, विशिष्ट औषध, विद्युत आघात आदि का उपयोग किया जाता है। अधिकतर प्रकार की चिकित्सा क्लासिकी अनुबंधन (classical conditioning) के सिद्धान्त पर आधारित होती है परन्तु दंड आधारित विरूचि चिकित्सा में क्रियाप्रसूत अनुबंधन (operant conditioning) का उपयोग किया जाता है।

**(4) निश्चयात्मक चिकित्सा** (Assertive therapy)– निश्चयात्मक चिकित्सा का उपयोग मनोरोगियों में व्यवहारिक दृढ़ता या निश्चयात्मकता उत्पन्न करने के लिए किया जाता है। कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जिनमें पर्याप्त सामाजिक कौशलों का अभाव होता है जिसके कारण वे समाज की विभिन्न परिस्थितियों में लोगों के साथ अन्तरवैयक्तिक संबंध स्थापित नहीं कर पाते हैं। इसके परिणामस्वरूप वे अपने जीवन में सफलता प्राप्त नहीं कर पाते हैं फलतः उनमें हीनभावना, तुच्छता की भावना एवं विभिन्न प्रकार की चिंतायें जन्म ले लेती हैं। वे हमेशा तनाव से घिरे रहते हैं। ये क्रोधी स्वभाव के भी होते हैं। इनका आत्मसम्मान न्यून हो जाता है तथा मनोविकृति के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। निश्चयात्मक चिकित्सा में ऐसे लोगों को सामाजिक कौशलों का प्रशिक्षण दिया जाता है तथा इस प्रकार जीवन में आगे बढ़ने में मदद की जाती है।

**(5) संभाव्यता प्रबंधन** (Contingency management) –संभाव्यता प्रबंधन के अन्तर्गत क्रियाप्रसूत अनुबंधन (operant conditioning) के नियमों पर आधारित सभी व्यवहार

चिकित्सा विधियों को रखा जाता है तथा इनके उपयोग द्वारा व्यक्ति के कुसमायोजित व्यवहार में सुधार व्यवहार में होने वाले बदलावों तथा परिणामों को नियंत्रित करके किया जाता है। बुटजिन, एकोसेला तथा एलॉय के अनुसार 'किसी अनुक्रिया की आवृत्ति का परिवर्तन करने के इरादे से उस अनुक्रिया के परिणाम में किया गये जोड़ तोड़ को संभाव्यता प्रबंधन कहा जाता है'। संभाव्यता प्रबंधन में प्रमुख चिकित्सा प्रविधियों के नाम निम्न हैं–शेपिंग(shaping),टाइम–आउट(time-out),संभाव्यता अनुबंधन (contingency contracting), अनुक्रिया लागत (response cost), प्रीमैक नियम(premack principle), टोकन इकोनॉमी (Token economy)।

**(6) मॉडलिंग** (Modelling)– यह चिकित्सा प्रविधि सीखने के प्रेक्षणात्मक सिद्धान्त (observational learning) पर आधारित है। इस प्रविधि का प्रतिपादन अल्बर्ट बण्डूरा द्वारा किया गया है। इस प्रविधि में रोगी चिकित्सक अथवा मॉडल को एक विशिष्ट व्यवहार करते हुए प्रत्यक्षित करता है तथा साथ ही साथ उस व्यवहार से मिलने वाले परिणामों का भी ज्ञान प्राप्त करता है। इसे तरह के प्रेक्षण के आधार पर रोगी स्वयं भी वैसा ही व्यवहार करना धीरे–धीरे सीख लेता है। इस प्रविधि का सर्वाधिक प्रयोग दुर्भीति के उपचार में सफलतापूर्वक किया गया है।

**(ग) संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा (Cognitive behavior therapy)**

संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा में मनोरोगों का कारण व्यक्ति के विकृत सोच, नकारात्मक विचार, विश्वास, मूल्यॉकन एवं व्यवहार को माना जाता है तथा मनोरोग के उपचार हेतु इन्हें उपयुक्त बनाने के लिए विभिन्न प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है उनमें निम्नांकित प्रमुख हैं–

(1) तार्किक–सांवेगिक चिकित्सा (Rational-emotive therapy)

(2) बेक संज्ञानात्मक चिकित्सा (Beck's cognitive therapy)

**बेक की संज्ञानात्मक चिकित्सा एवं एलिस की रेशनल–इमोटिव थेरेपी (Beck's cognitive therapy and Ellis Rational-Emotive therapy)–** संज्ञानात्मक चिकित्सा मनोविकृतियों का उपचार रोगी के विचारों, विश्वासों, धारणाओं एवं मान्यताओं में परिवर्तन लाने के माध्यम से करती है। इसके अन्तर्गत प्रसिद्ध संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक एरोन बेक एवं एल्बर्ट एलिस द्वारा प्रतिपादित चिकित्सा विधियों का उपयोग किया जाता है। मनोवैज्ञानिक एरोन बेक ने बेक–संज्ञानात्मक चिकित्सा प्रविधि का प्रतिपादन किया है यह चिकित्सा विधि रोगी के नकारात्मक विचारों को सकारात्मक विचारों से प्रतिस्थापित कर रोगी की चिंता का निवारण करती है। यह चिकित्सा प्रविधि इस सिद्धान्त पर आधारित है कि व्यक्ति को चिंता विकृति होने के लिए उसके नकारात्मक विचार जिम्मेदार होते हैं जिनकी उत्पत्ति के पीछे रोगी के पास कोई वाजिब तर्क नहीं होता है इनका स्वरूप भी ऑटोमेटिक होता है अर्थात् ये रोगी के नियंत्रण में नहीं होते हैं एवं सतत् रूप से उसके चिंतन का हिस्सा बने रहते हैं। बेक संज्ञानात्मक चिकित्सा के द्वारा इन्हे सकारात्मक विचारों द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया जाता है। जिससे व्यक्ति की चिंता काफी हद तक नियंत्रण में आ जाती है।

एलिस द्वारा प्रतिपादित रेशनल इमोटिव थेरेपी (Rational emotive therapy) का उपयोग भी इस विकृति के उपचार हेतु किया जाता है। यह चिकित्सा विधि इस सिद्धान्त पर आधारित है कि यदि रोगी के चिंता के संबंध में विकृत धारणाओं एवं मान्यताओं को उपयुक्त तर्क के माध्यम से चुनौति दी जाये तो उसकी चिंता के संबंध में समझ बढ़ती है एवं चिंता का सामान्यीकरण करने की प्रवृत्ति घटती है।

संज्ञानात्मक चिकित्सक अपने क्लायंट की मनोविकृति से संबंधित संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं को समझने में मदद करते हैं। प्रारंभ में वे अपने क्लायंट को इस संबंध में शिक्षित करते हैं किस प्रकार अनचाहे विचारों की गलत विवेचना के कारण, जिम्मेदारी के अतिरंजित भाव के कारण, एवं न्यूट्रलाइजिंग व्यवहार इस विकृति के लक्षणों को उत्पन्न करने एवं और अधिक स्थायित्व देने में सहायक हो रहे हैं। इसके दूसरे चरण में चिकित्सक क्लायंट को उसके विकृत चिंतन को पहचानने, उसे चुनौती देने एवं संशोधित करने हेतु निर्देशित करते हैं। बहुत से शोध अध्ययनों में यह पाया गया है कि संज्ञानात्मक सिद्धान्तों पर आधारित इन प्रविधियों का उपयोग करने से मनोग्रस्ति विचारों एवं बाध्यकारी व्यवहारों की बारंबारता एवं असर में कमी आती है (क्लार्क एवं बेक, 2010, रूफर एवं सहयोगी, 2005)।

### (घ) मानवतावादी चिकित्सा (Humanistic -experiential therapy)

इस प्रकार की चिकित्सा विधियों में मानवतावादी एवं अनुभवात्मक पहलुओं पर जोर दिया जाता है इसके लिए रोकी की अंदर छिपी उसकी संभावनाओं को तलाशने तथा उन्हें अभिव्यक्त करने के तौर तरीकों को सिखलाने पर जोर दिया जाता है। इसके अन्तर्गत निम्नांकित चिकित्सा प्रविधियों को प्रमुख माना गया है।

(1) क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा (Client-centered therapy)
(2) अस्तित्वात्मक चिकित्सा (Existential therapy)
(3) गेस्टाल्ट चिकित्सा (Gestalt therapy)
(4) लोगो चिकित्सा (Logotherapy)

### (च) सामूहिक चिकित्सा (Group therapy)

सामूहिक चिकित्सा में मनोरोगी के मनोरोग की चिकित्सा हेतु समूह को ही एक जरिया बनाकर उपयोग किया जाता है समूह में होने वाली अंतःक्रिया के द्वारा घनिष्ठता, भावों की अभिव्यक्ति आदि के द्वारा रोगी चिकित्सा की जाती है इसके अन्तर्गत निम्नांकित प्रविधियॉ सर्वाधिक प्रचलित हैं।–

(1) साइकोड्रामा (Psychodrama)
(2) पारिवारिक चिकित्सा (Family therapy)
(3) वैवाहिक एवं युग्म चिकित्सा (Marital and couple therapy)
(4) संव्यवहार विश्लेषण (Transactional analysis)
(5) एन्काउन्टर ग्रुप थेरेपी (Encounter group therapy)

**अभ्यास प्रश्न 4**– निम्नलिखित में कौन सी चिकित्सा प्रविधि व्यवहार चिकित्सा की एक उपप्रविधि है।

क– लोगो चिकित्सा
ख– टोकन इकोनॉमी
ग– वैयक्तिक चिकित्सा
घ– साइकोड्रामा

## 14.6 सारांश

1. मनोचिकित्सा एक उपचार तंत्र, गतिविधि या प्रक्रिया होती है जिसका उद्देश्य रोगी की मनोवैज्ञानिक समस्याओं को सुलझाना होता है तथा इसके लिए रोगी एवं चिकित्सक एक दूसरे के सहयोगी के रूप में कार्य करते हैं। इस हेतु वे एक पेशेवर संबंध विनिर्मित करते हैं तथा मनोचिकित्सक इस हेतु मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों एवं प्रविधियों का उपयोग करते हैं।

**2**. मनोचिकित्सा का सामान्य उद्देश्य मनोरोगी की भावनात्मक समस्याओं एवं मानसिक तनावों एवं उलझनों को दूर करके उसमें सामर्थ्य, आत्मबोध, पर्याप्त परिपक्वता आदि विकसित करना होता है।

**3**. मनोचिकित्सा के विशिष्ट उद्देश्यों में रोगी के मनोरोग के निदान एवं उसके उपचार की प्रचलित विभिन्न पद्धतियों और उपागमों को ध्यान में रखते हुए निर्मित किये गये उद्देश्यों को रखा जाता है। जैसे कि एक संज्ञानात्मक उपागम के आधार पर किसी रोगी के मनोरोग का कारण उसके विचार, विश्वास एवं चिंतन प्रक्रिया में खोजे जाते हैं एवं उनका उपचार भी विचार प्रक्रिया एवं सोच में बदलाव लाने से किया जाता है।

**4**. मनोरोगों की उत्पत्ति एवं कारण के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिक विभिन्न प्रकार की दृष्टियों से रोग विचार करते हैं एवं तदनुरूप उनके उपचार पर विचार किया जाता है। इन दृष्टियों के आधार पर मनोचिकित्सा की विधियों प्रविधियों को पॉच प्रमुख श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है। इन श्रेणीवर्गों में कई उपप्रविधियों को भी स्थान दिया गया है। ये निम्न है– मनोगत्यात्मक मनोचिकित्सा (Psychodynamic psychotherapy) व्यवहार चिकित्सा (Behavior therapy) संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा (Cognitive behavior therapy) मानवतावादी चिकित्सा (Humanistic -experiential therapy) सामूहिक चिकित्सा (Groupherapy)

## 14.7 शब्दावली

**मनोचिकित्सा** (Psychotherapy)– मनोचिकित्सा एक उपचार तंत्र, गतिविधि या प्रक्रिया होती है जिसका उद्देश्य रोगी की मनोवैज्ञानिक समस्याओं को सुलझाना होता है तथा इसके लिए रोगी एवं चिकित्सक एक दूसरे के सहयोगी के रूप में कार्य करते हैं।

**मनोगत्यात्मक मनोचिकित्सा** (Psychodynaic psychotherapy)– वह मनोचिकित्सा जिसमें व्यक्तित्व की मनोगत्यात्मकता का अध्ययन एवं विश्लेषण द्वारा मनोरोगों के कारणों के समझने की क्षमता व्यक्ति में उत्पन्न की जाती है तथा इस माध्यम से उपचार किया जाता है मनोगत्यात्मक मनोचिकित्सा कहलाती है।

**व्यवहार चिकित्सा** (Behaviour Therapy)– व्यक्ति के व्यवहार में विभिन्न प्रकार के सीखने संबंधी नियमों के प्रयोग द्वारा परिवर्तन बदलाव या परिमार्जन कर व्यक्ति के मनोरोग की चिकित्सा करना व्यवहार चिकित्सा कहलाता है। इसमें अनुबंधन के नियमों, प्रेक्षणात्मक अधिगम आदि सिद्धान्तों का उपयोग किया जाता है।

**संज्ञानात्मक चिकित्सा** (Cognitive therapy)– व्यक्ति के विचारों, विश्वासों एवं उसकी सोच में सकारात्मक बदलाव लाने के तरीकों द्वारा मनोरोगों की चिकित्सा करना संज्ञानात्मक चिकित्सा कहलाता है।

**मानवतावादी चिकित्सा** (Huministic therapy)– जिस चिकित्सा प्रविधि में रोग के उपचार हेतु व्यक्ति के स्वाभाविक विकास की प्रवृत्ति को सजह किया जाता है तथा व्यक्ति की अनुभव करने की क्षमता, निर्णय करने की क्षमता तथा अपने विकास का पथ स्वयं प्रदर्शित करने वाली आत्म शक्ति को महत्व देकर तथा इनके प्रति व्यक्ति को सजग कर समायोजित व्यवहार की ओर प्रशस्त किया जाता है वह मानवतावादी चिकित्सा प्रविधि कहलाती है।

**चिंता**(Anxiety) –सामान्य रूप में अतार्किक भय को चिंता कहा जाता है।

**स्नायुविकृत चिंता**(Neurotic anxiety) –जब चिंता की मात्रा में इतनी वृद्धि हो जाती है कि परिस्थितियों के साथ उसके समायोजन में विकृति होने लगती है, व्यक्ति भय से आशंकित हो जाता है साथ ही उसकी समस्या–समाधान क्षमता का ह्रास होने लगता है तो ऐसी चिंता स्नायुविकृत चिंता कहलाती है।

**अवसाद**(Depression) –अवसाद से तात्पर्य मनोदशा में उत्पन्न उदासी से होता है। दुख, निराशा, निस्सहायता, दोषभाव, रूचि में कमी, अभिप्रेरण में कमी, नींद में कमी अथवा अधिकता आदि इसके प्रमुख लक्षण हैं।

व्यक्तिगत चिकित्सा (Individual Therapy) – मानसिक चिकित्सा का एक प्रकार जिसमें चिकित्सक द्वारा एक समय में केवल एक मनोरोगी के रोग का इलाज किया जाता है। इसमें चिकित्सक का पूरा ध्यान एक रोगी पर होता है।

सामूहिक चिकित्सा (Group Therapy)– मानसिक चिकित्सा का एक प्रकार जिसमें रोगी एक प्रकार के मानसिक रोग से ग्रस्त रोगियों का एक समूह निर्माण करता है तथा उन रोगियों का एक साथ इलाज प्रारंभ करता है। इस विधि में रोगियों को अन्य रोगियों से अपनी समस्या अन्तर्व्यक्त करने का मौका मिलता है। कम समय में कई रोगियों का इलाज एक साथ होना संभव होता है।

## 14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 –(ग) मनोचिकित्सा में चिकित्सक की भूमिका केवल परामर्श प्रदान करना होता है।

अभ्यास प्रश्न 2 –(घ) कल्पना शक्ति में बढ़ोत्तरी करना।

अभ्यास प्रश्न 3 –(क) अपने वर्तमान एवं भूत की उन घटनाओं के बारे में बतलाता है जो उसकी नजर में महत्वपूर्ण रहा है।

अभ्यास प्रश्न 4 –(ख) टोकन इकोनॉमी।

## 14.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

रोनाल्ड, जे. कोमर (2014) फन्डामेंटल्स ऑफ एबनॉरमल साइकोलॉजी, न्यूयॉर्क – वर्थ पब्लिशर।

कारसन, बुचर एवं मिनेका (1998 अपडेटेड थर्ड एडीसन) एबरॉरमल साइकोलॉजी एण्ड मॉर्डन लाइफ, लंदन – एडिसन, विसली, एजुकेशनल पब्लिशर इन्क।

बारलो एण्ड डूरण्ड (2012) एबनॉरमल साइकोलॉजी – एन इन्टीग्रेटेड एप्रोच, बेलमाउन्ट – वर्ड्सवर्थ सिनेज लर्निंग।

रॉबर्ट ए. बैरोन (2006) साइकोलॉजी, दिल्ली – पियर्सन प्रेंटिस हाल।

सैमुअल वुड एवं एलेन वुड (2000) द इसेंशियल वर्ल्ड ऑफ साइकोलाजी, यू एस ए– एलिन एण्ड बेकन।

डॉ अरूण कुमार सिंह (2010) आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, दिल्ली – मोतीलाल बनारसीद

## 14.10 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 – मनोचिकित्सा से आप क्या समझते हैं? मनोचिकित्सा की परिभाषाओं का विस्तृत वर्णन कीजिए।

प्रश्न 2 – मनोचिकित्सा के सामान्य एवं विशिष्ट उद्देश्य में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 3 – सन्डबर्ग एवं टाइलर द्वारा वर्णित मनोचिकित्सा के सभी उद्देश्यों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

प्रश्न 4 – मनोचिकित्सा के प्रकारों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

प्रश्न 5 – व्यवहार चिकित्सा की विभिन्न प्रविधियों के बारे में संक्षिप्त लेख लिखें।

प्रश्न 6 – संज्ञानात्मक चिकित्सा पर टिप्पणी करें।

# इकाई 15 :– मनोचिकित्सा की विधि एवं प्रक्रिया, मनोचिकित्सा के परिणामों को प्रभावित करने वाले कारक

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 मनोचिकित्सा की विधि
15.4 मनोचिकित्सा की प्रक्रिया
15.5 मनोचिकित्सा के परिणामों को प्रभावित करने वाले कारक
15.6 सारांक्ष
15.7 शब्दावली
15.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
15.10 निबंधात्मक प्रश्न

## 15.1 प्रस्तावना

मनोचिकित्सा क्या है? इस प्रश्न का सही उत्तर आप ने अवश्य ही इकाई 14 में प्राप्त कर लिया होगा। आधुनिक समय के सर्वाधिक प्रचलित शब्दों में से एक है यह। इसका कारण विश्व में निरन्तर तीव्र गति से बढ़ती मानसिक समस्यायें एवं मानसिक विकृतियॉ हैं। इन मानसिक समस्याओं एवं विकृतियों की वजह से आज विश्व की कुल जनसंख्या के एक बड़े वर्ग को स्वयं के सम्यक् विकास से वंचित रहना पड़ रहा है। मनोरोगों के उपचार हेतु मनोवैज्ञानिकों ने इसके स्वरूप एवं इसके कारणों की व्याख्या विभिन्न दृष्टिकोणों एवं उपागमों के माध्यम से की हैं तथा देश काल परिस्थिति के अनुरूप विभिन्न चिकित्सा प्रविधियों की रचना की है। परन्तु ये चिकित्सा विधियॉ वास्तव में सामान्य रूप से किस प्रक्रिया के तहत कार्य करती हैं इसके लिए इनके विभिन्न अवस्थाओं के विश्लेषण की आवश्यकता होती है। साथ ही इस मनोचिकित्सा के मनोरोगों पर पड़ने वाले प्रभावों में भी कई कारकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अतएव ये मनोचिकित्सा वास्तव में क्या है? इसकी विधियॉ कौन सी हैं? इसकी प्रक्रिया के जरूरी तत्व अथवा सोपान कौन से हैं? तथा मनोचिकित्सा की प्रविधियों के परिणामों को कौन से कारक प्रभावित करते हैं इन सभी जिज्ञासाओं का समाधान इस इकाई के अन्तर्गत आपको प्राप्त होंगे। प्रस्तुत इकाई की यही विशेषता है।

## 15.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

1. मनोचिकित्सा के मूल्यॉकन की विधियों के बारे में ज्ञान प्राप्त करेंगे।
2. मनोचिकित्सकीय संबंध के की क्या विशेषतायें होती हैं इसका क्या महत्व है इसके बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
3. मनोचिकत्सा की आवश्यक प्रक्रिया से सुपरिचित हो सकेंगे।
4. मनोचिकित्सा की विभिन्न अवस्थाओं के बारे में जान पायेंगे।
5. मनोचिकित्सा के परिणामों को प्रभावित करने वाले कारकों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

## 15.3 मनोचिकित्सा के मूल्यॉकन की विधियॉ

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक पॉल ने वर्ष 1969 में मनोचिकित्सा के संबंध में एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न मनोचिकित्सकों के सम्मुख अपने एक लेख में उठाया। इस प्रश्न ने मनोवैज्ञानिकों एवं मनोचिकित्सकों को क्या मनोचिकित्सा प्रभावी होती है? इस प्रश्न का उत्तर सीधे सीधे ढूँढ़ने की बजाय एक अन्य तरीके से सोचने का रास्ता सुझाया यह प्रश्न इस प्रकार है – कौन सा चिकित्सकीय अंतःक्षेप किस परिस्थिति में किस रोगी को किस चिकित्सक द्वारा उपयोग किए जाने पर किस तरह के परिणाम की दिशा में ले जायेगा? (Which therapeutic interventions applied by which therapists to which patients under which circumstances are likely to lead to which results?)। इस प्रश्न ने मनोवैज्ञानिकों को रोगी, चिकित्सक एवं समाज तीनों ही प्रकार के लोगों को ध्यान में रखते हुए मनोचिकित्सा की प्रभावशीलता के मूल्यॉकन का मार्ग खोजने की दिशा को प्रशस्त किया है। क्योकि किसी भी मनोचिकित्सा में यही लोग प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सम्मिलित होते हैं तथा तीनों ही इससे किसी न किसी रूप में प्रभावित होते हैं।

वर्तमान में मनोचिकित्सा के मूल्यॉकन की कई विधियॉ प्रचलित हैं जिनका उपयोग समय परिस्थिति के अनुसार अनुसंधानकर्ताओं द्वारा किया जाता है। ये निम्नांकित हैं।

(क) नैदानिक सर्वे (clinical survey)
(ख) केस स्टडी (case study)
(ग) प्रयोगात्मक शोध (experimental study)
(घ) व्यक्तित्ववादी अध्ययन (personalistic study)
(च) बॉक्स स्कोर रिव्यू (box score review)
(छ) परिणाम मापन विधियॉ (methods of measures outcomes)
(ज) मेटा विश्लेषण (meta analysis)

इनका संक्षिप्त वर्णन निम्नांकित है–

**(क) नैदानिक सर्वे (**clinical survey) – शोध अनुसंधानों में किये जाने वाले सर्वे के समान ही मनोचिकित्सकों द्वारा विभिन्न प्रकार के रोगों में मनोचिकित्सा के मूल्यॉकन हेतु नैदानिक सर्वे कराये जाते हैं। इसके अन्तर्गत मनोचिकित्सकों से उपचार करा चुके रोगियों से मिलकर उनकी रोग स्थिति का पता लगाया जाता है। मनोरोगियों के रोग स्थिति को पूर्व निर्मित श्रेणियों में रखा जाता है जैसे कि रोग स्थिति में सुधार हुआ। अथवा रोग स्थिति में सुधार नहीं। किसी प्रकार के पक्षपात से बचने के लिए एक ही रोगी की मानसिक स्थिति का ऑकलन कई मनोचिकित्सकों द्वारा किया जाता है। इस दौरान कई बार मनोचिकित्सकों की मनोवृत्ति को भी संज्ञान में लिया जाता है।

इस तरह के नैदानिक सर्वे पर पूरी तरह निर्भर नहीं रहा जा सकता है क्योंकि इसमें बहुत हद तक आत्मनिष्ठता सम्मिलित होती है।

**(ख) केस स्टडी** (case study)– मनोचिकित्सा की प्रभावशीलता का मूल्यॉकन करने के लिए केस स्टडी विधि का प्रयोग भी मनोविज्ञान में काफी किया गया है। इसके अन्तर्गत किसी एक मानसिक समस्या से पीड़ित रोगी का एक विस्तृत विवरण तैयार किया जाता है। इसमें उसकी समस्या के स्वरूप, समस्या के कारणों की पड़ताल एवं प्रयुक्त चिकित्सा प्रक्रिया अथवा मनोचिकित्सकीय विधि तथा चिकित्सा के परिणामों का वर्णन होता है।

केस स्टडी विधि में आत्मनिष्ठता के सर्वाधिक होने की वजह से इसके आधार पर प्राप्त तथ्यों का सामान्यीकरण किया जा सकना संभव नहीं हो पाता है। इसमें अनियंत्रण एवं अक्रमबद्धता के कारण यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि रोगी की समस्यायें जिस विधि से दूर हुई हैं उसी विधि से अन्य रोगियों की भी समस्याओं का उपचार हो जायेगा।

**(ग) प्रयोगात्मक शोध** (experimental study)– मनोचिकित्सा की प्रभावशीलता का मूल्यॉकन प्रयोगात्मक अध्ययन द्वारा सर्वाधिक किया जाता है। इसमें नियंत्रित परिस्थिति में प्रेक्षण करने का तरीका उपयोग किया जाता है। इसमें प्रमुख रूप से नियंत्रण पर ध्यान दिया जाता है। इसमें कारणात्मक संबंध का मूल्यॉकन करने के लिए सर्वप्रथम स्वतंत्र चर, आश्रित चर एवं बाह्य चरों का निर्धारण किया जाता है। तत्पश्चात् शोध अभिकल्प तैयार कर प्रयोगात्मक एवं नियंत्रित समूहों की रचना की जाती है। प्रयोगात्मक समूह में रखे गये मनोरोगियों पर मनोचिकित्सा प्रशाशित की जाती है तथा नियंत्रित समूह के रोगियों को कोई चिकित्सा नहीं दी जाती है। तय अवधि बीत जाने पर दोनों के मानसिक स्थिति की तुलना कर प्रभावों का विश्लेषण किया जाता है तथा प्राप्त निष्कर्षों के आलोक में सामान्यीकरण का दावा किया जाता है। तथा चिकित्सा एवं मनोरोग में कमी के बीच कारणात्मक संबंध स्थापित किया जाता है।

**(घ) व्यक्तित्ववादी अध्ययन** (personalistic study)– इस विधि में एक मिश्रित अध्ययन किया जाता है इसके लिए केस स्टडी एवं प्रयोगात्मक अध्ययन दोनों में प्राप्त परिणामों को एक साथ मिलाकर मनोचिकित्सा की प्रभावशलीलता का मूल्यॉकन किया जाता है। इसमें सर्वप्रथम चिकित्सक एवं मनोरोगी के मध्य हुई व्यवहारिक अंतःक्रियाओं का क्रमबद्ध रूप से एक विस्तृत विवरण तैयार किया जाता है। तथा इसके उपरान्त प्रयोगात्मक अध्ययन को अंजाम दिया जाता है।

इस विधि के प्रतिपादन में समय, श्रम एवं धन तीनों ही काफी मात्रा में खर्च होता है। परन्तु परिणामों की विश्वसनीयता बढ़ जाने से इस दोष की क्षतिपूर्ति हो जाती है।

**(च) बॉक्स स्कोर रिव्यू** (box score review)– यह मनोचिकित्सा की प्रभावशीलता के मूल्यॉकन की एक पुरातन विधि है जिसमें अनुसंधानकर्ता मनोचिकित्सा से संबंधित बहुत से पूर्व शोध अनुसंधानों की एक सूची तैयार करता है जिसके लिए वह बहुत से स्रोतों का सहारा लेता है तथा संबंधित जानकारी जुटाता है। तत्पश्चात वह प्रत्येक मनोचिकित्सा के परिणामों की दो श्रेणियों में अंकन करता है जैसे कि सकारात्मक अथवा नकारात्मक। और इसके बाद सभी नकारात्मक एवं सकारात्मक ऑकड़ों की पूर्ण गिनती एवं सांख्यिकीय विश्लेषण द्वारा अंतिम निष्कर्ष पर पहुॅचता है।

चूॅकि सभी मनोचिकित्सा विधियॉ एक ही प्रकार से प्रशाशित नहीं की जाती हैं अतएवं केवल उनके परिणाम के आधार पर प्राप्त निष्कर्ष पर पूर्णतया भरोसा नहीं किया जा सकता है। परन्तु एक साधारण अंदाज लगाने के लिए यह विधि काफी उपयुक्त है।

**(छ) परिणाम मापन विधियॉ** (methods of measures outcomes)–मनोवैज्ञानिकों ने मनोचिकित्सा की प्रभावशीलता ज्ञात करने हेतु अन्य विधियों के अलावा कुछ कसौटियॉ विकसित की हैं। इस प्रकार की छः कसौटियॉ निम्नांकित हैं–

**1. व्यक्तित्व मापनी का प्रयोग**– मनोचिकित्सा से रोगी की जिंदगी में सार्थक परिवर्तन आता है एवं उसकी समस्याओं में कमी आती है एवं इस कमी को उसके व्यक्तित्व में आये बदलावों द्वारा आसानी से संहसंबंधित किया जा सकता है या उनके रूप में समझा जा

सकता है। इस हेतु मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व मापनी अथवा आविष्कारिकाओं का प्रयोग करते हैं इनमें एम.एम.पी.आई(MMPI), सी.पी.आई (CPI) आदि प्रमुख हैं।

**2. मनोचिकित्सक का मत** – मनोचिकित्सा कितनी प्रभावी सिद्ध हुई है इसका सर्वप्रथम निर्णय स्वयं मनोचिकित्सक द्वारा किया जाता है इस प्रकार स्वयं चिकित्सक का निर्णय को कसौटी के रूप में लिया जा सकता है। अतएव चिकित्सक का निर्णय यदि रोगी के व्यवहार में सकारात्मकता की दिशा में अनुकूल होता है तो चिकित्सा का प्रभावकारी माना जाता है।

**3. रोगी द्वारा स्वयं का मूल्यॉकन**– स्वमूल्यॉकन को भी मनोचिकित्सा की प्रभावशीलता की एक प्रमुख कसौटी माना जा सकता है। रोगी मनोरोग के उपचार पूर्व की स्थिति तथा मनोचिकित्सा के बाद की स्थिति का मूल्यॉकन स्वयं करता है तथा स्वयं में हुए बदलावों को स्पष्ट कर सकता है अतएव रोगी के मत को प्राप्त करने के बाद उसकी तुलना चिकित्सक के मत के साथ की जाती है एवं यदि रोगी दोनों के मत में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है तो यह माना जाता है कि मनोचिकित्सा प्रभावी सिद्ध हुई है। अक्सर देखा गया है कि रोगी चिकित्सकीय लाभ से स्वयं चिकित्सक से अधिक संतुष्ट होते हैं।

**4. मूल्यॉकन साक्षात्कार की कसौटी**– इस कसौटी में चिकित्सक मनोचिकित्सा के उपरान्त रोगी की स्थिति का मूल्यॉकन दूसरे मनोचिकित्सकों द्वारा रोगी के साक्षात्कार द्वारा करवाते हैं तथा परिवर्तन की सार्थकता की जॉच की जाती है। सार्थक परिवर्तन होने पर मनोचिकित्सा को प्रभावी माना जाता है।

**5. प्रक्षेपी विधियों का उपयोग**– मनोचिकित्सा की प्रभावशीलता ज्ञात करने के लिए मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रोजेक्टिव परीक्षणों को प्रयोग भी किया जाता है। इसमें रोशार्क परीक्षण (Rorschach test) तथा विषय आत्मबोधन परीक्षण (Thematic apperception test) का काफी प्रयोग किया गया है।

**6. चिकित्सा प्रक्रिया पर आधारित मानक**– इसके अन्तर्गत चिकित्सकों द्वारा चिकित्सा प्रक्रिया के दौरान रोगी द्वारा दिखलाये गये व्यवहारों का अर्न्तवस्तु विश्लेष्सण विधि द्वारा मूल्यॉकन किया जाता है। इसमें उसके प्रकट व्यवहार, स्वप्न, संवेगाभिव्यक्ति, तथा अशाब्दिक व्यवहार की घटनाओं का अंकन एवं विश्लेषण किया जाता है। तदनुपरान्त एक निर्णय पर पहुॅचा जाता है।

**(ज) मेटा विश्लेषण** (meta analysis)–स्मिथ, ग्लास एवं मिलर द्वारा सन् 1980 में मनोचिकित्सा प्रविधियों की प्रभावशीलता के मूल्यॉकन हेतु इस विधि का प्रतिपादन किया गया था। इस विधि के अन्तर्गत पूर्व में किये गये मनोचिकित्सा पर अनुसंधानों का सर्वप्रथम संकलन किया जाता है तथा उसके उपरान्त प्रत्येक अध्ययन में मनोरोग पर मनोचिकित्सा द्वारा उत्पन्न परिणामों का मात्रात्मक निर्धारण किया जाता है इसके लिए सांख्यिकीय विश्लेषण का सहारा लिया जाता है। इसके बाद इन सभी अध्ययनों के बीच अंतर का औसत ज्ञात किया जाता है। इसके लिए प्रत्येक अध्ययन के चिकित्सा समूह का मध्यमान एवं नियंत्रित समूह का मध्यमान ज्ञात कर उनके बीच अंतर को नियंत्रित समूहके मानक विचलन से विभाजित कर दिया जाता है। प्राप्त मान को प्रभाव की मात्रा की संज्ञा दी जाती है।

मेटा विश्लेषण के संबंध में मनोवैज्ञानिको के दो वर्ग बॉटे हुए हैं एक वर्ग इसकी वकालत करता है तथा दूसरा इसे अंदाज लगाने भर से ज्यादा विश्वसनीय नहीं मानता है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि मनोचिकित्सा की प्रभावशीलता के मापन की बहुत सी विधियों का प्रतिपादन मनोवैज्ञानिकों द्वारा किया गया है। मनोचिकित्सा की प्रकृति एवं परिस्थिति के अनुसार इनमें से किसी एक अथवा एक से अधिक विधियों का प्रयोग मनोचिकित्सा की प्रभावशीलता ज्ञात करने के लिए किया जा सकता है।

**अभ्यास प्रश्न 1** –निम्नलिखित में से कौन सी विधि में केसअध्ययन एवं प्रयोग दोनों के सम्मिलित उपयोग द्वारा मनोचिकित्सा की प्रभावशीलता का मूल्यॉकन किया जाता है?

क– बॉक्स स्कोर रिव्यू
ख– व्यक्तित्ववादी अध्ययन
ग– मेटा विष्लेषण
घ– प्रयोगात्मक अध्ययन

## 15.4 मनोचिकित्सा की प्रक्रिया (Process of psychotherapy)

हम सभी इस बात से भली भॉति परिचित हैं कि मनोचिकित्सा का प्रमुख उद्देश्य मनुष्य की दुश्चिंता को कम करना तथा उसे जीवन में समायोजन एवं उन्नति हेतु और बेहतर बनाना होता है। व्यक्ति अपनी मानसिक समस्या एवं उलझनें लेकर मनोवैज्ञानिक अथवा मनोचिकित्सक के पास आता है एवं उसे अपनी समस्या से अवगत कराकर उसके बेहतर समाधान की अपेक्षा रखता है। मनोवैज्ञानिक उसकी समस्या समझ कर तदनुरूप चिकित्सा प्रविधि द्वारा उसका उपचार करता है। उपरोक्त प्रक्रिया देखने में जितनी सरल दिखाई देती है उतनी वास्तव में होती नहीं है। वास्तव में मनोवैज्ञानिक समस्यायें इतनी जटिल होती हैं कि स्वयं रोगी इन्हें अपनी समझसे ठीक से व्यक्त ही नहीं कर पाता है एवं मनोवैज्ञानिक को भी इसे भली भॉति समझने के लिए अतिरिक्त सूझ की आवश्यकता होती है। अतएवं मनोचिकित्सा की प्रक्रिया को भली भॉति समझने के लिए हम इसे चार प्रमुख बिन्दुओं में विभाजित कर अध्ययन करेंगे। ये चार बिन्दु निम्नवत हैं।

(क) मनोचिकित्सा का प्रारंभ (Starting psychotherapy)–

(ख) मनोचिकित्सा की आवश्यक प्रक्रियाएँ (Essential processes of psychotherapy)–

(ग) समझ के बाद कदम (From understanding to action)–

(घ) मनोचिकित्सा का समापन (Terminating Psychotherapy)–

इन सभी बिन्दुओं का विस्तृत वर्णन बिन्दुवार निम्नवत है–

प्रमुख बिन्दुओं में विभाजित कर अध्ययन करेंगे। ये चार बिन्दु निम्नवत हैं।

**(क) मनोचिकित्सा का प्रारंभ (Starting psychotherapy)–** वास्तव में मनोचिकित्सा का प्रारंभ तभी से हो जाता है जब व्यक्ति अपनी मानसिक समस्या को मनोवैज्ञानिक के सम्मुख प्रारंभिक साक्षात्कार के दौरान रखता है। प्रारंभिक साक्षात्कार के मुख्य रूप से चार उद्देश्य होते हैं–

**1. क्लायंट के साथ अन्तःवैयक्तिक संबंध स्थापित करना** – इसके लिए क्लायंट के साथ विश्वास पूर्ण (Rapport, trust) संबंध विनिर्मित करने को प्रयास किया जाता है। विश्वासपूर्ण एवं भरोसे के वातावरण में ही आगे के सत्रों में मनोचिकत्सा प्रभावी सिद्ध हो पाती है।

2. रोगी एवं उसकी समस्या के संबंध में जानकारी प्राप्त करना।

3. क्लीनिक के संबंध में जानकारी देना जैसे कि नीतियॉं, सुविधायें, चिकित्सा का स्वरूप, फीस, मुलाकात के नियम आदि।

4. अपने जीवन में बदलाव लाने के रोगी द्वारा लिए गए उसके संकल्प को मजबूत करना।

प्रारंभिक साक्षात्कार की प्रक्रिया के संपन्न हो जाने के उपरान्त एक चिकित्सकीय गठबंधन (Therapeutic Alliance) का निर्माण किया जाता है।

**चिकित्सकीय गठबंधन** (therapeutic alliance)– चिकित्सा के आगे बढ़ने के लिए चिकित्सकीय गठबंधन का होना अत्यंत आवश्यक होता है। मनोचिकित्सा के प्रभावी होने के लिए रोगी का पर्याप्त रूप से अभिप्रेरित एवं उत्साही होना आवश्यक होता है। परन्तु यह सहज एवं सरल नहीं होता है। रोगी क्लीनिक में आने के साथ ही अपने साथ बहुत सी चिंताये भी अपने साथ लाता है। जैसे कि कहीं ऐसा तो नहीं कि जिस समस्या को लेकर वह चिकित्सक के पास आया है वह एक अबूझ समस्या हो जिसका उपचार संभव ही नहीं हो। या उसके द्वारा इस प्रकार की समस्या को चिकित्सक के सम्मुख रखने से उसके सामाजिक स्थिति में कोई गिरावट तो नहीं आयेगी। क्या चिकित्सक या मनोवैज्ञानिक उसकी समस्या को पर्याप्त रूप में गुप्त रखेंगे? आदि। इसके अलावा रोगी के व्यक्तित्व में उसके आत्मन् के भी दो हिस्से उसमें द्वन्द्व का भाव उत्पन्न कर देते हैं। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार व्यक्ति में दो प्रकार के आत्मन् होते हैं एक रूग्ण आत्मन् तथा दूसरा विवेकी आत्मन्। रूग्ण आत्मन् निराशावादी होता है तथा विवेकी आत्मन् तर्कपूर्ण, व्यवहारिक एवं आशावादी होता है। रूग्ण आत्मन् व्यक्ति को यथास्थिति बनाये रखने के विचार देता रहता है। वहीं विवेकी आत्मन् रोगी को अपनी स्थिति में बदलाव लाने हेतु प्रेरित प्रोत्साहित करता रहता है। रोगी इसी विवेकी आत्मन् की वजह से ही मनोचिकित्सक से सहायता लेने को तैयार होता है।

चिकित्सकीय गठबंधन में चिकित्सक को इसी रोगी के इसी विवेकी आत्मन् के साथ अपना गठबंधन मजबूत करना होता है ताकि रोगी में अभीप्सित बदलाव की भावना बनी रहे एवं मजबूत होती रहे।

**मूलभूत वादा** (Fundamental Commitment)– चिकित्सकीय गठबंधन के उपरान्त प्रायः नैदानिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा रोगी से एक मूलभूत वादा लिया जाता है। यह मूलभूत वादा प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक सिगमण्ड फ्रायड के मनोविश्लेषण में बेसिक रूल के नाम से उल्लेखित किया गया है। इससे तात्पर्य यह होता है कि मनोचिकित्सा के प्रभावी होने के लिए मनोचिकित्सक द्वारा रोगी की समस्या को समझा जाना अति आवश्यक होता है और इसके लिए रोगी की समस्या से संबंधित सभी प्रकार की जानकारी की जरूरत होती है। इसमें उन सूचनाओं को भी महत्व दिया जाता है जिसे सामाजिक नैतिकता की वजह से रोगी किसी से अभिव्यक्त करने में संकोच करता है। इसलिए रोगी से यह वादा करने को कहा जाता है कि वह किसी भी जानकारी अथवा सूचना को छुपायेगा नहीं तथा उसी रूप में चिकित्सक को अवगत करायेगा जिस मूल रूप में उसने समस्या को समझा अथवा महसूस किया है।

**चिकित्सकीय करार** (therapeutic contract) – मूलभूत वादा हो जाने के उपरान्त बारी आती है चिकित्सकीय करार की। चिकित्सक एवं रोगी के बीच चिकित्सकीय संबंध को आगे बढ़ाने हेतु तथा भविष्य में किसी प्रकार के गलतफहमी से बचने के लिए चिकित्सकीय करार किया जाता है। इस करार में मिलने का समय एवं स्वरूप, फीस संरचना, मिलने की

बारंबारता, समय पर फीस देना, चिकित्सक की उपलब्धता, रोगी के लिए गोपनीयता आदि प्रमुख मुद्दे होते हैं।

**लक्ष्य निर्धारण** (setting goals)– चिकित्सकीय करार होने के बाद इसमें मनोचिकित्सा के लक्ष्यों का निर्धारण किया जाता है। इसके लिए जरूरी होता है कि रोगी एवं चिकित्सक एक दूसरे के सहयोग से इसका निर्धारण करें। इसके लक्ष्य इस प्रकार के हो सकते हैं जैसे कि, रोगी खुश रहना चाहता है, कार्य में और प्रभावशाली होना चाहता है, अपने ऊँचाई के भय से मुक्ति पाना चाहता है, या वह अपने जीवन लक्ष्य से सुपरिचित होना चाहता है आदि। यहॉ पर चिकित्सक को यह ध्यान देने की जरूरत होती है कि वह अपने लक्ष्य रोगी पर थोप नहीं सकता है या कहना चाहिए कि उसे ऐसा नहीं करना चाहिए। यदि चिकित्सक को लगता है कि रोगी उससे जिस प्रकार के लक्ष्य पूर्ति की उम्मीद रख रहा है उसे वास्तविकता में पूरा किया जा पाना संभव नहीं है तो उसे रोगी को इससे अवगत कराते हुए किसी अन्य उपयुक्त लक्ष्य का सुझाव देना चाहिए।

**सीमाओं का निर्धारण** (setting limits)– मनोचिकित्सकीय लक्ष्य निर्धारण के साथ ही चिकित्सा में सीमाओं का निर्धारण भी पूर्व में ही कर लिया जाता है। रोगी एवं चिकित्सक यह तय कर लेते हैं कि उनकी व्यक्तिगत, कानूनी एवं सामाजिक सीमायें कहॉ तक हैं। जैसे कि चिकित्सक रोगी को समझा देते हैं वह मुलाकात का समय लेने के उपरान्त इसे रद्द नहीं कर सकता है तथा उसे बिल भी समय पर अदा करने होंगे। रोगी चिकित्सक को हरसंभव आदर प्रदान करेगा तथा उसकी संपत्ति को क्रोध आदि आवेश की स्थिति में क्षति नहीं पहुॅचायेगा। वह अपने क्रोध एवं संवेग को शालीन ढंग से अभिव्यक्त करने को स्वतंत्र होगा। प्रेम, आकर्षण एवं प्रशंसा का भाव अभिव्यक्त किया जा सकता है परन्तु शारीरिक संबंध नहीं बनाये जा सकते हैं आदि।

(ख) मनोचिकित्सा की आवश्यक प्रक्रियाएँ (Essential processes of psychotherapy)–

मनोचिकित्सा की आवश्यक प्रक्रियायें कई है इनमें निम्नांकित प्रमुख हैं–

1. संचार का प्रवाह (The flow of communication)–
2. रोगी के वर्तमान अनुभूति की जॉच करना (Examining the present experience)–
3. रोगी के भूतकाल की जानकारी जुटाना (exploring the past) –
4. चिकित्सक एवं रोगी के बीच संबंध की जॉच करना (Exploring the therapist-patient relationship)–
5. रोगी के भावनाओं एवं अर्थ–समझ को पहचानना, स्पष्ट करना एवं विवेचन करना (Recognizing, clarifying and interpreting the patient's feeling and meanings)–

इनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है–

**1. संचार का प्रवाह** (The flow of communication)– मनोचिकित्सा मूल रूप से मनोवैज्ञानिक स्वरूप की समस्याओं को मनोवैज्ञानिक तरीके से समझने एवं सुलझाने के लिए संचार को प्रथम प्रमुख साधन एवं प्रक्रिया के रूप में स्थान देती है, एवं मनोचिकित्सा के प्रभावी होने के लिए संचार का उपयुक्त होना बहुत ही जरूरी होता है। अतएव संचार के प्रवाह को स्थायी रूप से बनाये रखना रोगी एवं चिकित्सक दोनो ही की जिम्मेदारी होती

है। हालांकि यह जिम्मेदारी चिकित्सा के शुरूआती दिनों में चिकित्सक की होती है। रोगी प्रारंभ में अपने साथ निराशा, भय चिंता एवं निराशा से संबंधित भावों एवं विचारों के साथ मनोचिकित्सकीय संबंध में प्रवेश करता है फलतः जब वह अपनी समस्या को अभिव्यक्त करना प्रारंभ करता है तो उसके मार्ग में कई प्रकार की बाधायें संकोच, नैतिकता का तकाजा, धर्म, उम्र, भाषा, सामाजिक स्थिति आदि का कलेवर लेकर आ खड़ी होती हैं । जिससे यह परस्पर जारी संचार अवरूद्ध हो जाता है।

ऐसे में चिकित्सक की भूमिका अत्यंत ही महत्वपूर्ण हो जाती है। उसे इस संचार के प्रवाह को बनाये रखना होता है इसके लिए चिकित्सक कई प्रकार की तकनीकों का प्रयोग करते हैं जैसे कि –

चिकित्सक रोगी को सांवेगिक रूप से शांन्त रखने का प्रयास करते हैं।

रोगी को बातचीत को आगे बढ़ाने के लिए नये विषय बिन्दु सुझाते हैं।

रोगी को बातचीत के किसी खास बिन्दु पर अपना ध्यान केंद्रित करने के लिए कहते हैं।

अशाब्दिक संकेतो का प्रयोग करते हैं जैसे कि भवें टेढ़ी करना, मेज पर आगे की ओर झुक कर बैठना, नोट्स तैयार करना।

**2. रोगी के वर्तमान अनुभूति की जॉच करना** (Examining the present experience)– संचार के अलावा मनोचिकित्सा की आवश्यक प्रक्रियाओं मे रोगी के दिनप्रतिदिन के अनुभवों की समय समय पर परीक्षा करना भी जरूरी होता है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार रोगी का आज एवं आज के अनुभव एवं उसकी आज के व्यवहार की अभिव्यक्ति मनोचिकित्सा के लिए अत्यंत ही महत्वपूर्ण स्थान रखती है क्योंकि उसके आज की जानकारी से उसके वर्तमान व्यक्तित्व की झलक प्राप्त होती है। रोगी के वर्तमान अनुभूतियों के अध्ययन से रोगी के सोचने का तरीका स्पष्ट होता है। रोगी किस प्रकार अपने जीवन में घटने वाली घटनाओं का मूल्यॉकन करता है यह स्पष्ट होता है। वह कौन से सुरक्षा प्रक्रम अपनाता है वैचारिक द्वन्द्व से कैसे निपटता है? उसकी विभिन्न आवश्यकतायें कौन सी हैं, स्वयं से , परिवार से, समाज से उसकी क्या अपेक्षायें हैं? एवं वह विभिन्न परिस्थितियों में किस प्रकार की अनुक्रिया देता है इसकी जानकारी रोगी के वर्तमान अनुभवों पर बातचीत करने से ही काफी हद तक स्पष्ट हो जाती हैं।

**3. रोगी के भूतकाल की जानकारी जुटाना** (exploring the past) – इन आवश्यक प्रक्रियाओं मे रोगी के भूतकाल की जानकारी जुटाना भी अहम् होता है इसके लिए प्रत्येक सत्र में रोगी के वर्तमान से मार्ग निकालते हुए रोगी के पिछले अनुभवों की पड़ताल की जाती है। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि रोगी के वर्तमान व्यक्तित्व एवं व्यवहार के कारण कहीं न कहीं उसके भूतकाल में उसकी बचपन की अनुभूतियों किशोरावस्था के अनुभवों आदि में छिपे हुये होते हैं। इनके गंभीर अध्ययन से रोगी के वर्तमान व्यक्तित्व एवं भूतकाल के मध्य कारणात्मक संबंध विनिर्मित कर पाना आसान हो जाता है तथा तदनरूप चिकित्सा प्रक्रिया का निर्धारण भी सहज हो जाता है।

**4. चिकित्सक एवं रोगी के बीच संबंध की जॉच करना** (Exploring the therapist-patient relationship)– रोगी के वर्तमान अनुभव एवं बचपन के अनुभवों की परीक्षा के साथ ही चिकित्सक के पास रोगी के वर्तमान व्यवहार का गवाह बनने का अवसर भी चिकित्सकीय संबंध में उपलब्ध रहता है इसके अन्तर्गत चॅूकि रोगी चिकित्सक के साथ बातचीत एवं व्यवहार करता है इससे उसके बातचीत के विषय, बातचीत के ढंग व्यवहार के स्वरूप उसके पहले बतलाये गये अनुभवों की त्वरित परीक्षा एवं संगतता की परीक्षा कर

पाना आसान हो जाता है। रोगी एवं चिकित्सक के बीच के इस संबंध से रोगी के सामाजिक परिस्थितियों में किये जाने वाले व्यवहार की वास्तविक प्रमाण प्राप्त होता है। रोगी के मन में हृदय में चिकित्सक के प्रति उठ रहे भावसंवेगों की परीक्षा का अवसर प्राप्त होता है। रोगी के सम्मुख भी चिकित्सक के व्यवहार को देखकर उससे तादात्म्य बिठाकर, चिकित्सक को आदर्श व्यक्तित्व के रूप में देखकर सीखने का अवसर मिलता है या उपस्थित रहता है।

इस संबंध की जॉच से तीन प्रकार के भाव संवेगों अन्तरण (transference feelings) समय समय पर स्पष्ट होते रहते हैं।

**धनात्मक भावसंवेग अंतरण** (positive transference)– इसके अन्तर्गत रोगी चिकित्सक को अपने किसी आदर्श अथवा प्रिय के स्थान पर रखकर उसके साथ प्रेमपूर्ण सकारात्मक, प्रशंसनीय व्यवहार करता है उदाहरण के लिए वह चिकित्सा के लिए ग्रीटिंग कार्ड अथवा उपहार लेकर आ सकता है , चिकित्सक से सिनेमा साथ देखने जाने का अनुरोध कर सकता है चिकित्सक के लिए मिठाई आदि लेकर आ सकता है।

**नकारात्मक भावसंवेग अंतरण** (negative transference)– इसके अन्तर्गत रोगी चिकित्सक को अपने विरूद्ध मानते हुए नाराजगी, गुस्सा अथवा आक्रामकता आदि की अभिव्यक्ति करता है।

**विपरीत भावसंवेग अंतरण** (counter transference)– जब रोगी द्वारा अभिव्यक्त किये जा रहे धनात्मक अथवा नकारात्मक भावसंवेग से चिकित्सक स्वयं प्रभावित होने लगते हैं तथा उसके प्रभाव में आकर अनुक्रिया करने लगते हैं तब चिकित्सक के धनात्मक अथवा नकारात्मक भावसंवेग अंतरण के कारण होने वाले अंतरण को विपरीत भावसंवेग अंतरण कहा जाता है।

मनोवैज्ञानिकों का मत है कि जब रोगी में भावसंवेग अंतरण की घटना घटने लगती है तब इसे चिकित्सा की सफलता के लिए उत्तम माना जाता है परन्तु इस अंतरण को अनियंत्रित होने से रोकने की जिम्मेदारी भी मनोचिकित्सक की ही होती है। मनोचिकित्सक को चिकित्सा के दौरान विपरीत भावसंवेग अंतरण के प्रति सजग रहने की सलाह दी जाती है इसके लिए चिकित्सक को कहा जाता है कि वह समय समय पर अपने अन्दर उत्पन्न होने वाले भाव संवेगों एवं विचारों की परीक्षा करता रहे ताकि वह विपरीत भावसंवेग अंतरण का शिकार न हो जाये। जब कोई चिकित्सक विपरीत भावसंवेग अंतरण से प्रभावित हो जाता है तब उसे चिकित्सा से विराम लेने की सलाह दी जाती है। अन्यथा चिकित्सा गलत दिशा में आगे बढ़ जाती है।

**5. रोगी के भावनाओं एवं अर्थ**–समझ को पहचानना, स्पष्ट करना एवं विवेचन करना (Recognizing, clarifying and interpreting the patient's feeling and meanings)– मनोचिकित्सा की प्रक्रिया में अगला कदम रोगी के भावों एवं उसकी घटनाओं की समझ की पहचान करना, उन्हें उसके सम्मुख स्पष्ट करना एवं उनका उचित विवेचन करना होता है। यह अत्यंत ही महत्वपूर्ण अवस्था होती है।

इस अवस्था में विवेचन मुख्य रूप से क्या एवं क्यों जैसे प्रश्नों पर केंद्रित रहता है। इसका मुख्य लक्ष्य रोगी के उसके वर्तमान अनुभूतियों के प्रति सजग करना होता है तथा यह भी बतलाना होता है कि इसके उसके स्वयं के जीवन एवं अन्य लोगों पर व्यवहारिक रूप में

क्या प्रभाव पड़ सकता है। प्रायः इन प्रश्नों का संबंध रोगी की आवश्सकताओं, उसके चरित्र से होता है।

प्रारंभ में विवेचन का स्वरूप साधारण स्तर का होता है परन्तु जैसे जैसे चिकित्सा आगे बढ़ती है इसका स्वरूप जटिल होता जाता है। रोगी की मनोवैज्ञानिक समझ एवं सूझ के अनुसार चिकित्सक मनोवैज्ञानिक संप्रत्ययों की भाषा में भी रोगी से बातचीत करना शुरू कर देते हैं। एक प्रकार से रोगी में मनोवैज्ञानिक समस्याओं एवं स्वयं के व्यक्तित्व के प्रति एक मनोवैज्ञानिक समझ विकसित हो जाती है।

**अभ्यास प्रश्न 2** –निम्नलिखित में से कौन सी बात 'मूलभूत वादा' के संदर्भ में सत्य है?

क– मूलभूत वादा चिकित्सक के द्वारा रोगी को उपचार की गारंटी देना होता है।

ख– मूलभूत वादा रोगी द्वारा चिकित्सक को समय पर फीस देने एवं मुलाकात करने से संबंधित होता है।

ग– मूलभूत वादा रोगी द्वारा अपनी समस्या के संबंध में खुले रूप में स्पष्ट रूप में सूचनायें उपलब्ध कराने से संबंधित है।

घ– मूलभूत वादा चिकित्सक के क्लीनिक को आवेग की अवस्था में नुकसान न पहुॅचाने से संबंधित है।

**(ग) समझ के बाद कदम (From understanding to action)–** मनोचिकित्सा की प्रकिया का यह चौथा महत्वपूर्ण पड़ाव है इसमें समस्या की समझ के उपरान्त उठाये जाने वाले कदमों पर विचार किया जाता है, फैसले किये जाते हैं एवं उन फैसलों पर व्यवहारिक रूप से अमल किया जाता है। दूसरे शब्दों में यदि कहा जाये तो इस पड़ाव में रोगी में उत्पन्न अन्तर्दृष्टि को क्रिया–व्यवहार में वास्तविक जिंदगी में अनुवादित किया जाता है। रोगी अन्तर्दृष्टि के प्रकाश में निम्न प्रकार से बातचीत करता है या बातचीत का स्वरूप निम्न प्रकार का होता है–

इस अवस्था में न्यूरोटिक पैटर्न (neurotic pattern) पर विचार की जगह अनुकूलन प्रतिभा संभावनाओं (adaptive potentials) पर विचार किया जाता है।

कल्पनाओं एवं स्मृतियों की जगह सामाजिक वास्तविकता पर विचार किया जाता है।

भूतकाल एवं वर्तमान के परिप्रेक्ष्य से आगे बढ़कर भविष्य में भूमिकाओं पर विचार किया जाता है।

इस अवस्था में आने के बाद अब रोगी समस्या समाधान संबंधी कदम उठाने की ओर आगे बढ़ जाता है वह अब समस्या के समाधान की दिशा में चिकित्सकीय तरीके से चिंतन करने लगता है। वह स्वयं विचारों, भावसंवेगों एवं घटनाओं के विवेचन में रूचि लेने लगता है। वह स्वयं बातचीत हेतु विषय सुझाता है, प्रश्न खड़े करता है, एवं सुझाव मॉगता है।

इस अवस्था में चूॅकि भावनात्मक तनाव कम हो चुका होता है अब रोगी तार्किक रूप से विवेकपूर्ण ढंग से घटनाओं का विश्लेषण करने में समर्थ हो जाता है। अब वह पहले की अपेक्षा अधिक खुले रूप में अपने व्यवहार की व्याख्या को बदलता एवं स्वीकारता है।

इस अवस्था में चिकित्सक पहले की अवस्थाओं की तुलना में कहीं ज्यादा सीधे तरीकों का इस्तेमाल करना शुरू कर देता हैं वह अब रोगी को सीधे –सीधे विशिष्ट कदम उठाने की सलाह दे सकता है। वह रोगी के अपने निर्णय स्वयं करने की सलाह देने लगता है तथा रोगी के लिए जरूरी कौशल हेतु वह प्रशिक्षण भी प्रदान करता है।

**(घ) मनोचिकित्सा का समापन** (Terminating Psychotherapy)– कदम उठाने की अवस्था के बाद रोगी में पर्याप्त अंतर्दृष्टि उत्पन्न हो जाती है तथा वह वास्तविक सामाजिक

परिस्थितियों में अपने व्यवहार की स्वयं एवं चिकित्सक द्वारा परीक्षा भी कर चुका होता है। अब बारी आती है मनोचिकित्सा के समापन की। मनोचिकित्सा का समापन करने में भी कई बातों का ध्यान रखना पड़ता है तथा कई सावधानियॉ बरतनी पड़ती हैं।

मनोचिकित्सा का समापन करने से पूर्व रोगी एवं चिकित्सक दोनों को ही रोगी की मानसिक अवस्था, समझ एवं कौशल के संबंध में महत्वपूर्ण निर्णय लेने होते हैं।

सबसे पहले तो रोगी को यह निर्णय करना होता है कि क्या उसने चिकित्सक के सहयोग से अपने जीवन में अथवा व्यवहार में बदलाव के जो लक्ष्य निर्धारित किये थे वे पूरे हो गये हैं अथवा नहीं। यदि उसे लगता है कि जिन लक्ष्यों का निर्धारण किया गया था वे पूरे हो चुके हैं तो वह चिकित्सक से स्वयं ही चिकित्सा को समाप्त करने का अनुरोध कर सकता है। इसके अलावा चिकित्सक को भी यह निर्णय लेना होता है कि क्या उसके द्वारा निर्धारित लक्ष्य अपेक्षा के अनुरूप पूर्ण हो गये हैं अथवा नहीं। यहॉ पर यह उद्धृत करना भी जरूरी है कि कभी कभी ऐसी परिस्थिति भी आ सकती है कि रोगी को लगता हो कि उसे अब चिकित्सा की और आवश्यकता नही है परन्तु चिकित्सक को लगता हो कि अभी चिकित्सा का लक्ष्य पर्याप्त रूप में पूर्णता तक नहीं पहुॅचा है। ऐसी अवस्था में चिकित्सक को धैर्यपूर्वक रोगी से बातकर उसे उक्त मूल्यॉकन से अवगत कराना होता है। रोगी द्वारा जोर देने पर चिकित्सक उसे चिकित्सा जारी रखने के लिए बाध्य नहीं कर सकता है।

इसके अलावा चिकित्सक को मनोचिकित्सा की समाप्ति की घोषणा से पूर्व यह तय करना भी जरूरी होता है कि चिकित्सा को एकदम से अचानक ही न समाप्त कर दिया जाये। क्योंकि अचानक से चिकित्सा समाप्त करने के रोगी के जीवन में विपरीत परिणाम हो सकते हैं इसके लिए चिकित्सक को धीरे–धीरे चिकित्सा के सत्रों को कम करते हुए चिकित्सा समाप्त करने की सलाह दी जाती है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि मनोचिकित्सा की प्रक्रिया अत्यंत ही लम्बी एवं जटिल होती है यह एक प्रकार से रोगी के धैर्य एवं चिकित्सक के धैर्य, ज्ञान अनुभव एवं कौशल की परीक्षा होती है।

आइये अब मनोचिकित्सा के संबंध में अपनी जानकारी की परीक्षा करें। निम्नलिखित प्रश्न पर विचार करें।

**अभ्यास प्रश्न 3**– मनोचिकित्सा समाप्ति के संदर्भ में निम्नलिखित में कौन सा सुझाव उपयुक्त है?

क– मनोचिकित्सा को रोगी की इच्छानुसार समाप्त कर देना चाहिए।

ख– मनोचिकित्सक को जोर देकर मनोचिकित्सा के लक्ष्यों को रोगी की इच्छा के विपरीत पूरा करने हेतु प्रयास करते रहना चाहिए।

ग– मनोचिकित्सा को चिकित्सक अपनी इच्छानुसार कभी भी समाप्त कर सकता है।

घ– मनोचिकित्सा के लक्ष्यों की पूर्ति उपरान्त मनोचिकित्सा को धीरे–धीरे समाप्त करना चाहिए।

## 15.5 मनोचिकित्सा के परिणामों को प्रभावित करने वाले कारक (Factors affecting results of Psychotherapy)

उपरोक्त पंक्तियों में हमने मनोचिकित्सा के मूल्यॉकन एवं उसकी प्रक्रिया की विस्तृत जानकारी प्राप्त की है। आइये अब इस मनोचिकित्सा के परिणामों को प्रभावित करने वाले कारकों के बारे में अपना ज्ञान बढ़ायें।

जैसा कि हम जानते हैं कि मनोचिकित्सा के कियान्वयन का कोई एक सेट पैटर्न प्रचलित नहीं है तथा इसकी प्रक्रिया के कॉमन बिन्दुओं को ही उपरोक्त पंक्तियों में उल्लेख किया गया है। चूँकि मनोचिकित्सा के कई उपागम प्रचलन में हैं अतएव कुछ प्रक्रियागत अन्तर होना स्वाभाविक होता है। मनोचिकित्सा की प्रक्रिया में पाया जाने वाला प्रक्रियागत अन्तर के अलावा भी मनोचिकित्सा के परिणामों को प्रभावित करने वाले बहुत से कारक होते हैं। मनोचिकित्सा एक निष्क्रिय प्रक्रिया नहीं होती है कि जिसमें चिकित्सक अपनी कुशलता द्वारा रोगी में औषधि की भॉति सूझ उत्पन्न कर देता है। बल्कि यदि हम ध्यान से देखें तो यह स्पष्ट होता है कि मनोचिकित्सा एक सक्रिय प्रक्रिया एवं गत्यात्मक प्रक्रिया हैं जिसमें रोगी, चिकित्सक एवं उनका संबंध महत्वपूर्ण कारक होता है। सचमुच में मनोचिकित्सा की प्रभावशीलता इन कारकों से काफी प्रभावित होती है।

मनोवैज्ञानिकों ने ऐसे पॉच कारकों का विस्तृत वर्णन किया है ये कारक निम्नांकित हैं।

(क) रोगी के गुण एवं विशेषताएँ (Characteristics of patient)

(ख) चिकित्सक की विशेषताएँ (Characteristics of therapist)

(ग) रोगी एवं चिकित्सक का संबंध (Relation between patient and therapist)

(घ) चिकित्सकीय प्रविधियॉ (Therapeutic techniques)

(च) सामाजिक सांस्कृतिक कारक (Socio-culturral factors)

इन सभी का वर्णन निम्न प्रकार से है।

(क) रोगी के गुण एवं विशेषताएँ (Characteristics of patient) –रोगी की बहुत सी ऐसी विशेषताएँ अथवा गुण होते हैं जो काफी हद तक मनोचिकित्सा के परिणाम को प्रभावित करते हैं। इन विशेषताओं में निम्नांकित प्रमुख हैं–

**1. रोगी की मानसिक क्षुब्धता की स्थिति**– यदि रोगी मानसिक रूप से अत्यधिक क्षुब्ध है जैसे कि साइकोटिक डिस्आर्डर जैसे कि स्किजोफ्रेनिया, व्यामोह आदि से ग्रस्त है तो ऐसी परिस्थिति में मनोचिकित्सा से उसे कोई खास लाभ प्राप्त नहीं होता है वहीं चिंता विकृति अथवा मनोदशा विकृतियों से ग्रस्त रोगी मनोचिकित्सा से काफी लाभान्वित होते हैं।

**2. व्यक्तित्व के सामान्य गुण** –मनोवैज्ञानिकों के अनुसार व्यक्तित्व की सामान्य गुण जैसे कि अहंशक्ति यदि रोगी में अधिक मात्रा में विद्यमान होती है तो उस रोगी को मनोचिकित्सा से शीघ्र एवं ज्यादा लाभ मिलता है। मनोवैज्ञानिक सिगेल एवं रोजेन के अनुसार जिन रोगियों में चिंता सहनशक्ति अधिक होती है उन्हें भी मनोचिकित्सा से काफी लाभ मिलता है।

**3. विश्वास एवं प्रत्याशा** (faith and expectation)– मनोचिकित्सक एवं मनोचिकित्सा की प्रक्रिया में विश्वास होना काफी हद तक मनोचिकित्सा की प्रभावशीलता को प्रभावित करता है। फ्रैंक द्वारा जान हापकिन्स विश्वविद्यालय में सन 1953 में किए गए अनुसंधानों के माध्यम से स्पष्ट किया है कि जब चिकित्सक एवं रोगी दोनों को मनोचिकित्सा में विश्वास होता है तथा समान प्रकार की उम्मीद होती है तब मनोचिकित्सा काफी प्रभावी होती है।

**4. उम्र, यौन एवं बुद्धि** (Age, sex and intelligence)– अन्य बातें समान रहने पर कम उम्र के रोगी जैसे कि 19 से 24 उम्र प्रसार में आने वाले, अपने से अधिक उम्र के रोगियों की तुलना में मनोचिकित्सा से अधिक लाभान्वित होते पाये गये हैं। इसे दो कारण बतलाये गये हैं कि पहला यह कि कम उम्र के रोगियों में वैचारिक लचीलापन ज्यादा होता है। वहीं दूसरा यह कि कम उम्र के रोगियों के अपअनुकूलित व्यवहारों को कम मात्रा में पुनर्बलन

मिला होता है। अतएव इनके व्यवहार में परिवर्तन लाना अधिक उम्र के व्यक्तियों की अपेक्षा ज्यादा आसान रहता है।

वैसे तो यौन को लेकर महिला एवं पुरूषों में मनोचिकित्सा की औसत प्रभावशीलता में कोई खास अन्तर नहीं है परन्तु महिलायें चूँकि सहायता लेने को पुरूषों की तुलना में ज्यादा तत्पर रहती हैं इसलिए उनमें मनोचिकित्सा के सुपरिणाम ज्यादा शीघ्रता से दिखलाई देने लगते हैं।

मनोवैज्ञानिकों ने पाया है कि बुद्धि का स्तर भी मनोचिकित्सा के परिणामों को प्रभावित करता है। अधिक बुद्धि के रोगी मनोचिकित्सा से कम बुद्धि के लोगों की अपेक्षा शीघ्रता से लाभान्वित होते हैं।

**5. अभिप्रेरण, खुलापन एवं सामाजिक स्तर** (motivation, openness and social class)– अभिप्रेरण, खुलापन एवं सामाजिक स्तर भी मनोचिकित्सा के परिणामों को प्रभावित करता है।

स्व अभिप्रेरित रोगी पर निष्क्रिय रोगी की अपेक्षा मनोचिकित्सा ज्यादा लाभकारी होती है।

इसके अलावा जो रोगी चिकित्सकीय प्रक्रिया के प्रति खुला विचार रखते हैं वे चिकित्सा से अधिक लाभ उठा पाते हैं।

रोगियों की सामाजिक स्थिति पर किये गये अध्ययन यह सिद्ध करते हैं कि सामाजिक स्थिति भी मनोचिकित्सा के परिणामों को प्रभावित करती है। जैसे कि हंट एवं लोरिन आदि मनोवैज्ञानिकों को मत है कि पारंपरिक मनोचिकित्सा जैसे कि मनोविश्लेषण आदि से समाज के संभ्रान्त वर्ग में आने वाले रोगियों को गरीब रोगियों की तुलना में अधिक लाभ प्राप्त होता है क्योंकि गरीब रोगियों को का विश्वास औषधियों द्वारा उपचार में ज्यादा होता है क्योंकि वे मनोविश्लेषण जैसी प्रक्रियाओं को समझ ही नहीं पाते हैं क्योंकि उन्हें उनका अनुभव कभी हुआ ही नहीं होता है।

**(ख) चिकित्सक की विशेषताएँ** (Characteristics of therapist)– मनोवैज्ञानिकों एवं मनोचिकित्सकों को मत है कि मनोचिकित्सा के परिणामों पर मनोचिकित्सकों की विशेषताओं का भी काफी प्रभाव पड़ता है। इसकी व्याख्या के लिए मनोचिकित्सकों की विशेषताओं का वर्णन निम्नांकित है–

**1. मनोचिकित्सक का अनुभव** – ऐसे मनोचिकित्सक जिन्हें चिकित्सा का अनुभव ज्यादा होता है उनके द्वारा प्रदान की गयी मनोचिकित्सा से रोगी कहीं ज्यादा लाभान्वित होते पाये गये हैं।

**2. मनोचिकित्सक का स्वयं की समस्याओं से स्वतंत्र होना–** मनोचिकित्सकों के अनुसार ऐसे मनोचिकित्सक जो कि अपनी व्यक्तिगत समस्याओं से चिकित्सा के दौरान स्वयं को विलग करना सीख लेते हैं तथा अपनी समस्याओं से चिंतित नहीं रहते हैं उनकी मनोचिकित्सा ज्यादा प्रभावशाली होती है।

**3. मनोचिकित्सक का व्यक्तित्व–** एक आदर्श मनोचिकित्सके के बहुत सारे शीलगुणों का वर्णन कैसनर आदि मनोवैज्ञानिकों द्वारा किया गया है। जैसे कि परिपक्वता, सहानुभूति, सहनशीलता, ईमानदारी, धैर्य, संवेदनशीलता, वस्तुनिष्ठता, खुलापन, सृजनात्मकता, मानव समस्याओं में अभिरूचि रखने वाला। ये गुण जिस मनोचिकित्स में जितनी मात्रा में पाये जाते हैं उसकी मनोचिकित्सा उतनी ही प्रभावशाली होती है।

**4.** इसके अलावा जिस मनोचिकित्सक में परानुभूति, तथा सहजता का गुण पाया जाता है एवं जिनमें प्रतिस्थानान्तरण ( transference) अर्थात रोगी द्वारा अभिव्यक्त भावसंवेगों से अप्रभावित रहने का गुण पाया जाता है वे उत्तम मनोचिकित्सक साबित होते हैं।

**(ग) रोगी एवं चिकित्सक का संबंध** (Relation between patient and therapist)– रोगी एवं चिकित्सक के बीच का संबंध मनोचिकित्सा के परिणामों को काफी हद तक प्रभावित करता हैं। इसे तीन पकार से समझाया गया है।

**1. रोगी तथा चिकित्सक के प्रत्याशा में सामंजस्य–** मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि चिकित्सक तथा रोगी की प्रत्याशाओं में सामंजस्य से चिकित्सा का परिणाम अनुकूल होने की संभावना अधिक बढ़ जाती है।

**2. रोगी तथा चिकित्सक के व्यक्तित्व में समानता**– रोगी तथा चिकित्सक के व्यक्तित्व में समानता का प्रभाव चिकित्सा के परिणाम पर पड़ता है। इससे परानुभूति तथा समझ–बूझ की मात्रा में वृद्धि होती है। तथा असमानता होने पर वस्तुनिष्ठता में वृद्धि होती है। कुछ अन्य लोगों का मत है कि अगर रोगी तथा चिकित्सक के व्यक्तित्व में समानता साधारण स्तर की होती है तब रोगी को चिकित्सा से लाभ प्राप्त होता है।

**3. रोगी तथा चिकित्सक की सामाजिक सांस्कृतिक विशेषताओं में समानता**– यदि रोगी के इन पहलुओं में समानता होती है ता चिकित्सा का परिणाम प्रभावी एवं अनुकूल होता है। यदि असमानता होती है तो चिकित्सा का परिणाम प्रतिकूल होता है। परंतु वास्तविकता इतनी सीधी नहीं है। बहुत सारे ऐसे कारक हैं जिनसे इन दोनों का संबंध प्रभावित होता है तथा उसमें जटिलता उत्पन्न होती है।

**(घ) चिकित्सकीय प्रविधियॉं** (Therapeutic techniques) – चिकित्सकीय विधियों का प्रकार, उनके स्वरूप एवं उनके दिये जाने की अवधि तीनों से ही मनोचिकित्सा के परिणाम प्रभावित होते हैं। यह देखा गया है कि लम्बी अवधि तक चिकित्सा के सत्र रोगी को दिये जाते हैं तो वह कम अवधि तक कम संख्या में दी गयी चिकित्सा की अपेक्षा अधिक लाभकारी होता है। फलतः ऐसी मनोचिकित्सा का परिणाम अनुकूल होता है, परन्तु हर परिस्थिति में ऐसा होना स्वाभाविक नहीं है।

**(च) सामाजिक सांस्कृतिक कारक** (Socio-culturral factors)

जिस समाज की संस्कृति में यह विश्वास होता है कि मानव स्वभाव में आवश्यकता पड़ने पर सुधार लाया जा सकता है तथा टेक्नोलॉजी के ज्ञान के आधार पर मानवी समस्याओं का सुलझाया जा सकता है उसमें मनोचिकित्सा ज्यादा लाभकारी परिणाम प्रस्तुत करती है। उसी तरह देखा गया है कि जिस समाज में मनोचिकित्सा एक महत्वपूर्ण सामाजिक प्रक्रिया समझी जाती है न कि एक सामाजिक कलंक उसमें दी गयी मनोचिकित्सा के परिणाम अधिक अनुकूल होते हैं।

**अभ्यास प्रश्न 4–** रोगी एवं मनोचिकित्सक के व्यक्तित्व में समानता होने से

क– चिकित्सा ज्यादा लाभ प्रदान नहीं करती है।

ख– चिकित्सक का रोगी पर प्रभाव समाप्त हो जाता है।

ग– चिकित्सा से रोगी को अनुकूल परिणाम प्राप्त होते हैं।

घ– रोगी चिकित्सक को ज्यादा महत्व नहीं देता है।

## 15.6 सारांश

1. वर्तमान में मनोचिकित्सा के मूल्यॉकन की कई विधियॉ प्रचलित हैं जिनका उपयोग समय परिस्थिति के अनुसार अनुसंधानकर्ताओं द्वारा किया जाता है। ये निम्नांकित हैं।

(क) नैदानिक सर्वे (clinical survey)

(ख) केस स्टडी (case study)

(ग) प्रयोगात्मक शोध (experimental study)

(घ) व्यक्तित्ववादी अध्ययन (personalistic study)

(च) बॉक्स स्कोर रिव्यू (box score review)

(छ) परिणाम मापन विधियॉ (methods of measures outcomes)

(ज) मेटा विश्लेषण (meta analysis)

2. मनोचिकित्सा की प्रक्रिया को भली भॉति समझने के लिए हम इसे चार प्रमुख बिन्दुओं में विभाजित कर अध्ययन करेंगे। ये चार बिन्दु निम्नवत हैं।

(क) मनोचिकित्सा का प्रारंभ (Starting psychotherapy)–

(ख) मनोचिकित्सा की आवश्यक प्रक्रियाएँ (Essential processes of psychotherapy)–

(ग) समझ के बाद कदम (From understanding to action)–

(घ) मनोचिकित्सा का समापन (Terminating Psychotherapy)–

3. मनोचिकित्सा की आवश्यक प्रक्रियायें कई है इनमें निम्नांकित प्रमुख हैं–

1. संचार का प्रवाह (The flow of communication)–

2. रोगी के वर्तमान अनुभूति की जॉच करना (Examining the present experience)–

3. रोगी के भूतकाल की जानकारी जुटाना (exploring the past) –

4. चिकित्सक एवं रोगी के बीच संबंध की जॉच करना (Exploring the therapist-patient relationship)–

5. रोगी के भावनाओं एवं अर्थ–समझ को पहचानना, स्पष्ट करना एवं विवेचन करना (Recognizing, clarifying and interpreting the patient's feeling and meanings)–

4. मनोचिकित्सा एक सक्रिय प्रक्रिया एवं गत्यात्मक प्रक्रिया हैं जिसमें रोगी, चिकित्सक एवं उनका संबंध महत्वपूर्ण कारक होता है। सचमुच में मनोचिकित्सा की प्रभावशीलता इन कारकों से काफी प्रभावित होती है।

मनोवैज्ञानिकों ने ऐसे पॉच कारकों का विस्तृत वर्णन किया है ये कारक निम्नांकित हैं।

(क) रोगी के गुण एवं विशेषताएँ (Characteristics of patient)

(ख) चिकित्सक की विशेषताएँ (Characteristics of therapist)

(ग) रोगी एवं चिकित्सक का संबंध (Relation between patient and therapist)

(घ) चिकित्सकीय प्रविधियॉ (Therapeutic techniques)

(च) सामाजिक सांस्कृतिक कारक (Socio-culturral factors)

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि मनोचिकित्सा की प्रक्रिया अपने आप में काफी गहन एवं विस्तृत है इसमें रोगी, चिकित्सक एवं समाज एवं संस्कृति से संबंधित ऐसे बहुत से कारक

है जो इसके परिणामों को प्रभावित करते हैं एवं इन प्रभावों का मूल्यॉकन करने की भी बहुत सी विधियॉ हैं जिनका ज्ञान हमने प्रस्तुत इकाई में प्राप्त किया है।

## 15.7 शब्दावली

**मनोचिकित्सा** (Psychotherapy)– मनोचिकित्सा एक उपचार तंत्र, गतिविधि या प्रक्रिया होती है जिसका उद्देश्य रोगी की मनोवैज्ञानिक समस्याओं को सुलझाना होता है तथा इसके लिए रोगी एवं चिकित्सक एक दूसरे के सहयोगी के रूप में कार्य करते हैं।

**प्रयोगात्मक अध्ययन** (Experimental study)– नियंत्रित परिस्थिति में किया गया प्रेक्षण प्रयोग कहलाता है। जब स्वतंत्र चर का परतंत्र चर पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन बाह्य चरों पर नियंत्रण द्वारा किया जात है तो इस प्रकार के अध्ययन को प्रयोगात्मक अध्ययन कहा जाता है।

**चिकित्सकीय गठबंधन** (Therapeutic alliance)– चिकित्सकीय गठबंधन में चिकित्सक को रोगी के विवेकी आत्मन् के साथ अपना गठबंधन मजबूत करना होता है ताकि रोगी में अभीप्सित बदलाव की भावना बनी रहे एवं मजबूत होती रहे।

**चिकित्सकीय करार** (therapeutic contract) – चिकित्सक एवं रोगी के बीच चिकित्सकीय संबंध को आगे बढ़ाने हेतु तथा भविष्य में किसी प्रकार के गलतफहमी से बचने के लिए चिकित्सकीय करार किया जाता है। इस करार में मिलने का समय एवं स्वरूप, फीस संरचना, मिलने की बारंबारता, समय पर फीस देना, चिकित्सक की उपलब्धता, रोगी के लिए गोपनीयता आदि प्रमुख मुद्दे होते हैं।

**मानवतावादी चिकित्सा** (Huministic therapy)– जिस चिकित्सा प्रविधि में रोग के उपचार हेतु व्यक्ति के स्वाभाविक विकास की प्रवृत्ति को सजह किया जाता है तथा व्यक्ति की अनुभव करने की क्षमता, निर्णय करने की क्षमता तथा अपने विकास का पथ स्वयं प्रदर्शित करने वाली आत्म शक्ति को महत्व देकर तथा इनके प्रति व्यक्ति को सजग कर समायोजित व्यवहार की ओर प्रशस्त किया जाता है वह मानवतावादी चिकित्सा प्रविधि कहलाती है।

**मूलभूत वादा** (Fundamental commitment) – मूलभूत वादा प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक सिगमण्ड फ्रायड के मनोविश्लेषण में बेसिक रूल के नाम से उल्लेखित किया गया है। इससे तात्पर्य यह होता है कि मनोचिकित्सा के प्रभावी होने के लिए मनोचिकित्सक द्वारा रोगी की समस्या को समझा जाना अति आवश्यक होता है और इसके लिए रोगी की समस्या से संबंधित सभी प्रकार की जानकारी की जरूरत होती है। इसमें उन सूचनाओं को भी महत्व दिया जाता है जिसे सामाजिक नैतिकता की वजह से रोगी किसी से अभिव्यक्त करने में संकोच करता है। इसलिए रोगी से यह वादा करने को कहा जाता है कि वह किसी भी जानकारी अथवा सूचना को छुपायेगा नहीं तथा उसी रूप में चिकित्सक को अवगत करायेगा जिस मूल रूप में उसने समस्या को समझा अथवा महसूस किया है।

**धनात्मक भावसंवेग अंतरण** (positive transference)– इसके अन्तर्गत रोगी चिकित्सक को अपने किसी आदर्श अथवा प्रिय के स्थान पर रखकर उसके साथ प्रेमपूर्ण सकारात्मक, प्रशंसनीय व्यवहार करता है उदाहरण के लिए वह चिकित्सा के लिए ग्रीटिंग कार्ड अथवा उपहार लेकर आ सकता है , चिकित्सक से सिनेमा साथ देखने जाने का अनुरोध कर सकता है चिकित्सक के लिए मिठाई आदि लेकर आ सकता है।

**नकारात्मक भावसंवेग अंतरण** (negative transference)– इसके अन्तर्गत रोगी चिकित्सक को अपने विरूद्ध मानते हुए नाराजगी, गुस्सा अथवा आक्रामकता आदि की अभिव्यक्ति करता है।

**विपरीत भावसंवेग अंतरण** (counter transference)– जब रोगी द्वारा अभिव्यक्त किये जा रहे धनात्मक अथवा नकारात्मक भावसंवेग से चिकित्सक स्वयं प्रभावित होने लगते हैं तथा उसके प्रभाव में आकर अनुक्रिया करने लगते हैं तब चिकित्सक के धनात्मक अथवा नकारात्मक भावसंवेग अंतरण के कारण होने वाले अंतरण को विपरीत भावसंवेग अंतरण कहा जाता है।

## 15.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 –(ख) व्यक्तित्ववादी अध्ययन

अभ्यास प्रश्न 2 –(ग) मूलभूत वादा रोगी द्वारा अपनी समस्या के संबंध में खुले रूप में स्पष्ट रूप में सूचनायें उपलब्ध कराने से संबंधित है।

अभ्यास प्रश्न 3 –(घ) मनोचिकित्सा के लक्ष्यों की पूर्ति उपरान्त मनोचिकित्सा को धीरे–धीरे समाप्त करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न 4 –(ग) चिकित्सा से रोगी को अनुकूल परिणाम प्राप्त होते हैं।

## 15.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

रोनाल्ड, जे. कोमर (2014) फन्डामेंटल्स ऑफ एबनॉरमल साइकोलॉजी, न्यूयॉर्क – वर्थ पब्लिशर।

कारसन, बुचर एवं मिनेका (1998 अपडेटेड थर्ड एडीसन) एबरॉरमल साइकोलॉजी एण्ड मॉर्डन लाइफ, लंदन – एडिसन, विसली, एजुकेशनल पब्लिशर इन्क।

बारलो एण्ड डूरण्ड (2012) एबनॉरमल साइकोलॉजी – एन इन्टीग्रेटेड एप्रोच, बेलमाउन्ट – वर्ड्सवर्थ सिनेज लर्निंग।

रॉबर्ट ए. बैरोन (2006) साइकोलॉजी, दिल्ली – पियर्सन प्रेंटिस हाल।

सैमुअल वुड एवं एलेन वुड (2000) द इसेंशियल वर्ल्ड ऑफ साइकोलाजी, यू एस ए– एलिन एण्ड बेकन।

डॉ अरूण कुमार सिंह (2010) आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, दिल्ली – मोतीलाल बनारसीदास।

## 15.10 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 – मनोचिकित्सा से आप क्या समझते हैं? मनोचिकित्सा की प्रभावशीलता के मूल्यॉकन की विधियों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

प्रश्न 2 – मनोचिकित्सा की प्रक्रिया के प्रारम्भ की महत्वपूर्ण अवस्थाओं का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 3 – मनोचिकित्सा की आवश्यक प्रक्रियाओं को विस्तार से समझाइये।

प्रश्न 4 – मनोचिकित्सा की प्रक्रिया का प्रारम्भ से समापन तक की अवस्थाओं को क्रमानुसार वर्णन कीजिए।

प्रश्न 5 – मनोचिकित्सा के परिणामों को प्रभावित करने वाले कारको का विस्तृत वर्णन कीजिए।

प्रश्न 6 – मनोचिकित्सा की प्रभावशीलता में रोगी की विशेषताओं की भूमिका स्पष्ट कीजिए।

# इकाई 16 :–मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ, मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की विशेषतायें एवं मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ एवं अवधारणा
16.4 मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की विशेषताएँ
16.5 मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक
16.6 सारांक्ष
16.7 शब्दावली
16.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
16.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
16.10 निबंधात्मक प्रश्न

## 16.1 प्रस्तावना

पूर्ण रूप से स्वस्थ रहने के लिए स्वास्थ्य के सभी आयामों (जैसे कि शारीरिक स्वास्थ्य, सामाजिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य आदि) में व्यक्ति का स्वस्थ होना विद्वानों एवं वैज्ञानिकों के अनुसार आवश्यक माना गया है। मानसिक स्वास्थ्य इन्हीं आयामों में से ही एक अत्यन्त महत्वपूर्ण आयाम है जिसके न होने पर व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास बाधित हो जाता है। जो व्यक्ति अपने स्वास्थ्य को समग्र रूप से उन्नत बनाना चाहते हैं उन्हें स्वास्थ्य के अन्य आयामों का ध्यान रखने के साथ–साथ अपने मानसिक स्वास्थ्य का भी विशेष ध्यान रखना चाहिए। इसके लिए मानसिक स्वास्थ्य वस्तुतः क्या है? मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक कौन से हैं एवं मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की क्या विशेषताएँ होती हैं? इन सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों का समुचित समाधान आपके पास होना चाहिए। प्रस्तुत इकाई आपके इन सभी जिज्ञासाओं का समाधान स्वयं में समेटे हुए है यही इसकी विशेषता है।

## 16.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

1. मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ समझ सकेंगे।
2. मानसिक स्वास्थ्य की विभिन्न परिभाषाओं को जान सकेंगे।
3. मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की विशेषताओं के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे एवं उन्हें पहचानना सीख जायेंगे।
4. मानसिक रूप से स्वस्थ एवं अस्वस्थ के बीच अन्तर स्पष्ट करने में सक्षम होंगे।
5. मानसिक स्वास्थ्य के विभिन्न मॉडलों से परिचित हो सकेंगे।
6. मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारकों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

## 16.3 मानसिक स्वास्थ्य (Mental Health) का अर्थ एवं अवधारणा

मानसिक स्वास्थ्य के संप्रत्यय को मनोवैज्ञानिकों ने परिभाषित कर समझाने का प्रयास किया है इन परिभाषाओं के अवलोकन से हम मानसिक स्वास्थ्य को भली भॉति समझ सकते हैं। आइये इन परिभाषाओं के बारे में जाने।

**मानसिक स्वास्थ्य की परिभाषाएँ –**

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक **स्ट्रैंज** (1965) ने अपनी पुस्तक 'एबनॉरमल साइकोलॉजी' में मानसिक स्वास्थ्य को सीखे गये व्यवहार के रूप में समझाया है जो समाज एवं जीवन दोनों के अनुकूल होते हैं – उनके अनुसार 'मानसिक स्वास्थ्य से तात्पर्य वैसे अधिगमित व्यवहार से होता है जो सामाजिक रूप से अनुकूली होते हैं एवं जो व्यक्ति को अपनी जिन्दगी के साथ पर्याप्त रूप से सामना करने की अनुमति देता है।' ( 'Mental health is no more than a description of learned behaviour that is socially adaptive and allows the person to cope adequately with life.' Strange: 1965, Abnormal Psychology, p 440) दूसरे शब्दों में मानसिक स्वास्थ्य व्यक्ति की उस स्थिति की व्याख्या है जिसमें वह समाज व स्वयं के जीवन की परिस्थितियों से निबटने के लिए, आवश्यकता अनुरूप स्वयं को ढालने हेतु व्यवहारों को सीखता है।

एक अन्य मनोवैज्ञानिक **कार्ल मेन्निंगर** (1945) के अनुसार – 'मानसिक स्वास्थ्य अधिकतम प्रसन्नता तथा प्रभावशीलता के साथ संसार एवं प्रत्येक दूसरे व्यक्ति के प्रति मानवों द्वारा किया जाने वाला समायोजन है ।' (Mental health is 'the adjustment of human beings to the world and to each other with a maximum effectiveness and happiness…It is the ability to maintain an even temper, an alert intelligence, socially considerate behaviour and a happy disposition.'- Karl Menninger : The Human Mind, 1945, p. 102)

प्रसिद्ध विद्वान **हारविज और स्कीड** ने अपनी पुस्तक 'अप्रोच टू मेंटल हेल्थ एण्ड इलनेस' में मानसिक स्वास्थ्य को परिभाषित करते हुए बताया है कि इसमें कई आयाम जुड़े हुए हैं – आत्म सम्मान, अपनी अंतःशक्तियों का अनुभव, सार्थक एवं उत्तम सम्बन्ध बनाए रखने की क्षमता एवं मनोवैज्ञानिक श्रेष्ठता।' ( 'Mental health includes a number of dimensions – self esteem, realization of one's potential, the ability to maintain, fulfil meaningful relationship and psychological well being' Horwitiz & Scheid, 1998, Approach to Mental health and Illness, p. 2)

इसकी व्यावहारिक परिभाषा देते हुए **पी.वी. ल्यूकन** लिखते हैं कि 'मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति वह है जो स्वयं सुखी है, अपने पड़ोसियों के साथ शांतिपूर्वक रहता है, अपने बच्चों को स्वस्थ नागरिक बनाता है और इन आधारभूत कर्तव्यों को करने के बाद भी जिसमें इतनी शक्ति बच जाती है कि वह समाज के हित में कुछ कर सके।'

उपरोक्त परिभाषाओं के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि इस तरह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से, मानसिक स्वास्थ्य की मुख्य कसौटी अर्जित व्यवहार है। जिसका स्वरूप कुछ ऐसा होता है कि इससे व्यक्ति को सभी तरह के समायोजन करने में मदद मिलती है। यह एक संतुलित, सुदृढ़ मानसिक स्थिति को व्यक्त करता है, जिसमें व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों में सामाजिक रूप से और सांवेगिक रूप से एक मान्य व्यवहार करता है।

**मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि में मानसिक स्वास्थ्य–**

मानसिक स्वास्थ्य के संबंध में कुछ प्रमुख मनोवैज्ञानिकों के विचारों एवं उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों के अवलोकन एवं विश्लेषण से मनौवैज्ञानिक दृष्टि से मानसिक स्वास्थ्य को समझने में मदद मिलती है, मानसिक स्वास्थ्य की मनोवैज्ञानिक दृष्टि स्पष्ट होती है। विभिन्न दृष्टियों को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत वर्णन किया गया है–

(क) मनोगत्यात्मक दृष्टि (Psychodynamic view) –

(ख) व्यवहारवादी दृष्टि (Behavioristic view) –

(ग) मानवतावादी दृष्टि (Humanistic view) –

(घ) संज्ञानात्मक दृष्टि (Cognitive view) –

इन सबों का वर्णन निम्नांकित है–

**(क) मनोगत्यात्मक दृष्टि** (Psychodynamic view) – मनोगत्यात्मक दृष्टि मानसिक स्वास्थ्य का विचार व्यक्तित्व की गतिकी के माध्यम से करती है। व्यक्तित्व की गत्यात्मकता को दृष्टिगत रखते हुए तीन प्रकार की दृष्टियॉ इस संदर्भ में प्रमुख हैं–

**1. मनोविश्लेषणवादी दृष्टि**– उदाहरण के लिए यदि हम प्रसिद्ध मनोविश्लेषणवादी मनोवैज्ञानिक सिगमण्ड फ्रायड के व्यक्तित्व सिद्वान्त में मन एवं मानसिक स्वास्थ्य की अवधारणा पर विचार करें तो हम पाते हैं कि फ्रायड ने उसी व्यक्ति को मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की संज्ञा दी है जो कि अपने जीवन में द्वन्द्वों, चिन्ताओं से रहित है तथा मनोरचनाओं का न्यूनतम उपयोग जिसके जीवन में दिखाई देता है। दूसरे शब्दों में फ्रायड के अनुसार जिस व्यक्ति की अहॅशक्ति पर्याप्त मात्रा में बढ़ी होती है और जो व्यक्ति अपने मन के उपाहं की इच्छाओं एवं पराहं के फैसलों के बीच अहंशक्ति के माध्यम से समायोजन सामंजस्य बिठाने में पर्याप्त रूप से सक्षम होता है उसे ही मानसिक रूप से स्वस्थ कहा जा सकता है।

**2. विश्लेषणात्मक दृष्टि** – वहीं दूसरी ओर प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक कार्ल युंग के अनुसार जब तक किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के सभी पहलुओं में इस प्रकार का स्थिर समायोजन नहीं होता कि जिससे उसके वास्तविक आत्मन् को चेतन में उद्भूत होने का अवसर मिले तब तक उस व्यक्ति को मानसिक रूप से स्वस्थ नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि व्यक्तित्व के सभी पहलुओं में जब तक सामंजस्य नहीं होगा एवं वे साथ साथ उचित अनुपात में विकसित नहीं होंगे तब तक उनके अस्तित्व के भीतर दबे वास्तविक आत्मन् का बाहर आना संभव नहीं है। इसके लिए युंग व्यक्तित्ववादी विश्लेषण की वकालत करते हैं। व्यक्तित्व संबंधी युंग का विभाजन एंव विचार उल्लेखनीय है। वे व्यक्तित्व को मोटे तौर पर अंतर्मुखी (introvert) और बहिर्मुखी (extrovert) दो भागों में विभाजित करते हैं। अंतर्मुखी व्यक्तित्व, दूसरों में कम रूचि लेता है और आत्मकेंद्रित क्रियाओं में सर्वाधिक संतोष का अनुभव करता है। ये लोग कोमल मन वाले, विचार प्रधान, कल्पनाशील तथा आदर्शवादी होते हैं। अतः इन लोगों का झुकाव आंतरिक जीवन की ओर होता है। इसके विपरीत बहिर्मुखी व्यक्ति बाहर की वस्तुओं में अधिक रूचि लेता है तथा सामाजिक घटनाओं एवं परिस्थितियों मे अधिक सुखदद एवं संतोषजनक अनुभव पाता है। वह व्यवहारवादी होता है तथा कठोर मन वाला यथार्थवादी होता है। वास्तव में अंतर्मुखता और बहिर्मुखता के बीच कोई वास्तविक सीमारेखा नहीं हैं। स्वयं युंग के शब्दों में 'प्रत्येक व्यक्ति में अंतर्मुखता और बहिर्मुखता के अंश रहते हैं और किसी व्यक्ति में इन दोनों में से किसी एक की सापेक्ष

प्रधानता से व्यक्तित्व का प्रकार बनता है।' युंग के अनुसार जिस व्यक्ति में अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी प्रवृत्ति में सामंजस्य होता है वही मानसिक स्वास्थ्य की धुरी पर चलने वाला व्यक्ति कहा जाना चाहिए।

कार्ल युंग के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में सामान्यतः व्यक्तित्व का आधा भाग नर और आधा भाग नारी का होता है। अर्थात् प्रत्येक व्यक्तित्व में स्त्री एवं पुरूष की प्रवृत्तियॉ पायी जाती हैं और इन दोनों प्रकार की प्रवृत्तियों में सामंजस्य मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से आवश्यक है।

**3. व्यक्तित्ववादी दृष्टि** – एक अन्य प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक एडलर जिन्होंने व्यक्तिगत मनोविज्ञान के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है उनके अनुसार जो व्यक्ति जितना अधिक सामाजिक कार्यों में रूचि लेता है जिस व्यक्ति के जितने अधिक मित्र होते हैं एवं जो सामाजिक होता है वह व्यक्ति उतना ही मानसिक रूप से स्वस्थ होता है। क्योंकि ऐसा व्यक्ति अपने को समाज का एक अभिन्न अंग समझता है एवं उसमें हीनभावना नहीं होती है। एडलर के अुनसार जब तक व्यक्ति के मन में हीनता की भावना भरी रहती है वह मानसिक रूप से स्वस्थ नहीं हो पाता है। हीनभावना को बाहर करने के लिए व्यक्ति को सामाजिक होना चाहिए एवं उसे इसके लिए जरूरी कुशलता हासिल करने हेतु पर्याप्त रूप से सृजनात्मक भी होना चाहिए।

**(ख) व्यवहारवादी दृष्टि** (Behavioristic view) – व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों के अनुसार व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य उसके व्यवहार द्वारा निर्धारित होता है। व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों में वाटसन, पैवलॉव, स्कीनर आदि प्रमुख हैं। यदि व्यक्ति का व्यवहार जीवन की सभी सम विषम परिस्थितियों में समायोजित है तो व्यक्ति मानसिक रूप से स्वस्थ कहा जाता है वहीं यदि व्यक्ति का व्यवहार कुसमायोजित होता है तो वह मानसिक रूप से अस्वस्थ कहा जाता है। व्यक्ति के व्यवहार का समायोजित अथवा कुसमायोजित होना उसके सीखने की प्रक्रिया एवं सही एवं गलत व्यवहार के चयन पर निर्भर करता है। यदि व्यक्ति ने सही अधिगम प्रक्रिया के तहत उपयुक्त व्यवहार करना सीखा है तो वह मानसिक रूप से अवश्य ही स्वस्थ होगा। यदि गलत अधिगम प्रक्रिया के तहत व्यवहार करना सीखा है तो वह अस्वस्थ कहलायेगा। इनके अनुसार व्यक्ति के व्यवहार पर वातावरण का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है, दूसरे शब्दों में व्यक्ति के व्यवहार का निर्धारण वातावरण एवं व्यक्ति के बीच होने वाली अंत'क्रिया से होता है। व्यवहारवादियों के अनुसार यदि उचित वातावरण में सही व्यवहार सीखने का अवसर प्रत्येक व्यक्ति को मिले तो वह मानसिक रूप से अवश्य ही स्वस्थ होगा।

**(ग) मानवतावादी दृष्टि** (Humanistic view) – मानवतावादी दृष्टि में भी मानसिक स्वास्थ्य की अवधारणा पर विचार किया गया है। इस उपागम के मनोवैज्ञानिकों में अब्राहम मैस्लों एवं कार्ल रोजर्स प्रमुख हैं। इनके अनुसार प्रत्येक मनुष्य में अपने स्वाभाविक विकास की सहज प्रवृत्ति होती है। साथ ही प्रत्येक व्यक्ति में अपनी प्रतिभा एवं संभावनाओं की अभिव्यक्ति की जन्मजात इच्छा प्रकट अथवा प्रसुप्त रूप में विद्यमान होती है यह उसकी अंतःशक्ति का परिचायक होती है। जब तक यह सहज विकास करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति को अपनी अभिव्यक्ति करने का मौका उचित रूप से मिलता रहता है तब तक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के धनात्मक विकास की ओर अग्रसर रहता है। यदि यह निर्बाध रूप से जारी रहता है तो अंततः व्यक्ति अपनी सभी प्रतिभाओं एवं संभावनाओं से परिचित हो जाता है एक प्रकार से उसे आत्मबोध हो जाता है। इस रूप में ऐसे व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य

उत्तरोत्तर उन्नति की ओर अग्रसर कहा जायेगा। वहीं दूसरी ओर यदि किन्हीं कारणों से यदि सहज प्रवृत्ति अवरूद्ध हो जाती है तो व्यक्ति में मानसिक अस्वस्थता के लक्षण प्रकट होने लगते हैं।

**(घ) संज्ञानात्मक दृष्टि** (Cognitive view) – यह दृष्टि मानसिक स्वास्थ्य की मनोवैज्ञानिक दृष्टियों में सबसे नवीन है। इस विचारधारा के मनोवैज्ञानिकों में एरोन टी. बेक एवं एलबर्ट एलिस प्रमुख हैं। इनके अनुसार जिस व्यक्ति के विचार जीवन की प्रत्येक परिस्थिति में सकारात्मक होते हैं जो तर्कपूर्ण ढंग से धारणाओं को विश्वासों को अपने जीवन में स्थान देता है। वह मानसिक रूप से स्वस्थ कहा जाता है। व्यक्ति का मानसिक स्वस्थता उसके चिंतन के तरीके पर निर्भर करती है। चिंतन के प्रमुख रूप से तीन तरीके हैं पहला जीवन की हर घटना को सकारात्मक नजरिये से निहारना एवं दूसरा जीवन की प्रत्येक घटना को नकारात्मक तरीके से निहारना। इसके अलावा एक तीसरा तरीका है जो कि चिंतन का वास्तविक तरीका है जिसमें व्यक्ति जीवन में घटने वाली प्रत्येक घटना का पक्षपात रहित तरीके से विश्लेषण करता है जीवन के धनात्मक एवं नकारात्मक पहलुओं में किसी के भी प्रति उसका अनुचित झुकाव नहीं होता है। मनोवैज्ञानिकों ने चिंतन के इस तीसरे तरीके को ही सर्वाधिक उत्तम तरीका माना है। उपरोक्त तरीकों के अलावा भी चिंतन के अन्य तरीके भी होते हैं परन्तु उनका संबंध व्यक्ति की मानसिक उन्नति एवं विकास से होता है जैसे सृजनात्मक चिंतन आदि।

उपरोक्त मनोवैज्ञानिक दृष्टियों के अलावा मानसिक स्वास्थ्य को देखने की अन्य दृष्टियॉ भी हैं जैसे कि योग की दृष्टि में मानसिक स्वास्थ्य, आयुर्वेद की दृष्टि में मानसिक स्वास्थ्य। योग विषय के विद्यार्थी होने के नाते मानसिक स्वास्थ्य की यौगिक दृष्टि की जानकारी होना आवश्यक है अतएव आगे की पंक्तियों में यौगिक दृष्टि में मानसिक स्वास्थ्य को स्पष्ट किया जा रहा है।

पहले इस अभ्यास प्रश्न से अपनी जानकारी की परीक्षा करें।

**अभ्यास प्रश्न 1** –निम्नलिखित में से कौन सा कथन मानसिक स्वास्थ्य के बारे में मनोविश्लेषण सिद्धान्त के अनुसार सत्य है?

क– अहंशक्ति (ईगो स्ट्रेन्थ) को मजबूती देने से मानसिक स्वास्थ्य उन्नत होता है।

ख– मानसिक स्वास्थ्य आत्मन् (सेल्फ) के उद्भव से उन्नत होता है।

ग– मानसिक स्वास्थ्य व्यक्ति एवं परिस्थिति की अंतःक्रिया पर निर्भर करता है।

घ– सहज स्वाभाविक विकास मानसिक स्वास्थ्य की कुंजी है।

**यौगिक दृष्टि में मानसिक स्वास्थ्य**

योग शास्त्रों में आधुनिक मनोविज्ञान की विभिन्न विचारधाराओं के समान मानसिक स्वास्थ्य के संप्रत्यय का विचार स्वतंत्र रूप से कहीं भी विवेचित अथवा प्रतिपादित नहीं हुआ है। क्योंकि यहॉ व्यक्ति को समग्रता में देखने की परंपरा रही है। आधुनिक मनोविज्ञान में व्यक्ति के अस्तित्व को जहॉ मन से जोड़कर देखा जाता रहा है वहीं योग की भारतीय विचारधारा में व्यक्ति का अस्तित्व आत्मा पर आधारित माना गया है। यहॉ मान का अस्तित्व आत्मा के उपकरण से अधिक कुछ भी नहीं है। जीवन का चरम लक्ष्य यहॉ अपने वास्तविक स्वरूप आत्म तत्व की उपलब्धि है। इसी को मोक्ष, निर्वाण, मुक्ति, आत्मसाक्षात्कार जैसी बहुत सी संज्ञाओं से विवेचित किया गया है। यौगिक दृष्टि से यही स्थिति व्यक्ति के अस्तित्व की पूर्णावस्था है, इसी अवस्था में व्यक्ति को मानसिक रूप से पूरी तरह स्वस्थ कहा जा सकता है।

इस तरह यौगिक दृष्टि में मानसिक स्वास्थ्य की समस्या पर आत्यांतिक रूप से विचार किया गया है, जिसकी आधुनिक मनोविज्ञान में अभी कोई कल्पना भी नहीं है। महर्षि पतंजलि ने इस स्वस्थ मनःस्थिति को उपलब्ध करने का सुव्यवस्थित राजमार्ग निर्धारित किया है, जो अष्टांग योग के नाम से प्रख्यात् हैं इसमें मानसिक स्वास्थ्य की आदर्श स्थिति को समाधि के रूप में परिभाषित किया गया है और इस तक पहुॅचने के विविध सोपानों पर सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया गया है। आइिये इसके सांप्रत्यायिक विश्लेषण की जानकारी प्राप्त करें।

**यौगिक दृष्टि में मानसिक स्वास्थ्य का सांप्रत्यायिक विश्लेषण**

महर्षि पतंजलि ने समाधि को चित्त की वृत्तियों के निरोध की अवस्था माना है एवं यौगिक दृष्टि से यही मानसिक स्वास्थ्य की सामान्य अवस्था है। इस से पूर्व की सभी अवस्थाओं को चित्तवृत्तियों की विभिन्न अवस्थाओं के रूप में मानसिक स्वास्थ्य के विभिन्न स्तर निर्धारित किये जा सकते हैं।

योगदर्शन में चित्त की पॉच अवस्थाओं का वर्णन किया गया है। ये पॉच अवस्थायें हैं–
1. मूढ़, 2. क्षिप्त, 3. विक्षिप्त, 4. एकाग्र 5. निरूद्ध। इन सबों का वर्णन निम्नांकित है–

**(1) चित्त की मूढ़ावस्था** – यह चित्त की तमोगुण प्रधान अवस्था है। इस अवस्था में तमोगुण प्रबल एवं रजस तथा सत्व दबे रहते हैं। परिणामस्वरूप व्यक्ति निद्रा, तंद्रा, आलस्य, भय, भ्रम, मोह एवं दीनता की स्थिति में पड़ा रहता है। इस अवस्था में व्यक्ति की सोच–विचार करने की शक्ति सुप्त पड़ी रहती है। फलतः वह किसी भी घटना ठीक दृष्टि से प्रेक्षित नहीं कर पाता है। इस अवस्था में व्यक्ति विवेकशून्य होता है एवं सही, गलत का विचार नहीं कर पाता है। वह समझ ही नहीं पाता कि उसे क्या करना चाहिए एवं क्या नहीं करना चाहिए। पंडित श्री राम शर्मा आचार्य के अनुसार ऐसा मनुष्य 'काम, क्रोध, लोभ, मोह के वशीभूत होकर सब तरह के अवांछनीय और नीच कार्य करता है। यह अवस्था मानवीयता से पतित व्यक्तियों, मादक द्रव्यों का सेवन किए हुए उन्मत्त एवं नीच मनुष्य की होती है। इस अवस्था में तमस प्रबल रहा है जिससे यह स्थिति अधम मनुष्यों की मानी जाती है'। मनोविज्ञान की दृष्टि में यह सामान्य व्यवहार से विचलित व्यक्ति की स्थिति है जिसका मानसिक स्वास्थ्य गंभीर रूप से रूग्ण होता है। इसका उचित उपचार आवश्यक होता है।

**(2) चित्त की क्षिप्तावस्था** – चित्त की इस अवस्था में रजोगुण प्रधान होता है। इसमें सत्व और तमोगुण दबे रहते हैं। इस अवस्था में चित्त अत्यंत चंचल रहता है। मन की स्थिति बहिर्मुखी होती है। बाह्य विषयों की ओर चित्त भागता रहता है। ऐसा चित्त अशान्त, अस्थिर एवं बेचैन बना रहता है व मन की ऊर्जा बिखरी रहती है। मन पर कोई नियंत्रण नहीं रहता है। भारतीय दर्शन की रूपरेखा पुस्तक के लेखक डॉ हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा के अनुसार 'व्यक्ति इस अवस्था में इंद्रियों, मस्तिष्क एवं मन की अभिरूचियों, कल्पनाओं एवं निर्देशों के ईशारे पर नाचता रहता है और इन में संयम का अभाव होता है।' परिणाम स्वरूप ऐसे मनुष्य की दशा राग–द्वेष से परिपूर्ण होती है। अतः इन्ही के अनुरूप सुख–दुख, हर्ष, विषाद, चिंता एवं शोक के कुचक्र में उलझा रहता है। इस अवस्था में चित्त रजोगुण प्रधान होता है। किन्तु गौणरूप से सत्व और तमस् भी उसके साथ में वास करते ही हैं। उनमें जब तमस सत्व पर हावी हो जाता है जो मनुष्य की प्रवृत्ति अज्ञान, अधर्म, अवैराग्य एवं अनैश्वर्य में होती है एवं जब सत्व तमस पर हावी हो जाता है तब यही प्रवृत्ति ज्ञान, धर्म, वैराग्य एवं ऐश्वर्य में होती है। इस प्रकार इस अवस्था में धर्म–अधर्म, राग–विराग,

ऐश्वर्य–अनेश्वर्य तथा ज्ञान–विज्ञान में प्रवृत्ति होती है। प्रायः साधारण संसारी मनुष्यों की यह स्थिति होती है। आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि में व्यक्ति का व्यवहार यदि इस स्थिति में सामंजस्यपूर्ण है तो उसे स्वस्थ एवं सामान्य कहा जायेगा, किन्तु प्रायः इस अवस्था में व्यक्ति नाना प्रकार के मानसिक विकारों से आक्रान्त रहता है। यौगिक दृष्टि से यह स्थिति मानसिक स्वास्थ्य की स्थिति से बहुत दूर है।

**(3) चित्त की विक्षिप्त अवस्था** – इस अवस्था में सतोगुण प्रधान रहता है। तथा रजस एवं तमस दबे हुए रहते हैं। आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार 'क्षिप्तावस्था में रजोगुण की प्रधानता के कारण चित्त कभी स्थिर नहीं होता, वह सदा चंचल बना रहता है, परन्तु विक्षिप्त अवस्था में सत्व की अधिक प्रबलता के कारण कभी–कभी स्थिरता को प्राप्त कर लेता है।' इस में वयक्ि ज्ञान, धर्म, वैराग्य ओर ऐश्वर्य की तरफ प्रवृत होता है। इस अवस्था में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि गौण होते हैं और सांसारिक विषय भोगों के प्रति अरूचि होने लगती है। व्यक्ति निष्काम कर्म करने की ओर प्रवृत्त होता है। परन्तु चित्त की यह स्थिरता स्थाई नहीं रहती है। जब जब रजस् हावी होता है तब तब आंशिक अस्थिरता एवं चंचलता आ जाया करती है। इस अवस्था में एकाग्रता प्रारंभ हो जाती हैं और यहीं से समाधि का प्रारंभ होता है। पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य के अनुसार 'इस चित्त की अवस्था वाला मनुष्य खुशी, प्रसन्न, उत्साही, धैर्यवान, दानी, दयालु, दयावान, वीर्यवान, क्षमाशील और उच्च विचार वाला तथा श्रेष्ठ होता है। यह अवस्था उन जिज्ञासुओं की होती है, जो अध्यात्म पथ के पथिक बनने की भावना रखते हुए उस पर चलने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं।' इस स्थिति की यदि आधुनिक मनोविज्ञान से तुलना करें तो इस अवस्था में पहुॅचा व्यक्ति सर्वथा सामान्य एवं मानसिक रूप से स्वस्थ ही माना जाएगा। किन्तु यौगिक दृष्टि में यह भी मानसिक स्वास्थ्य की सामान्य अवस्था ही है एवं समाधि से अभी दूर है।

**(4) चित्त की एकाग्रावस्था** – इस अवस्था में चित्त में केवल सत्व प्रधान ही नहीं होता बल्कि वह सत्व स्वरूप हो जाता है रजस एवं तमस केवल अस्तित्व मात्र से ही रहते हैं अर्थात् क्रियाशील नहीं होते हैं। अतः तमोगुण एवं रजोगुण के विक्षेप अवरूद्ध हो जाने से चित्त की वृत्तियों का प्रवाह एक ही दिशा में बना रहता है, इसे ही एकाग्र अवस्था कहते हैं। समस्त विषयों हटकर एक ही विषय पर ध्यान लग जाने के कारण यह अवस्था समाधि के लिए सर्वथा उपयुक्त है। निरंतर अभ्यास से एकाग्रता चित्त का स्वभाव हो जाती है तथा स्वप्न में भी यह अवस्था बनी रहती है। डॉ हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा के अनुसार 'इस समाधि से विषयों का यथार्थ ज्ञान, क्लेशों की समाप्ति, कर्मबन्धन का ढीला पड़ना तथा निरोधावस्था में पहुॅचना, ये चार कर्म सम्पादित होते हैं।' यह मानसिक स्वास्थ्य की अत्यंत ही उच्च अवस्था होती है जिसकी आधुनिक मनोविज्ञान में कोई संकल्पना नहीं है।

**(5) चित्त की निरूद्ध अवस्था** – इस अवस्था में चित्त की संपूर्ण वृत्तियों का निरोध हो जाता है। चित्त में पूर्ण रूप से स्थिरता स्थापित हो जाती है। इसमें चित्त आत्मस्वरूप में स्थित हो जाता है, जिसमें अविद्या आदि पॉच क्लेश नष्ट हो जाते हैं। अतः चित्त की समस्त वृत्तियों का निरोध होकर चित्त बिल्कुल वृत्ति रहित हो जाता है तथा आत्मा अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाती है।

उपरोक्त पॉचो अवस्थाओं में प्रथम तीन समाधि के लिए नितान्त अनुपयोगी हैं। परन्तु अंतिम दो अवस्थाओं में समाधि का उदय होता है। के. एन. उडुप्पा एवं आर. एच. सिंह अपनी पुस्तक साइन्स एण्ड फिलॉसफी ऑफ इन्डियन मेडिसिन में लिखते हैं कि 'इन अंतिम दो अवस्थाओं मे सत्व की प्रधानता रहती है, अतः इनमें कोई रोग उत्पन्न नहीं होता है। विविध

मानसिक रोग मन की मूढ़ एवं क्षिप्त अवस्थाओं में उदय होते हैं।' आधुनिक मनोविज्ञान में प्रथम तीन भूमियों या अवस्थाओं का ही अध्ययन हुआ है और इसी के आधार पर मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी सामान्य एवं असामान्यता की अवधारणाओं का विकास हुआ है, जबकि मानसिक स्वास्थ्य की समग्र संकल्पना इसी सीमा में बँधे रहने से संभव नहीं हैं समग्र मानसिक स्वास्थ्य का उद्‌भव तो चित्त की अंतिम दो अवस्थाओं से ही उद्‌भूत होगा, जिसे आधुनिक मनोविज्ञान असामान्यता की श्रेणी में विभाजित करता है। इस तरह से यौगिक दृष्टिकोण मानवीय अस्तित्व समग्रता से विचार करता है और अपनी यौगिक क्रियाओं द्वारा मानवी चेतना के गहनतम स्तरों का उपचार करते हुए यह समग्र मानसिक स्वास्थ्य का पथ प्रशस्त करता है।

**अभ्यास प्रश्न 2** –निम्नलिखित में से योगदर्शन में वर्णित चित्त की कौन सी अवस्था में व्यक्तित्व विघटनकारी मनोविकृतियॉ उत्पन्न हो सकती हैं?

क– चित्त की निरूद्धावस्था
ख– चित्त की मूढ़ावस्था
ग– चित्त की क्षिप्तावस्था
घ– चित्त की विक्षिप्तावस्था

## 16.4 मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की विशेषताएँ (Characteristics of the mentally healthy person)

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों के व्यवहार एवं जीवन के अध्ययन के आधार पर सामान्य रूप में कई विशेषताओं का पता लगाया है। इन विशेषताओं को हम मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की पहचान हेतु उपयोग कर सकते हैं। ताकि इनके अभाव द्वारा मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्ति का निदान भी किया जा सकता है। ये खास विशेषताएँ निम्नांकित हैं–

**(1) उच्च आत्म–सम्मान** (high self esteem)– मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों के आत्म–सम्मान का भाव काफी उच्च होता है। आत्म–सम्मान से तात्पर्य व्यक्ति द्वारा स्वयं को स्वीकार किये जाने की सीमा से होता है। प्रत्येक व्यक्ति का स्वयं को यानि कि स्वयं के कार्यों को मापने का अपना एक पैमाना होता है जिस पर वह अपने गुणों एवं कार्यों, कुशलताओं एवं निर्णयों का स्वयं के बारे में स्वयं द्वारा बनाई गई छवि के आलोक में मूल्यॉकन करता है। यदि वह इस पैमाने पर अपने आप को स्वयं के पैमाने पर औसत से ऊपर की श्रेणी में अवलोकित करता है तब उसे गर्व का अनुभव होता है और परिणामस्वरूप उसका आत्म सम्मान बढ़ जाता है। वहीं यदि वह स्वयं को इस पैमाने में औसत से नीचे की श्रेणी में देखता है तो उसका आत्म सम्मान घट जाता है। इस आत्म–सम्मान का व्यक्ति के आत्म विश्वास से सीधा संबंध होता है। जो व्यक्ति स्वयं की नजरों में श्रेष्ठ होता है उसका आत्म–विश्वास काफी बढ़ा चढ़ा होता है, एवं जो व्यक्ति किसी कार्य के कारण अपनी नजरों में गिर जाता है उसके आत्म–विश्वास में भी गिरावट आ जाती है। परिणाम स्वरूप उसके आत्म–सम्मान को ठेस पहुँचती है। जब यह आत्म–सम्मान बार बार औसत से नीचे की श्रेणी में आता रहता है अथवा लम्बे समय के लिए औसत से नीचे ही रहता है तब व्यक्ति में दोषभाव जाग्रत हो जाता है तथा उसे मानसिक समस्यायें अथवा मानसिक विकृतियॉ घेर लेती हैं। उदारहण के लिए चिंता, विषाद या इससे संबंधित विकृतियॉ इसी श्रेणी में आती हैं।

**(2) आत्म–बोध होना** (Self-awareness)– जिन व्यक्तियों को अपने स्व का बोध होता है वे मानसिक रूप से अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा ज्यादा स्वस्थ होते हैं। आत्म बोध से तात्पर्य स्वयं के व्यक्तित्व से संबंधित सभी प्रकट एवं अप्रकट पहलुओं एवं तत्वों से परिचित एवं सजग होने से होता है। जब हम यह जानते हैं कि हमारे विचार कैसे हैं? उनका स्तर कैसा है? हमारे भावों को प्रकृति कैसी है? एवं हमारा व्यवहार किस प्रकार का है? तो इससे हम स्वयं के व्यवहार के प्रति अत्यंत ही स्पष्ट होते हैं। हमें अपनी इच्छाओं, अपनी प्रेरणाओं एवं अपनी आकांक्षाओं के बारे में ज्ञान होता है। साथ ही हमें अपनी सामर्थ्य एवं कमियों का भी ज्ञान होता है। ऐसी स्थिति वाले व्यक्ति जीवन में स्वयं एवं स्वयं से जुड़े लोगों के सम्बन्ध में सही निर्णय लेने में सक्षम होते हैं। ऐसे व्यक्ति मानसिक उलझनों के शिकार नहीं होते एवं फलतः उनका मानसिक स्वास्थ्य उत्तम स्तर का होता है।

**(3) स्व–मूल्यॉकन की प्रवृत्ति** (Tendency of self evaluation)– जिन व्यक्तियों में स्व–मूल्यॉकन की प्रवृत्ति होती है वे मानसिक रूप से स्वस्थ होते हैं क्योंकि स्वमूल्यॉकन की प्रवृत्ति उन्हें सदैव आईना दिखलाती रहती है। वे स्वयं के गुणों एवं दोषों से अनवरत परिचित होते रहते हैं एवं किसी भी प्रकार के भ्रम अथवा संभ्रांति कि गुंजाइश भी नहीं रहती है। ऐसे व्यक्ति अपने शक्ति एवं गुणों से परिचित होते हैं एवं जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में अपने गुण एवं दोषों के आलोक में फैसले करते हैं। इनमें तटस्थता को गुण होने पर अपने संबंध में किसी भी प्रकार की गलतफहमी नहीं रहती है तथा उचित फैसले करने में सक्षम होते हैं।

**(4) सुरक्षित होने का भाव होना** (Have feeling of security)– मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों में सुरक्षा का भाव बढ़ा–चढ़ा होता है। उनमें समाज का एक स्वीकृत सदस्य होने की भावना काफी तीव्र होती है। यह भाव उन्हें इस उम्मीद से प्राप्त होता है कि चूँकि वे समाज के सदस्य हैं अतएव किसी भी प्रकार की विपरीत स्थिति उत्पन्न होने पर समाज के लोग उनकी सहायता के लिए आगे आयेंगे। समाज उनके विकास में सहायक होगा तथा वे भी समाज की उन्नति में अपना योगदान देंगे। ऐसे लोगों में यह भावना होती है कि लोग उनके भावों एवं विचारों का आदर करते हैं। वह दूसरों के साथ निडर होकर व्यवहार करता है तथा खुलकर हॅसी–मजाक में भाग लेता है। समूह का दबाव पड़ने के बावजूद भी वह अपनी इच्छाओं को दमित नहीं करने की कोशिश करता है। फलतः मानसिक अस्वस्थता से सदैव दूर रहता है।

**(5) संतुष्टि प्रदायक संबंध बनाने की क्षमता** (Ability to form satisfying relationship)– मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों में परिवार एवं समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ ऐसे संबंध विनिर्मित करने की क्षमता पायी जाती है जो कि उन्हें जीवन में संतुष्टि प्रदान करती है, उन्हें जीवन में सार्थकता का अहसास होता है एवं वे प्रसन्न रहते हैं। संबंध उन्हें बोझ प्रतीत नहीं होते बल्कि अपने जीवन का आवश्यक एवं सहायक अंग प्रतीत होते हैं। वे दूसरों के सम्मुख कभी भी अवास्तविक मॉग पेश नहीं करते हैं। परिणामस्वरूप उनका संबंध दूसरों के साथ सदैव संतोषजनक बना रहता है।

**(6) दैहिक इच्छाओं की संतुष्टि** (Satisfaction of bodily desires)– मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों में अपनी शारीरिक इच्छाओं के संबंध में संतुष्टि का भाव पाया जाता है। उन्हें सदैव यह लगता है कि उनके शरीर अथवा शरीर के विभिन्न अंगों की जो भी आवश्यकतायें हैं वे पूरी हो रही हैं। प्रायः ऐसे व्यक्ति शारीरिक रूप से स्वस्थ होते हैं

परिणाम स्वरूप वे सोचते हैं कि उनके हृदय लीवर, किडनी, पेट आदि अंग अपना अपना कार्य सुचारू रूप से कर रहे हैं। दूसरे रूप में जब व्यक्ति के शरीर को आनन्द देने वाली आवश्कतायें जैसे कि तन ढकने के लिए वस्त्र, जिहवा के स्वाद पूर्ति के लिए व्यंजन, सुनने के लिए मधुर संगीत आदि उपलब्ध होते रहते हैं तो वे आनन्दित होते रहते हैं। साधन नहीं मिलने पर भी वे इनकी पूर्ति दूसरे माध्यमों से करने में भी सक्षम होते हैं। परिणामस्वरूप मानसिक रूप से स्वस्थ होते हैं। सरल शब्दों में कहें तो वे शारीरिक इच्छाओं के प्रति अनासक्त रहते हैं सुविधा साधन मिलने पर प्रचुर मात्रा में उपभोग करते हैं नहीं मिलने पर बिल्कुल भी विचलित नहीं होते एवं प्रसन्न रहते हैं।

**(7) प्रसन्न रहने एवं उत्पादकता की क्षमता** (Ability to be productive and happy)– मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों में प्रसन्न रहने की आदत पायी जाती है। साथ ही ऐसे व्यक्ति अपने कार्यों में काफी उत्पादक होते हैं। उत्पादक होने से तात्पर्य इनके किसी भी कार्य के उद्देश्यविहीन नहीं होने से एवं किसी भी कार्य के धनात्मक परिणामविहीन नहीं होने से होता है। ये अपना जो भी समय, श्रम एवं धन जिस किसी भी कार्य में लगाते हैं उसमें कुछ न कुछ सृजन ही करते हैं। इनका कोई भी कार्य निरर्थक नहीं होता है। सार्थक कार्यों को करते रहने से उन्हें प्रसन्नता के अवसर मिलते रहते हैं एवं प्रवृत्ति हो जाने पर वे खुशमिजाज हो जाते हैं। उनके संपर्क में आने पर दूसरे व्यक्तियों में भी प्रसन्नता का भाव उत्पन्न होता है।

**(8) बढ़िया शारीरिक स्वास्थ्य** (Good physical health)– मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों का शारीरिक स्वास्थ्य भी उत्तम कोटि का होता है। कहा भी गया है कि स्वच्छ शरीर में ही स्वच्छ मन निवास करता है। शरीर की डोर मन के साथ बंधी हुई होती है। मन को शरीर के साथ बांधने वाली यह डोर प्राण तत्व से विनिर्मित होती है। यह प्राण शरीर में चयापचय एवं श्वास–प्रश्वास की प्रक्रिया के माध्यम से विस्तार पाता रहता है जिससे मन को अपने कार्यों को सम्पादित करने के लिए पर्याप्त मात्रा में ऊर्जा उपलब्ध होती रहती है। फलतः मन प्रसन्न रहता है।

**(9) तनाव एवं अतिसंवेदनशीलता का अभाव** (Absense of stress and hypersensitivity)– मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों में तनाव एवं अतिसंवेदनशीलता का अभाव पाया जाता है। या यूँ कहा जा सकता है कि इनके अभाव के कारण ये व्यक्ति मानसिक रूप से स्वस्थ होते हैं। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक लेजारस के अनुसार तनाव एक मानसिक स्थिति की नाम है। यह मानसिक स्थिति व्यक्ति के सम्मुख समाज एवं वातावरण द्वारा पेश की गयी चुनौतियों के संदर्भ में इन चुनौतियों से निपटने हेतु उसकी तैयारियों के आलोक में तनावपूर्ण अथवा तनावरहित के रूप में निर्धारित होती है। दूसरें शब्दों में जब व्यक्ति को चुनौती से निबटने के संसाधन एवं अपनी क्षमता में कोई कमी महसूस होती है तब उस कमी की मात्रा के अनुसार उसे कम या ज्यादा तनाव का अनुभव होता है। वहीं जब उसे अपनी क्षमता, अपने संसाधन एवं सपोर्ट सिस्टम पर भरोसा होता है तब उसे तनाव का अनुभव नहीं होता है। मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों को तनाव नही होने के पीछे उनकी जीवन की चुनौतियों को सबक के रूप में लेने की प्रवृत्ति होती है। ऐसे व्यक्ति जीवन में घटने वाली घटनाओं जैसे कि प्रशंसा या निन्दा से विचलित नहीं होते बल्कि वे इनका प्रति असंवेदनशील रहते हुए अपने ऊपर इनका अधिक प्रभाव पड़ने नहीं देते हैं।

**(10) वास्तविक प्रत्यक्षण की क्षमता** (Ability of realistic perception)– मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति किसी वस्तु, घटना या चीज का प्रत्यक्षण पक्षपात रहित होकर वस्तुनिष्ठ तरीके से करते हैं। वे इन चीजों को प्रति वही नजरिया या धारणा विनिर्मित करते हैं जो कि वास्तविकता होती है। वे धारणायें बनाते समय कल्पनाओं को, अपने पूर्वाग्रहों को भावसंवेगों को अपने ऊपर हावी होने नहीं देते हैं। इससे उन्हें सदैव वास्तविकता का बोध रहता है परिणामस्वरूप मानसिक उलझनों में वे नहीं पड़ते तथा मानसिक रूप से स्वस्थ रहते हैं।

**(11) जीवन दर्शन स्पष्टता होना** (Unambigus philosophy of life)– मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों में जीवन दर्शन की स्पष्टता होती है। उनके जीवन का सिद्धान्त स्पष्ट होता है। उन्हें पता होता है कि उन्हें अपने जीवन में किस तरह से आगे बढ़ना है? क्यों बढ़ना है? कैसे बढ़ना है? उनका यह जीवन दर्शन धर्म आधारित भी हो सकता है एवं धर्म से परे भी हो सकता है। इनमें द्वन्द्वों का अभाव होता है। इनके जीवन में विरोधाभास की स्थितियॉ कम ही देखने को मिलती हैं।

**(12) स्पष्ट जीवन लक्ष्य होना** (clear life goal)– वे लोग जिनका जीवन लक्ष्य स्पष्ट होता है वे मानसिक रूप से स्वस्थ होते हैं। मनोवैज्ञानिक इसका कारण जीवन लक्ष्य एवं जीवन शैली में सामंजस्य को मानते हैं। उनके अनुसार जिस व्यक्ति के सम्मुख उसका जीवन लक्ष्य स्पष्ट होता है था तथा जीवन लक्ष्य को पूरा करने की त्वरित अभिलाषा होती है वह अपना समय निरर्थक कार्यों में बर्बाद नहीं करता है वह जीवन लक्ष्य को पूरा करने हेतु तदनुरूप जीवन शैली विनिर्मित करता है। इसे जीवन लक्ष्य को पूरा करने हेतु आवश्यक तैयारियों के रूप में देखा जा सकता है। जीवन लक्ष्य एवं जीवनशैली के बीच जितना सामंजस्य एवं सन्निकटता होती है जीवन लक्ष्य की पूर्ति उतनी ही सहज एवं सरल हो जाती है। परिणामस्वरूप ऐसे व्यक्तियों को जीवन लक्ष्य की प्राप्ति अवश्य होती है। इससे उन्हें जीवन में सार्थकता का अहसास सदैव से ही रहता है तथा वे प्रसन्न रहते हैं एवं मानसिक रूप से स्वस्थ रहते हैं।

**(13) सकारात्मक चिंतन** (positive thinking)– जीवन के प्रति तथा दुनिया में स्वयं के होने के प्रति सकारात्मक नजरिया रखने वाले, तथा जीवन में स्वयं के साथ घटने वाली हर वैचारिक, भावनात्मक तथा व्यवहारिक घटना के प्रति जो सकारात्मक नजरिया रखते हैं उसके धनात्मक पक्षों पर प्रमुखता से जोर देते हैं। ऐसे व्यक्ति निराशा, अवसाद का शिकार नहीं होते हैं। उनमें नाउम्मीदी एवं निस्सहायता भी उत्पन्न नहीं होती है परिणामस्वरूप मानसिक रूप से स्वस्थ रहते हैं।

**(14) ईश्वर विश्वास** (Faith on God)– जिन व्यक्तियों में ईश्वर विश्वास कूट कूट कर भरा होता है ऐसे व्यक्ति भी मानसिक रूप से स्वस्थ होते हैं। मनोवैज्ञानिक इसका कारण उन्हें मिलने वाले भावनात्मक संबंल एवं सपोर्ट को मानते हैं। उनके अनुसार ईश्वर विश्वासी कभी भी स्वयं को अकेला एवं असहाय महसूस नहीं करता हैं। परिणाम स्वरूप जीवन की विषम से विषम परिस्थिति में भी अपने आत्म–विश्वास को बनाये रखता है। उसकी आशा का दीपक कभी बुझता नहीं है। अतएव वह मानसिक रूप से स्वस्थ रहता है।

**(15) दूसरों से अपेक्षाओं का अभाव** (Absense of expectations from others)– ऐसे व्यक्ति जो अपने कर्तव्य कर्मों को केवल किये जाने वाला कार्य समझ कर सम्पादित करते हैं एवं उस कार्य से होने वाले परिणामों से स्वयं को असम्बद्ध रखते हैं। दूसरों से प्रत्युत्तर

में किसी प्रकार की अपेक्षा अथवा आशा नहीं करते हैं वे सदैव प्रसन्न रहते हैं। मनोवैज्ञानिक इसका कारण उनके मानसिक प्रसन्नता के परआश्रित नहीं होने की स्थिति को ठहराते हैं। ये व्यक्ति दूसरों के द्वारा उनके साथ किये गये व्यवहार से अपनी प्रसन्नता को जोड़कर नहीं रखते हैं बल्कि वे दोनों चीजों को अलग–अलग रखकर चलते हैं। परिणामस्वरूप भावनात्मक द्वन्द्वों में नहीं फंसते हैं एवं मानसिक रूप से स्वस्थ होते हैं।

इन सभी का विस्तृत व्याख्या निम्नलिखित है–

**अभ्यास प्रश्न 3**–आत्म सम्मान का मानसिक स्वास्थ्य की उन्नति के साथ किस प्रकार का संबंध है?

क– धनात्मक

ख– नकारात्मक

ग– अपेक्षारहित

घ– तटस्थ

## 16.5 मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक (Factors affecting mental health)

नैदानिक मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न शोध एवं अनुसंधानों के आधार पर विभिन्न तरीकों से ऐसे कारकों की पड़ताल की है जिससे मानसिक स्वास्थ्य पर असर पड़ता है। इन खास कारकों का वर्णन निम्नांकित है।

**क) शारीरिक स्वास्थ्य के कारक** (Factors of physical health) – व्यक्ति की शारीरिक स्थिति क उसके मानसिक स्वास्थ्य के साथ सीधा संबंध होता है। दूसरें शब्दों में शारीरिक स्वास्थ्य व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाला एक प्रमुख कारक है। हम सभी जानते हैं कि जब हम शारीरिक रूप से स्वस्थ होते हैं तब हम प्रायः सभी समय एक आनन्द के भाव का अनुभव करते रहते हैं एवं हमारी ऊर्जा का स्तर हमेशा ऊॅचे स्तर का बना रहता है। जब कभी हम बीमार पड़ते हैं या शारीरिक रूप से अस्वस्थ हो जाते हैं उसका प्रभाव हमारी मानसिक प्रसन्नता पर भी पड़ता है हम पूर्व के समान आनंदित नहीं रहते तथा हमारी ऊर्जा का स्तर भी निम्न हो जाता है। कहने का अभिप्राय यह है कि हमारे शरीर एवं मन के बीच, हमारी शारीरिक स्वस्थता एवं मानसिक स्वस्थता के बीच परस्पर अन्योनाश्रित संबंध हैं। एक की स्थिति में बदलाव होने पर दूसरे में स्वतः ही परिवर्तन हो जाता हैं उदाहरण के लिए कैंसर के रोगियों में निराशा, चिंता एवं अवसाद सामान्य रूप में पाये जाते हैं। वहीं चिंता एवं अवसाद से ग्रस्त रोगियों को कई प्रकार की शारीरिक बीमारियॉ हो जाती हैं।

**ख) प्राथमिक आवश्यकताओं की संतुष्टि** (Satisfaction of primary needs) – आवश्यकताओं की संपुष्टि भी मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाला एक प्रमुख कारक है। आवश्यकतायें कई प्रकार की होती हैं जैसे कि शारीरिक आवश्यकता, सांवेगिक आवश्यकता, मानसिक आवश्यकता आदि। इन सभी प्रकार की आवश्यकताओं में प्राथमिक आवश्कताओं की संतुष्टि का स्तर मानसिक स्वास्थ्य को सर्वाधिक प्रभावित करता है। प्राथमिक आवश्यकताओं में भूख, प्यास, नींद, यौन आदि आते हैं। इसके अलावा शारीरिक सुरक्षा के लिए घर आदि की जरूरत को भी प्राथमिक आवश्यकताओं में ही गिना जाता है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति करने का लक्ष्य सदैव मनुष्य के सम्मुख उसके लिए अस्तित्वपरक चुनौति खड़ी करता रहा है। जब तक इन आवश्यकताओं की पूर्ति सहज रूप

में होती रहती है तब तक व्यक्ति मानसिक रूप से उद्विग्न नहीं होता है परंतु जब इन आवश्यकताओं की पूर्ति में जब बाधा उत्पन्न होती है तब व्यक्ति में तनाव उत्पन्न हो जाता है। जिसके विभिन्न संज्ञानात्मक, सांवेगिक, अभिप्रेरणात्मक, व्यवहारात्मक आदि परिणाम होते हैं। इन परिणामों के फलस्वरूप व्यक्ति में चिंता, अवसाद आदि विभिन्न प्रकार की मनोविकृतियॉ जन्म ले लेती हैं।

**ग) मनोवृत्ति** (Attitude) – मनोवैज्ञानिकों ने मनोवृत्ति को भी मानसिक स्वास्थ्य के उन्नति या अवनति में परिवर्तन करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक माना है। व्यक्ति की मनोवृत्ति उसके मानसिक रूप से प्रसन्न रहने अथवा न रहने का निर्धारण करती है। यह मनोवृत्ति मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है। पहली धनात्मक मनोवृत्ति एवं दूसरी नकारात्मक मनोवृत्ति। धनात्मक मनोवृत्ति को सकारात्मक मनोवृत्ति भी कहा जाता है। सकारात्मक मनोवृत्ति का संबंध जीवन की वास्तविकताओं से होने के कारण इसे वास्तविक मनोवृत्ति की संज्ञा भी दी जाती है। यदि व्यक्ति में किसी कारण से वास्तविकता से हटकर काल्पनिक दुनिया में विचरण करने की आदत बन जाती है तो ऐसे व्यक्तियों में घटनाओं, वस्तुओं एवं व्यक्तियों के प्रति एक तरह का अवास्तविक मनोवृत्ति विकसित हो जाती है। अवास्तविक मनोवृत्ति के विकसित हो जाने से उनमें आवेगशीलता, सांवेगिक अनियंत्रण, चिड़चिड़ापन आदि के लक्षण विकसित हो जाते हैं और उनका मानसिक स्वास्थ्य धीरे धीरे खराब हो जाता है।

**घ) सामाजिक वातावरण** (Social environment)– सामाजिक वातावरण को भी मनोवैज्ञानिकों ने मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाला एक मजबूत कारण माना है। व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहता है। फलतः समाज में होने वाली अच्छी बुरी घटनाओं से वह प्रभावित होता रहता है। जब व्यक्ति समाज में एक ऐसे वातावरण में वास करता है जो कि अपने घटकों को उन्नति एवं विकास में सहायक होता है तथा समूह के सदस्यों को भी समाज अपनी उन्नति एवं विकास में योगदान देने का समुचित अवसर प्रदान करता है तो वह व्यक्ति स्वयं को गौरवान्वित महसूस करता है परिणामस्वरूप ऐसे व्यक्ति को कभी भी अकेलापन महसूस नहीं होता है। वह अपने आप को समाज का एक स्वीकृत सदस्य के रूप में देखता है जिसके अन्य सदस्य उसके भावों का आदर करते हैं। वह स्वयं भी समाज के अन्य सदस्यों के भावों का आदर करता है। ऐसे सामाजिक वातावरण में निवास करने वाले व्यक्ति मानसिक रूप से अत्यंत स्वस्थ रहते हैं। तथा इनकी सामाजिक प्रसन्नता अनुभूति काफी बढ़ी चढ़ी रहती है। वहीं दूसरी ओर जब व्यक्ति इसके विपरीत प्रकार के समाज में निवास करता है जो कि उसकी उन्नति एवं विकास में सहायक हेाने के बजाय उसके उन्नति एवं विकास के मार्ग को अवरूद्ध ही कर देता है तो व्यक्ति की अपने अंदर छिपी असीम संभावनाओं को विकसित एवं अभिव्यक्त करने की आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो पाती है। परिणामस्वरूप ऐसा व्यक्ति को अपनी इच्छाओं का दमन करना पड़ता है एवं कालान्तर में ऐसे व्यक्ति मानसिक रूग्णता का शिकार हो जाते हैं।

**च) मनोरंजन की सुविधा** (Facility of entertainment)– मनोवैज्ञानिकों ने मनोरंजन की उपलब्धता को भी मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले एक प्रमुख कारक के रूप में मान्यता प्रदान की है। उनके अनुसार जिस व्यक्ति को जीवन में मनोरंजन करने के साधन या सुविधायें उपलब्ध होती हैं उस प्रकार के व्यक्ति अपने जीवन में मानसिक रूप से स्वस्थ रहते हैं। उनके अनुसार मनोरंजन के साघन अपने प्रभाव से व्यक्ति के मन को प्रसन्नता, एवं आह्लाद से भर देते हैं फलतः उसमें एक प्रकार की नवीन प्रफुल्लता जन्म

लेती है जो कि उसके मस्तिष्क एवं मन को नवीन ऊर्जा से ओतप्रोत कर देती है। तंत्रिका मनोवैज्ञानिकों के अनुसार इससे स्नायुसंस्थान को सकारात्मक स्फुरणा प्राप्त होती है फलतः उसकी सक्रियता बढ़ जाती है। स्मृति आदि विभिन्न मानसिक प्रक्रियायें सुचारू रूप से कार्य करती हैं फलतः व्यक्ति मानसिक रूप से स्वस्थ रहता हैं। परन्तु यदि किसी कारण से किसी व्यक्ति को उसकी इच्छानुसार पर्याप्त मनोरंजन नहीं मिल पाता है तो उससे इनमें मानसिक घुटन उत्पन्न हो जाती है जो धीरे–धीरे उनके मानसिक स्वास्थ्य को कमजोर करती जाती है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले बहुत से कारक हैं। इन कारकों को नियंत्रित करके मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाया जा सकता है।

**अभ्यास प्रश्न 4–** शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य में परस्पर किस प्रकार का संबंध है?

क– कोई संबंध नहीं है।

ख– नकारात्मक संबंध है।

ग– अन्योनाश्रित संबंध है।

घ– उपरोक्त में कोई सत्य नहीं है।

## 16.6 सारांश

1 'मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति वह है जो स्वयं सुखी है, अपने पड़ोसियों के साथ शांतिपूर्वक रहता है, अपने बच्चों को स्वस्थ नागरिक बनाता है और इन आधारभूत कर्तव्यों को करने के बाद भी जिसमें इतनी शक्ति बच जाती है कि वह समाज के हित में कुछ कर सके।' मनोवैज्ञानिक दृष्टि से, मानसिक स्वास्थ्य की मुख्य कसौटी अर्जित व्यवहार है। जिसका स्वरूप कुछ ऐसा होता है कि इससे व्यक्ति को सभी तरह के समायोजन करने में मदद मिलती है। यह एक संतुलित, सुदृढ़ मानसिक स्थिति को व्यक्त करता है, जिसमें व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों में सामाजिक रूप से और सांवेगिक रूप से एक मान्य व्यवहार करता है।

**2** मानसिक स्वास्थ्य की व्याख्या कई मनोवैज्ञानिक दृष्टियों से की गई है ये है (क) मनोगत्यात्मक दृष्टि (Psychodynamic view), (ख) व्यवहारवादी दृष्टि (Behavioristic view), मानवतावादी दृष्टि (Humanistic view) एवं (घ) संज्ञानात्मक दृष्टि (Cognitive view)

**3** महर्षि पतंजलि ने समाधि को चित्त की वृत्तियों के निरोध की अवस्था माना है एवं यौगिक दृष्टि से यही मानसिक स्वास्थ्य की सामान्य अवस्था है। इस से पूर्व की सभी अवस्थाओं को चित्तवृत्तियों की विभिन्न अवस्थाओं के रूप में मानसिक स्वास्थ्य के विभिन्न स्तर निर्धारित किये जा सकते हैं।

योगदर्शन में चित्त की पॉच अवस्थाओं का वर्णन किया गया है। ये पॉच अवस्थायें हैं– 1. मूढ़, 2. क्षिप्त, 3. विक्षिप्त, 4. एकाग्र 5. निरूद्ध।

**4** विविध मानसिक रोग मन की मूढ़ एवं क्षिप्त अवस्थाओं में उदय होते हैं।' आधुनिक मनोविज्ञान में प्रथम तीन भूमियों या अवस्थाओं का ही अध्ययन हुआ है और इसी के आधार पर मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी सामान्य एवं असामान्यता की अवधारणाओं का विकास हुआ है, जबकि मानसिक स्वास्थ्य की समग्र संकल्पना इसी सीमा में बॅधे रहने से संभव नहीं हैं समग्र मानसिक स्वास्थ्य का उद्भव तो चित्त की अंतिम दो अवस्थाओं से ही उद्भूत होगा,

जिसे आधुनिक मनोविज्ञान असामान्यता की श्रेणी में विभाजित करता है। इस तरह से यौगिक दृष्टिकोण मानवीय अस्तित्व समग्रता से विचार करता है और अपनी यौगिक क्रियाओं द्वारा मानवी चेतना के गहनतम स्तरों का उपचार करते हुए यह समग्र मानसिक स्वास्थ्य का पथ प्रशस्त करता है।

**5** मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों के आत्म–सम्मान का भाव काफी उच्च होता है। जिन व्यक्तियों को अपने स्व का बोध होता है वे मानसिक रूप से अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा ज्यादा स्वस्थ होते हैं। जिन व्यक्तियों में स्व–मूल्यॉकन की प्रवृत्ति होती है वे मानसिक रूप से स्वस्थ होते हैं क्योंकि स्वमूल्यॉकन की प्रवृत्ति उन्हें सदैव आईना दिखलाती रहती है। वे स्वयं के गुणों एवं दोषों से अनवरत परिचित होते रहते हैं एवं किसी भी प्रकार के भ्रम अथवा संभ्रांति कि गुंजाइश भी नहीं रहती है। मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों में सुरक्षा का भाव बढ़ा–चढ़ा होता है।मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों में परिवार एवं समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ ऐसे संबंध विनिर्मित करने की क्षमता पायी जाती है जो कि उन्हें जीवन में संतुष्टि प्रदान करती है, उन्हें जीवन में सार्थकता का अहसास होता है एवं वे प्रसन्न रहते हैं।

**6** मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों में प्रसन्न रहने की आदत पायी जाती है। साथ ही ऐसे व्यक्ति अपने कार्यों में काफी उत्पादक होते हैं। मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों का शारीरिक स्वास्थ्य भी उत्तम कोटि का होता है। मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों में तनाव एवं अतिसंवेदनशीलता का अभाव पाया जाता है। मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति किसी वस्तु, घटना या चीज का प्रत्यक्षण पक्षपात रहित होकर वस्तुनिष्ठ तरीके से करते हैं। मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों में जीवन दर्शन की स्पष्टता होती है। उनके जीवन का सिद्धान्त स्पष्ट होता है। उन्हें पता होता है कि उन्हें अपने जीवन में किस तरह से आगे बढ़ना है? क्यों बढ़ना है? वे लोग जिनका जीवन लक्ष्य स्पष्ट होता है वे मानसिक रूप से स्वस्थ होते हैं। मनोवैज्ञानिक इसका कारण जीवन लक्ष्य एवं जीवन शैली में सामंजस्य को मानते हैं। जिन व्यक्तियों में ईश्वर विश्वास कूट कूट कर भरा होता है ऐसे व्यक्ति भी मानसिक रूप से स्वस्थ होते हैं।

**7** मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कई कारक होते हैं इन कारकों में शारीरिक स्वास्थ्य, प्राथमिक आवश्यकताओं की संपुष्टि, मनोवृत्ति, असामाजिक वातावरण एवं मनोरंजन प्रमुख हैं।

## 16.7 शब्दावली

**मानसिक स्वास्थ्य** (Mental health)– मानसिक स्वास्थ्य अधिकतम प्रसन्नता तथा प्रभावशीलता के साथ संसार एवं प्रत्येक दूसरे व्यक्ति के प्रति मानवों द्वारा किया जाने वाला समायोजन है ।

**चित्त की मूढ़ावस्था** – यह चित्त की तमोगुण प्रधान अवस्था है। इस अवस्था में तमोगुण प्रबल एवं रजस तथा सत्व दबे रहते हैं।

**चित्त की क्षिप्तावस्था** – चित्त की इस अवस्था में रजोगुण प्रधान होता है। इसमें सत्व और तमोगुण दबे रहते हैं। इस अवस्था में चित्त अत्यंत चंचल रहता है।

चित्त की विक्षिप्त अवस्था – इस अवस्था में सतोगुण प्रधान रहता है। तथा रजस एवं तमस दबे हुए रहते हैं।

**चित्त की एकाग्रावस्था** – इस अवस्था में चित्त में केवल सत्व प्रधान ही नहीं होता बल्कि वह सत्व स्वरूप हो जाता है रजस एवं तमस केवल अस्तित्व मात्र से ही रहते हैं अर्थात कियाशील नहीं होते हैं।

**चित्त की निरूद्ध अवस्था** – इस अवस्था में चित्त की संपूर्ण वृत्तियों का निरोध हो जाता है। चित्त में पूर्ण रूप से स्थिरता स्थापित हो जाती है। इसमें चित्त आत्मस्वरूप में स्थित हो जाता है, जिसमें अविद्या आदि पॉच क्लेश नष्ट हो जाते हैं।

**मानसिक प्रकियायें** (Mental Processes)–चिंतन, समस्या समाधान, निर्णय, प्रत्यक्षण, विचार आदि मानसिक प्रकियाओं के विभिन्न उदाहरण हैं।

**चिंता**(Anxiety) –सामान्य रूप में अतार्किक भय को चिंता कहा जाता है।

**अवसाद** (Depression) –अवसाद से तात्पर्य मनोदशा में उत्पन्न उदासी से होता है। दुख, निराशा, निस्सहायता, दोषभाव, रूचि में कमी, अभिप्रेरण में कमी, नींद में कमी अथवा अधिकता आदि इसके प्रमुख लक्षण हैं।

**आत्म–सम्मान** (Self-esteem) – आत्म–सम्मान से तात्पर्य व्यक्ति द्वारा स्वयं को स्वीकार किये जाने की सीमा से होता है। प्रत्येक व्यक्ति का स्वयं को यानि कि स्वयं के कार्यों को मापने का अपना एक पैमाना होता है जिस पर वह अपने गुणों एवं कार्यों, कुशलताओं एवं निर्णयों का स्वयं के बारे में स्वयं द्वारा बनाई गई छवि के आलोक में मूल्यॉकन करता है। यदि वह इस पैमाने पर अपने आप को स्वयं के पैमाने पर औसत से ऊपर की श्रेणी में अवलोकित करता है तब उसे गर्व का अनुभव होता है और परिणामस्वरूप उसका आत्म सम्मान बढ़ जाता है। वहीं यदि वह स्वयं को इस पैमाने में औसत से नीचे की श्रेणी में देखता है तो उसका आत्म सम्मान घट जाता है।

## 16.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 –(क) अहंशक्ति (ईगो स्ट्रेन्थ) को मजबूती देने से मानसिक स्वास्थ्य उन्नत होता है।

अभ्यास प्रश्न 2 –(ख) चित्त की मूढ़ावस्था

अभ्यास प्रश्न 3 –(क) धनात्मक

अभ्यास प्रश्न 4 –(ग) अन्योनाश्रित संबंध है।

## 16.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

रोनाल्ड, जे. कोमर (2014) फन्डामेंटल्स ऑफ एबनॉरमल साइकोलॉजी, न्यूयॉर्क – वर्थ पब्लिशर।

कारसन, बुचर एवं मिनेका (1998 अपडेटेड थर्ड एडीसन) एबरॉरमल साइकोलॉजी एण्ड मॉर्डन लाइफ, लंदन – एडिसन, विसली, एजुकेशनल पब्लिशर इन्क।

बारलो एण्ड डूरण्ड (2012) एबनॉरमल साइकोलॉजी – एन इन्टीग्रेटेड एप्रोच, बेलमाउन्ट – वर्ड्सवर्थ सिनेज लर्निंग।

रॉबर्ट ए. बैरोन (2006) साइकोलॉजी, दिल्ली – पियर्सन प्रेंटिस हाल।

सैमुअल वुड एवं एलेन वुड (2000) द इसेंशियल वर्ल्ड ऑफ साइकोलाजी, यू एस ए– एलिन एण्ड बेकन।

डॉ अरूण कुमार सिंह (2010) आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, दिल्ली – मोतीलाल बनारसीदास।

स्वामी शिवानन्द (2005) मन रहस्य और निग्रह, टिहरी, डिवाइन लाइफ सोसाइटी।

डॉ सुरेश वर्णवाल (2002) योग और मानसिक स्वास्थ्य, दिल्ली, न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन।
प्रो. रामहर्ष सिंह (1999) योग एवं यौगिक चिकित्सा, दिल्ली, चौखम्बा संस्कृति प्रतिष्ठान।
जयगोपाल त्रिपाठी (2001) असामान्य मनोविज्ञान, आगरा, एच. पी. भार्गव बुक हाउस।

## 16.10 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 – मानसिक स्वास्थ्य से आप क्या समझते हैं? मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों की विशेषताओं का विस्तृत विवेचन कीजिए।
प्रश्न 2 – मानसिक स्वास्थ्य के स्वरूप का विस्तार से विवेचन करें।
प्रश्न 3 – मानसिक स्वास्थ्य की मनोवैज्ञानिक दृष्टि को विस्तार से समझाइये।
प्रश्न 4 – मानसिक स्वास्थ्य की यौगिक दृष्टि पर प्रकाश डालें।
प्रश्न 5 – मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कीजिए।
प्रश्न 6– निम्नलिखित पर संक्षिप्त नोट लिखें।

(अ) युंग की विश्लेषणात्मक दृष्टि
(ब) मानसिक स्वास्थ्य की व्यवहारवादी दृष्टि
(स) मानसिक स्वास्थ्य की त्रिगुणात्मक (सत्व, रजस, तमस) दृष्टि

# इकाई 17 :– मानसिक स्वास्थ्य का महत्व, मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत करने के उपाय, शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य का संबंध

17.1 प्रस्तावना
17.2 उद्देश्य
17.3 मानसिक स्वास्थ्य का महत्व
17.4 मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत करने के उपाय
17.5 शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य का संबंध
17.6 सारांक्ष
17.7 शब्दावली
17.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
17.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
17.10 निबंधात्मक प्रश्न

## 17.1 प्रस्तावना

मानसिक स्वास्थ्य के बारे में इससे पूर्व की इकाई 16 में आपने परिभाषाओं के विशद विश्लेषण एवं मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारकों एवं मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की विशेषताओं के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त की है। परन्तु इस मानसिक स्वास्थ्य का हमारे जीवन में क्या महत्व है? क्यों यह हमारे लिए महत्वपूर्ण है इसके उन्नत होने एवं नहीं होने से जीवन में क्या फर्क पड़ता है? तथा यह मानसिक स्वास्थ्य शारीरिक स्वास्थ्य के साथ किस प्रकार संबंधित हैं। मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत किस प्रकार किया जा सकता है? मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने के उपाय कौन कौन से हैं? प्रस्तुत इकाई में इन सभी प्रश्नों के उत्तर प्रदान करने का प्रयास किया गया है।

## 17.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

1. मानसिक स्वास्थ्य के महत्व के बारे में जानेंगे।
2. मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने के विभिन्न उपायों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
3. मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य के बीच संबंध के स्वरूप को समझ सकेंगे।
4. मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य के बीच सामंजस्य की आवश्यकता के बारे में जानेंगे।
5. मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने की व्यवहारिक तकनीकों एवं प्रविधियों का उपयोग करना सीख सकेंगे।

## 17.3 मानसिक स्वास्थ्य का महत्व (Importance of mental health)

मानसिक स्वास्थ्य मन से जुड़ी हुई गतिविधियों संबंधित है। मनुष्य एवं अन्य प्राणियों में विचार करने की योग्यता का फर्क है। मनुष्य विचार कर सकता है, चिंतन कर सकता है, घटनाओं का विश्लेषण कर सकता है। वहीं अन्य प्राणी ऐसा उसके समान नहीं कर सकते। उपयुक्त चिंतन, विचार एवं विश्लेषण के बल पर मनुष्य शोध अनुसंधान की योजनायें बना सकता है अपने जीवने को बेहतर बनाने सुविधापूर्ण बनाने की व्यवस्थायें जुटा सकता है। आधुनिक जीवन में जो सुख एवं आराम के संरजाम मनुष्य ने जुटायें हैं वे सभी उसकी विचार, चिंतन एवं विश्लेषण की क्षमता का ही परिणाम हैं। परन्तु यह तीनों प्रकार की क्षमतायें व्यक्ति की मानसिक प्रक्रियाओं से जुड़ी हुई हैं। अवधान, प्रत्यक्षण, अधिगम, स्मृति, अभिप्रेरण, बुद्धि आदि मानसिक क्रियायें हैं एवं इन क्रियायों का सुचारू रूप से जारी रहना एवं उन्नत होना न केवल व्यक्ति के शारीरिक विकास एवं स्वास्थ्य से संबंधित है अपितु उसका शारीरिक विकास एवं उन्नत स्वास्थ्य होने के बावजूद मानसिक स्वास्थ्य की उन्नति से कहीं अधिक सीधा एवं घनिष्ठ संबंध है। मानसिक स्वास्थ्य चिंतन, भाव एवं व्यवहार के तीन आयामों को अपने में समेटे हुए है। इन तीनों आयाम व्यक्तित्व के भी तीन आयाम हैं। व्यक्ति का व्यक्तित्व जिस रूप में परिलक्षित होता है वह इन तीनों आयामों के समुचित विकास, उन्नति एवं सामंजस्य पर निर्भर करता है। व्यक्ति की सोच उसमें भावनाओं को तरंगित करती है एवं ये भावनात्मक तरंगे उसे तदनुरूप क्रिया–व्यवहार करने के लिए प्रेरित करती हैं। इन तीनों के बीच कोई सीधा स्पष्ट संबंध नहीं है वरन ये तीनों परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते एवं एक दूसरे से प्रभावित होते हैं। इन तीनों का प्रभाव व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता है। इस मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रखने अथवा उत्तरोत्तर इसका उन्नत होना क्यों आवश्यक है इसका क्या महत्व है इन्हें निम्नांकित बिन्दुओं के विवेचन के माध्यम से आसानी से समझा जा सकता है।

(1) कार्यकुशलता के लिए आवश्यक
(2) मानसिक स्वास्थ्य का सफलता के साथ संबंध
(3) पारिवारिक स्वास्थ्य में भूमिका
(4) सामाजिक स्वास्थ्य में भूमिका
(5) व्यक्तित्व विघटन से बचाव
(6) मानसिक स्वास्थ्य एवं समस्या समाधान क्षमता
(7) मानसिक स्वास्थ्य एवं सृजनात्मकता
(8) मानसिक स्वास्थ्य एवं व्यवहारकुशलता
(9) मानसिक स्वास्थ्य एवं नैतिकता
(10) आत्म बोध के लिए आवश्यक
(11) व्यक्तित्व विकास के लिए आवश्यक
(12) देश की उन्नति में भूमिका
(13) अपराध दर में घटोत्तरी से संबंध
(14) मनोरोग से संबंध

इन सभी बिन्दुओं का विस्तृत विवेचन निम्नांकित है–

**(1) कार्यकुशलता के लिए आवश्यक** (needed for dextrousness)– सभी प्रकार के कार्यों में कुशलता के लिए मानसिक प्रक्रियाओं, भावनात्मक दशा का ठीक होना आवश्यक है। ऐसे से बहुत से कार्य होते हैं जिन्में मन एवं शारीरिक अंगों के संचालन के बीच बेहतर तालमेल की आवश्यकता होती है। मानसिक दशा ठीक नहीं होने पर यह तालमेल प्रभावित होता है। किसी भी कार्य में कुशलता मन एवं इन्द्रियों के बीच परस्पर सामंजस्य पर निर्भर करती है। इन्द्रियॉ मन के उपकरण के रूप मे कार्य करती है। जब इन्द्रियों द्वारा सम्पादित किये जा रहे कार्य में मन पूर्ण रूप से लगा हुआ होता है तो उस कार्य में कुशलता बन पड़ती है। परन्तु ऐसा न होने पर कार्य ठीक से सम्पन्न नहीं हो पाता है।

**(2) मानसिक स्वास्थ्य का सफलता के साथ संबंध** (relationship with success)– मानसिक स्वास्थ्य का जीवन में किसी भी कार्य अथवा उद्देश्य में सफलता की प्राप्ति में एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह भूमिका एक मजबूत तैयारी के रूप में होती हैं। व्यक्ति की सफलता उसकी मानसिक तैयारियों पर भी निर्भर करती हैं। जब व्यक्ति मानसिक रूप से स्वस्थ होता है तब उसकी इंद्रियॉ सम्यक् रूप से कार्य करती हैं परिणामस्वरूप व्यक्ति किसी भी कार्य में अपना पूर्ण योगदान देने के लिए तैयार होता है। मजबूत मन मजबूत इरादे ही व्यक्ति को सफलता दिलाते हैं। वहीं मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्ति स्वयं अपनी ही उलझनों में फंसे रहते हैं परिणामस्वरूप किसी भी कार्य का समय पर पूरा कर पाना उनके लिए असंभव समान होता है।

**(3) पारिवारिक सामंजस्य में भूमिका** (role in family adjustment)– मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति अपने परिवार के सभी सदस्यों के विचारों का सटीक विश्लेषण करने में समर्थ हो पाता है तथा साथ ही उसकी अवधान, प्रत्यक्षण एवं बुद्धि आदि की मानसिक क्रियायें सुचारू रूप से चलने की वजह से वह उनके भावनाओं एवं आवश्यकताओं एवं शाब्दिक, अशाब्दिक संकेतों को भी सही से समझ पाता है। इससे वह परिवार के प्रत्येक सदस्य के साथ समुचित आदर एवं सम्मान के साथ व्यवहार एवं संचार कर पाने में समर्थ होता है परिणामस्वरूप उसका पारिवारिक समायोजन बहुत बेहतर होता है। साथ ही परिवार में मानसिक समस्याओं के पनपने की संभावनाये भी बहुत हद तक क्षीण रहती है। यदि परिवार के प्रत्येक सदस्य का मानसिक स्वास्थ्य उत्तम कोटि का होता है तो परिवार एक इकाई के रूप में सर्वतोमुखी प्रगति करता है। परिवार के किसी एक सदस्य के मानसिक स्वास्थ्य के ठीक न होने की स्थिति में परिवार के अन्य सदस्य उसके व्यवहार से दुखी एवं भविष्य को लेकर चिंतित रहते है, एवं लम्बे समय तक इस प्रकार की स्थिति बने रहने पर परिवार के अन्य सदस्यों में भी मानसिक रोग का शिकार होने की संभावनायें प्रबल हो जायेंगी।

**(4) सामाजिक स्वास्थ्य में भूमिका** (role in social health)– मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति समाज के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। किसी भी समाज की प्रगति एवं विकास उस समाज में रहने वाले व्यक्तियों के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य तथा नैतिक विकास पर निर्भर करता है। इनमें से किसी भी आयाम में कमजोरी होने पर समाज की प्रगति एवं उन्नति बाधित होती है। एक स्वस्थ व्यक्ति न केवल अपनी उन्नति में सफल होता है बल्कि वह अपने परिवार एवं समाज को सफलता की नई ऊॅचाइयों तक ले जाने में सार्थक योगदान दे सकता है। वहीं परिवार एवं समाज का कोई मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्ति उनकी प्रगति यात्रा को बाधित कर सकता है।

**(5) व्यक्तित्व विघटन से बचाव** (refrain from personality disorganization)– जिन व्यक्तियों का मानसिक स्वास्थ्य ठीक होता है उनमें व्यक्तित्व विकार अथवा विघटन की घटना नहीं घटती है ऐसे व्यक्ति किसी भी प्रकार के मनोरोग का शिकार नहीं होते हैं। बल्कि ऐसे व्यक्ति अपने जीवन में प्रसन्नता, उल्लास एवं उमंग से भरे रहते हैं। इनके भावों में सामंजस्य एवं परिपक्वता होने के कारण ये मनोदशा विकृति आदि मानसिक विकृतियों से बचे रहते हैं।

**(6) मानसिक स्वास्थ्य एवं समस्या समाधान क्षमता** (mental health and problem solving ability)– मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये अनुसंधानों के अनुसार मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों की समस्या समाधान क्षमता बढ़ी–चढ़ी होती है। इसका कारण मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति द्वारा समस्या को ठीक से समझ पाने हेतु ध्यान दे पाने की समर्थता से होता है। मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति समस्या के सभी पहलुओं पर सभी संभावित कोणों से विचार कर पाता है। परिणामस्वरूप वह उनका हल भी जल्द ही ढूँढ़ लेता है।

**(7) मानसिक स्वास्थ्य एवं सृजनात्मकता** (mental health and creativity)– हालॉकि मानसिक स्वास्थ्य का सृजनात्मकता के साथ किसी सीधे संबंध के प्रमाण मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये शोध एवं अनुसंधानों में प्राप्त नहीं हुए हैं। फिर भी तुलनात्मक शोध मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों एवं अस्वस्थ व्यक्तियों के सृजनात्मक कार्यों की बारंबारता में स्पष्ट अंतर प्राप्त हुए हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि जो व्यक्ति मानसिक रूप से स्वस्थ होते हैं उनका मन एवं मस्तिष्क सृजनात्मक कार्यों अथवा गतिविधि के लिए अन्यों की अपेक्षा अधिक तत्पर होता है। परिणामस्वरूप ऐसे व्यकितयों के सृजनात्मक कार्यों की बारम्बारता बढ़ी–चढ़ी होती है।

**(8) मानसिक स्वास्थ्य एवं व्यवहारकुशलता** (mental health and behaviourskill)– व्यवहार कुशलता पर किये गये अनुसंधानों के अनुसार जो व्यक्ति अपने दैनिक व्यवहार एवं सामाजिक व्यवहार या जॉब आधारित व्यवहार में कुशल होते हैं वे मानसिक रूप से अवश्य ही अन्यों की अपेक्षा कहीं अधिक स्वस्थ होते हैं। या इसे दूसरे रूप में कहा जा सकता है कि जिन लोगों का मानसिक स्वास्थ्य उत्तम होता है वे जीवन में अधिक व्यवहारकुशल होते हैं।

**(9) मानसिक स्वास्थ्य एवं नैतिकता** (mental health and morality)– समाजशास्त्रियों ने मानसिक स्वास्थ्य को नैतिकता से भी संबंधित पाया है। उनके अनुसार नैतिकता का संबंध परिवार एवं समाज द्वारा परिवार एवं समाज की बेहतर व्यवस्था वह प्रगति हेतु बनाये गये नियमों, मानदण्डों के अनुपालन से होता है जो व्यक्ति स्वयं को जितना अधिक परिवार एवं समाज का अभिन्न अंग समझते हैं वे उतना ही इन नियमों के अनुपालन में रूचि प्रदर्शित करते हैं। जो व्यक्ति इन मानदण्डों का पालन करते हैं उन पर किये गये अध्ययनों के परिणाम प्रदर्शित करते हैं कि वे व्यक्ति अन्यों की तुलना में मानसिक रूप से कहीं अधिक स्वस्थ थे। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक बैरोन के अनुसार ऐसे व्यक्तियों में दोषभाव उत्पन्न नहीं होता है अतएव ये लोग अवसाद जैसी मानसिक विकृतियों से बचे रहते हैं।

**(10) आत्म बोध के लिए आवश्यक** (necessary for self-actualization)– आत्म बोध से तात्पर्य अपने व्यक्तित्व के समस्त पहलुओं से परिचित होने से होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने अंदर छिपी असीम संभावनाओं का परिचय पाना चाहता है तथा अपनी प्रतिभा को बाह्य अभिव्यक्ति देना चाहता है। परन्तु इसके संभव होने के लिए स्वयं के आत्मन के

विभिन्न हिस्सों की जानकारी आवश्यक है, और अनुसंधानों से स्पष्ट हुआ है कि जिन व्यक्तियों का मानसिक स्वास्थ्य उत्तम होता है वे मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्तियों की अपेक्षा अपने आत्म् की विशेषताओं से ज्यादा परिचित होते हैं। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक अब्राहम मैस्लो ने भी इसी तथ्य को अपने मानवतावादी व्यक्तित्व सिद्धान्त में उल्लेखित किया है।

**(11) व्यक्तित्व विकास के लिए आवश्यक** (necessary for personality development)– व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य का उन्नत होना बहुत ही जरूरी है क्योंकि व्यक्तित्व शरीर, मन एवं इंद्रियों के सम्मिलन से विनिर्मित होता है जिसकी प्रकट अभिव्यक्ति व्यवहार के रूप में परिलक्षित होती है। व्यक्तित्व का विकास चिंतन, भाव एवं व्यवहार के तीनों आयामों के बीच अंतःक्रिया पर निर्भर करता है। एवं इन तीनों ही आयामों का मानसिक स्वास्थ्य के साथ सीधा संबंध है। बिना मानसिक क्षमताओं के बढ़ाए व्यक्तित्व विकास नहीं किया जा सकता है और मानसिक क्षमताओं की उन्नति के लिए मानसिक स्वास्थ्य का उन्नत होना अत्यंत ही आवश्यक है।

**(12) देश की उन्नति में भूमिका** (role in nation development)– समग्र रूप से यदि मानसिक स्वास्थ्य को देश की उन्नति से जोड़कर देखा जाये तो हम पाते हैं कि किसी देश के समुचित विकास के लिए उस देश के नागरिकों का स्वस्थ होना आवश्यक है। नागरिकों की स्वस्थता में शारीरिक स्वास्थ्य के साथ–साथ मानसिक स्वास्थ्य की महत्वपूर्ण हिस्सेदारी होती है। जिस देश के नागरिक जितना ही अधिक मानसिक रूप से मजबूत एवं क्षमतावान होते हैं उस देश का विकास उतना ही अधिक तीव्रता से होता है। क्योंकि मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति मिलकर एक स्वस्थ समाज का निर्माण करते हैं एवं स्वस्थ समाज देश के विकास में धनात्मक योगदान करता है।

**(13) अपराध दर में घटोत्तरी से संबंध** (relation with the decrease in crime-rate)– मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों में आपराधिक प्रवृत्ति मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्तियों की तुलना में काफी कम होती है। मनोवैज्ञानिक इसका कारण सांवेगिक एवं वैचारिक परिपक्वता एवं स्थितरता को ठहराते हैं। सांवेगिक परिपक्वता एवं स्थिरता मानसिक स्वास्थ्य की सुदृढ़ स्थिति का परिचय प्रदान करती है। अतएव जो व्यक्ति सांवेगिक या भावनात्मक रूप से परिपक्व हेाते हैं वे अपने संवेगों एवं दूसरों के हृदय के भावों को भलीभॉति समझते हैं एवं इसके कारण उनमें आपराधिक प्रवृत्ति नहीं के बराबर होती है।

**(14) मनोरोग से संबंध** (relation with mental disorders)– सार रूप में कहें तो मानसिक स्वस्थता का मनोरोग से नकारात्मक संबंध है अर्थात् जैसे जैसे मानसिक स्वास्थ्य उन्नत होता है वैसे वैस मनोरोगों के स्तर में कमी आती है। जिन व्यक्तियों का मानसिक स्वास्थ्य उन्नत होता है वे मनोरोगों का शिकार नही होते हैं। वहीं जिन व्यक्तियों का मानसिक स्वास्थ्य स्थिर नहीं रहता है उनमें मनोरोगों की रोकथाम की क्षमता कम होती है।

**अभ्यास प्रश्न 1** –निम्नलिखित में से कौन सा कथन मानसिक स्वास्थ्य के संबंध में असत्य है?

क– मानसिक स्वास्थ्य का केन्द्र बिन्दु सेरीब्रल कॉर्टेक्स होता है।

ख– मानसिक स्वास्थ्य में चिंतन की विशेष भूमिका होती है।

ग– मानसिक स्वास्थ्य के लिए भावनात्मक विकास जरूरी होता है।

घ– मानसिक स्वास्थ्य का व्यक्ति के व्यवहार से घनिष्ठ संबंध होता है।

## 17.4 मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत करने के उपाय (Ideas of improving mental health)

उपरोक्त पंक्तियों में हमने मानसिक स्वास्थ्य के महत्व के बारे में विस्तृत एवं गहन जानकारी प्राप्त की है। आइये अब इस मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने वाले उपायों के बारे में अपना ज्ञान बढ़ायें।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मैकवेस्ट (1980), विटेकर (1970) एवं कोलमैन (1956) जैसे नैदानिक मनोवैज्ञानिकों ने मानसिक स्वास्थ्य के गहन अध्ययन द्वारा इसे उन्नत बनाने के उपायों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है–

ये तीन श्रेणियॉ निम्नांकित हैं–

(क) रोकथामपरक उपाय (Preventive measures)

(ख) मनोवैज्ञानिक उपाय (Psychological measures)

(ग) सामाजिक–सांस्कृतिक उपाय (Socio-cultural measures)

(घ) योग आधारित उपाय (Yog based measures)

इन सभी का वर्णन निम्न प्रकार से है।

**(क) रोकथामपरक उपाय** (Preventive measures) – रोकथाम परक उपाय उन उपायों का कहा जाता है जिनमें मानसिक स्वास्थ्य को विकृत होने से बचाने के तरीकों का उपयोग किया जाता है। इन उपायों के पीछे कुछ मूल कल्पनायें काम करती हैं इन उपायों की सर्वाधिक प्रचलित मूल पूर्वकल्पना यह होती है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन निवास करता है (sound body resides in sound body)। नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की मान्यता है कि शारीरिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति स्वतः ही मानसिक रूप से भी स्वस्थ होते हैं। इसका कारण यह होता है कि शारीरिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति भौतिक वातावरण संबंधी चुनौतियॉ का सामना करने में सहज ही सक्षम होते हैं, एवं यह सक्षमता उनमें परिस्थितियों से निपटने हेतु आत्मविश्वास एवं साहस से ओतप्रोत करती है। इसके कारण शारीरिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति जिन्दगी की तनावपूर्ण परिस्थितियों का डट कर मुकाबला करने में सक्षम होते हैं। भावसंवेगात्मक तनाव से सामना होने पर वे उसका उचित समाधान आसानी से निकाल सकने में समर्थ हो पाते हैं। परिणामस्वरूप ऐसे व्यक्तियों का मानसिक स्वास्थ्य उत्तम होता है। अतः इन उपायों के तहत उन सभी तरह के साधनों पर विचार किया जाता है जिससे व्यक्ति का शारीरिक स्वास्थ्य उन्नत बना रह सके। बारलो एवं डूरण्ड के अनुसार जो व्यक्ति गंभीर शारीरिक बीमारियों जैसे कि ब्रेन ट्यूमर, सिफिलिस, कैंसर, डायबिटीज आदि का शिकार होते हैं जिनकी गंभीर आंगिक अवस्थाओं के कारण मानसिक अक्षमताएॅ उत्पन्न हो सकती हैं का उपचार शीघ्र अति शीघ्र करवाना चाहिए ताकि मानसिक स्वास्थ्य उनसे प्रभावित न हो।

**(ख) मनोवैज्ञानिक उपाय** (Psychological measures) – मनोवैज्ञानिकों ने मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाये रखने के लिए मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों एवं नियमों के आधार पर कई उपाय सुझाये हैं। इन उपायों को विकासात्मक मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्ति के जीवन की विभिन्न विकासात्मक अवस्थाओं के हिसाब से कई स्तरों में बॉटा है। ये स्तर निम्नांकित है।

(1) शैशवावस्था (infancy) में किये जाने वाले उपाय

(2) प्रारंभिक बाल्यावस्था (early childhood) में किये जाने वाले उपाय

(3) उत्तर बाल्यावस्था (later childhood) में किये जाने वाले उपाय
(4) किशोरावस्था (Adolescence) में किये जाने वाले उपाय
(5) वयस्कावस्था (Adulthood) में किये जाने वाले उपाय
इन सबों का वर्णन निम्नांकित है–

**(1) शैशवावस्था** (infancy) एवं (2) प्रारंभिक बाल्यावस्था में किये जाने वाले उपाय– प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक रिब्बिल (1964) के मतानुसार शैशवावस्था एवं प्रारंभिक बाल्यावस्था में अपनाये गये पालन–पोषण के तरीके का मानसिक स्वास्थ्य पर सीधा असर पड़ता है। अतः उन्होंने कुछ मनोवैज्ञानिक नियमों का प्रतिपादन किया है। ये मनोवैज्ञानिक नियम शैशवावस्था तथा प्रारंभिक बाल्यावस्था में संबंधित हैं, इन नियमों के अनुरूप शिशु एवं बच्चों का पालन पोषण करने से उनका मानसिक स्वास्थ्य काफी ठीक रहता है। इन मनोवैज्ञानिक नियमों का वर्णन निम्नांकित है–

**1)** नवजात शिशु को उसकी मॉ द्वारा देखरेख किये जाने की लगातार आवश्यकता होती है। यदि किसी कारण से मॉ उस कार्य को लगातार न कर सके तो किसी अन्य महिला की सहायता ली जा सकती है परन्तु यह कार्य केवल एक ही महिला से करवाना चाहिए। क्योंकि नवजात पर स्पर्श का गहरा असर पड़ता है एवं बार बार स्पर्श का अहसास बदलने से उसमें असुरक्षा की भावना घर कर सकती है।

**2)** शैशवावस्था एवं प्रारंभिक बाल्यावस्था के शुरूआती कुछ महीनों में बच्चे चूषण क्रिया द्वारा संतुष्टि का अनुभव करते हैं ऐसे में इन दिनों में उन्हें चूषण क्रिया की पूर्ण स्वतंत्रता दी जानी चाहिए। इसके लिए उन्हें उक्त दिनों तक भोजन आदि चूषण प्रक्रिया के माध्यम से ही कराया जाना चाहिए। इस चूषण क्रिया के सम्पन्न होने से बच्चों का शारीरिक स्वास्थ्य तो उन्नत बना ही रहता है साथ ही उनका मानसिक स्वास्थ्य भी उन्नत होता है।

**3)** बाल मनोवैज्ञानिकों का मत है कि चूषण क्रिया (sucking) के उपरान्त शिशुओं को दंशन (bitting) एवं कंठगायन (vocalization) की क्रियाओं से संतुष्टि प्राप्त होती है। एक क्रिया से दूसरी क्रिया में पारगमन बहुत ही महत्वपूर्ण घटना होती है इस घटना को धीरे–धीरे घटने देना चाहिए। इन दोनों अवस्थाओं में संतुष्ट होने का मौका शिशु को पर्याप्त रूप से देना चाहिए। चूषण की आदत छुड़वाने तथा दूसरी आदतें सिखाने तक की प्रक्रिया को धीरे धीरे सम्पन्न करना चाहिए। इससे शिशुओं में संतोष मिलता है जिससे उनका मानसिक स्वास्थ्य उत्तम एवं संतोषजनक होता है।

**4)** उपरोक्त क्रियाओं के बाद बालक के शौच प्रशिक्षण की बारी आती है जब तक बालक स्वयं के प्रयास से उठना बैठना न सीख जाये तब तक बालक को शौच प्रशिक्षण नहीं देना चाहिए। यह शौच प्रशिक्षण सदैव प्यार से दिया जाना चाहिए, जबरदस्ती बिल्कुल नहीं करना चाहिए। शौच प्रशिक्षण शारीरिक क्रियाओं को नियंत्रत करने के लिए दिया जाता है। प्यार से सिखलाने से बच्चों में सुरक्षा की भावना उत्पन्न होती है एवं वे आसानी से अपनी शौच से संबंधित शारीरिक क्रियाओं का नियंत्रण करना सीख जाते हैं। इस प्रक्रिया से बच्चों का मानसिक स्वास्थ्य उन्नत होता है। यदि यह शौच प्रशिक्षण जबरदस्ती दिया जाता है तो इससे बच्चों में असुरक्षा एवं भय की भावना पैदा होती है जिससे कि मानसिक स्वास्थ्य नकारात्मक रूप से प्रभावित होता है।

(3) उत्तर बाल्यावस्था (later childhood) (4) किशोरावस्था (Adolescence) (5) वयस्कावस्था (Adulthood) में किये जाने वाले उपाय– उत्तर बाल्यावस्था में शिक्षकों

एवं माता–पिता की भूमिकायें काफी महत्वपूर्ण हो जाती हैं जिनसे बच्चों में असामान्य व्यवहारों में कमी तथा मानसिक स्वास्थ्य में उन्नति होती है। किशोरावस्था तथा वयस्कावस्था में उत्तम समायोजन के बहुत सारे नियमों का उल्लेख होता है। इन नियमों में निम्नलिखित मुख्य हैं–

**1**. बाह्य वातावरण के कौन से उद्दीपक को परिवर्तित कर देने से उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकती है इस बात की पहले से जानकारी रखना चाहिए। साथ ही जिन उद्दीपकों को बदला नहीं जा सकता है उनकी वजह से उत्पन्न स्थिति को सहज ही स्वीकार करना चाहिए।

**2**. असफलता को कम हाथ लगे इसके लिए विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों से निपटने की क्षमता विकसित कर लेनी चाहिए। इससे मानसिक स्वास्थ्य सदैव उन्नत बना रहता है।

**3.** अपने भावसंवेगों एवं कामनाओं को सम्मान देते हुए उन्हें स्वीकार करना चाहिए। ऐसा करने से मानसिक अक्षमता व्यक्ति में विकसित नहीं होती है और उसका मानसिक स्वास्थ्य धीरे–धीरे उन्नत होता जाता है।

**4.** व्यक्ति को स्वयं को रचनात्मक कार्यों में संलग्न रखना चाहिए। इससे मन प्रसन्न रहता है तथा आत्म–संतोष बढ़ता है जो कि मानसिक स्वास्थ्य को उत्तरोत्तर बढ़ाने में सहायक होता है।

**5**. व्यक्ति को हास–परिहास करने की कला सीख लेनी चाहिए। इससे व्यक्ति में अपने डर, चिंता, क्रोध आदि संवेगों पर नियंत्रण हासिल करने में मदद मिलती है साथ ही प्रसन्नता बढ़ती है। इससे मानसिक स्वास्थ्य के उन्नत होने की संभावना काफी बढ़ जाती है।

**6**. सामाजिक कार्यों में व्यक्ति को हाथ बॅटाना चाहिए तथा जिम्मेदारी लेने के लिए आगे आना चाहिएं इससे व्यक्ति में सामाजिक सहभागिता का भाव उत्पन्न होता है उसमें पर्याप्त मानसिक संतोष जन्म लेता है। एवं मानसिक स्वास्थ्य उन्नत होता है।

**7.** व्यक्ति में किसी भी प्रकार की परिस्थिति में घटित घटनाओं की पुनर्विवेचन करने की क्षमता होनी चाहिए। मनोवैज्ञानिकों का मत है कि अधिकतर परिस्थितियों में जो कुंठा व्यक्ति में उत्पन्न होती है, उसका कारण बाह्य परिस्थिति की घटना नहीं होती है, बल्कि व्यक्ति द्वारा उसका दोषपूर्ण ढंग से व्याख्या किया जाना होता है। अतः व्यक्ति में ऐसी परिस्थितियों की पुनर्विवेचन करने की क्षमता होनी चाहिए ताकि उसमें कुंठा का स्तर अधिक न बढ़े और व्यक्ति में अनावश्यक तनाव आदि उत्पन्न न हो सके। इससे व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य का स्तर उत्तम बना रहता है।

**(ग) सामाजिक–सांस्कृतिक उपाय** (Socio-cultural measures) – बहुत से ऐसे सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक है जिनके प्रभाव से सामान्य परिस्थितियों में मानसिक स्वास्थ्य में गिरावट आती है यदि इन कारकों के प्रभावों को नियंत्रित करने की विधि व्यवस्था या उपाय कर लिये जायें तो मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाया जा सकता है। इन विशेष सामाजिक–सांस्कृतिक कारकों में जो प्रमुख हैं वे निम्नांकित हैं–

1. निम्न सामाजिक स्तर (lower social level)
2. निम्न आर्थिक स्तर (lower economic level)
3. विवाह–विच्छेद (Divorce)
4. माता–पिता की मृत्यु (Death of parents)
5. पति अथवा पत्नी की मृत्यु (Death of spouse)

इन सबों का वर्णन निम्नांकित है–

**1. निम्न सामाजिक स्तर** (lower social level) – निम्न सामाजिक स्तर को उन्नत करने के उपायों से व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य का सीधा संबंध है। जब सामाजिक स्तर निम्न होता है तब व्यक्ति को विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों में अपमान का अनुभव होता हैं तथा स्वयं को नीचा देखना पड़ता है इससे व्यक्ति में कभी कभी स्वयं के प्रति घृणा का भाव पैदा हो जाता है तथा आत्म सम्मान में गिरावट आती है। जब इस सामाजिक स्तर को प्रशासकीय निर्णयों एवं सामाजिक आंदोलनों के माध्यम से ऊँचा उठा दिया जाता है अथवा सामाजिक भेदभाव को दूर किया जाता है तो इस स्थिति के व्यक्तियों का मानसिक स्वास्थ्य उन्नत होता है।

**2. निम्न आर्थिक स्तर** (lower economic level)– निम्न सामाजिक स्तर के समान ही निम्न आर्थिक स्तर भी व्यक्ति को मानसिक स्वास्थ्य को परोक्ष रूप से प्रभावित करत पाया गया है। निम्न आर्थिक स्तर होने से व्यक्ति को बहुत सी साधारण स्तर की सुविधाओं से भी वंचित होना पड़ता है तथा उच्च आर्थिक स्तर के व्यक्तियों से तुलना करने पर वे अपने आप को हीन स्थिति में पाते हैं तथा उनमें हीनता का भाव उत्पन्न हो जाता है। यह हीन भावना व्यक्ति मानसिक अस्वस्थता को बढ़ावा देती है। जब प्रशासकीय अथवा सामाजिक सांस्कृतिक उपायों के माध्यम से इस आर्थिक असमानता को दूर कर दिया जाता है तो इससे मानसिक स्वास्थ्य उन्नत होने लगता है।

**3. विवाह–विच्छेद** (Divorce)– जीवन में विवाह–विच्छेद की घटना घटने पर व्यक्ति की मनोदशा पर प्रायः नकारात्मक प्रभाव पड़ता है व्यक्ति में संबंधों को न निभा पाने की भावना घर कर जाती है। उसे लगता है कि इन संबंधों के निभा पाना अत्यंत ही कठिन है। फलतः अन्य प्रकार के संबंधों के संदर्भ में भी उसकी यही राय बन जाती है। इससे संबंधों के प्रति व्यक्ति का विश्वास डॉवाडोल हो जाता है। समाज के लोग भी यदि व्यक्ति की क्षमताओं के प्रति अविश्वास प्रदर्शित करते हैं तो इससे व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य प्रभावित होता है। नकारात्मक भावसंवेग व्यक्ति को घेर लेते हैं। यदि किन्हीं उपायों के माध्यम से काउन्सलिंग अथवा साइकोथेरेपी के माध्यम से यदि व्यक्ति को इन नकारात्मक भावसंवेगों से बचाया जा सके तो इससे मानसिक स्वास्थ्य की गिरावट को थामा जा सकता है।

**4. माता–पिता की मृत्यु** (Death of parents)– माता–पिता की मृत्यु होने को भी सामाजिक–सांस्कृतिक कारकों के रूप में देखा जाता है। यह घटनायें व्यक्ति को प्रेम से वंचन प्रदान करती है तथा बड़ों के मार्गदर्शन से भी वंचित करती हैं। यदि किसी सामाजिक प्रक्रिया से माता–पिता की मृत्यु के कारण होने वाले भावनात्मक एवं सामाजिक समर्थन के अभाव को दूर किया जा सके तो मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाया जा सकता है।

**5. पति अथवा पत्नी की मृत्यु** (Death of spouse)– पति अथवा पत्नी में से किसी एक की असमय मृत्यु हो जाने के कारण भी व्यक्ति को भावनात्मक समर्थन के अभाव का सामना करना पड़ता है तथा साथ ही इससे व्यक्ति की सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थिति में बदलाव आ जाता है। यदि समाज के लोग व्यक्ति की इस आघात से उत्पन्न प्रभावों से निपटने में व्यक्ति की अपेक्षित सहायता करें अथवा जुटायें जो इससे व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य को गिरने से बचाया जा सकता है।

उपरोक्त उपायों के अलावा योग आधारित उपाय भी मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने में सहायक होते हैं।

## (घ) योग आधारित उपाय (Yog based measures)

मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत करने के उपायों में योग आधारित उपाय वर्तमान में सर्वाधिक प्रचलित हैं। यौगिक जीवनशैली को अपनाने अथवा योगाभ्यास करने से मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाया जा सकता है। महर्षि पतंजलि के अनुसार चित्तवृत्तियों का निरोध ही योग है। एवं इन चित्तवृत्तियों का व्यक्ति की मानसिक स्थिति से सीधा संबंध होता है। इन चित्तवृत्तियों के कारक व्यक्ति के संस्कार एवं पंचक्लेश होते हैं। योग विद्वानों के अनुसार यदि चित्त की वृत्तियों को अक्लिष्ट किया जा सके तथा पंचक्लेशों को तनु अवस्था में ले जाये जा सके तो उससे व्यक्ति के मन को स्थिर किया जा सकता है। इससे व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य में उन्नति की जा सकती है अब प्रश्न उठता है कि वे कौन से योग आधारित तरीके हैं जिनसे पंचक्लेशों के प्रभाव को नियंत्रित किया जा सकता है, चित्त की वृत्तियों को सकारात्मक दिशा दी जा सकती है। इन प्रविधियों का वर्णन निम्नांकित है।

**1. क्रियायोग का नियमित अभ्यास** – क्रियायोग के नियमित अभ्यास से मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाया जा सकता है। क्रियायोग में तीन प्रकार के नियमों का पालन किया जाता है ये नियम हैं तप, स्वाध्याय एवं ईश्वरप्रणिधान। इनका वर्ण निम्नांकित है–

**तप का अभ्यास** – तप से तात्पर्य शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जा के संदोहन, संरक्षण एवं सदुपयोग से होता है। यह कार्य आहार विहार के नियमितीकरण एवं संयम के माध्यम से सम्पन्न किया जा सकता है। शरीर में एवं मन में पर्याप्त ऊर्जा की उपलब्धि होने से चित्त की वृत्तियॉ अक्लिष्ट स्वरूप की होती हैं जिससे व्यक्ति को मानसिक शांति प्राप्त होती है तथा मानसिक सामर्थ्य में वृद्धि होती है।

**स्वाध्याय** – स्वाध्याय से तात्पर्य स्व के अध्ययन से हैं जब व्यक्ति नियमित रूप से स्व का अध्ययन करने लगता है तब वह अपनी स्थिति से सर्वथा परिचित रहता है उसकी सामर्थ्य एवं कमियों से वह सुपरिचित होता जाता है। तदनुरूप निर्णय लेता है। उसके निर्णय सही होते हैं। मानसिक उलझने नहीं पनपतीं। परिणामस्वरूप उसका मानसिक स्वास्थ्य उन्नत होता जाता है।

**ईश्वर प्रणिधान**– ईश्वर प्रणिधान से तात्पर्य स्वयं के भावसवेगों को ईश्वरोन्मुख करने से होता है। महर्षि पतंजलि के अनुसार अपने सभी भावों को ईश्वर अर्पित करने से भावनात्मक द्वन्द्वों का शमन होता है। व्यक्ति का भावनात्मक समायोजन मजबूत होता है वह समाज के सदस्यों के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध विनिर्मित करने में सक्षम होता है। भावनात्मक बुद्धि बढ़ने एवं सक्रिया होने से उसकी भावनात्मक समझ भी बढ़ी चढ़ी होती है फलतः उसका अपने भावों पर उचित नियंत्रण होता है। इससे उसके मानसिक स्वास्थ्य में निरंतर उन्नति होती जाती है।

**2. प्राणायाम बंध एवं मुद्रा का अभ्यास** – क्रियायोग के अलावा प्राणायाम का समुचित अभ्यास भी मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने में सहायक होता है। प्राणायाम से व्यक्ति में प्राण का संचार होता है, व्यक्ति की प्राण ऊर्जा में बढ़ोत्तरी होती है तथा बंध एवं मुद्राओं के अभ्यास से यह विस्तारित प्राण शरीर में सम्यक रूप में संचरित होता है। इससे व्यक्ति का स्वास्थ्य उन्नत होता है। प्राण शरीर एवं मन को बॉधने वाला एक मात्र सूत्र है। इस सूत्र की मजबूती से इससे जुड़े दोनो ही पक्ष भी मजबूत होते हैं।

**3. ध्यान का अभ्यास** – योगशास्त्रों में ध्यान को उच्चस्तरीय क्रिया माना गया है। ध्यान का अभ्यास संस्कारों को प्रभावित एवं परिवर्तित करता है। व्यक्ति के संस्कार उसके चिंतन, भाव एवं व्यवहार में परिलक्षित होते हैं। ध्यान व्यक्ति के संस्कारों के परिमार्जन के माध्यम

से व्यक्ति के चिंतन भाव एवं व्यवहार में बदलाव लाता है। यदि नियमित ध्यान किया जाये तो उसके अभ्यास से व्यवहार में वॉछनीय एवं अपेक्षित बदलाव लाया जा सकता है। ध्यान के अभ्यास से मानसिक शांति प्राप्त होती है एवं मानसिक स्वास्थ्य उन्नत होता है। व्यक्ति की विभिन्न मानसिक क्षमताओं में वृद्धि होती है जिनके माध्यम से व्यक्ति अपने जीवन लक्ष्य को प्राप्त करने में सक्षम बनता है तथा सफलता को प्राप्त करता है।

**अभ्यास प्रश्न 3–** निम्नलिखित में कौन सी प्रक्रिया ऊर्जा के संदोहन, संरक्षण एवं सदुपयोग से संबंधित है?

क– स्वाध्याय

ख– ईश्वर प्रणिधान

ग– तप

घ– प्राणायाम

## 17.5 शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्ध (Relationship of physical and mental health)

उपरोक्त पंक्तियों में आपने मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने के उपायो का ज्ञान प्राप्त किया है आइये अब आप शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के बीच संबंध के बारे में जानकारी प्राप्त कीजिए।

शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के बीच समबन्ध को समझने से पूर्व शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य क्या है इसे जान लेना आवश्यक है।

**शारीरिक स्वास्थ्य–** शारीरिक स्वास्थ्य शरीरगत विकृतियों, परेशानियों एवं रोगों से अभाव को कहा जाता हैं। दूसरे शब्दों में जिस व्यक्ति का शरीर अपनी सभी क्रियाओं को सुचारू रूप से संचालित करता है उस व्यक्ति का शारीरिक स्वास्थ्य उत्तम कोटि का माना जाता है। शरीर अपना कार्य विभिन्न अंगों, ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेंद्रियों के माध्यम से संचालित करता हैं। इंद्रियॉ शरीर में वास करती हैं एवं ये मस्तिष्क को बाह्य जगत में घट रही घटनाओं, एवं हो रहे परिवर्तनों से अवगत कराती है। शारीरिक रूप से अस्वस्थ होने पर इन इंद्रियों की ज्ञानदायिनी शक्ति भी क्षीण हो जाती है एवं सही ज्ञान प्रदान करने के स्थान पर ये इन्द्रियॉ भ्रमात्मक ज्ञान भी प्रदान करने लग जाती हैं। उदाहरण के लिए यदि किसी व्यक्ति की नेत्र ज्योति कमजोर हो जाने पर रस्सी को सांप समझने की भूल होना। रस्सी को सांप समझना भ्रम का सुंदर उदाहरण है। गलत ज्ञान होने से अथवा गलत सूचना होने से व्यक्ति के निर्णय भी गलत होते हैं एवं परिणामस्वरूप असफलता हाथ लगती है। इसी प्रकार यदि किसी व्यक्ति की जिह्वा की स्वादेन्द्रियॉ की शक्ति क्षीण हो जाये तो जिह्वा मीठे, नमकीन, कटु, तिक्त आदि स्वादगुणो को ठीक से ग्रहण नहीं कर पाती है अथवा पहचान नहीं पाती है। जिससे भ्रमात्मक जानकारी मस्तिष्क को प्राप्त होती है। इस प्रकार यदि देखा जाये तो इंद्रियों के ठीक प्रकार से कार्य सम्पादन हेतु शारीरिक स्वास्थ्य का उत्तम होना अत्यंत ही आवश्यक है।

इंद्रियों के अलावा शरीर के विभिन्न अंगों जैसे कि हृदय, फेफड़े, पेट, यकृत, किडनी आदि का सुचारू रूप से कार्य करना अति आवश्यक है। इन अंगों में किसी प्रकार की विकृति होने से शारीरिक अस्वस्थता जन्म लेती है जो आगे चलकर उसके मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती है।

**मानसिक स्वास्थ्य–** मानसिक स्वास्थ्य से तात्पर्य वैसे अधिगमित व्यवहार से होता है जो सामाजिक रूप से अनुकूली होते हैं एवं जो व्यक्ति को अपनी जिन्दगी के साथ पर्याप्त रूप से सामना करने की अनुमति देता है।'मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति वह है जो स्वयं सुखी है, अपने पड़ोसियों के साथ शांतिपूर्वक रहता है, अपने बच्चों को स्वस्थ नागरिक बनाता है और इन आधारभूत कर्तव्यों को करने के बाद भी जिसमें इतनी शक्ति बच जाती है कि वह समाज के हित में कुछ कर सके।' मनोवैज्ञानिक दृष्टि से, मानसिक स्वास्थ्य की मुख्य कसौटी अर्जित व्यवहार है। जिसका स्वरूप कुछ ऐसा होता है कि इससे व्यक्ति को सभी तरह के समायोजन करने में मदद मिलती है। यह एक संतुलित, सुदृढ़ मानसिक स्थिति को व्यक्त करता है, जिसमें व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों में सामाजिक रूप से और सांवेगिक रूप से एक मान्य व्यवहार करता है। मानसिक स्वास्थ्य की व्याख्या कई मनोवैज्ञानिक दृष्टियों से की गई है ये है (क) मनोगत्यात्मक दृष्टि (Psychodynamic view), (ख) व्यवहारवादी दृष्टि (Behavioristic view), मानवतावादी दृष्टि (Humanistic view) एवं (घ) संज्ञानात्मक दृष्टि (Cognitive view)

महर्षि पतंजलि ने समाधि को चित्त की वृत्तियों के निरोध की अवस्था माना है एवं यौगिक दृष्टि से यही मानसिक स्वास्थ्य की सामान्य अवस्था है। इस से पूर्व की सभी अवस्थाओं को चित्तवृत्तियों की विभिन्न अवस्थाओं के रूप में मानसिक स्वास्थ्य के विभिन्न स्तर निर्धारित किये जा सकते हैं।

योगदर्शन में चित्त की पॉच अवस्थाओं का वर्णन किया गया है। ये पॉच अवस्थायें हैं– 1. मूढ़, 2. क्षिप्त, 3. विक्षिप्त, 4. एकाग्र 5. निरूद्ध।

विविध मानसिक रोग मन की मूढ़ एवं क्षिप्त अवस्थाओं में उदय होते हैं।' आधुनिक मनोविज्ञान में प्रथम तीन भूमियों या अवस्थाओं का ही अध्ययन हुआ है और इसी के आधार पर मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी सामान्य एवं असामान्यता की अवधारणाओं का विकास हुआ है, जबकि मानसिक स्वास्थ्य की समग्र संकल्पना इसी सीमा में बॅधे रहने से संभव नहीं हैं समग्र मानसिक स्वास्थ्य का उद्भव तो चित्त की अंतिम दो अवस्थाओं से ही उद्भूत होगा, जिसे आधुनिक मनोविज्ञान असामान्यता की श्रेणी में विभाजित करता है। इस तरह से यौगिक दृष्टिकोण मानवीय अस्तित्व समग्रता से विचार करता है और अपनी यौगिक क्रियाओं द्वारा मानवी चेतना के गहनतम स्तरों का उपचार करते हुए यह समग्र मानसिक स्वास्थ्य का पथ प्रशस्त करता है।

मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों के आत्म–सम्मान का भाव काफी उच्च होता है। जिन व्यक्तियों को अपने स्व का बोध होता है वे मानसिक रूप से अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा ज्यादा स्वस्थ होते हैं। जिन व्यक्तियों में स्व–मूल्यॉकन की प्रवृत्ति होती है वे मानसिक रूप से स्वस्थ होते हैं क्योंकि स्वमूल्यॉकन की प्रवृत्ति उन्हें सदैव आईना दिखलाती रहती है। वे स्वयं के गुणों एवं दोषों से अनवरत परिचित होते रहते हैं एवं किसी भी प्रकार के भ्रम अथवा संभ्रांति कि गुंजाइश भी नहीं रहती है। मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों में सुरक्षा का भाव बढ़ा–चढ़ा होता है।मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों में परिवार एवं समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ ऐसे संबंध विनिर्मित करने की क्षमता पायी जाती है जो कि उन्हें जीवन में संतुष्टि प्रदान करती है, उन्हें जीवन में सार्थकता का अहसास होता है एवं वे प्रसन्न रहते हैं।

मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों में प्रसन्न रहने की आदत पायी जाती है। साथ ही ऐसे व्यक्ति अपने कार्यों में काफी उत्पादक होते हैं। मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों का

शारीरिक स्वास्थ्य भी उत्तम कोटि का होता है। मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों में तनाव एवं अतिसंवेदनशीलता का अभाव पाया जाता है। मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति किसी वस्तु, घटना या चीज का प्रत्यक्षण पक्षपात रहित होकर वस्तुनिष्ठ तरीके से करते हैं। मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों में जीवन दर्शन की स्पष्टता होती है। उनके जीवन का सिद्धान्त स्पष्ट होता है। उन्हें पता होता है कि उन्हें अपने जीवन में किस तरह से आगे बढ़ना है? क्यों बढ़ना है? वे लोग जिनका जीवन लक्ष्य स्पष्ट होता है वे मानसिक रूप से स्वस्थ होते हैं। मनोवैज्ञानिक इसका कारण जीवन लक्ष्य एवं जीवन शैली में सामंजस्य को मानते हैं। जिन व्यक्तियों में ईश्वर विश्वास कूट कूट कर भरा होता है ऐसे व्यक्ति भी मानसिक रूप से स्वस्थ होते हैं।

**शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य में संबंध –** शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के बीच घनिष्ठ संबंध हैं। शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य परस्पर अन्योनाश्रित हैं क्योंकि मन एवं शरीर एक दूसरे से प्राण के माध्यम से जुड़े हुए हैं। प्राण शारीरिक ऊर्जा की सूक्ष्म अवस्था है परिष्कृत अवस्था है। यह स्थूल शरीर को अपने से भी सूक्ष्म मन से जोड़ने का कार्य करती है। योगशास्त्रों के अनुसार व्यक्तित्व में पंचकोश पाये जाते हैं ये पंचकोश हैं अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश एवं आनंदमय कोश। अन्नमय कोश ही स्थूल शरीर है, एवं मनोमय कोश ही मानसिक शरीर है। इन दोनो कोशों के मध्य प्राणमय कोश विद्यमान है जो कि प्राणवह नाड़ियों में विद्यमान है। प्राण का प्रवाह जब नाड़ियों में सुचारू रूप से चलता है तब व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक दोनों ही रूपों में स्वस्थ रहता है। जब कभी यह प्रवाह अवरूद्ध होता है अथवा इसमें असमानता या व्यतिरेक उत्पन्न होता है तब व्यक्ति का शारीरिक एवं मानसिक दोनों ही प्रकार का स्वास्थ्य अस्वस्थ हो जाता है। उदाहण के लिए जब व्यक्ति को ज्वर नामक रोग घेर लेता है जब उसकी शारीरिक ऊर्जा काफी कम हो जाती है फलतः वह कमजोर हो जाता है साथ ही मानसिक रूप से उसमें चिड़चिड़न एवं निराशा का भाव बढ़ जाता है। वह मानसिक प्रक्रियाओं को ज्वर की अवस्था में ठीक से संम्पादित नहीं कर पाता है। इससे यह प्रमाणित होता है कि शरीर एवं मन परस्पर एक दूसरे से किसी न किसी माध्यम से जुड़े हुए हैं। वही दूसरे रूप में जब किसी व्यक्ति को कोई मानसिक रोग अथवा परेशानी होती है तो उसका असर उसके शारीरिक स्वास्थ्य पर भी देखने को मिलता है। उदारहण के लिए तनाव के बढ़ जाने पर इसका प्रभाव डायबिटीज, अस्थमा आदि रोगों के रूप में देखने को मिलता है जो कि वास्तव में शरीर के अंग विशेष एवं फिजियोलॉजिकल प्रक्रियाओं से संबंधित होते हैं।

उपरोक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य का परस्पर घनिष्ठ संबंध हैं। एक की उन्नति दूसरे को उन्नत बनाती है वहीं दूसरे की अवनति पहले को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। स्पष्ट है कि मानसिक रूप से उन्नत होने के लिए व्यक्ति को सर्वप्रथम अपने शारीरिक स्वास्थ्य पर ध्यान देना चाहिए। शारीरिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने के प्रयास करते रहना चाहिएं।

**अभ्यास प्रश्न 4–** निम्नलिखित में शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को जोड़ने वाली कड़ी .... .....है।

क– आत्मा

ख– इन्द्रियॉ

ग– विज्ञान

घ– प्राण

## 17.6 सारांश

1. मानसिक स्वास्थ्य चिंतन, भाव एवं व्यवहार के तीन आयामों को अपने में समेटे हुए है। इन तीनों आयाम व्यक्तित्व के भी तीन आयाम हैं। व्यक्ति का व्यक्तित्व जिस रूप में परिलक्षित होता है वह इन तीनों आयामों के समुचित विकास, उन्नति एवं सामंजस्य पर निर्भर करता है। व्यक्ति की सोच उसमें भावनाओं को तरंगित करती है एवं ये भावनात्मक तरंगे उसे तदनुरूप क्रिया–व्यवहार करने के लिए प्रेरित करती हैं। इन तीनों के बीच कोई सीधा स्पष्ट संबंध नहीं है वरन ये तीनों परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते एवं एक दूसरे से प्रभावित होते हैं। इन तीनों का प्रभाव व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता है।

2. सभी प्रकार के कार्यों में कुशलता के लिए मानसिक प्रक्रियाओं, भावनात्मक दशा का ठीक होना आवश्यक है। मानसिक स्वास्थ्य का जीवन में किसी भी कार्य अथवा उद्देश्य में सफलता की प्राप्ति में एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह भूमिका एक मजबूत तैयारी के रूप में होती हैं। व्यक्ति की सफलता उसकी मानसिक तैयारियों पर भी निर्भर करती हैं।यदि परिवार के प्रत्येक सदस्य का मानसिक स्वास्थ्य उत्तम कोटि का होता है तो परिवार एक इकाई के रूप में सर्वतोमुखी प्रगति करता है। किसी भी समाज की प्रगति एवं विकास उस समाज में रहने वाले व्यक्तियों के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य तथा नैतिक विकास पर निर्भर करता है।

3. जिन व्यक्तियों का मानसिक स्वास्थ्य ठीक होता है उनमें व्यक्तित्व विकार अथवा विघटन की घटना नहीं घटती है ऐसे व्यक्ति किसी भी प्रकार के मनोरोग का शिकार नहीं होते हैं। मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति द्वारा समस्या को ठीक से समझ पाने हेतु ध्यान दे पाने की समर्थता से होता है। जिन व्यक्तियों का मानसिक स्वास्थ्य उत्तम होता है वे मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्तियों की अपेक्षा अपने आत्म् की विशेषताओं से ज्यादा परिचित होते हैं। व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य का उन्नत होना बहुत ही जरूरी है क्योंकि व्यक्तित्व शरीर, मन एवं इंद्रियों के सम्मिलन से विनिर्मित होता है जिसकी प्रकट अभिव्यक्ति व्यवहार के रूप में परिलक्षित होती है। मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों में आपराधिक प्रवृत्ति मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्तियों की तुलना में काफी कम होती है।

4. प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मैकवेस्ट (1980), विटेकर (1970) एवं कोलमैन (1956) जैसे नैदानिक मनोवैज्ञानिकों ने मानसिक स्वास्थ्य के गहन अध्ययन द्वारा इसे उन्नत बनाने के उपायों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है–

ये तीन श्रेणियॉ निम्नांकित हैं–

(क) रोकथामपरक उपाय (Preventive measures)

(ख) मनोवैज्ञानिक उपाय (Psychological measures)

(ग) सामाजिक–सांस्कृतिक उपाय (Socio-cultural measures)

(घ) योग आधारित उपाय (Yog based measures)

5. शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य का परस्पर घनिष्ठ संबंध हैं। एक की उन्नति दूसरे को उन्नत बनाती है वहीं दूसरे की अवनति पहले को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। स्पष्ट है कि मानसिक रूप से उन्नत होने के लिए व्यक्ति को सर्वप्रथम अपने शारीरिक स्वास्थ्य पर ध्यान देना चाहिए। शारीरिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने के प्रयास करते रहना चाहिए।

## 17.7 शब्दावली

**तप** – तप से तात्पर्य शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जा के संदोहन, संरक्षण एवं सदुपयोग से होता है।

**स्वाध्याय** – स्वाध्याय से तात्पर्य स्व के अध्ययन से हैं जब व्यक्ति नियमित रूप से स्व का अध्ययन करने लगता है तब वह अपनी स्थिति से सर्वथा परिचित रहता है उसकी सामर्थ्य एवं कमियों से वह सुपरिचित होता जाता है।

**ईश्वर प्रणिधान**– ईश्वर प्रणिधान से तात्पर्य स्वयं के भावसवेगों को ईश्वरोन्मुख करने से होता है। महर्षि पतंजलि के अनुसार अपने सभी भावों को ईश्वर अर्पित करने से भावनात्मक द्वन्द्वों का शमन होता है।

**मानसिक स्वास्थ्य**– मानसिक स्वास्थ्य से तात्पर्य वैसे अधिगमित व्यवहार से होता है जो सामाजिक रूप से अनुकूली होते हैं एवं जो व्यक्ति को अपनी जिन्दगी के साथ पर्याप्त रूप से सामना करने की अनुमति देता है।

**शारीरिक स्वास्थ्य**– शारीरिक स्वास्थ्य शरीरगत विकृतियों, परेशानियों एवं रोगों से अभाव को कहा जाता हैं। दूसरे शब्दों में जिस व्यक्ति का शरीर अपनी सभी क्रियाओं को सुचारू रूप से संचालित करता है उस व्यक्ति का शारीरिक स्वास्थ्य उत्तम कोटि का माना जाता है।

## 17.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 –(क) मानसिक स्वास्थ्य का केन्द्र बिन्दु सेरीब्रल कॉर्टेक्स होता है।
अभ्यास प्रश्न 2 –(घ) कल्पना शक्ति में बढ़ोत्तरी करना।
अभ्यास प्रश्न 3 –(ग) तप
अभ्यास प्रश्न 4 –(घ) प्राण

## 17.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

रोनाल्ड, जे. कोमर (2014) फन्डामेंटल्स ऑफ एबनॉरमल साइकोलॉजी, न्यूयॉर्क – वर्थ पब्लिशर।

कारसन, बुचर एवं मिनेका (1998 अपडेटेड थर्ड एडीसन) एबरॉरमल साइकोलॉजी एण्ड मॉर्डन लाइफ, लंदन – एडिसन, विसली, एजुकेशनल पब्लिशर इन्क।

बारलो एण्ड डूरण्ड (2012) एबनॉरमल साइकोलॉजी – एन इन्टीग्रेटेड एप्रोच, बेलमाउन्ट – वर्ड्सवर्थ सिनेज लर्निंग।

रॉबर्ट ए. बैरोन (2006) साइकोलॉजी, दिल्ली – पियर्सन प्रेंटिस हाल।

सैमुअल वुड एवं एलेन वुड (2000) द इसेंशियल वर्ल्ड ऑफ साइकोलाजी, यू एस ए– एलिन एण्ड बेकन।

डॉ अरूण कुमार सिंह (2010) आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, दिल्ली – मोतीलाल बनारसीदास।

स्वामी शिवानन्द (2005) मन रहस्य और निग्रह, टिहरी, डिवाइन लाइफ सोसाइटी।

डॉ सुरेश वर्णवाल (2002) योग और मानसिक स्वास्थ्य, दिल्ली, न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन।

प्रो. रामहर्ष सिंह (1999) योग एवं यौगिक चिकित्सा, दिल्ली, चौखम्बा संस्कृति प्रतिष्ठान।

जयगोपाल त्रिपाठी (2001) असामान्य मनोविज्ञान, आगरा, एच. पी. भार्गव बुक हाउस।

## 17.10 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 – मानसिक स्वास्थ्य के महत्व को विस्तार से समझाइये।
प्रश्न 2 – मानसिक स्वास्थ्य एवं शारीरिक स्वास्थ्य के बीच सम्बन्ध को स्पष्ट कीजिए।
प्रश्न 3 – मानसिक स्वास्थ्य की उन्नति के उपायों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
प्रश्न 4 – मानसिक स्वास्थ्य की उन्नति के मनावैज्ञानिक उपायों को विस्तार से समझाइये।
प्रश्न 5 – योग आधारित मानसिक स्वास्थ्य की उन्नति के उपायों का वर्णन कीजिएं
प्रश्न 6 – तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान का मानसिक स्वास्थ्य से संबंध की व्याख्या कीजिए।